THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186029
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83 S53Sk Accession No. H 3490

Author भारत

Title ... ग्रंथावली १९६१

This book should be returned on or before the date last marked below.

शरत ग्रन्थावली

शरत ग्रन्थावली

★

उपन्यास:

दत्ता

देहाती समाज

गृहदाह

★



रूपकमल प्रकाशन

रूप कमल प्रकाशन

दिल्ली

अनुवादक :
हंसकुमार तिवारी

© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशक : शरत साहित्य संस्थान, दिल्ली
वितरक : रूप कमल प्रकाशन
बँगलो रोड, दिल्ली-६
आवरण : नरेन्द्र वेदी
प्रथम संस्करण : १९६१
मुद्रक : नूतन प्रेस, दिल्ली-६
मूल्य : दस रुपया



एक

उन दिनों हुगली ब्रांच स्कूल के हेडमास्टर साहब जिन तीन लड़कों को अपने स्कूल का रत्न बताया करते थे, वे तीनों तीन अलग-अलग गाँव से रोज कोस भर पैदल चल कर पढ़ने आया करते थे। अजीब मुहब्बत थी उनमें! कभी ऐसा नहीं होता कि रास्ते के उस बरगद के नीचे इकट्ठे हुए बिना वे स्कूल में कदम रक्खें। तीनों का घर हुगली के पश्चिम पड़ता था। जगदीश सरस्वती का पुल पार करके दिघड़ा गांव से आता था और वनमाली तथा रासविहारी आते थे अगल-बगल की दो बस्तियों से—कृष्णपुर और राधापुर। जगदीश उन सबों में जैसा मेधावी था, उसकी हालत भी वैसी ही उन सबों से बुरी थी। पिता पुरोहित थे। यजमानी करके, ब्याह-जनेऊ कराके गुजारा चलाते थे। वनमाली संपन्न घर का था। उसके पिता को लोग कृष्णपुर का जमीदार कहा करते थे। रासविहारी की हालत भी खासी अच्छी थी। जगह-जमीन, खेतीबारी, बाग-तालाब, गांव-घर में जो रहने से मजे में गुजर-वसर चल सकता हो, सब कुछ होने के बावजूद ये लड़के शहर में किराए का मकान लेकर क्या आंधी और क्या पानी, सर्दी-गर्मी झेलकर रोज जो घर से इतनी दूर स्कूल आया-जाया करते थे, इसकी वजह यह थी कि तब वे माता-पिता बच्चों की इस तकलीफ को तकलीफ ही नहीं गिनते थे, बल्कि यह सोचते थे कि इतना-सा कष्ट न उठाए तो सरस्वती की कृपा ही नही होने की। खैर कारण चाहे जो हो, उन तीनों लड़कों ने इन्ट्रेंस इसी तरह से पास किया था। बरगद के नीचे बैठ कर, उस पेड़ को गवाह रखकर तीनों दोस्त रोज यही प्रतिज्ञा करते थे कि जिन्दगी में वे कभी अलग न होंगे, ब्याह नहीं करेंगे और वकील बनकर तीनों एक मकान में साथ-साथ रहेंगे, रुपए कमा कर एक सेन्दूक मे जमा करेंगे और उन रुपयों से देश-सेवा करेंगे।

यह तो हुई बचपन की कल्पना। लेकिन जो कल्पना नहीं, सत्य है, अन्त तक उसका रूप क्या हुआ, संक्षेप में वही बतादूं। मिताई की पहली गांठ तो बी. ए. कक्षा में ढीली पड़ गई। उन दिनों कलकत्ते में केशवचन्द्र सेन का बड़ा प्रचंड प्रताप था। भाषण का जबर्दस्त जोर। देहात के ये लड़के उस जोर को हटात सम्भाल न सके बह गए। वह तो गए, लेकिन वनमाली और रासविहारी जिस तरह खुले आम दीक्षा लेकर ब्रह्मसमाजी बन गए, जगदीश वैसा न बन सका, आगा-पीछा करने लगा। मेधावी वह जरूर सबसे ज्यादा था, लेकिन था बड़ा कमजोर दिल का। फिर उसके

पंडित पिता जीवित ही थे। बाकी दोनों के यह बला न थी। कुछ ही पहले पिता के परलोकवासी हो जाने से वनमाली कृष्णपुर का जमींदार और रासविहारी अपने गाँव की सारी जगह-जायदाद का एकछत्र सम्राट बन बैठा था। इसलिए कुछ ही दिनों में दोनों दोस्त ब्राह्म-परिवार से विदुषी भार्या लेकर अपने-अपने घर लौट आए। लेकिन बेचारे गरीब जगदीश को यह सुविधा नसीब न हुई। उसे कानून पास करना पड़ा और एक गृहस्थ ब्राह्मण की ग्यारह साल की लड़की से विवाह करके रोजी-रोटी के लिए इलाहाबाद चला जाना पड़ा। लेकिन जो रह गये, उन्हें जो काम कलकत्ते में बड़ा सहज लगा था, गांव में वही काम बड़ा कठिन लगने लगा। नई बहू, ससुराल में घूंघट नहीं काढ़ती, जूता-मोजा पहने मजे से सड़कों पर घूमती है—तमाशा देखने के लिए आस-पास के गाँवों से भीड़ जुटने लगी और सारे गाँव में एक ऐसी भद्दी हलचल पड़ गई कि निरी लाचारी न हो तो कोई बीबी के साथ वहाँ टिक नहीं सकता। वनमाली को चारा था, लिहाजा वह गाँव छोड़कर कलकत्ते जा बसा। महज जमीदारी पर निर्भर न करके कारबार शुरू कर दिया। लेकिन रासविहारी की आय थोड़ी थी। सो एक सूप अपनी पीठ पर और एक बीबी की पीठ पर औंध कर किसी तरह अजात होकर गाँव में ही रह गया। इस तरह तीनों दोस्तों मे से एक इलाहाबाद, एक राधापुर और एक के कलकत्ता बस जाने से, कभी ब्याह न करने, एक मकान मे रहने और एक सन्दूक में रुपये जमा करके देश-सेवा करने की प्रतिज्ञा फिलहाल स्थगित रही। और जो बरगद इसके साक्षी थे, बिना किसी शिकवा-शिकायत के चुपचाप हंसते रहे। इस तरह काफी दिन निकल गये। तीनों दोस्तों में शायद ही कभी भेंट-मुलाकात होती, पर छुटपन का प्रेम एक बारगी गायब नहीं हुआ। जगदीश के लड़का हुआ, तो यह शुभ-समाचार देते हुए उसने इलाहाबाद से वनमाली को लिखा, तुम्हें लड़की होगी, तो डसे अपनी पतोहू बना कर उस गलती का प्रायश्चित्त करूंगा, जो कि बचपन में की है। तुम्हारी ही कृपा से वकील होकर मैं सुखी हूँ, इसे मैं एक दिन को भी नहीं भूला हूँ।

उत्तर में बनमाली ने लिखा—ठीक है। तुम्हारे बच्चे के दीर्घ जीवन की कामना। लेकिन मुझे बच्ची होने की कोई आशा ही नहीं। मंगलमय की दया से अगर कभी हुई, तो तुम्हें दूंगा। चिट्ठी लिखकर मन ही मन हंसे। क्योंकि कोई दो साल पहले जब दूसरे दोस्त रासविहारी के लड़का हुआ, तो उसने भी ठीक यही विनती की थी। वाणिज्य की कृपा से इस समय वे काफी बड़े आदमी हो गये थे। हर कोई उनकी लड़की को अपने घर ले जाना चाहता था।

दो

दो-चार महीने की नहीं, पच्चीस साल की कहानी कह रहा हूँ। वनमाली बूढ़े हुए। कई वर्षों तक लगातार बीमार रहते-रहते अब बिल्कुल खाट पर पड़ गए। उन्हें ऐसा लगने लगा, अब शायद चंगा नहीं होने के। वे सदा से भगवत परायण और धर्मभीरु रहे। मरने से उन्हें डर नही था। सिर्फ यही सोचकर जी में कुछ दुखी थे कि अपनी इकलौती बेटी विजया का ब्याह कर जाने का मौका न मिल सका। एक दिन तीसरे पहर अचानक विजया का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा था, बिटिया, मुझे लडका नहीं है, इसका जरा भी गम नही। तू ही मेरी सब है, अभी तेरी उम्र पूरी अठारह की भी नहीं हुई, फिर भी तेरे छोटे से कंधे पर अपनी इतनी बड़ी जायदाद छोड़ जाने में भी मुझे तनिक भय नहीं। तेरे मां नहीं, भाई नहीं, कोई चाचा तक नहीं। फिर भी मुझे पूरा भरोसा है, मेरा सब कुछ बरकरार रहेगा। मगर सिर्फ एक अनुरोध है बिटिया, जगदीश चाहे जो करे और चाहे जो हो, वह मेरा छुटपन का साथी है। कर्ज की बाबत उसका घर-द्वार कभी बिकवा मत देना। उसके एक लड़का है, आंखों तो उसे देखा नहीं कभी, लेकिन सुना है, बड़ा भला है वह। पिता की गलती से उसे बेसहारा न कर देना बिटिया, यही मेरा अन्तिम अनुरोध है।

आंसू-रुंधे स्वर से विजया ने कहा था, आपका आदेश मैं कभी नहीं उठाऊंगी पिता जी। जगदीश वाबू जब तक जिन्दा है, मै आपके समान ही उनकी इज्जत करूंगी। लेकिन उनके गुजर जाने के बाद उतनी जायदाद नाहक उनके बेटे को क्यों छोड़ दी जाय। उनको आपने भी कभी नही देखा, मैने भी नहीं। और सच ही अगर उन्होने पढ़ा-लिखा है, तो मजे में अपने पिता का कर्ज चुका सकते हैं।

बेटी की ओर नजर उठाकर वनमाली ने कहा था, कर्ज कुछ मामूली तो है नहीं बेटी। लड़का ठहरा, न चुका पाये तो ?

विजया बोली थी—जो बाप का कर्ज न चुका पाए, वह कपूत है पिता जी। ऐसे को प्रशय देना उचित नहीं।

अपनी सुशिक्षिता और तेजस्वनी लडकी को वनमाली पहचानते थे। लिहाजा उन्होंने और ज्यादा दबाव नहीं डाला, सिर्फ एक लम्बा निश्वास फेंकते हुए बोले, सभी काम-काज में ईश्वर का ध्यान रखते हुए. जो कर्त्तव्य समझो, वही करना बेटिया। विशेष कोई आग्रह करके तुम्हें मैं बंधन में डालकर नहीं जाना चाहता। यह कह कर वे जरा देर चुप रहे और फिर एक लम्बी उसांस लेकर बोले, एक बात

बताऊं बेटी, यह जगदीश जब सही मानों में एक आदमी था, तब तेरे पैदा होने के पहले ही उसने अपने इस लडके के लिए तुम्हें मांग लिया था और मैंने भी उसे वचन दे दिया था—यह कहकर वे उत्सुक आंखों उसे देखते रह गए थे।

इस बच्ची ने छुटपन में ही अपनी माँ को गवां दिया था, इसलिए इसके पिता और माता, दोनों का स्थान उन्होंने ही पूरा किया था। सो पिता के पास मां की ढिठाई करने में भी वह कभी नही हिचकी। उसने इस पर कहा था, आपने जुवानी कहा भर था बाबूजी, मन से उन्हें वचन नहीं दिया।

ऐसा कैसे कहती हो बेटी ?

मन से वचन दिया होता तो उन्हें एक बार आंखों देखना भी नहीं चाहते। वनमाली ने कहा था, रासविहारी से जब पता चला कि लड़का क्या तो मां जैसा ही कमजोर है, यहां तक कि डाक्टर उसके दीर्घ जीवन की आशा ही नहीं करते, तो पास होने के बाबजूद उसे बुलवा कर मैंने देखना न चाहा। यहीं कलकत्ते में कहीं रहकर वह उस समय बी. ए. पढ़ रहा था। फिर अपनी बीमारी में ही ऐसा उलझा कि ख्याल न रहा। मगर अब लग रहा है, यही अपना सबसे बड़ा नुकसान हुआ। फिर भी तुझे मैं सच कह रहा हूँ, उस समय मैंने तहेदिल से ही जगदीश को वचन दिया था। थोड़ी देर थम गए। फिर बोले—जगदीश को आज सभी जानते हैं कि वह एक निकम्मा जुआड़ी है, शराबी है। लेकिन कभी यही जगदीश हम सभी लड़कों से बेहतर था। विद्या-बुद्धि की नहीं कहता बिटिया, वह बहुतों के होती है, लेकिन प्राणों से ऐसा प्यार करते मैंने किसी को नही देखा और यह प्यार ही उसका काल बन बैठा। उसके बहुत से दोष मैं जानता हूँ, लेकिन जभी यह ख्याल हो आता है कि स्त्री के मर जाने से वह पागल हो गया है, तो तेरी मां की बात का स्मरण करके मन ही मन उसे श्रद्धा किए बिना रहा नही जाता। उसकी स्त्री सती नारी थी। मरते समय नरेन को पास बुला कर उन्होंने इतना ही कहा था, बेटा, मै केवल यही आशीर्वाद दिए जा रही हूं, ईश्वर पर जिसमें तुम्हें अटल विश्वास रहे। सुना है, मां का यह आशीर्वाद विफल नहीं गया। इसी उम्र में उसने मां की तरह भगवान को प्यार करना सीखा है। और जो यह कर पाया, उसके लिए संसार में बाकी क्या रहा बिटिया।

विजया ने पूछा था, संसार में यही क्या सबसे बड़ा कर पाना है पिता जी ?

मरणोन्मुख बूढ़े की आंखें गीली हो आई थीं। यकायक हाथ फैला कर बेटी को छाती से लगाते हुए कहा था, यह सबसे बड़ा कर पाना है बेटी। संसार में, संसार के बाहर—विश्व-ब्रह्मांड में इतना बड़ा कर पाना और दूसरा नहीं विजया। तुम से खुद यह बने न बने, लेकिन जो ऐसा कर सकता है, उसके चरणों में सिर टेक सको, मरते समय तुम्हें यही आशीर्वाद कर जाता है।

पिता की छाती पर औंधी पड़ कर विजया को उस दिन ऐसा लगा था, कोई मानों बड़ी मीठी और चमकती निगाहों से पिता के कलेजे के भीतर से उसके गहरे अन्तस्तल तक को देख रहा है। इस अनोखी और अचरज की अनुभूति ने कुछ क्षण के लिए उसे आच्छन्न कर दिया था। वनमाली बोले थे—उस लड़के का नाम नरेन है, उसके पिता से पता चला, उसने डाक्टरी पास की है—लेकिन डाक्टरी करता नहीं है। वह इस समय देश में होता, तो बुलवा कर उसे एक नजर देख लेता।

विजया ने पूछा था, तो अभी वे कहां हैं ?

वनमाली ने कहा था, अपने मामा के पास—बर्मा में। अब जगदीश में यह क्षमता तो रही नहीं कि सुलझा कर सारा कुछ कह सके, लेकिन उसकी बिखरी-बिखरी बातों से लगता है, लड़के ने अपनी मां के सारे ही सद्‌गुण पाए हैं। ईश्वर करे, जहाँ, जैसे भी हो वह, जीवित रहे।

सांझ हो गई थी। नौकर बत्ती लेकर आया। उसने विलास बाबू के आने की खबर दी। इस पर वनमाली बोले—तू नीचे जा बिटिया, मैं जरा आराम करूं।

विजया ने पिता के सिरहाने के तकियों को सम्भाल दिया, ऊनी चादर को पांव पर ठीक से खींच दिया, बत्ती को आंख की ओट में रख कर नीचे चली गई तो पिता के जीर्ण कलेजे को चीर कर एक दीर्घ निश्वास निकल पड़ा था। विलास के आने की सुन उस दिन बेटी के चेहरे पर जो आरक्त आभास झलक पड़ा था, बूढ़े को उसने दुखाया ही था।

विलासविहारी रासविहारी का बेटा था। कलकत्ते में ही वह बड़े दिनों से एफ. ए. फिर बी. ए. पढ़ रहा था। समाज छोड़ने के बाद से वनमाली गाँव कम ही जाया करते थे। कारबार में खासी तरक्की होने से गांव की जमींदारी को भी उन्होंने काफी बढ़ाया था, लेकिन उन सब की देख-रेख का भार बाल्यबन्धु रासविहारी पर था। उसी सिलसिले से यहाँ विलास का आना-जाना शुरू हुआ और कुछ दिनों से दूसरे जिस कारण में पर्यवसित हुआ, वह आगे जाहिर होगा।

तीन

करीब दो महीने हुए, वनमाली चल बसे। कलकत्ते के उनके इतने बड़े मकान में विजया अकेली ही थी। गांव की जगह-जायदाद की देख-भाल रासविहारी ही करने लगे और इसी सूत्र से वे एक प्रकार से उसके अभिभायक भी बन बैठे। लेकिन

खुद गांव पर रहते थे, लिहाजा विजया की निगरानी की सारी जिम्मेदारी उनके बेटे विलास विहारी पर पडी। सही मानो में वही उसका अभिभावक बन गया।

उन दिनों इस समय प्रत्येक ब्राह्म परिवार में सत्य, सुनीति, सुरुचि आदि शब्द खास तौर से बड़ा बनाकर सिखाए जाते थे। इसलिए कि बाहर पढ़ने के लिए आकर हिन्दू नौजवान जब पिता-माता के खिलाफ, देवी-देवता के खिलाफ, प्रतिष्ठित समाज के खिलाफ विद्रोह करके इस समाज की जिल्दबंधी वही में नाम लिखा बैठते थे, तो यही शब्द सहारा देकर उनके कच्चे माथे को गर्दन पर सीधा टिकाये रखते थे—झुक कर लुढ़क नहीं जाने देते थे। वे कहते, जिसे सत्य समझो, वही करो। माँ का बल है आंसू और बाप का दीर्घविश्वास—कुछ देखने-सुनने की जरूरत नहीं। इन कम-जोरियों को हर कोशिश करके दूर करना, वरना प्रकाश के दर्शन न होंगे। ये बातें विजया ने भी सीखी थी।

आज विलास बाबू गाँव से बूढ़े और शराबी जगदीश के मरने की खबर ले आए थे। जगदीश बाबू विजया के पिता के दोस्त जरूर थे, लेकिन विलास ने जब बताना शुरू किया कि जगदीश शराब के नशे में किस तरह छत से गिर कर मरे, तो ब्राह्मधर्म की सुनीति को याद करके अपने पिता के अभागे बाल्य-बंधु के लिए घृणा से होंठ भींचने में उसे जरा भी हिचक नहीं हुई। विलास कहने लगा, जगदीश मुखर्जी मेरे पिता के भी छुटपन के साथी थे, लेकिन पिताजी ने नौकर से उन्हें फाटक के बाहर निकलवा दिया था। पिता जी कहते है, ऐसे बदचलनों को प्रश्रय देने से मंगल-मय भगवान के चरणो में अपराध बनता है।

विजया ने हामी भरी—बिल्कुल सही है।

उत्साहित होकर विलास भाषण के ढग से कहने लगा—दोस्त हो चाहे जो हो, कमजोरी के चलते ब्राह्म-समाज के चरम आदर्श को आंच लगाना उचित नहीं। जगदीश की सारी जायदाद अब न्यायतः हमारी है। उसका लड़का अगर बाप का कर्ज चुका सके तो ठीक ही है, नहीं तो कानूनन इसी दम हमें सब कुछ पर कब्जा कर लेना चाहिये। छोड देने का वास्तव में हमें कोई हक नहीं। क्योंकि इन रुपयों से हम बहुत से अच्छे काम कर सकते हैं। समाज के किसी लड़के को विलायत तक भेज सकते हैं, धर्म-प्रचार में लगा सकते हैं, कितना कुछ कर सकते हैं। फिर क्यों वैसा न करें? फिर जगदीश बाबू या उनका लड़का हमारे समाज का नहीं कि उस पर किसी प्रकार की कृपा करना जरूरी है। आपकी राय हो तो पिता जी सब ठीक कर लेंगे, इसी के लिए उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है।

विजया अपने स्वर्गवासी पिता की बात को याद करके सोचने लगी, हठात् कोई उत्तर न दे सकी। उसे आगा-पीछा करते देख बिलास जोर में दृढ़तापूर्वक बोल उठा—आपको मैं आनाकानी हरगिज न करने दूंगा। दुविधा, दुर्बलता पाप है। सिर्फ

पाप क्यों, महापाप ! मैंने मन ही मन संकल्प किया है, उसके मकान में आपके नाम से जो कहीं नहीं है, कहीं नहीं हुआ, वही करूंगा। गाँव में ब्राह्म-मंदिर कायम करके देहात के अभागे, मूर्ख लोगों को धर्म-शिक्षा दूंगा। आप एक बार सोच तो देखें सही इन्हीं की बेवकूफी के चलते आपके स्वर्गीय पिता जी ने गांव छोड़ दिया था या नहीं ! उनकी लडकी होने के नाते क्या आपके लिए उचित नहीं—ऐसा नोबुल बदला लेकर उन्हीं का चरम उपकार करना ! कहें, आप ही इसका जवाब दें।

विजया विचलित हो उठी। विलास उद्दीप्त स्वर में कहने लगा, देश भर में कितना बडा नाम होगा, कैसी एक हलचल मच जायगी, जरा सोच तो देखिए। हिन्दुओं को यह मानना ही पड़ेगा—यह जिम्मा मेरा—कि ब्राह्मसमाज में भी आदमी हैं, दिल है, स्वार्थत्याग है। जिन्हें कभी उन लोगों ने सताकर निकाल दिया था, उसी महात्मा की महीयसी बेटी ने उनके कल्याण के लिए ऐसा महान त्याग किया है। हिन्दुस्तान भर में इसका कैसा एक मोरल इफेक्ट होगा, कहिए तो ! और विलास विहारी सामने की मेज पर जोरों की एक थाप लगाई।

सुनते-सुनते विजया मुग्ध हो गई थी। सच ही, इतने बड़े लोभ को रोक सकना अट्ठारह साल की लड़की के लिए मुमकिन नहीं। उसने पूरी सहमति जाहिर करते हुए कहा, सुना है, उनके लड़के का नाम है नरेन पता है आपको, कहां हैं वे इन दिनों ?

पता है। अभागे पिता की मृत्यु के बाद वह घर आया है, उनका श्राद्ध करके आजकल वहीं है।

आपसे जान-पहचान है शायद।

जान-पहचान ? छिः ! आप मुझे क्या समझती हैं, कहिये तो। और विजया को अप्रतिम बताते हुए जरा हंस कर बोला—मैं सोच भी नहीं सकता कि जगदीश मुकर्जी के लड़के से मैं जान-पहचान करूं। हां, उस दिन अचानक रास्ते में पागल जैसा एक नए आदमी को देखकर अचरज में पड़ गया था। पता चला, वही नरेन मुखर्जी है।

कौतूहल से विजया बोली—पागल जैसा ! सुना, डाक्टर हैं।

नफरत से सारे शरीर को सिकोड़ता-सा विलास बोला—एक वारगी पागल जैसा। डाक्टर ? मुझे तो यकीन नहीं आता। बड़े-बड़े बाल, जितना लम्बा, उतना ही दुबला। पजरे की एक-एक हड्डी दूर से गिन लीजिए—यह तो शक्ल है। सीकिया पहलवान समझिए। छिः—

चेहरे पर नाज़ करने का हक वास्तव में विलास को था। नाटा, मोटा और भारी-भरकम जवान। बम मारकर उसके पंजरे की हड्डियाँ नहीं बताई जा सकतीं।

जानें और भी क्या कहने जा रहा था वह कि बिजया ने टोक कर पूछा—जगदीश बाबू का घर सच ही अगर हम दखल कर लें तो बस्ती में घिनौनी हलचल-सी नहीं होगी।

विलास ने जोर देकर कहा—बिल्कुल नहीं। पाँच-सात गाँवों में आपको एक भी ऐसा आदमी न मिलेगा, जिसे उस शराबी पर जरा भी हमदर्दी रही हो। हलके में 'अहा' करने वाला भी कोई नहीं। फिर जरा हंस कर बोला—लेकिन ऐसा न भी होता तो मेरे जीते जी मन में यह चिंता लाना भी आपके लिए उचित नहीं। मगर मैं बताऊं कम से कम कुछ दिनों के लिए भी आपका एक बार गांव जाना जरूरी है।

विजया हैरान-सी होकर बोली—सो क्यों? हम तो कभी वहां नहीं गए।

उद्दीप्त कंठ से विलास बोला—जभी तो कहता हूँ, आपको जाना ही चाहिए, अपनी महारानी को देखने का सौभाग्य रैयतों को दीजिए। मेरी तो निश्चित धारणा है, इस सौभाग्य से प्रजा को बरी रखना महापाप है।

शर्म से विजया का चेहरा तमतमा उठा, सिर झुकाए वह कुछ कहना ही चाहती थी कि बाधा देकर विलास बोल उठा—इसमें झिझक की कोई बात ही नहीं। सोच तो देखिए जरा, वहाँ कितना काम करना है आपको! यह बात मैं आपके मुंह पर कह सकता हूँ कि सारे इलाके का मालिक होते हुए भी कुछ पगले कुत्तों के डर से आपके पिता जी जो फिर कभी गाँव नही गए, यह क्या उन्होने अच्छा किया? यही क्या अपने ब्राह्म-समाज का आदर्श है? समाज का यह आदर्श तो नहीं, इसमें भूल क्या!

विजया जरा देर चुप रह कर बोली—लेकिन मैंने पिता जी से सुना था, वहाँ का घर रहने लायक नही है।

विलास बोला—आप हुक्म दीजिए, कहिए कि आप वहां जायेंगी, फिर देखिए दस दिन के अन्दर मैं उसे रहने योग्य बना देता हूं। मेरा भरोसा कीजिए, मैं जी-जान से यह इन्तजाम कर दूंगा कि वह घर आपकी मर्यादा के अनुकूल हो। हां, एक बात जमाने से मेरे जी में आती है—आपको सिर्फ सामने रख कर मैं क्या कर सकता हूं, इसका हद-हिसाब नहीं।

विजया को राजी करके विलास जब चला गया, तो वह वहीं चुप बैठी रही। अपना गांव, जन्म से आज तक कभी वह वहाँ गई जरूर नहीं, लेकिन कभी-कभी पिताजी की जवानी उसके बारे में कितना कुछ सुना दिया! गांव की बातें करते वे थकते न थे। लेकिन उस समय गांव की कहानी में उसका मन नहीं बैठता था, सुनती और भूल जाती थी। किन्तु आज जाने कहां से वही सारे भूले हुए विवरण अकस्मात आकर उसकी आंखों में साकार हो गए। उसे लगने लगा, उसके गांव का

मकान कलकत्ते की इस इमारत जैसा बड़ा और मडकीला न हो चाहे, मगर वही तो अपने पुरखों की बुनियाद है ! उसी में अगर दादा-दादी, परदादा-परदादी, उनके माँ-बाप और ऐसे जाने कितने पुश्तों के सुख-दुख, उत्सव-आनन्द में दिन कटे, तो उसी के दिन क्यों नहीं कटेंगे ?

गली के सामने हाजरा-परिवार के तिमंजले की ओट में सूरज छिप गया। इसी पर पिता से उसकी जानें कितनी बातें हो चुकी थीं। उसे याद आया, कितनी बार साँझ को उस आराम कुर्सी पर बैठे दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए कहा था, विजया, अपने गांव वाले मकान में मैंने यह तकलीफ कभी नहीं पाई। वहाँ कभी किसी हाजरा का तिमंजला मेरे अन्तिम सूर्यास्त को इस तरह ढंक कर नहीं खड़ा हुआ। तुझे तो मालूम नहीं है बेटी, लेकिन मेरी जो दो आंखें कलेजे के भीतर से उझक कर झाँक रही हैं, वे साफ देख रही हैं कि अपनी फुलबगिया के किनारे की वह छोटी-सी नदी इस समय सोने के पानी से टलमल कर उठी है, बैहार और बैहार के उस पार सूरज जाते-जाते भी गाँव की ममता छोड़ कर जा नहीं पा रहा है। यही तो बिटिया, गली के मोड़ पर देख ही रही हो, दिन का काम चुका कर जन-प्रवाह घर की ओर बह रहा है, परन्तु दस बारह हाथ की उस जगह को छोड़ कर उनके साथ जाने की तो और जरा-सी राह नहीं। साँझ को वहाँ भी घर की ओर इसी तरह उलटे स्रोत को बहते देखा है, मगर बिटिया, वहाँ के एक-एक गाय-बछड़े की गोशाला तक को जानता था। इतना कहकर सदय से एक बड़ी ही गहरी साँस छोड़ वे चुप हो रहे। कभी इस गाँव को वे छोड़ आए थे—इतनी धन-दौलत के बीच भी उसके लिए उनका जी रोता रहता था, विजया को जब-तब इसका पता चलता था। तो भी भूल कर भी कभी उसने इसकी वजह नहीं सोच देखी थी, आज उसके ध्यान को उधर खींच कर विकास जब चला गया, तो स्वर्गीय पिता की बातों को बिसूरते हुए एकएक क्षण भर में ही उनकी छिपी वेदना का कारण उसकी आँखों में तिर आया। कलकत्ते के इस विशाल जनारण्य में भी वे किस तरह एकाकी दिन बिता गए, अपनी आँखों उसे देख वह एक बारगी डर गई और ताज्जुब की बात यह कि जिस गाँव, जिस घर से उसका कभी का परिचय नहीं, आज वही उसे दुर्दम शक्ति से खींचने लगा।

चार

विलास की देख-रेख में जमाने से यों ही पड़े जमींदार-भवन की मरम्मत होने लगी। बैलगाड़ियों पर लद-लद कर अनोखे-अनोखे असबाब कलकत्ते से रोज आने लगे। जमींदार की इकलौती बेटी गांव मे रहने के लिए आ रही है, इस खबर का फैलना था कि न केवल कृष्णपुर, बल्कि राधापुर, व्रजपुर, दिघड़ा आदि अगल-बगल के पांच-सात गांवों में हलचल मच गई। एक तो जमीदार का घर के पास बसना ही सदा से लोगों के लिए अप्रिय है, फिर रियाया तो इनके न रहने की ही आदी रही हैं। सो नए सिरे से उनके यहां बसने की ख्वाहिश ही लोगों को एक उपद्रव-सी लगी। मैनेजर रासविहारी के शासन से उन्हें कष्टों का अभाव नहीं था, फिर जमींदार की बेटी के आने के शुभ अवसर पर वह कौन-कौन सा नया जुल्म ढाएगा, यह हाट-बाट-घाट में आलोचना का विषय बन गया था। जमींदार वनमाली खुद जब तक जिन्दा थे, तब तक दुःखों के बावजूद इतनी-सी सुविधा थी कि किसी तरह कलकत्ते तक पहुँच कर उन तक दुखड़ा पहुँचाए तो किसी को निराश नहीं लौटना पड़ता था। लेकिन जमींदार की बिटिया की उम्र थोड़ी, दिमाग गरम, रास-विहारी के लड़के से उसकी शादी की चर्चा भी गांव में अप्रचारित न थी—मेमसाहब ठहरीं, म्लेच्छ, लिहाजा आगे आने वाले रासविहारी के जुल्मों की कल्पना से किसी के मन में जरा भी चैन न रही—जनेऊधारी ब्राह्मणों को भी नहीं, जनेऊ-विहीन शूद्रों को भी नहीं। ऐसे ही भय और चिन्ता में वर्षा निकल गई। शरद की शुरूआत में ही एक मधुर प्रभात में दो बड़े बेलर जुड़ी खुली फिटन पर जमींदार की जवान बेटी सैकड़ों नर-नारियों की भाँति-कौतूहल भरी निगाहों के सामने होकर हुगली स्टेशन से बाप-दादे के पुराने मकान में आ पहुँचीं।

बंगाली की लड़की, अठारह-उन्नीस साल पार कर गई, मगर शादी नहीं हुई—खुले आम जूता-मोजा पहनती है, खाने-पीने का कोई विचार-परहेज नहीं, आदि-आदि लोग छिपे-छिपे करने लगे और एक-एक दो-दो करके लोग नजराना लिए आने तथा आनन्द और कल्याण-कामना भी कर जाने लगे। इस तरह पाँच-छः दिन बीत गए। सुबह की चाय-वाय पीकर नीचे के बैठके में विजया विलास बाबू से जमीन-जायदाद के बारे में बातें कर रही थी कि बैरा ने आकर खबर दी, कोई सज्जन मिलना चाहते हैं।

विजया बोली—उन्हें यहाँ लिवा लाओ।

इन कै दिनों तक भले-बुरे प्रजालोग नजराना लेकर जब-तब आते रहे थे, लिहाजा पहले तो विजया ने ऐसा कुछ ख्याल नहीं किया। जरा ही देर में बैरा के पीछे-पीछे जो भला आदमी अन्दर आया, उसे देखकर विजया हैरत में पड़ गई। उम्र करीब चौबीस-पच्चीस की होगी। लम्बा कद, लेकिन उस हिसाब से तन्दुरुस्त नहीं, बल्कि दुबला-पतला। गोरा चिट्टा रंग, दाढ़ी-मूंछ घुटी हुई, पैरों में चट्टी, बदन पर कुरता नहीं, सिर्फ एक गाढ़ी चादर की फांक मे से सफेद जनेऊ दिखाई पड़ रहा था। उसने नमस्कार किया और एक कुर्सी खींच कर बैठ गया। इससे पहले जो भी भला आदमी अन्दर आया, यह नहीं कि वह सिर्फ नजराना लेकर आया, बल्कि झिझकते हुए अन्दर आया। लेकिन इस आदमी के आचरण में संकोच की बू तक न थी। उसके आने से केवल विजया ही विस्मित न हुई, विलास को भी कुछ कम आश्चर्य नहीं हुआ। दूसरे गांव का होते हुए भी विलास इधर के सभी भले लोगों को पहचानता था, लेकिन यह युवक उसका बिल्कुल अचीन्हा था। आनेवाले भलेमानस ने ही बात की। कहा, मेरे मामा पूर्ण गांगुली आपके पड़ोसी हैं, यह बगलवाला मकान ही उनका है। सुनकर मैं हैरान हूँ कि बाप-दादों के जमाने से उनके यहां जो दुर्गापूजा चली आती है, उसे क्या आप इस साल बन्द कर देना चाहती हैं? इसका क्या मतलब? कहकर उसने विजया पर अपनी निगाह रोपी। सवाल और उसके पूछने के ढग से विजया चकित हुई तथा मन ही मन खीझी, लेकिन कोई जवाब नहीं दिया।

जवाब दिया विलास ने। रुखाई के साथ बोला—इसीलिए कि आप मामा की ओर से झगडने आए हैं? लेकिन यह न भूल जाये कि आप बातें किससे कर रहे हैं।

हंसकर आगंतुक ने जरा जीभ काटी। बस, मैं वह भूला नहीं हूँ, नहीं झगड़ने आया हूँ। बल्कि मुझे इस पर यकीन नहीं आया, इसीलिए ठीक-ठीक जान जाने को आया हूँ।

व्यग करके विलास ने कहा—यकीन क्यो नहीं आया? आगन्तुक बोला—कैसे आए, कहिए तो? बेवजह अपने पड़ोसी के धर्म-विश्वास पर आघात पहुँचायेंगे, इस पर यकीन न आना ही तो स्वाभाविक है।

धर्म पर वाद-विवाद विलास को छुटपन से ही बड़ा प्रिय है। उत्साह से वह उमग उठा और छिपे व्यंग से बोला—आपके बेवजह समझने ही से जो किसी के लिए उसका अर्थ न होगा या आपके धर्म कहने से ही सभी उसे सिर-आँखों उठा लेंगे, इसका कोई हेतु नही। पुतले की पूजा हमारे लिए धर्म नहीं और उसकी मनाही करना भी मैं अनुचित नहीं समझता।

आगन्तुक ने गहरे अचरज से विजया की ओर देखकर पूछा—आपका भी यही कहना है क्या?

आगन्तुक के अचरज ने बिजया को मानो चोट की, लेकिन उस भाव को

छिपा कर उसने सहज ही स्वर में कहा—मुझ से क्या आप इसके खिलाफ राय सुनने की उम्मीद करके आए थे ?

गर्व से हंसकर विलास ने कहा—शायद । लेकिन यह तो विदेशी हैं, मुमकिन है, आप लोगों का कुछ भी नहीं जानते ।

आगन्तुक कुछ देर तक चुपचाप विजया की तरफ देखता रहा, फिर उसी से बोला—विदेशी तो मैं नहीं हूँ, तो भी इस गाँव का नहीं हूँ—यह ठीक है । लेकिन फिर भी सचमुच मैंने आपसे यह आशा नही की थी । पुतले की पूजा की बात गरचे आपके मुंह से नही निकली, साकार-निराकार के पुराने पचड़े को मैं यहा नही उठाना चाहता । आप लोग ब्राह्म-समाज के हैं, यह भी जानता हूँ मैं । लेकिन यह तो वह बात नहीं । गांव में यही एक पूजा होती है । सब लोग वर्ष भर इन्हीं तीन दिनों का बेसब्री से इन्तजार करते रहते हैं । आगन्तुक ने फिर एक बार तीखी निगाहों देखा—गाँव आपका है, प्रजा आपकी संतान के समान है, आपके आने से गांव का आनन्द-उत्सव सौ गुना बढ़ जायगा, यही उम्मीद तो सभी करते हैं । लेकिस उसके बजाय इतना बड़ा दुःख, इतनी बड़ी नाखुशी बिना किसी कसूर के अपनी दुखी रियाया के माथे खुद लाद देंगी, यह विश्वास करना क्या सहज है ? मैं तो विश्बास नहीं कर सका ।

विजय से सहसा उत्तर देते न बना । दुखी प्रजा के नाम से उसका कोमल हृदय व्यथा से भर गया । जरा देर के लिए कोई कुछ न बोल सका, केवल विलास विजया के उस स्नेह विचलित चेहरे की ओर देखकर भीतर-भीतर उष्ण और उद्विग्न हो हिकारत की भंगी से बोल उठा—आप बहुत बोल रहे हें । साकार-निराकार का तर्क आपके साथ करे, इतना फिजूल समय हमें नही है । खैर, भाड़ में जाय वह, आपके मामा एक क्यों, एक सौ पुतले बनवा कर घर बैठे पूजा कर सकते हैं, हमें इसमें कोई एतराज नहीं, केवल इनके कान के पास रात-दिन ढोल-ढाक पीट कर इनकी तबीयत नासाज करने में ही आपत्ति है ।

आगंतुक जरा हसकर बोला—रात-दिन तो नही बजता । हो-हल्ला तो थोड़ा-बहुत हर उत्सव-समारोह में होता है—फिर खास विजया को लक्ष्य करके कहा—थोड़ी असुविधा हुई भी तो क्या ! आप हैं मां की जात, इनके आनन्द के अत्याचार-उपद्रव को आप न सहेंगी तो कौन सहेगा ?

विजया वैसी ही चुप बनी रही । श्लेष की सूखी हंसी हंसकर विलास ने कहा—अपना काम बनाने के लिए आप तो संतान की उपमा दे बैठे, सुनने में भी बुरा न लगा । लेकिन मैं पूछता हूँ, आप ही अगर मुसलमान होकर मामा के कानों के पास मुहर्रम शुरू कर देते, तो यह सुहाता क्या ? खैर, चाहे जो हो, आपसे बक-बक करने का समय हम लोगों को नहीं है, पिता जी ने जो हुक्म दिया है, वही होगा ।

कलकत्ते से यहां लाकर खामखा दुनिया भर का ढोल-ढाक पिटवा कर इनके कान की दुर्गत हम नहीं करने देंगे—हर्गिज नहीं।

उसके भद्दे व्यंग और उस्मा की ज्यादती से आगन्तुक की आंखों की निगाह तेज हो गई। विलास की ओर नजर उठाकर उसने कहा—आपके पिता कौन हैं और उन्हें मना करने का क्या अधिकार है, मुझे मालूम नहीं है। लेकिन आपने मुहर्रम की जो अनोखी मिसाल दी, यह हिन्दुओं की शहनाई के बजाय कहीं मुसलमानों के मुहर्रम के ताशे होते तो आप क्या करते? यह बेचारे स्वजातियों पर अत्याचार के सिवाय और क्या है?

विलास यकायक चौकी पर से उछल पड़ा। आंखें लाल-पीली करके भयानक स्वर से चीख कर बोला—पिता जी के बारे में तुम संभल कर बातें करो कहे देता हूँ, वरना मैं दूसरी तरकीब से तुम्हें सिखा दूंगा कि वे कौन हैं और उन्हें क्या अधिकार है!

आगंतुक ने हैरान होकर विलास की तरफ ताका, पर डर की कोई निशानी उसके चेहरे पर न दीखी। वह दिखाई दी विजया के चेहरे पर। उसी के घर में उसी के एक अपरिचित अथिति के प्रति ऐसे अभद्र आचरण से क्रोध और लज्जा के मारे उसका सारा चेहरा लाल हो उठा। आगन्तुक एक क्षण विलास के मुंह की ओर देखता रहा, दूसरी ही क्षण उसकी बिल्कुल उपेक्षा करते हुए विजया की ओर नजर करके कहा—मेरे मामा बड़े आदमी नहीं है, उनकी पूजा का आयोजन भी मामूली है। मगर यही आपकी सारी दुखिया प्रजा के वर्ष भर का एकमात्र आनन्द-उत्सव है। शायद हो कि इससे आपको थोड़ी असुविधा हो, लेकिन उन बेचारों का मुंह देखकर क्या आप इतना भर नहीं बर्दाश्त कर सकेंगी?

क्रोध से लगभग पागल होकर विलास ने सामने की टेबिल पर बड़े जोरों का मुक्का जमाया और चीख उठा—नहीं, नहीं कर सकेंगी, हजार बार नहीं कर सकेंगी। महज कुछ बेवकूफ खेतिहरों के पागलपन को बर्दास्त करने के लिए कोई जमींदारी नहीं करता। तुम्हें और कुछ न कहना हो, तो अपनी राह लो—झूठमूठ में हमारा समय मत बर्बाद करो। और उसने हाथ से दरबाजा दिखा दिया।

उसकी इस उत्कट उत्तेजना से जरा देर के लिए आगंतुक मानो किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गया। तुरंत उसके मुंह से कोई जवाब न फुटा। लेकिन पिता से विजया को निष्फल शिक्षा नहीं मिली थी, वह शांत और धीर भाव से विलास की तरफ देखती हुई बोली—आपके पिता जी मुझे बेटी के समान प्यार करते हैं, इसीलिए इनकी पूजा उन्होंने बन्द कराई है, मगर मैं कहती हूँ, दो-चार दिन थोड़ा हो-हल्ला हुआ ही तो क्या!

बात पूरी भी नहीं करने दी कि विलास उसी तरह चिल्ला कर बोल उठा—वह हो-हल्ला असह्य है। आप जानती नहीं हैं, इसलिए—

विजया ने हसते हुए कहा—सो हो-हल्ला—तीन ही दिन तो! आप मेरी असुविधा की चिन्ता कर रहे हैं, मगर कलकत्ता होता, तो क्या करते, कहिए तो? वहाँ कोई कानों के पास आठो पहर तोप भी दागता होता तो चूं किए बिना सहना पड़ता? कहकर आगंतुक युवक की ओर मुखातिब हो वह हंसती हुई बोली—अपने मामा से आप कहिए, बे हर बार जैसे करते हैं, इस बार भी वैसे ही पूजा करें, मुझे जरा भी आपत्ति नहीं।

आगन्तुक और विलास बाबू, दोनों अचरज से अवाक से विजया के मुंह की ओर देखते रहे।

तो अब आप पधारें, कहती हुई विजया ने धीरे से नमस्कार किया। वह अजाना भलामानस अपने को जब्त करके उठ खड़ा हुआ तथा नमस्कार और शुक्रिया अदा कर विलास को भी नमस्ते करके धीरे-धीरे बाहर चला गया। क्रुद्ध विलास ने दूसरी ओर मुंह फेर कर उसे अस्वीकार किया, लेकिन दोनो में से कोई भी न जान पाया कि यही अपरिचित युवक उनका असली मुलजिम जगदीश का बेटा नरेन्द्र नाथ है।

पांच

उसके चले जाने के बाद, मिनट भर अनमनी और चुप रह कर सहसा सचकित हो सिर उठाते ही विजया के गाल पर खामखा ही एक रगीन आभा झलक पड़ी। विलास की नजर दूसरी तरफ न लगी होती, तो उसके अचरज और अभिमान की हद नही रह जाती। हलका हसकर विजया ने कहा—हमारी बात तो आखिर अधूरी ही रह गई। तो वह तालुका ले ही लेने की राय है आपके पिता जी की?

विलास खिड़की से बाहर देख रहा था, उसी स्थिति में बोला—हुँ। विजया ने पूछा–लेकिन उसमे किसी तरह का झमेला तो नहीं है?

विलास बोला—नहीं।

विजया ने फिर पूछा—आज उस वेला क्या वे इधर आएंगे।

विलास बोला—कह नहीं सकता।

हसकर विजया ने पूछा—आप नाराज हो गए क्या?

अबकी पलट कर गंभीर भाव से विलास ने जवाब दिया—नाराज न भी हों, तो पिता के अपमान से पुत्र का क्षुब्ध होना शायद अस्वाभाविक नहीं।

इस बात ने विजया को चोट पहुँचाई, फिर भी वह हंसते हुए ही बोली—लेकिन इससे उनका अपमान हुआ, यह गलत ख्याल आपको कैसे हुआ ? उन्होंने स्नेह से सोचा कि इससे मुझे कष्ट होगा, लेकिन कष्ट नहीं होगा, इतना ही मैंने उस भले आदमी को बता दिया । इसमें मान-अपमान की तो कोई बात नहीं है विलास बाबू !

विलास की गंभीरता इससे जरा भी कम न हुई । उसने सिर हिलाकर जवाब दिया—वह कोई बात ही नहीं । खैर, अपनी जमींदारी की जिम्मेदारी खुद लेना चाहती हैं, लें, लेकिन अब मुझे पिता जी को सावधान कर ही देना पड़ेगा नहीं तो मेरे पुत्र के फर्ज में आँच आएगी ।

इस अनसोचे रूखे उत्तर से विजया अचरज से अवाक रह गई और जरा देरसन्न-सी रहकर बड़े दुःख के साथ कहा, विलास बाबू, इस निहायत मामूली बात को आप इतनी बड़ी कर लेंगे, यह मैंने सोचा तक नहीं । खैर, अपनी नासमझी से मुझसे भूल ही बन पड़ी है, तो मैं कबूल किये लिए लेती हूँ आइंदे ऐसा न होगा । यह कह कर विलास की तरफ देखकर उसने एक दीर्घ निश्वास फेंका । उसका ख्याल था, इसके बाद किसी को कुछ कहने का नहीं रह जाता, गलती मान लेने के साथ ही साथ बात खत्म हो जाती है । किन्तु उसे यह बात मालूम न थी कि दुष्ट व्रण की तरह ऐसे भी आदमी है, जिनकी जहरीली भूख किसी की त्रुटि में एक बार शरण पा जाये तो वह किसी भी कदर मिटना नही चाहती । इसीलिए प्रत्युत्तर में जब विलास ने कहा, तो फिर पूर्ण गांगुली को आप कहला भेजें कि रासविहारी बाबू ने जो हुक्म दिया है, उसे रद्द करने की मजाल आपको नहीं है—तो विजया की आँखों के सामने इस आदमी का हिंसक स्वभाव एक लमहे में साफ प्रकट हो गया । कुछ क्षण चुपचाप ताकती रही वह, फिर धीरे-धीरे बोली—क्या यह बहुत अधिक अनुचित न होगा ? खैर, न हो तो मैं खुद ही चिट्ठी लिख कर उनकी अनुमति लिए लेती हूँ ।

विलास बोला—अब अनुमति लेना न लेना बराबर है । आप अगर तमाम गांव में उन्हें अश्रद्धा का पात्र बना देना चाहती है, तो मुझे भी बड़े ही कठोर कर्त्तव्य का पालन करना होगा ।

विजया का हृदय सहसा क्रोध से भर उठा । लेकिन अपने को पीकर उसने धीरे से कहा—वह कर्त्तव्य क्या है, सुनूं जरा । विलास बोला—यही कि आपकी जमीदारी के शासन में वे हाथ न डालें ।

आपकी मनाही वे मानेंगे, यह यकीन है आपकी ?

कम से कम वही कोशिश मुझे करनी होगी ।

विजया कुछ देर चुप रही । दूसरी तरफ ताकती हुई वैसे शांत कंठ से ही

बोली—खैर, आपसे जो बने, करें, मैं लेकिन दूसरे के धर्म-कर्म में रुकावट नहीं डाल सकती।

उसकी आवाज शांत थी, फिर भी अन्दर का गुस्सा छिपा न रहा। विलास ने तीखे स्वर में कहा—आपके पिताजी लेकिन यह कहने की हिम्मत नहीं करते।

विजया पलट कर खड़ी हो गई। नजर उठाकर उसे देखा। बोली—अपने पिता जी की बात आपसे मैं ज्यादा जानती हूँ विलास बाबू ! मगर उस पर विवाद करके लाभ क्या है ? मेरा नहाने का समय हो गया, मैं जाती हूँ। और सारे बाद-विवाद को जबर्दस्ती बन्द करके उसके उठ खड़े होते ही गुस्से से पागल विलास के चेहरे पर से उधार लिया हुआ भद्रता का मुखड़ा पल भर में खिसक पड़ा। उसने खुद भी अपने स्वभाव को एक बार भी उघार कर नंगा करके बड़े ही तीखे स्वर में कहा—औरतों की जात ही ऐसी नमकहराम होती है। विजया कदम उठा चुकी थी। बिजली की गति से मुड़कर खड़ी हो गई। एक क्षण उस बर्बर के चेहरे पर नजर डालकर वह चुपचाप धीरे-धीरे कमरे से बाहर चली गई और साथ ही साथ विलास का चेहरा सूख गया।

किन्हीं को यह भ्रम न हो कि वह पितृ-भक्ति की प्रबलता से विवाद कर रहा था। ऐसे लोगों की फितरत ही ऐसी होती है कि छेद मिले तो उसे बड़ा करके कमजोर को सताने में, डरे हुए को और भी डरा कर व्याकुल कर देने में ही खुशी हासिल करते हैं, वह चाहे कुछ भी हो और कारण चाहे जितना ही बेसिर पैर का हो। लेकिन विजया जब जरा भी झुके बिना उसी को तुच्छ करके घृणा बिखेरती हुई चली गई, तो यह जबर्दस्ती पड़कर झगड़ने की क्षुद्रता ने उसे खुद अपने आगे भी बड़ा छोटा बना दिया। वह जरा देर चुप बैठा रहा, और फिर स्याह सूरत लिए धीरे-धीरे घर चला गया।

तीसरे पहर रासबिहारी लड़के के साथ उससे मिलने आए। बोले—काम यह अच्छा नहीं हुआ बिटिया। मेरे हुक्म के खिलाफ हुक्म देने से मेरी बडी हेठी हुई है। खैर, जायदाद जब तुम्हारी है, तो इस बात को ज्यादा मथना नहीं चाहता मैं। लेकिन अगर बार-बार ऐसा हुआ तो अपने आत्म-सम्मान के नाते मुझे अलग हो जाना पड़ेगा, यह कहे देता हूँ।

विजया ने कोई जवाब नहीं दिया, बल्कि चुप रह कर उसने गलती को इस प्रकार से कबूल ही कर लिया।

इस पर रासबिहारी नर्म-से पड़े। उन्होंने जायदाद के बारे में बात करनी शुरू की। नया तालुका खरीदने की बात खत्म करके बोले, जगदीश वाला मकान जब तुमने समाज को ही दान कर दिया, तो पूजा की छुट्टी खत्म होते ही उस पर दखल लेना होगा, क्यों ?

गर्दन हिलाकर विजया ने कहा, आप जो ठीक समझें, वही होगा। रुपए चुकाने की मीयाद तो पूरी हो चुकी उनकी !

रासबिहारी ने कहा—कब की। अपना सारा छिटफुट कर्ज एक करने की नीयत से जगदीश ने तुम्हारे पिता जी से आठ साल की मुद्दत पर दस हजार रुपये लेकर कबाला लिख दिया था। शर्त थी, इस अरसे में रुपये चुका सके तो ठीक है वरना उसका घर-द्वार, बाग तालाब—सारी जायदाद ही हमारी हो जायगी। आठ साल तो कब का पूरा हो चुका, यह नौवा चल रहा है।

विजया कुछ देर तक सिर झुकाए चुप बैठी रही। उसके बाद मृदु स्वर बोली—मैंने सुना है, उनके लड़के यही है, उन्हें बुलवा कर कुछ दिनों का समय और दिया जाय, तो न हो, शायद कुछ कर सकें ?

सिर हिला कर रासबिहारी ने कहा—कुछ नही कर सकेंगे, कुछ नहीं। कर पाते तो—

पिता की बात पूरी भी न हो पाई थी कि विलास चीख उठा। अब तक वह किसी कदर धीरज धरे था, अब न रहा गया। कर्कश स्वर में बोल पड़ा—कर भी पाये तो हम मौका क्यों दें ? रुपया लेते वक्त उस नशेबाज को यह होश नहीं था कि क्या शर्त कर रहा हूँ ? चुकाऊंगा कैसे ?

एक नजर विलास की ओर ताक कर ही उसने रासविहारी की ओर मुखातिब होकर शांतदृढ़ कंठ से कहा—वे मेरे पिता के मित्र थे और उनके बारे में सम्मान के साथ बात करने का आदेश मुझे पिता जी दे गये है।

विलास फिर चीख पड़ा—हजार दे जायें, लेकिन वह तो एक—रासबिहारी ने उसे रोका—तुम चुप रहो न विलास।

विलास बोला—ये सब फिजूल के सेंटिमेंट मुझसे किसी भी तरह सहे नहीं जाते। चाहे कोई बिगड़े या जो करे। मै सच कहने से नही डरता, सच्चा काम करने में पीछे नही रहता।

रासविहारी दोनों पक्ष को शान्त करने की गर्ज से हंसने जैसा मुंह करके बार-बार गर्दन हिलाते हुए कहने लगे—वह तो है। अपने खानदान का यह स्वभाव अपना भी तो न गया। जानती हो बेटी विजया, इसीलिए मैं और तुम्हारे पिता ने दुनियां भर के खिलाफ सत्य-धर्म को अपनाने में खौफ नहीं खाया।

विजया ने कहा—मरने से पहले उन्होने मुझे आदेश दिया था कि कर्ज के चलते जिसमें मैं उनके बाल्य-बन्धु का घर-द्वार विकवा न दूं। कहते-कहते उसकी आंखें छलछला उठीं। स्नेहमय पिता की जो आज्ञा उनके जीते जी इसे असंगत-सी लग रही थी, उनकी मौत के बाद आज वही उसे दुर्लंध्य आदेश जैसा बाधा रही थी।

विलास बोला · तो वही सारा कर्ज माफ क्यों नहीं कर गये यह तो बताएं ।

विजया ने इस बात का कोई जवाब नहीं दिया । रासविहारी की ओर देखती हुई बोली—जगदीश बाबू के बेटे को बुलवाकर उन्हें स्थिति बताई जाय, मेरी यही इच्छा है ।

रासविहारी बाबू जवाब दें, विलास उसके पहले ही बेहया की तरह बोल पड़ा—और कहीं वह दस साल का समय और मांगे ? वही देना पड़ेगा क्या ? तब तो यहां समाज कायम करने की आशा को समन्दर की अतल गहराई में डुबो देना होगा ।

विजया ने इसका भी कोई उत्तर नही दिया । वह रासविहारी को ही लक्ष्य करके बोली—एक बार उन्हें बुलवा कर आप क्या जान नहीं सकेंगे कि इस विषय में उनका क्या इरादा है ?

रासविहारी परले सिरे के काइयां थे । लड़के की उदंडता से भीतर-भीतर खीजे तो जरूर, पर उसी की राय को वाजिब साबित करने के लिये जरा भूमिका के बहाने शान्त-धीर भाव से बोले—देखो बिटिया, तुम दोनों के मतभेद में तीसरे आदमी का दखल देना उचित नहीं । क्योंकि तुम्हारी भलाई किस में है, यह आज नहीं तो कल, खुद तुम्हीं लोग तै कर ले सकोगे । इस बुड्ढे के राय-मशबिरे की जरूरत न होगी । लेकिन अगर कहना हो, तो यही कहना होगा कि इस विषय में भूल तुम्हारी ही हो रही है बिटिया । जमींदारी चलाने के मामले में मुझे भी विलास से हार माननी पड़ती है-यह मैं काम के सिलसिले में बहुत बार देख चुका हूँ, अच्छा तुम्हीं बताओ, ज्यादा गर्ज किसे है—तुम्हें या जगदीश के लड़के को ? उसमें अगर कर्ज चुकाने की जुर्रत होती, तो वह खुद आकर कोशिश नहीं कर देखता, उसे मालूम तो है कि तुम आई हो । इस पर यदि हम ही गर्जमन्द होकर उसे बुलवा पठाएं, तो जरूर जानो वह एक लम्बी मुहलत मांगेगा और उसका नतीजा आखिर यही निकलेगा कि वह रुपया भी नहीं दे सकेगा और तुम लोगों का समाज-प्रतिष्ठा का संकल्प भी सदा के लिए डूब जायगा । भली तरह सोच देखो, ठीक है या नहीं ।

विजया चुप बैठी रही ।

उनके मन के भाव को भांप कर बूढ़े रासविहारी ने कुछ देर के बाद कहा, ठीक तो है, उसके अजानते तो कुछ भी न हो सकेगा । ऐसे में वह आप ही अगर समय मांगेगा, तो न होगा तो विचार किया जायगा । क्या ख्याल है तुम्हारा ?

विजया ने गर्दन हिलाकर कहा—अच्छा । लेकिन तो भी उसकी सूरत से साफ जाहिर हुआ कि मन से उसने इस प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया ।

रासविहारी ने आज विजया को पहचाना । उन्होंने साफ समझा, इस लड़की

की उम्र कम है, लेकिन अपने पिता की जायदाद की वह मालिक है, यह वह समझती है और उसे अपनी मुट्ठी में लाने में भी समय लगेगा। लिहाजा एक ही बात पर ज्यादा खींचातानी ठीक नहीं, यह सोचकर संध्योपासना के बहाने उठ खड़े हुए। प्रणाम करके विजया चुपचाप आसन छोड़ उठ खड़ी हुई। वे आशीर्वाद करके निकल पड़े।

विजया जरा देर चुपचाप खड़ी रहकर बोली—मुझे बहुत सी चिट्ठियां लिखनी हैं—मुझसे कोई काम है आपको ?

विलास ने रूढ़ की नाईं कहा—नहीं। आप जा सकती हैं।

आपके लिये चाय भिजवा दूं ?

नहीं, चाय नहीं चाहिये।

अच्छा, नमस्कार—कहकर विजया ने दोनों हथेलियां इकट्ठी की और कमरे से बाहर चली गई।

छः

दिघड़ा के स्वर्गीय जगदीश बाबू का घर सरस्वती के उस पार पड़ता था। दूसरे गांव में होने के बावजूद नदी किनारे की बेस-विट्टियों के कारण ही बनमाली बाबू की छत से वह दिखाई नहीं पड़ता था। शरत् बीत रहा था और छोटी-सी सरस्वती नदी का बरसात से बढ़ा हुआ पानी भी खत्म होता आ रहा था। किनारे से किसानों के आने-जाने की राह भी चलते-चलते सूख कर सख्त होती जा रही थी। बूढ़े दरबान कन्हैयासिंह को साथ लेकर विजया आज उसी रास्ते पर तीसरे पहर घूमने निकली थी। उस पार के बबूल, बांस, खजूर के पेड़-पौधों की फांक से डूबते हुए सूरज की रंगीन आभा रह-रह कर विजया के मुखमंडल पर आकर पड़ रही थी। वह अनमनी-सी दोनों तट के इस-उस चीज को देखती हुई लगातार उत्तर को बढ़ रही थी कि एक जगह नजर आया नदी में कुछ बाँस रखकर पार आने-जाने के लिए पुल तैयार किया गया है। उसे गौर से देखने के लिये विजया पानी के पास जाकर खड़ी हुई कि देखा, करीब ही बैठकर एक आदमी बड़े ध्यान से मछली मार रहा है। आहट मिली और उस आदमी ने सिर उठाकर नमस्कार किया। इसी ऐन वक्त विजया के चेहरे पर सूरज की किरण आकर पड़ी या नहीं, नहीं जानता, लेकिन आंखें मिलते ही उसका गोरा मुखड़ा मानो एक बारगी रंग उठा।

जो मछली मार रहा था, वह पूर्ण बाबू का भाँजा था—जो उनकी तरफ से उस दिन उसके पास पैरबी करने गया था। विजया ने प्रति नमस्कार किया। वह उसके करीब आकर मुस्कराते हुए बोला—सांझ को घूमने के लिहाज से नदी का किनारा बेशक अच्छी जगह है। मगर सांझ को मलेरिया का डर भी कुछ कम नहीं। आपको किसी ने इसके लिए होशियार नहीं कर दिया है, क्यों ?

सिर हिला कर बिजया ने कहा, नहीं, और दूसरे ही क्षण अपने को जब्त करके मीठा हंसकर बोली—लेकिन मलेरिया तो किसी को चीन्ह कर नहीं पकड़ता। मैं तो बल्कि अनजाने आ निकली हूँ, आप तो जान-सुन कर पानी के किनारे बैठे है ? अच्छा देखूं तो क्या मछली पकड़ी आपने ?

वह हंसकर बोला—पोठिया है दो घन्टे में सिर्फ दो मिली हैं। मजूरी भर भी नहीं। मगर करूं तो क्या, आपकी तरह मैं भी लगभग विदेशी ही हूँ। बाहर ही बाहर समय बीता, परिचय प्रायः किसी से नहीं। लेकिन जैसे भी हो, सांझ का समय तो काटना ही है।

गर्दन हिलाकर विजया हंसती हुई बोली—अपना भी लगभग यही हाल है। आपका मकान शायद पूर्ण बाबू के मकान के पास है ?

उसने कहा—जी नहीं। हाथ से नदी के उस पार दिखाते हुए बोला—मेरा मकान वह वहां है, दिघडा में। बांस के इस पुल पर से जाना पड़ता है।

गांव का नाम सुन कर विजया ने पूछा—फिर तो आप शायद जगदीश बाबू के लड़के नरेन्द्र को पहचानते होंगे ?

उसने गर्दन हिलाई कि एकांत कौतूहल से विजया ने पूछा—आदमी कैसे हैं वे, बता सकते हैं आप ?

कह तो गई पर तुरन्त अपने इस अभद्र प्रश्न से लज्जित हो उठी। उसकी यह लाज उस आदमी की नजर से बची न रही। वह हंस-हंस कह बोला—कर्ज के बदले उसका मकान तो आपने ले ही लिया, अब उसके बारे में खोज-पूछ से क्या लाभ ? लेकिन जिस अच्छे उद्देश्य से लिया है, उसे भी इलाके के लोगों ने सुना है।

विजया ने पूछा—एक बारगी ले भी लिया गया—इधर यही बात फैली है !

उसने कहा—फैलने की ही बात है। जगदीश बाबू का सर्बस आपके पास बंधक था। उनके लड़के में यह दम नहीं कि उतना रुपया चुका सकें—मीयाद भी पूरी हो चुकी—सबको आखिर यह मालूम है न।

मकान कैसा है ?

बुरा नहीं, खासा बड़ा मकान है। जिस काम के लिए ले रही हैं, उसके लिए अच्छा ही होगा। चलिए न, जरा दूर बढ़ जाने ही से तो नजर आयगा।

चलते-चलते विजया बोली—आप जब गांव के ही हैं, तब तो सारा कुछ जानते ही होंगे । अच्छा, मैंने सुना है, नरेन बाबू बिलायत से अच्छी सफलता के साथ डाक्टरी पास करके आए हैं। किसी अच्छी जगह में प्रैक्टिस करके कुछ दिनों की मुहलत लेकर भी क्या पिता के फर्ज को अदा नहीं कर सकेंगे ?

उस आदमी ने गर्दन डुला कर कहा—मुमकिन नहीं । मैंने सुना है, चिकित्सा करने का ही संकल्प नहीं है उनका ।

विजया ने हैरान होकर पूछा—आखिर संकल्प क्या है उनका, सुनूं ? इतना-इतना खर्च करके विलायत जाकर इस कष्ट से डाक्टरी सीखने का आखिर फल क्या हुआ ! लगता है आदमी निरे निकम्मे हैं ।

वह भला आदमी जरा हंसा । बोला—अनहोना नहीं । लेकिन मुझे पता चला है, चिकित्सा करने के बजाय नरेन बाबू कुछ ऐसा आविष्कार कर जाना चाहते हैं, जिससे बहुत बहुत लोगों का उपकार हो। क्या तो बहुत-बहुत यंत्र-वंत्र लेकर रात-दिन छान-बीन भी खूब कर रहे हैं ।

चकित होकर विजया बोली—यह तो बहुत बड़ी बात है । लेकिन घर-द्वार ही चला जायगा, तो यह सब कैसे करेंगे ? फिर तो कमाना जरूरी होगा । अच्छा, आपको तो मालूम होगा, विलायत जाने के कारण लोगों ने उन्हें जात से निकाला है या नहीं ।

वह बोला—जरूर निकाला है । मेरे मामा पूर्ण बाबू उनके भी तो अपने हैं, तो भी वे पूजा के मौके पर उन्हें अपने यहाँ बुलाने का साहस नहीं बटोर सके। मगर इससे उनका कुछ नहीं आता-जाता । अपने काम ही में मशगूल हैं, समय मिल जाता है, तो तस्वीर बनाते हैं—घर से निकलते ही नहीं । वह रहा उनका घर—अंगुली से उसने पेड़-पौधों से घिरी एक बड़ी-सी इमारत दिखा दी ।

इतने में पीछे से बूढ़े दरबान ने याद दिलाई, काफी दूर निकल आए हैं, लौटने में अन्धेरा हो जायगा ।

वह आदमी ठिठक गया—ठीक तो, बातों-बातों में काफी दूर आ निकलीं ।

उसे भी उसी बांस के पुल से गाँव जाना था, सो लौटने में भी साथ लौटने लगीं । विजया ने जानें कुछ देर क्या तो सोचा, फिर कहा, तो यह भी भरोसा नहीं कि उन्हें किसी अपने सगे के यहां भी पनाह मिलेगी ?

उसने कहा—बिल्कुल नहीं ।

विजया फिर कुछ देर चुपचाप चलती रही, फिर बोली—वह किसी के पास जाना भी तो नहीं चाहते । नही तो, इसी महीने के अन्त तक उन्हें मकान छोड़ देने की नोटिस दी गई है—और कोई होती तो कम से कम हम से भी एक बार भेंट करने की कोशिश करते ।

वह बोला—या तो इसकी जरूरत नहीं—या कि यह सोचते हैं लाभ क्या है। आप तो वास्तव में उन्हें घर में रहने नहीं दे सकतीं।

विजया ने कहा—न भी दे सकूं, पर कुछ दिन रहने को दिया भी तो जा सकता है। हजार कर्ज हो, किसी को उसके घर से निकाल बाहर करने में सभी को कष्ट होता है ! आपकी बातों से लगता है, उनसे आपका परिचय है। क्यों सच नहीं है ?

वह आदमी सिर्फ हंसा, कुछ बोला नहीं। वे पुल के पास आ पहुँचे थे। अपनी 'छीप' उठा कर उसने कहा—यही मेरे गाँव का रास्ता है। नमस्कार।—हाथ उठा कर नमस्कार करके बांसों के पुल पर से डगमगाते हुए किसी तरह पार जाकर जंगल की पतली पगडंडी पर वह ओझल हो गया।

बूढ़ा कन्हाईसिंह बड़ा पुराना नौकर था। उसने गोद-पीठ पर विजया को पाला था। इसीलिए उसने दरबानी के वाजिब हकूक को काफी दूर तक पार कर लिया था। नजदीक आकर उसने पूछा—यह बाबूजी कौन थे मां जी ?

विजया लेकिन इतनी अनमनी हो पड़ी थी कि बूढ़े का सबाल उसके कान तक नहीं पहुँचा। उस झुटपुटे में नदी तट के सारे मौन-माधुर्य की कतई उपेक्षा करके जैसे स्वप्न में हो, वह सिर्फ यही सोचती हुई आगे बढ़ने लगी कि यह कौन है, और फिर कब भेंट होगी ?

सात

रासविहारी ने कहा—हमने ही नोटिस भिजवाई है और हम ही उसे रद्द करें तो और और प्रजाओं को कैसा लगेगा, एक बार सोच तो देख बिटिया !

विजया बोली—उन्हें एक खत लिख कर क्यों नहीं भिजवा देते, मुझे निश्चित रूप से ऐसा लगता है कि सिर्फ अपमान के भय से वे यहाँ आने का साहस नहीं कर पा रहे हैं।

रासविहारी ने पूछा—अपमान कैसा ?

विजया बोली—उन्होंने जरूर यह सोचा है कि हम उनकी प्रार्थना मंजूर नहीं करेंगे।

रासविहारी ने व्यंग से कहा—आदमी तो बड़ा मानी है ! जभी अपमान अपने मत्थे लेकर हमें ही उसे खुशामद करके रहने देना होगा।

विजया कातर होकर बोली-उसमें भी कोई दोष नहीं है चाचा जी। अयाचित दया करने में कोई शर्म नहीं।

रासविहारी बोले—खैर, माना शर्म नहीं है, लेकिन हमने समाज-प्रतिष्ठा का जो संकल्प किया है, उसका क्या होगा ?

विजया ने कहा—उसका हम और कोई इन्तजाम कर लेंगे।

मन ही मन बहुत खीझ उठे रासविहारी, पर जाहिर में जरा हंस कर बोले—तुम्हारे पिता जी काफी दौलत छोड़ गये है, तुम दूसरा इन्तजाम भी कर सकती हो, मैं समझ गया, लेकिन मुझे यह तो समझा दो बिटिया कि जिसे आज तक तुमने कभी आखों नहीं देखा, उसी के लिए हम सब के आग्रह को टाल कर तुम्हें इतना दर्द आखिर क्यों ? भगवान की दया से तुम्हें और-और भी प्रजा हैं, और-और भी कर्ज-दार हैं, उन सबके लिए क्या तुम यही व्यवस्था कर सकोगी या करने से कल्याण होगा—इसका तो जबाव दो विजया ?

विजया बोली—आपसे कह तो चुकी हूँ, यह पिता जी का अन्तिम अनुरोध है। इसके सिवाय मैंने सुना है—

क्या सुना है ?

खिल्ली उड़ाने के डर से चिकित्सा-संबंधी उनके अनुसंधान की बात विजया न बोली, सिर्फ इतना कहा, मैंने सुना है, वे जात-समाज से निकाले हुए हैं। बेघर होने से अपने-सगे किसी के यहां जगह पाने का उपाय नहीं। इसके सिवाय 'गृहहीन' की कल्पना से मुझे बड़ी तकलीफ होती है चाचा जी।

कंठ स्वर को जरा करुणा-गद्‌गद् करके रासविहारी बोले—तुम्हें इस कम उम्र में जब ऐसी तकलीफ होती है, तो मेरी इतनी बड़ी उम्र में वह तकलीफ कितनी ज्यादा हो सकती है, जरा सोच तो देखो। फिर अपने लंबे जीवन में क्या मैं यह पहली बार अप्रिय कर्त्तव्य के सामने खड़ा हुआ हूँ ? नहीं कर्त्तव्य मेरे लिए सदा कर्त्तव्य रहा है। उसके आगे हृदय का कोई दाबा नहीं। वनमाली मुझ पर जो जिम्मेदारी सौंप गए है, जीवन के अन्तिम क्षण तक उस जिम्मेदारी को निवाहना ही होगा—चाहे जितना ही दुःख क्यों न उठाना पड़े। या तो तुम उस जिम्मेदारी से मुझको बिल्कुल मुक्त कर दो, या फिर तुम्हारे इस असंगत अनुरोध को मैं हरगिज न रख सकूंगा।

विजया सिर झुकाए चुपचाप बैठी रही। पिता के गुनाह से उसके बेगुनाह बेटे को बेघरबार कर देने का संकल्प उसके जी में जो पीड़ा दे रही थी, उम्र के औसत से ये बुढ़े जो उससे आठ गुनी ज्यादा पीड़ा सहकर भी कर्त्तव्य-पालन को कटिबद्ध हुए हैं, इसे वह ठीक-ठीक ग्रहण नहीं कर सकी—बल्कि यह उसे एक बेसहारा अभागे पर बलवान की नितांत निष्ठुरता-सा ही दुखाने लगा। लेकिन जोर

करके मनमाना करने का साहस भी उसे न था। फिर यह भी उससे छिपा न था कि गांव में धूम-धाम से ब्राह्म-मंदिर प्रतिष्ठा के यश के लोभ से ही बूढ़े पिता की आड़ में विलास विहारी यह जिद और जबर्दस्ती कर रहा है।

रासविहारी और कुछ नहीं बोले। कुछ देर चुप बैठी रह कर विजया ने भी मौन सम्मति तो दी, पर अन्दर ही अन्दर उसका पराए दुःख से पीड़ित स्नेह कोमल हृदय उस बूढ़े के प्रति अश्रद्धा और उनके बेटे के प्रति ऊब में भर गया।

रासविहारी दुनियादार ठहरे, यह बात उनकी नाजानी न थी कि जो मालिक है, तर्क में उसे सोलहो आने शिकस्त देकर अदा करते वक्त आठ आने से ज्यादा का लोभ नहीं करना चाहिए। क्योंकि वह लाभ अन्त तक टिकाऊ नहीं होता। लिहाजा उदारता दिखाकर लाभवान होने का अगर कोई मौका है, तो यही है। विजया की ओर देख कर बोले—बिटिया, चीज तुम्हारी है, तुम दान करोगी तो मैं क्यों अड़ंगा डालूंगा। मैं तो सिर्फ यह दिखाना चाह रहा था कि बिलास जो करना चाह रहा था, वह न तो स्वार्थ के लिए, न क्रोध से ही, चाह रहा था कर्त्तव्य की खातिर। एक दिन मेरी जायदाद, तुम्हारे पिता की जायदाद—सब एक होकर तुम्हीं दोनों के हाथ लगेगी, उस दिन सुझाव देने के लिए इस बूढ़े को भी ढूंढ़ न पाओगी। उस दिन तुम दोनों में मतभेद न हो, उस दिन अपने स्वामी के हर काम को जिसमें पक्का समझ कर श्रद्धा कर सको, विश्वास कर सको—मैंने सिफ यही चाहा है। वरना दान करना, दया करना वह भी जानता है, मैं भी जानता हूँ। लेकिन दान अपात्र को मिलने से नहीं चलने का, मैं यही तुम्हारे सामने साबित करना चाहता था। अब समझा कि क्यों हम जगदीश के बेटे पर जरा भी दया नहीं करना चाहते, या वह दया क्यों बिल्कुल असंभव है? कह कर हसते हुए बूढ़े ने विजया की ओर ताका। इस सार-गर्भ और अकाट्य युक्ति मूलक उपदेश के खिलाफ दलील नहीं दी जा सकती—विजया चुप बैठी रही। रासविहारी फिर बोले—अब समझ गई बिटिया, उम्र में छोटा होते हुए भी विलास भविष्य की कितनी दूर तक सोच कर काम करता है? मैंने कहा न, मैंने तो इसी काम में अपना सर सफेद किया, लेकिन जमींदारी के मामले में उसकी चाल समझने में कभी-कभी मुझे दंग रह कर सोचना पड़ जाता है।

विजया ने सर हिलाकर हामी भरी, बोली नहीं।

साढ़े चार बज रहे हैं, कहते हुए रासविहारी अपनी छड़ी लेकर उठे और बोले—इस समाज-प्रतिष्ठा की फिक्र में विलास कितना उद्ग्रीव हो उठा है, यह शब्दों से जाहिर नहीं किया जा सकता। ज्ञान, ध्यान, धारणा—इस समय उसका सब वही बन गया है। अब ईश्वर से अपनी सिर्फ यही बिनती है कि मैं वह शुभ दिन आंखों देख कर जाऊं। यह कह कर उन्होंने हाथ जोड़े और ब्रह्म को बार-बार नमस्कार किया। दरवाजे के पास जाकर ठिठक गए। कहा, छोकरा एक बार मेरे पास आता

भी, तो न होता तो कुछ सोचने की कोशिश करता। वह भी तो कभी—बड़ा अभागा है! बड़ा अभागा देखता हूँ, बाप का स्वभाव सोलहों कला पाया है, कहते हुए चले गए।

उसी जगह, उसी तरह बैठकर विजया क्या जो सोचने लगी, ठिकाना नहीं। अचानक बाहर नजर पड़ते ही ज्यों ही देखा कि बेला झुकने लगी है, त्यों ही नदी किनारे की अस्वास्थ्यकर हवा ने उसे खीच कर मानो उठा दिया और आज भी उस बूढ़े दरवान को साथ लेकर वह हवाखोरी के बहाने निकल पड़ी।

ठीक उसी जगह पर आज भी वह आदमी मछली पकड़ रहा था। कुछ दूर से ही विजया ने देखा लेकिन पास आकर वह इस तरह चली जाने लगी, मानो देखा ही नहीं। इतने में कन्हैयासिंह ने पीछे से आवाज दी, सलाम बाबू जी, शिकार मिला।

बात कानों तक पहुँची कि उसकी जड़ तक लाल हो उठी। जो लोग सोचते हैं कि वास्तविक मिताई के लिए काफी दिन और काफी बातचीत होनी जरूरी है, उन्हें यहाँ याद दिलाने की जरूरत है कि नहीं, यह जरूरी नहीं। विजया मुड़ी कि उस आदमी ने बंशी रख दी और नमस्कार करके पास आ खड़ा हुआ और हंसते हुए बोला, बेशक, देश के लिए आपको वास्तव में खिंचाव है। और तो और देखता हूँ, उसका मलेरिया तक लिए बिना आपका चल नहीं रहा है।

विजया मुस्करा कर बोली, आप ले चुके शायद। लेकिन देखने से तो ऐसा नहीं लगता।

वह बोला—डाक्टर को जरा सब्र से लेना पड़ता है। ऐसी छीनाझपटी—

बात पूरी होने के पहले ही विजया ने पूछा—आप डाक्टर हैं? सहम कर वह सहसा जवाब न दे सका। लेकिन दूसरे ही क्षण अपने को सम्भाल कर मजाक में कहा—और नहीं तो क्या। एक कितने बड़े डाक्टर के पड़ोसी हैं हम! सबको दे दवा कर ही तो खुद–क्या ख्याल है?

विजया तुरन्त कुछ भी न बोली। जरा देर चुप रह कर फिर कहा, केवल पड़ोसी क्यों, वे तो आपके मित्र हैं, यह मैंने अन्दाज किया था। मेरी बातें उन्हें बताई हैं क्या?

वह हंस कर बोला—आप उन्हें एक निकम्मा और अभागा समझती हैं, यह तो पुरानी बात है, सभी कहते हैं। नए सिरे से इसे बताने की क्या जरूरत? लेकिन किसी दिन शायद वह आपसे मिलने जायेंगे।

मन ही मन बेहद शर्मिन्दा होकर विजया बोली—मुझसे मिलने से उन्हें लाभ क्या होगा? मगर उनके बारे में तो मैंने ऐसी बात आपसे नहीं कही है!

न भी कही है तो भी कहनी ही चाहिये थी।

आखिर क्यों?

जिसका घर-द्वार बिक-बिका जाय, उसे लोग अभागा ही कहते हैं। हम भी कहते हैं। सामने न कहें चाहे, पीठ पीछे तो कह ही सकते हैं।

विजया हंसने लगी। कहा, फिर तो आप उनके खूब दोस्त हैं।

वह गर्दन हिलाकर बोला—बजा फरमाती हैं आप। यों उनकी तरफ से मैं ही आपसे आरजू-मिन्नत करता बशर्ते कि यह मालूम न होता कि आप अच्छे ही काम के लिए उनका मकान ले रही हैं।

विजया ने एक बार सिर उठा कर ताका भर, बोली नहीं।

बातें करते हुए आज वे और भी ज्यादा दूर निकल गए थे। नजर आया, कतार बांधे एक दल लोग नरेन बाबू के घर की ओर जा रहे हैं। दल में पचास से लेकर पन्द्रह, सभी उम्र के लोग थे। उधर दिखाते हुए उस आदमी ने कहा—मालूम है, कहां जा रहे हैं ये लोग ? ये लोग जा रहे हैं नरेन बाबू के स्कूल में पढ़ने।

अचरज से विजया ने पूछा—यह व्यापार भी करते हैं वे ? लेकिन जहां तक मेरा ख्याल है, मुफ्त में, है न ?

वह आदमी मुस्करा कर बोला—उन्हें सही समझा आपने। निकम्मे लोग कहीं नहीं छिप सकते। फिर जरा गम्भीर होकर बोला, नरेन कहा करता है, अपने देश में सच्चे किसान नहीं हैं। खेती मौरूसी पेशा है, इसीलिए खेत में दो बार हल जोत कर बीज छिड़क देते हैं और आसमान की ओर हा किए ताकते हुए बैठे रहते हैं। इसे खेती करना नहीं, लाटरी लगाना कहते हैं। किस जमीन में कब खाद डालने की जरूरत है, खाद कहते किसे हैं, वास्तविक खेती क्या होती है—बिल्कुल नहीं जानते। विलायत में डाक्टरी के साथ-साथ इस विद्या को भी उसने सीखा है। खैर, चलेंगी एक दिन उसका स्कूल देखने के लिए ? चलेंगी जहां बाप, बेटा, दादा एक साथ पाठशाला में पढ़ते हैं।

विजया उसी घड़ी जाने को तैयार हो गई, लेकिन तुरन्त कोतूहल को दबाकर बोली—रहने दीजिये। पूछा—अच्छा, इतने बड़े मकान के रहते वे पेड़ तले पाठशाला क्यों लगाते हैं ?

उसने कहा—आखिर इस तरह की शिक्षा केवल पाठ रटा कर जबानी तो नहीं दी जाती। उन्हें हाथों-हाथ खेती करके दिखाई जाती है कि सीख कर ढंग से इस काम को करने पर दुगुनी, यहाँ तक कि चार-पांच गुनी फसल हो सकती है। यह बताने के लिये खेत चाहिये, खेती करके दिखाना चाहिये। करम ठोक कर बादल की तरफ हाथ फैलाए बैठने से काम नहीं चल सकता। अब समझा आपने, उनकी पाठशाला पेड़ के नीचे क्यों लगती है ? कभी अगर उनकी पाठशाला की खेती आप देखें तो मैं बाजी बद कर कह सकता हूँ, आपकी आंखें जुड़ा जायेंगी। अभी तो समय है, आज ही चलिए न, पास ही तो है।

विजया के चेहरे का भाव धीरे-धीरे गम्भीर और कठिन होता आ रहा था। बोली, न, आज रहने दीजिये।

उस आदमी ने आसानी से कहा—तो रहने दीजिए। चलिए, कुछ दूर तक आपको पहुँचा आऊं—और वह साथ चलने लगा। कोई पांचेक मिनट विजया एक शब्द भी बोल न सकी, अन्दर ही अन्दर जाने उसे कैसी तो शर्म होने लगी, जो कि शर्म की वजह भी वह समझ नहीं सकी। वह आदमी फिर बोल उठा—उसका मकान जब आप धर्म के ही काम के लिये ले रही हैं, तो यह कै बीघा जमीन, जो अच्छे ही काम में लग रही है, इसे तो आप सहज ही छोड़ दे सकती हैं? और वह धीमे-धीमे हंसने लगा।

जवाब में विजया किंतु गम्भीर होकर बोली—यह आग्रह करने के लिए उनकी तरफ से आपको कोई अधिकार है? और, कनखियों से उसने देखा, उस आदमी के मुस्कराते चेहरे का कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ।

वह बोला—यह अधिकार देने पर निर्भर नही करता। लेने पर निर्भर करता है। जो भला काम है, उसका अधिकार मनुष्य साथ ही साथ भगवान से पा जाता है, किसी के आगे हाथ पसार कर नहीं लेना पड़ता। दया की जिस प्रार्थना पर आप भीतर से खीझ उठी, पता है, वह किसे मिलती? देश के भूखे किसानों को। हमारे शास्त्रों में हैं, गरीब भगवान के एक विशेष रूप हैं। उनकी सेवा का अधिकार तो हर किसी को है। वह अधिकार मैं नरेन से क्यों मांगने लगा, भला? कहकर वह हंसने लगा।

चलते-चलते विजया बोली—मगर आपके दोस्त तो महज इसी काम के लिए यहाँ बैठे नहीं रह सकेंगे?

वह बोला—जी नहीं। मगर हो सकता है, वे यह भार मुझ पर सौंप जायें।

विजया के होटों पर एक दबी हंसी खेल रही। लेकिन गम्भीर होकर बोली, यह मैं समझ रही थी।

वह बोला—समझने की बात ही है। यह सब काम पहले देश के जमीदारों का था। उन्हें ब्रह्मोत्तर देना पड़ता था। अब वह जिम्मेदारी न रही, मगर उसकी छूत नहीं गई। इसीलिए जब कोई दो-चार बीघे झटक लेने की कोशिश करता है, तो उन्हें पूर्व-संस्कार के नाते पता चल जाता है। वह फिर हंसने लगा।

विजया खुद ही हंसना चाह रही थी, पर साथ न दे सकी। यह सहज मजाक जाने उसके जी में कहाँ जाकर गढ़ गया। जरा देर चुपचाप चलती रही, फिर पूछा, आप खुद भी तो अपने मित्र को पनाह दे सकते हैं?

लेकिन मैं तो यहाँ रहता नहीं। शायद एक हफ्ते के बाद ही चला जाऊंगा।

अन्दर से विजया चौंक उठी मानो। बोली—लेकिन घर जब यहां है, तो

आना-जाना तो लगा ही रहता होगा ?

उस आदमी ने गर्दन हिलाकर कहा, नहीं, अब शायद मुझे यहाँ न आना पड़ेगा।

विजया का कलेजा मथने लगा। मन में सोचा, खामखा इसके बारे में ज्यादा पूछताछ करना किसी भी भाँति वाजिब न होगा, लेकिन अपना कौतूहल वह हर्गिज न रोक सकी। हौले-हौले बोली—यहां का भार लेने वाले जरूर कोई होंगे, पर—

वह हस कर बोला—नहीं, वैसा आदमी कोई नहीं है।

तो आपके माता-पिता—

मेरे मां-बाप, भाई-बहन, कोई नहीं। लीजिये, आपके घर तक आ गए। नमस्कार। मैं चलता हूँ। कह कर वह ठिठक गया।

विजया उसकी ओर ताक नहीं सकी, लेकिन धीमे से बोली—अन्दर नहीं चलेंगे ?

नहीं। लौटने में अंधेरा हो जायगा। नमस्कार।

हाथ उठाकर विजया ने प्रति नमस्कार किया और बड़े ही संकोच के साथ धीरे-धीरे बोली—अपने दोस्त को जरा रासविहारी बाबू से मिल लेने को नहीं कह सकते ?

उसने अचरज से कहा, क्यों, उनसे क्यो ?

पिताजी की जगह-जायदाद सब वही देखते हैं न।

वह मै जानता हूँ। लेकिन उनसे मिलने को क्यों कह रही है ?

विजया इस सवाल का कोई जवाब न दे सकी। वह आदमी जरा देर थिर खड़ा रह कर शायद इन्तजार करता रहा। फिर बोला—लौटने में मुझे रात हो जायगी, चलूं। और वह तेजी से चला गया।

आठ

विजया के घर से लगा बगीचे का यह हिस्सा काफी लम्बा-चौड़ा है। बड़े-बड़े आम कटहल के पेड़ों के नीचे उस समय अंधेरा गाढ़ा होता आ रहा था। बूढ़े दरवान ने कहा, माजी जरा घूम कर सदर रास्ते में जाना ठीक न होता ?

यह सब देखने-सुनने लायक मन की अवस्था उस समय विजया की न थी, वह सिर्फ मुख्तसर एक 'ना' कह कर अन्धेरे वगीचे से होकर घर की तरफ बढ़ चली।

जिन दो बातों ने उसके मन को सबसे ज्यादा उलझा रक्खा था, उनमें से एक यह कि इतनी बात-चीत के बावजूद चूंकि नारी के नाते शोभन नहीं, इसीलिए उनका नाम तक पूछा न जा सका। दूसरी यह कि हफ्ते भर बाद ये कहां चले जाएंगे, सौ बार जबान पर आ-आ कर भी यह प्रश्न लज्जा के मारे जबान पर ही अटका रह गया। इनकी एक बात ने शुरू से ही विजया का ध्यान आकृष्ट किया था कि ये जो भी हों, हैं सुशिक्षित और पैदाइश चाहे गाँव की हो, दूसरी भद्र महिला से निःसंकोच बोलने की शिक्षा और आदत इन्हें है। ब्राह्म-समाज का न होते हुए भी यह शिक्षा उन्हें कहाँ मिली, सोचते हुए घर में कदम रखते ही परेश को मां ने आकर खबर दी बैठक में बड़ी देर से विलास बाबू इन्तजार कर रहे हैं। सुनते ही उसका जी थकावट और ऊब से भर गया। वह उस दिन जो वह बिगड़ कर गया था, फिर नहीं आया था। लेकिन आज जिस वजह से भी आया हो चाहे, जिस आदमी की चिन्ता से उसका अन्तःकरण परिपूर्ण था उसका कुछ भी न जानते हुए भी, अचानक दोनों में आसमान-जमीन का फर्क अनुभव किए बिना उससे न रहा गया। थके-थके से स्वर में पूछा—मैं आ गयी, यह क्या उनसे कह दिया गया हैं परेश की मां ?

परेश की मां बोली—जी नहीं दीदी जी, मैं तुरंत परेश से खबर भिजवा देती हूँ।

उनसे चाय के लिए पूछा गया था ?

भला यह भी कहने की है ? उन्होंने तो कहा था, आप लौट आएं, साथ ही पीयेंगे।

इस घर के भावी कर्त्ता-धर्त्ता विलास बाबू ही हैं, यह बात अपने-सगे किसी से छिपी न थी और उसी हिसाब से उनके आदर-जतन में त्रुटि नहीं होती थी। विजया और कुछ न बोली, ऊपर अपने कमरे में चली गई। लगभग बीस मिनट बाद नीचे आई। खुले दरवाजे के बाहर से ही उसे नजर आया, बत्ती के सामने झुककर विलास जाने क्या-क्या कागज-पत्तर देख रहा है। उसके पैरो की आहट पाकर उसने सिर उठाया, हलका-सा नमस्कार करके बिल्कुल गंभीर हो गया। बोला—तुमने जरूर यही सोचा होगा कि मैं नाराज होकर इतने दिन से नहीं आया। नाराज गो कि मैं नहीं हुआ, लेकिन होता भी तो वह कतई गैरवाजिब न होता, यह से तुम्हारे सामने आज साबित करूंगा।

विलास अब तक विजया को 'आप' कहा करता था। आज के इस आकस्मिक 'तुम' संबोधन का कोई कारण समझ न सकने के बावजूद वह आनन्द के मारे उमग नहीं उठी, यह उसकी शक्ल देखकर अनुमान करना कठिन न था। लेकिन वह कुछ बोली नहीं। धीरे-धीरे अन्दर दाखिल हुई और एक चौकी खींच कर कुछ दूर पर बैठ गई। विलास ने इसका ख्याल तक न किया और बोला—सारा कुछ

ठीक-ठाक कर-कराके मैं अभी-अभी कलकत्ते से आ रहा हू—बाबू जी से भी नहीं मिल सका हूँ। मुझे उत्तरदायित्व का ज्ञान है, माथे पर एक विराट काम लेकर मैं थिर नही रह सकता। अपने ब्रह्म-मन्दिर की स्थापना इसी बड़े दिन के मौके से होगी—मैं सब तै कर आया। यहाँ तक कि न्योता तक बाकी न रक्खा। उफ, कल सुबह से किस कदर चक्कर काटना पड़ा है मुझे। खैर, उधर से तो एक प्रकार से निश्चिन्त हुआ। कौन-कौन आएंगे, इस कागज पर यह भी दर्ज कर लाया हूँ, पढ़ देखो, कह कर विलास आत्म-प्रसाद का गहरा निश्वास छोड़ कर सामने के कागज को विजया की तरफ खिसका कर कुर्सी पर पीछे की ओर झुक कर बैठ गया।

विजया फिर न बोली—आमंत्रितों के बारे में भी कोई उत्सुकता नहीं जाहिर की, जैसे बैठी थी, वैसे ही बैठी रही। अब विलास विजया की चुप्पी पर जरा सचेतन होकर बोला—माजरा क्या है ? ऐसी चुपचाप ?

विजया ने धीरे से कहा—आप लोगों को आमत्रित कर आये, मैं सोचती हूँ, अब उन्हें कहा क्या जाय ?

यानी ?

मन्दिर की प्रतिष्ठा के बारे में मै अभी कुछ तै नही कर पाई हूँ।

विलास तुरत तन कर बैठ गया और कुछ देर तीखी नजरों से देख कर कहा—मतलब ? तुमने क्या सोचा, इस छुट्टी में अगर न बना तो जल्द हो पायगा फिर ? आखिर वे कुछ तुम्हारे थे तो नही कि तुम्ही जब सहूलियत होगी, तभी हाजिर हो जायंगे ? तै नहीं कर पाई, मतलब क्या इसका ?

मारे गुस्से के उसकी आँखें जैसे जलने लगीं। विजया कुछ देर नजर झुकाये चुप बैठी रही, फिर धीमे-धीमे बोली—मैंने सोच कर देखा, यहाँ इसके लिए धूम-धाम करने की जरूरत नहीं।

अपनी दोनों आखें फाड़ कर विलास बोला—धूम-धाम ! धूमधाम करनी होगी, मैंने ऐसा तो नही कहा ! बल्कि जो स्वभावत: शांत है, गंभीर है—उसका काम चुपचाप करने की अक्ल मुझे है। तुम्हें इसके लिए फिक्र नहीं करनी होगी।

विजया वैसे ही मृदु स्वर में बोली—यहां ब्राह्म-मन्दिर प्रतिष्ठा करने की कोई सार्थकता नही। वह नहीं होगा।

विलास पहले तो ऐसा काठ का मारा-सा रह गया कि उसके मुंह से बात ही न फुटी। उसके बाद बोला—मैं जानना चाहता हूँ, तुम वास्तव में ब्राह्म महिला हो या नहीं।

इस करारी चोट से चौक कर विजया ने सिर उठा कर देखा, लेकिन पलक मारते भर में अपने को संयत कर के केवल यह कहा—आप घर से शांत होकर आएं, फिर बातें होंगी। अभी रहने दें। कह कर वह उठने जा रही थी कि देखा,

नौकर चाय का सामान लिए आ रहा है। सो वह बैठ गई। विलास ने यह सब नहीं देखा। ब्राह्म-समाज की होने के बावजूद उसने अपने व्यवहार को संयत या भद्र बनाना नहीं सीखा—वह नौकर के सामने चीख उठा, तुम्हारा संसर्ग कतई छोड़ दे सकते हैं, जानती हो ?

विजया चुपचाप चाय तैयार करने लगी, जवाब न दिया। नौकर चला गया, तो धीरे से बोली—इसके बारे में मैं चाचा जी से बात करूंगी, आपसे नहीं।—उसने चाय का प्याला उसकी ओर बढ़ा दिया।

प्याले को विलास ने छुआ नहीं। उसने उसी बात को दुहराया—हम तुम्हारा संसर्ग छोड़ दें तो क्या होगा, मालूम है ?

विजया ने कहा—नहीं लेकिन चाहे जो हो, आपको जिम्मेदारी का जब इतना ज्यादा ख्याल है, तो मेरी इच्छा के विरुद्ध जिन लोगों को आमंत्रित करके अपमानित करने की जिम्मेवारी ली है, उनका बोझा खुद ही ढोएं, मुझे हाथ बंटाने का आग्रह न करें।

दोनों आँखें लहका कर विलास बोला—मैं काम का आदमी हूँ, काम को ही प्यार करता हूँ, खेल पसन्द नहीं करता—यह याद रखना।

विजया स्वाभाविक शान्त स्वर में बोली—अच्छा, यह मैं न भूलूंगी।

इस कहने में जो श्लेष था, उसने विलास विहारी को एक बारगी उन्मत्त कर दिया। वह लगभग चीख उठा, अच्छा, जिसमें न भूलो, यह मैं देखूंगा।

विजया बोली नहीं। चाय के प्याले में चम्मच डाल कर हिलाने लगी। उसे चुप देख जरा देर खुद भी मौन रह कर विलास ने अपने को थोड़ा-बहुत संयत करके कहा—अच्छा, इतना बड़ा मकान फिर और किस काम आयगा, सुनूं मैं ? उसे यों ही डाले तो नहीं रक्खा जा सकता।

अब की विजया ने नजर उठा कर देखा और अडिग-सी बोली—नहीं। मगर उस मकान को दखल करना ही पड़ेगा, यह तो अभी तक तै नहीं पाया है।

जवाब सुन कर विलास मारे गुस्से के जामे से बाहर हो गया। जमीन पर जोरों से पैर पीट कर चीखते हुए कहा, तै पाया है, हजार बार तै पाया है। मैं समाज के सम्मानित व्यक्तियों को बुला कर उनका अपमान नहीं कर सकता, वह मकान हमें चाहिए ही। इसे मैं करके ही रहूँगा, कहे देता हूँ। और जवाब का इन्तजार बिना किए ही तेजी से बाहर हो गया।

उसी दिन से विजया के मन के अन्दर हर पल यह आशा तृष्णा-सी जाग रही थी कि जाने के पहले यह अजाना भला-आदमी कम से कम एक बार तो अपने दोस्त को साथ लेकर जरूर ही अनुरोध करने आएंगे। दोनों में जो भी बातें हुई थीं, सब उसके अन्तर में गड़ गई थीं, एक शब्द भी उसका वह भूली न थी। उन सारी

बातों को रात-दिन मन में उलट-पलट कर उसने देखा था कि वास्तव में उसने ऐसी एक बात भी नहीं कही, जिसमें उन्हें यह धारणा हो कि उनके मित्र को उससे कोई उम्मीद करने की गुंजाइश नहीं। बल्कि खूब याद आता है कि उसने यह भी जिक्र किया है, नरेन उसके पिता के मित्र का लड़का है, मुहलत मिले तो भी वह कर्ज चुका पायगा या नहीं—यह भी पूछा है, फिर जिसका सर्वस जा रहा हो, उसके लिए क्या इस पर भी कोशिश करने लायक कुछ न था। जहां कोई भी उम्मीद नहीं होती, वहां भी तो अपने-विराने एक बार जतन कर देखने को कहते हैं। उनके यह मित्र क्या दुनियां से बाहर ही हैं!

नदी के किनारे फिर भेंट नही हुई। लेकिन रोज वह सुबह से शाम तक यही आशा लिए रहती कि एक न एक बार वे आएंहीगे। परन्तु दिन बीतते गए, न वे आए, न आए, उनके वे डाक्टर मित्र।

रासविहारी से भेंट हुई तो उन्होंने इस बात की बू तक न लगने दी कि इस बीच उन्हें अपने बेटे से कोई बात हुई है। बल्कि इशारे से वे यही जाहिर करते रहे कि संकल्प लगभग पूरा हो चला है। इस पर कोई हलचल हो सकती है, यह मानो उनके मन में आ ही नहीं सकता। विजया झिझक से खुद यह बात न उठा सकी। अगहन बीत गया। पूस के पहिले ही दिन वाप-बेटे एक साथ पधारे। रासविहारी ने कहा--दिन तो अब ज्यादा रहे नहीं बिटिया, इसी बीच तो सारा कुछ कर-करा लेना होगा।

विजया सचमुच ही कुछ विस्मित होकर बोली—जब तक वे अपने आप चले नहीं जाते, तब तक तो कुछ हो नही सकता।

विलासबिहारी होंठ दबा कर जरा हंसा। रासबिहारी बोले–तुम कह किसकी रही हो बिटिया, जगदीश के बेटे की? उसने तो कल ही मकान छोड़ दिया।

इस बात ने विजया के कलेजे के अन्दर तक जाकर चोट की। वह तुरन्त विलास की ओर से इस तरह पलट कर खड़ी हो गई, जिसमें किसी की तरह उसकी शक्ल न देख सके। इस ढंग से कुछ क्षण नीरव रहकर चोट को सम्भाल कर उसने धीरे से रासविहारी से पूछा, उनके सरोसामान क्या हुए? ले गये सब?

पीछे से ताना देने के ढंग से विलास ने कहा—सामान कहने को एक तिपाई खाट थी—शायद उसी पर सोते होंगे, मैंने उसे निकलवा कर पेड़ के नीचे डलवा दिया है, चाहें तो ले जा सकते हैं, कोई एतराज नहीं।

विजया चुप हो रही, लेकिन उसके चेहरे पर वेदना के चिह्न साफ दिखाई दे गये : यह देखकर बेटे की लिहाड़ी लेते हुए रासबिहारी ने कहा, यह तुम्हारी भूल है विलास। आदमी चाहे जैसा भी अपराधी हो, भगवान उसे जितनी चाहे सजा दें,

कहता कि मन में तुम्हें इसकी तकलीफ नहीं हो रही है, परन्तु उसे बाहर भी प्रकट करना चाहिये। जगदीश के लड़के से तुम्हारी मुलाकात हुई थी ? उसे एक बार मुझ से मिलने को क्यों नहीं कहा ? देखता मैं अगर कुछ—

पिता की बात खत्म भी न हो पाई—बेटा इनके इशारे को कतई बेकार करके मुंह से अजीब आवाज करते हुए कह उठा—उनसे भेंट करके न्योता करने के सिवाय मानो मुझे काम ही न था ! आप भी क्या कहते हैं पिता जी, समझ नहीं आता। फिर मेरे वहां पहुँचने के पहले ही तो डाक्टर साहब अपना बोरिया-वसना कल-पुर्जा बटोर कर खिसक पड़े थे। विलायत के डाक्टर ! निकम्मा, हम्बग कहीं का ! जाने और क्या सब कहने जा रहा था वह, पर कनखियों से विजया की ओर ताक कर रासबिहारी ने डाट बताई—नहीं-नहीं विलास, तुम्हारी इस तरह की बात-चीत को मैं माफ नहीं कर सकता। अपने व्यवहार से तुम्हें शर्मिन्दा होना चाहिये, पछतावा करना चाहिये।

लेकिन जरा भी लज्जित या अनुतप्त न होकर विलास ने उत्तर दिया, आखिर किस लिए, सुनूं ? पराये दुःख से दुखी होने, दूसरों का कष्ट दूर करने का पाठ मैंने पढ़ा है, लेकिन जो घमन्डी आदमी घर चढ़ कर अपमान कर जाता है, उसे मैं माफ नहीं करता। ऐसा ढोंग मुझ में नहीं है।

उसके जवाब से दोनों सन्न रह गये। रासविहारी बोले—घर चढ़ कर तुम्हारा कौन अपमान कर गया ? किस की कह रहे हो ?

चौक कर विजया ने उधर देखा, विलास उसी से कह उठा—अपने को पूर्ण बाबू का भांजा बता कर जो तुम्हारा तक अपमान कर गया, वह कौन था ? उस समय तो उसे बड़ी तरह दी तुमने। वही नरेन था। उस समय अपना सच्चा परिचय देने का साहस करता तो मैं समझता कि वह मर्द हैं। ढोंगी कहीं का ! और दोनों ने अचरज के साथ देखा कि विजया का सारा मुख-मंडल पल में वेदना से नीरस और फीका पड़ गया है।

दस

बड़े दिन की छुट्टियां करीब थी, सो जगदीश के मकान का हाल मन्दिर के लिए और दूसरे-दूसरे कमरे कलकत्ते से आने वाले मानवीय अतिथियों के लिए सजाए जा रहे थे। खुद विलासविहारी इसकी देख-रेख कर रहे थे। साधारण

निमंत्रितों की तादाद कम न थी जो विलास के मित्र थे, तै हुआ था कि वे रासविहारी के यहां और बाकी लोग विजया के यहाँ टिकेंगे। महिलायें जो आयेंगीं वे भी यहीं ठहरेंगी। बन्दोवस्त भी ऐसा ही हुआ था।

उस दिन सुबह नहा कर विजया नीचे की बैठके में आई कि देखा, सहन के एक ओर खड़ा परेश खोमचे से मुरमुरा निकाल कर चबा रहा है और एक हाथ से रस्सी में बंधी हुई गैया की गर्दन सहला कर अनिर्वचनीय आनन्द पा रहा है। गैया भी आंखें बन्द किये गर्दन उठाए उस बच्चे की सेवा ले रही है।

इन दो विजातीय जीवों के सौजन्य से उसके मन की जमी हुई वेदना का क्या संयोग था, कहना कठिन है, लेकिन यह देखते हुये अजानते ही उसकी दोनो आंखे आंसुओं से भर उठीं। यह लड़का उसका बड़ा ही फरमावरदार था। आंखें पोंछ कर उसने उसे बुलाया और कौतुक भरे नेह से पूछा—हाँरे परेश, तेरी मा ने तुझे यही कपड़ा खरीद दिया है ? छिः—यह भी कोई कोर है ?

परेश ने गर्दन आड़ी करके कनखियों से विजया के कपड़े की खूबसूरत चौड़ी कोर से अपनी धोती की कोर को मिलाया और बड़ा क्षुब्ध हो उठा। उसके मन की ताड़कर विजया अपने कपड़े की कोर दिखाती हुई बोली—भला ऐसी कोर न हो तो तुझे क्या फबे ? है न ?

परेश ने तुरत हामी भर कर कहा—माँ कुछ भी खरीदना नहीं जानती।

विजया बोली—मैं लेकिन तुझे एक ऐसा कपड़ा खरीद दे सकती हूँ, अगर तू—

मगर इस अगर की परेश को कोई जरूरत न थी। वह सलज्ज हंसी से मुंह को कान तक फैला कर बोला—कब दोगी ?

दूंगी, अगर तू मेरा कहा सुन।

क्या, कहो।

विजया कुछ सोच कर बोली, लेकिन तेरी मां या और कोई सुनेगा, तो तुझे पहनने न देगा।

इसके लिए कोई रुकावट मानने लायक मन की अवस्था परेश की न थी।

वह सिर हिलाकर बोला—मां कैसे जानेगी ? तुम कहो तो सही, मै तुरन्त मुनूंगा।

विजया ने कहा—तू दिघड़ा गाँव जानता है ?

हाथ उठा कर परेश ने कहा—वह, वहाँ तशर का कोचा लाने बहुत बार जाता हूँ।

विजया ने पूछा—वहाँ सबसे बड़ा घर किसका है, जानता है तू ? परेश बोला—हि बाम्हनों का है। वही पिछले साल जो ताड़ी पीकर छत से गिर पड़ा था

यही, जैसे यहाँ पर गोविन्द की मुरमुरा-बताशा की दूकान'''और वहाँ पर उनका मकान । गोविन्द क्या कहता है, पता है माँ जी ? कहता है, धेले का अब ढाई गंडा नहीं मिलेगा, अब कुल दो गंडा । मगर तुम अगर पूरे पैसे का लाने कहो माँ जी तो मैं साढ़े पाँच गंडा ले आ सकता हूँ ।

विजया ने कहा—दो पैसे के बताशे ला सकेगा तू ?

परेश बोला—हिं—इस हाथ में एक पैसे का साढ़े पाँच गंडा लेकर कहूँगा, भई, इस हाथ में और साढ़े पांच गंडा गिन दो । सब लेकर कहूँगा, 'माँ जो ने कहा है, दो बताशा साव—नः ? लेकर तब उसे पैसे दूंगा—नः ?

विजय ने हंस कर कहा—हाँ, तब पैसे देना । और उसी बड़ी दूकान वाले से पूछ लेना कि उस बड़े मकान में जो नरेन बाबू रहता था, वह कहाँ गया । पूछना, वह जहाँ रहता है, तुम वह घर मुझे चिन्हा दो । हाँरे, पूछ तो सकेगा तू ?

सिर हिलाकर परेश बोला—हिं—अच्छा, दो पैसे, दौड़ कर ले आऊँ ।

और मैंने जो पूछने को कहा ?

परेश बोला—हिं—वह भी ।

हाथ में बताशा पाकर भूल तो न जायगा ?

हाथ बढ़ा कर परेश ने कहा—तुम पैसे तो दो । मैं भागकर जाऊं । और तेरी माँ पूछे कि कहाँ गया था तो क्या कहेगा ?

परेश पक्के बुद्धिमान की तरह हंसकर बोला—वह मैं मजे में बता दूंगा । बताशे का ठोंगा कपड़े में छिपा कर कह दूंगा, माँ जी ने भेजा था—वह वहाँ बाम्हनों के यहाँ नरेन बाबू का पता खोजने गया था । पैसा तो दो जल्दी तुम । विजया हंस पड़ी । कहा—तू कैसा बेवकूफ लड़का है रे परेश, माँ से भी कोई झूठ बोलता है ? गया था बताशा खरीदने, पूछने पर यही बताना । मगर जो मैंने कहा, वह जरूर पूछकर आना । नहीं तो कपड़ा नहीं मिलेगा, कह देती हूं मैं ।

अच्छा कह कर परेश पैसा लेकर दौड़ पड़ा । विजया सूनी आंखों उस ओर ताकती हुई चुपचाप खड़ी रही । जिस संवाद को जानने के कोतूहल में जरा भी अस्वाभाविकता नहीं, जिसे वह जिस किसी को भी भेजकर बहुत पहले मजे में जान सकती थी, वही आज उसके लिए संकोच का ऐसा विषय क्यों बन गया है, अगर डूब कर इसे देखती तो इस लुकाछिपी के शर्म से खुद ही मर जाती । लेकिन यह शर्म अनजानते ही उसकी चिंता-धारा में मिलकर एकाकार हो गई थी, लिहाजा उसे अलग देखने की दृष्टि कभी उसकी आंखों में थी, आज यह भी उसे याद नहीं आया ।

कुछ चिट्ठियाँ लिखनी थीं । समय काटने के ख्याल से विजया कागज-कलम लेकर मेज पर जा बैठी । लेकिन बातें कुछ ऐसी बिखरी-बिखरी, बे-सिर पैर की आने

लगी कि कुछ पन्ने फाड़ कर उसे कलम रख देनी पड़ी। परेश का पता नहीं। मन की चंचलता को दबा न पाकर वह छत पर जाकर उसकी राह देखने लगी। बड़ी देर के बाद नजर आया, परेश नदी के किनारे-किनारे तेजी से चला आ रहा है। विजया कांपता हुआ हृदय और शंकित मन लिए उतर कर बैठक में पहुँची। उसके जाते ही परेश बताशों को आंचल में छिपाए पैर दबा कर उसके पास आया और फैला कर दिखाते हुए बोला दो पैसे के बारह गंडे लाया हूँ मां-जी !

धड़कते दिल से विजया ने पूछा—और दुकान वाले ने क्या कहा ?

परेश फुसफुसा कह बोला—उसने मना किया कि पैसे में छः गंडे की बात जिसमें किसी को न बतायें। कहता क्या था जानती हो।

विजया ने टोक कर कहा—और उस नरेन के बारे में—

परेश बोला—वह वहां नहीं है—जाने कहां चला गया। गोविन्द कहता क्या था जानती हो मां जी, बारह गंडे में—

विजया बेहद खीझ उठी। रुखाई से बोली—ले जा अपना बारह गंडा बताशा मेरे सामने से। कह कर खिड़की के पास जाकर बाहर की तरह ताकने लगी।

इस मनसोए रुखे व्यवहार से वह लड़का बेचारा इतना-सा हो गया। वह भागता गया और भागकर आया, ग्यारह गंडे के बजाय चालाकी से बारह गडे का सौदा पटा कर लाया, फिर भी मां जी को खुश न कर सका—यह सोचकर उसके दुःख की सीमा न रही। ढोंगे को हाथ में लिए मुंह सुखा कर वह बोला—इससे ज्यादा तो देता ही नहीं माँ जी !

विजगा ने जबाब न दिया। लेकिन इधर देखे बिना ही वह उसकी दशा का अनुभव कर रही थी। इसलिए तुरन्त सदय स्वर में बोली—परेश, इसे ले जा, खा तू।

परेश ने डरते हुए पूछा—सब ?

मुंह फेर कर विजया बोली—हां, सब। मुझे इसकी जरूरत नहीं।

परेश समझ गया, वह नाराजगी की बात है। कुछ देर वह चुप खड़ा रहा। कपड़े की बात याद आते ही उसे और एक बात याद आई। धीरे-धीरे कहा, भट्टाचारज जी से पूछ आऊं मां जी ?

कौन भटचारज जी ? क्या पूछ—उत्सुकता से इतना ही पूछ पाकर विजया मुंह फेर कर चुप हो गई। मुंह की बाकी बात मुंह में ही रह गई, बाहर न निकल सकी। अकस्मात आंखों के आगे बरामदे पर नरेन दिखाई पड़ा—और दूसरे ही क्षण अन्दर दाखिल होते हुए हाथ उठाकर उसने विजया को नमस्कार किया।

परेश ने कहा—नरेंदर बाबू कहां गये हैं—यह—

विजया को जवाब में नमस्ते तक करने का मौका न मिला, मारे शर्म के

सारा चेहरा सुर्ख करके हड़बड़ में बोल उठी—जा-जा, अब पूछने की जरूरत नहीं।

परेश ने समझा, यह भी नाराजगी की बात है। दुखी होकर बोला—काना भटचारज जी तो उन्हीं के पड़ोस में रहते हैं मां जी। गोविन्द ने तो बताया—

विजया फीकी हंसी हंसकर बोली—आइए, आइए। बैठिए। और परेश से कहा, तू अभी जा तो परेश, कौन-सी बड़ी बात है कि···न होगा और किसी दिन पूछ आना। अभी जा।

परेश के चले जाने के बाद नरेन ने पूछा—आप नरेन बाबू के बारे में जानना चाहती हैं? वे कहां गये हैं, यह?

'ना' कह पाती तो जी जाती विजया, लेकिन झूठ बोलने की उसे आदत न थी। किसी कदर अन्दर की शर्म को पीकर वह बोली—हां। लेकिन वह फिर कभी मालूम होने से भी चल जायगा।

नरेन ने पूछा—क्यों? काम है कोई?

यह सवाल विजया के कानों ठीक व्यंग-सा लगा। बोली, क्यों, बिना जरूरत के कोई किसी के बारे में जानना नहीं चाहता?

कौन क्या करता है नहीं करता है, इसकी छोड़िए। लेकिन आपका तो उनसे तारा सरोकार चुक गया है, फिर क्यों उनकी खोज कर रही हैं? कर्ज क्या पूरा अदा नहीं हुआ?

विजया के चेहरे पर पीड़ा झलक आई, लेकिन उसने जवाब नहीं दिया। खुद नरेन भी अपने अन्दर के आवेग को पूरी तरह छिपा न सका। बोला—थोड़ा-बहुत अगर अभी रही गया हो, तो भी जहाँ तक मैं जानता हूँ, उनके पास अब ऐसी कोई चीज बाकी नहीं, जिससे बाकी कर्ज अदा हो सके। अब उनकी खोज करना—

आपसे यह किसने कहा कि मैं कर्ज के लिए ही उन्हें खोज रही हूँ? इसके सिवाय और क्या हो सकता है, मैं तो सोच नहीं सकता। वे भी आपको नहीं पहचानते, आप भी उन्हें नहीं पहचानतीं।

वे भी मुझे पहचानते हैं, मैं भी उन्हें पहचानती हूँ।

नरेन हंसा बोला, वे आपको पहचानते है, यह सही है, लेकिन आप उन्हें नहीं पहचानतीं। मान लीजिये, मैं ही कहूँ मै नरेन हूँ, तो भी तो आप—

विजया ने सिर हिलाकर कहा—तो मैं विश्वास करूंगी और कहूँगी कि यह सच्ची बात बहुत पहले ही आपके मुंह से निकलनी चाहिए थी।

फूंक मार कर बत्ती गुल कर देने से कमरे की जो हालत होती है, विजया के इस जवाब से पल में नरेन का चेहरा वैसा ही मलीन हो गया। यह देखकर ही विजया फिर से बोली—दूसरे परिचय से अपनी आलोचना सुनना और छिपकर सुनना दोनों क्या आपको एक ही नहीं लगता? मुझे तो लगता है। लेकिन बात यों है कि

हम ग्राह्य हैं, यही जो कह लें।

नरेन का मलिन मुखड़ा अब लज्जा से बिल्कुल स्याह हो गया। जरा देर चुप रहकर बोला—आपसे जितनी बातें हुई, उनमें अपनी आलोचना भी थी मगर उसमें बुरी कोई नीयत तो न थी। सोचा था, आखिरी दिन परिचय दूंगा, मगर न बन पड़ा। इससे आपका कोई नुकसान हुआ ?

यह सवाल शुरू ही में पूछा जाता, नो बेशक इधर से भी जवाब देना सरूत होता। लेकिन जो आलोचना एक वार शुरू हो चुकी होती है, वह अपने झोंक में आप ही वहुत-सी कठिन जगहों कौ तड़प जाती है। इसीलिए बिजया सहज ही जवाब दे सकी। बोली, नुकसान तो किसी का बहुत तरह से हो सकता है और अगर हुआ भी तो हो ही चुका, अब तो आप उसका कोई उपाय नहीं कर सकते। खैर ! खास आपके बारे में कुछ जानना चाहूँ, तो क्या—

नाराज हूँगा ? नही। कहते ही तुरन्त प्रशांत खिली हंसी से उसका मुखड़ा उज्ज्यल हो उठा। इतनी बातचीत होने के बावजूद अब तक विजया जिस आदमी का परिचय नही पा सकी थी, यह क्षण भर की हंसी उस आदमी का वह खबर दे गई। उसे लगा, इस आदमी का बाहर-भीतर एक बारगी स्फटिक की नाई स्वच्छ है। जिसने सब कुछ ले लिया, और यह उससे भी अविदित नहीं, इसलिए शायद वह आँखें उठाकर पूछ भी नहीं सकी, नजर नीची किए पूछा—आप इस समय हैं कहां ?

नरेन बोला—दूर के रिश्ते की मेरी एक फूफी अभी जिन्दा है, उन्हीं के यहां हूँ।

आप पर जो जो सामाजिक बंधन है, यह क्या उस गांव के लोग नहीं जानते ?

क्यों नहीं ?

फिर ?

नरेन जरा सोच कर बोला—मैं जिस कमरे में हूँ, उसे ठीक घर में नहीं कहा जा सकता है, और शायद मेरी लाचारी जान कर भी कुछ दिन के लिए उनके लड़कों को एतराज नहीं है। लेकिन इतना जरूर है ज्यादा दिनों के लिए उन्हें तंग नहीं किया जा सकता। नरेन जरा रुका। अच्छा सच-सच बताएं, इन बातों की खोज-पूछ क्यो कर रही थीं आप ? पिता जी के नाम और कुछ कर्ज निकला है, है न ?

उत्तर देने के लिए ही शायद विजया ने सिर उठाया। मगर अचानक कोई भी बात उसके मुंह से नहीं निकली।

नरेन बोला—बाप का कर्ज कौन नहीं चुकाना चाहता, लेकिन आप से सच

कहता हूँ मैं नाम से या बेनामी ऐसी कोई चीज अपने पल्ले नहीं, जो बेच कर दे सकूं। केवल एक माइक्रोसकोप ही है—और उसी को बेचकर मुझे वर्मा लौटने का खर्च जुटाना होगा। फूफी की भी हालत अच्छी नहीं, यहां तक कि खाना-पीना भी—इतना ही कहकर वह थम गया।

विजया की आंखों में आँसू भर आये। उसने गर्दन फेर ली। नरेन बोला—हां, अगर आप ऐसी कृपा कर सकें, तो पिता जी का कर्ज मैं अपने नाम लिख दे सकता हूँ। बाद में चुकाने की भरसक चेष्टा करूंगा। आप रासबिहारी बाबू को कह दें तो वे इसके लिए इस समय मुझे नहीं सतायेंगे।

परेश ने आकर दरवाजे के बाहर से कहा—मां जी, मां ने कहा, बडी बेर हो गई, महाराज से खाना देने को कहें ?

सामने की घड़ी देख कर नरेन चौंक कर खड़ा हो गया, शर्मा कर बोला—हुस ! बारह बज गये ! बड़ी तकलीफ हुई आपको।

विजया ने आंसू जब्त कर लिए थे। बोली, आपने यह तो कहा ही नहीं कि आप किस लिये आये थे ?

नरेन झटपट बोल उठा। वह रहने दीजिए। और वह जाने को तैयार हो गया कि विजया ने पूछा—आपकी फूफी का घर यहां से कितनी दूर है ? अभी वहीं जाना होगा न ?

नरेन बोला, हाँ। दूर तो है—कोई दो कोस।

विजया अवाक् होकर बोली—इस धूप में आप दो कोस पैदल जायेंगे ? जाने ही में तो तीन बज जायेंगे !

सो तो नमस्कार ! कहकर नरेन ने कदम बढ़ाया कि विजया झपट कर किबाड़ के सामने जा खड़ी हुई, कहा, मेरा एक अनुरोध आपको रखना ही पड़ेगा। इतनी देर हो गई, बिना खाए आप नहीं जा सकते।

नरेन हैरान होकर बोला—खाकर जाऊंगा ? यहां ?

क्यों, आपकी भी जात जायगी क्या ?

उत्तर में फिर उसी तरह प्रशान्त हंसी से उसका चेहरा खिल पड़ा, बोला—नहीं, दुनिया में अब यह डर मुझे नहीं रहा। उसके सिवा, भगवान आज मुझ पर बहुत प्रसन्न हैं, वरना इतनी कुबेला में वहां क्या नसीब होता, वह तो मैं जानता हूँ।

तो आप जरा बैठें, मैं आई, कहकर उसकी ओर देखे बिना ही विजया कमरे से बाहर हो गई।

ग्यारह

खाना लगभग खत्म हो आया तो नरेन ने फिर वही कहा, इतनी देर तक खुद बिना खाये मुझे सामने बिठाकर खिलाने की कोई जरूरत न थी। किसी मुल्क में ऐसा रवाज नहीं है।

विजया ने मुस्कराते हुए जवाब दिया—पिता जी कहते थे, उस देश की बदनसीबी समझो, जहां की औरतें अपने उपासी रहकर पुरुषों को नहीं खिला पातीं। उन्हें साथ बैठकर खाना पड़ता है। मैं भी यही कहती हूँ।

नरेन बोला—क्यों ऐसा कहती हैं? और देशों की बात न हो छोड़ भी दें, लेकिन अपने यहां भी तो बहुतों के घर खाया है, मैंने देखा है, उनके यहां प्रथा चलती है।

विजया बोली, जिन्होंने विलायती रवाज अपनाया है, उनके यहाँ चलता होगा, सबके यहां नहीं। आप चूंकि खुद बहुत दिनों तक विदेश में रहे, इसलिए आपको भूल हो रही है। वरना मर्दों के सामने निकलती हैं, जरूरत पर बात भी करती हैं, इसलिये हम-सब मेम-साहब ही नहीं हैं, उनका चाल-चलन भी नहीं चलतीं।

नरेन ने कहा—न चलती हैं, यह और बात है, चलना तो चाहिये। जिनकी जो बात अच्छी है, उनसे उसे तो लेना चाहिये।

विजया बोली, अच्छी कौन-सी बात, साथ बैठकर खाना? और वह जरा हंसी। कहा, आपको क्या मालूम कि इस खिलाने पर औरतों का कितना बड़ा जोर होता है? मैं तो अपने बहुत से अधिकारों को छोड़ देने को तैयार हूँ, लेकिन यह नहीं—अरे, दूध तो सब पड़ा ही रह गया। न-न, सिर हिलाने से न चलेगा। हर्गिज आपका पेट नहीं भरा है, मैं कहती हूँ।

नरेन ने हंसकर कहा—मेरा अपना पेटा भरा या नहीं, यह भी आप कह देंगी! बड़ी अजीब बात! और वह उठ खड़ा हुआ। सुनकर विजया खुद भी जरा हंसी जरूर, लेकिन उसके चेहरे के भाव से यह समझना बाकी न रहा कि उतना-सा दूध न पीने की वजह से वह क्षुब्ध हुई है।

बेला झुक आई और रुखसत होते वक्त नरेन अचानक बोल उठा—एक बात से आज मुझे बड़ा अचरज हुआ आपने धूप में मुझे जाने न दिया, बिना खिलाये न छोड़ा, थोड़ा कम खाया, इससे क्षुब्ध हुईं—यह सब मुमकिन कैसे हुआ? आप

दुखी न हों, श्लेष या व्यंग करने की नीयत से नहीं कह रहा मैं—पर मैं उसी वक्त से यह सोच रहा हूँ कि यह संभव कैसे होता है।

इस चर्चा से किसी भाँति पिंड छुटे, विजया बाधा देती हुई झट बोल उठी—हर घर में यही होता है। खैर, उसे छोड़िए। आप अब कब वर्मा जाना चाहते हैं।

नरेन अनमना बोला—परसों। लेकिन मैं तो आपका विराना हूँ, मेरे दुःख कष्ट से वास्तव में आपका कुछ जाता-आता नहीं। फिर भी आपके आचरण से बाहर के किसी को यह कहने की मजाल नहीं कि मैं आपका कोई नहीं हूँ। कहीं मैं कम खाऊं, या खाने में कोई त्रुटि हो, इस डर से आप बिना खाए सामने बैठी रहीं। मेरे बहन नहीं, मां भी छुटपन में चल बसी। वे जिन्दा रही होतीं तो ऐसी व्याकुल होतीं या नहीं, नहीं मालूम, लेकिन आपका जतन देखकर मैं दंग रह गया हूँ। यह सब वास्तव में सत्य नहीं हो सकता, इसे मैं भी समझता हूँ, आप भी समझती हैं, बल्कि इसे सच ही कहूँ तो आपका मजाक बनाना होगा—लेकिन झूठा सोचने को भी जी नहीं चाहता।

विजया खिड़की के बाहर देख रही थी, उसी तरफ ताकते हुए कहा—भलमनसाहत नाम की एक चीज होती है, और कहीं नहीं देखी क्या आपने ?

भलमनसाहत ? वही हो शायद ? उसके एक निश्वास निकल पड़ा। उसके बाद हाथ उठाकर फिर एक बार नमस्ते करता हुआ बोला—जैसे भी हो, पिता जी का सारा कर्ज अदा हो गया, यही मेरी सबसे बड़ी तृप्ति है। आपके मन्दिर की दिन-दिन श्री वृद्धि हो—आज का यह दिन मुझे सदा याद रहेगा। मैं चला। कह कर वह जब निकल पड़ा तो भीतर से अस्फुट-सी आवाज आई—जरा सुनिये—

नरेन लौट पड़ा। विजया ने पूछा—आपके माइक्रोसकोप का दाम क्या है ?

नरेन बोला—खरीदने में मुझे पाँच सौ रुपए से ज्यादा लग गये थे—अभी ढाई सौ, दो सौ तक भी मिले तो दे दूंगा। कोई लेने वाला है आपके जानते ? बिल्कुल नया ही है समझिये।

बेचने का ऐसा आग्रह देखकर मन ही मन बहुत पीड़ित होकर विजया ने पूछा—इतनी कम कीमत पर दे देंगे ? उसका सब काम हो गया आपका ?

नरेन ने उसाँस भर कर कहा—काम ? कुछ भी नहीं हुआ। उसकी यह उसांस विजया के अगोचर न रही। कुछ देर चुप रह कर उसने कहा—बहुत दिनों से मुझे ही एक खरीदने की ख्वाहिश है, अब तक खरीद नहीं पाई। कल मुझे दिखा सकते हैं आप ?

क्यों नहीं ? मैं आपको सब दिखा-समझा दूंगा।

कुछ सोच फिर बोला—ठोंक-बजाकर देखने का समय तो नहीं रहा, मगर मैं

निश्चित कह सकता हूँ, लेने से आप ठगायेंगी नहीं।

फिर जरा चुप रहा और कहा—रुपए में उसकी कीमत नहीं हो सकती—ऐसी चीज है। चूंकि मेरे लिए दूसरा कोई चारा नहीं, इसीलिये नही तो—अच्छा, कल दोपहर को ले आऊंगा।

वह चला गया। जब तक नजर आता रहा, विजया अपलक आंखों उधर देखती रही, उसके बाद आकर चौकी पर बैठ गई। कमी उसे लगने लगा, जहाँ तक नजर जाती है, सब मानो खाली हो गया है—मानो कभी किसी चीज से उसे कोई वास्ता नहीं रहा और मरने तक कभी कोई चीज मानो उसके किसी काम न आएगी। लेकिन उसके लिए गम या गिला, कुछ भी मन में नहीं। इसी तरह सूखी आखों बाहर के पेड़-पौधों को देखती हुई वह बुत-सी बैठी रही। ख्याल ही नहीं कि समय कैसे कट रहा है। कब सांझ बीत गई, नौकर कब बत्ती रख गया, उसे कुछ भी पता न चला। सुध लौटी अपनी आँखों के आंसू से। झटपट आंखों को पोंछ डाला, हाथ से देखा, जाने जब से बूंद-बूंद आंसू चू रहा था कि उसकी छाती का कपड़ा तक भीग गया था। छि:-छि:, नौकर-चाकर आते-जाते रहे, शायद हो कि उनकी निगाह पड़ी हो, जाने क्या सोचा हो शायद मारे शर्म के वह जरूरत से भी आज किसी को बुला न सकी। रात को बिछावन पर लेटी, खिड़की खोलकर अंधेरे की तरफ ताकती रही, वैसा ही वस्तु-वर्ण-हीन शून्य अन्धकार जैसा उसका सारा सविष्य आंखों में तैरने लगा। उसके बाद कब नींद आ गई थी, याद नहीं, लेकिन नींद जब टूटी, तो सुबह के स्निग्ध प्रकाश से सारा कमरा भर गया था—सबसे पहले उसे उसकी याद आई, जिससे जिन्दगी में पांच-छः दिन से ज्यादा बात भी नहीं की। और याद आया, जो अजानी पीड़ा उसकी नींद में घूमती फिर रही थी, उसी से जाने कैसे तो उस आदमी का गहरा योग है।

दिन चढ़ने लगा। लेकिन जभी उसे याद आ जाता कि सारे काम-काजों में उसकी एक आंख और एक कान कहां तो पड़ा है, अपने आप से ही उसे शर्म लग आती। मगर यह तो कुछ भी नहीं, यह तो सिर्फ उस यंत्र को देखने के लिए मन का कौतूहल है, एक बार उसे देखा नही कि सारा आग्रह जाता रहेगा, आज नही तो कल जाता रहेगा—इस तरह से भी बहुत बार उसने अपने को समझाया, लेकिन कोई नतीजा न निकला। बल्कि ज्यों-ज्यों बेला बढ़ती गई, उसकी उत्कंठा मानो रह-रह कर आशंका में बदलने लगी। पूस का दोपहर का सूरज धीरे-धीरे एक ओर को झुक पड़ा। कल जो आदमी सदा के लिए यहां से चला जा रहा है, आज अगर वह यहां न आ सके, इतना समय नष्ट न कर सके, तो इससे अचरज की कौन-सी बात है! अपने अन्तिम संबल को किसी के हाथ ज्यादा दाम पर बेच कर चला गया हो, तो भी उसे दोष कौन दे? उन दोनों में जो अन्तिम बातें हुई थी, उन्हें उलट-पुलट

कर बड़ी ही कचोट के साथ वह सोचने लगी कि उसके मन में चाहे जो हो. जबान से उसने इसकी बहुत ज्यादा ख्वाहिश नहीं जाहिर की। लिहाजा मेरी अनिच्छा समझ कर वह अगर पलट गया हो, तो दर्पिता को वाजिब ही सजा मिली--हृदय के भीतर से जो गहरा धिक्कार बार-बार उटने लगा, उसका जबाब किसी ओर भी उसे ढूढे न मिला। लेकिन परेश को या और किसी को किसी बहाने उसके पास भेजा जा सकता है या नहीं, और भेजा भी जाय तो उनसे भेंट होगी या नहीं, आना वे कबूल करेंगे या नहीं—मन में यह तर्क-बितर्क करके, छट-पट करके, घड़ी की ओर देख, बाहर-भीतर करते हुए जब किसी भी तरह उसका समय नहीं कट रहा था कि ऐसे वक्त परेश ने आकर खवर दी, माँ जी, नीचे आओ, बाबू आए।

विजया का चेहरा फीका हो गया बोली–कौन बाबू रे ? परेश बोला—कल जो आए थे। हाथ में चमड़े का बड़ा-सा बक्सा है मां जी।

अच्छा, तू बाबू को वैठने को कह, मैं आई।

दो-एक मिनट में विजया ने आकर नमस्कार किया आज उसके पहनावे और खुले रुखे केशों में ऐसी एक खासियत और ढंग था, जो किसी की नजर से चूकने का न था। कल से आज के इस फर्क को गौर करके कुछ क्षण के लिए नरेन से कुछ कहते न बना। उसकी चकित निगाहों का अनुसरण करके विजया की दृष्टि जब अपने पर लौट आई तो मारे शर्म के वह गड़-सी गई। माइक्रोसकोप का वैग अभी तक उसके हाथ में ही था। उसे मेज पर रखकर उसने धीरे से कहा–नमस्कार ! विलायत में रहते हुए मैंने चित्र बनाना सीखा था। आपको तो मैंने और भी कई बार देखा है, लेकिन आज आपके कमरे में प्रवेश करते ही मेरी आँख खुल गई। मैं यह निश्चित रूप से कह सकता हूँ, जो भी तस्वीर बनाना जानता है, आज उसी को आपको देखकर लोभ होगा। वाह, कितनी सुन्दर !

मन ही मन विजया ने समझा, सौन्दर्य के चरणों यह निश्छल-भक्त का स्वार्थ की बू से रहित अकलुष स्तोत्र वरबस ही उच्छ्वसित हो उठा है और यह बात महज इसी के मुंह से निकल सकती है। लेकिन कुछ ही क्षण में अपने को संवरण करके नजर उठा कर गम्भीर स्वर में बोली—मुझको इस तरह अप्रतिभ करना क्या आपको उचित है ? फिर मैंने तो कोई चीज खरीदने के लिये आपको बुलाया था, तस्वीर बनाने के लिए तो नहीं बुलाया।

जवाब सुनकर नरेन का मुंह सूख गया। लज्जा से निहायत सिमट कर बहुत ही झिझकते हुए यह कहकर क्षमा माँगने लगा कि मैंने कुछ सोच कर ऐसा नहीं कहा—मुझसे बड़ी भूल हो गई—आइंदे कभी मैं—आदि-इत्यादि। उसको इस तरह पछताते देख विजया हंसी। स्निग्ध हंसी से मुखड़े को खिला कर कहा—लाइए, देखूं आपका यंत्र।

नरेन बच गया। दिखाता हूँ, कहकर झट बढ़कर वह यंत्र को निकालने लगा। इस कमरे में प्रकाश कम होता आ रहा था। यह देख कर दूसरा कमरा दिखाती हुई विजया ने कहा—इस बगल के कमरे मैं अभी भी रोशनी है, चलिए, वहीं चलें।

चलिये। बक्स हाथ में लेकर वह गृहस्वामिनी के पीछे-पीछे बगल के कमरे में पहुँचा। एक छोटी-सी तिपाई पर उस यन्त्र को रखकर दो कुर्सियां लेकर बैठ गये। नरेन बोला—अब देखिये। फिर बताइये कि इसे काम में कैसे लाया जाता है।

जिसे इस अणुवीक्षण यन्त्र से साक्षात परिचय नही, वह सोच भी नहीं सकता कि इस छोटी-सी चीज में से कितना बड़ा आश्चर्य देखा जा सकता है। बाहर के अपार ब्रह्मांड जैसा ही ब्रह्मांड मनुष्य की मुट्ठी में आ सकता है, इसका आभास केवल इस यंत्र से ही पाया जा सकता है। इस छोटी-सी भूमिका के साथ उसने विजया को ध्यान देने के लिये कहा। विलायत में डाक्टरी पढ़ने के बाद उसके ज्ञान की प्यास जीवाणु-विद्या की ओर ही झुकी थी। इसलिये एक ओर जितना ही इससे उसका परिचय घनिष्ठ हो उठा था, उतना ही अपर्याप्त हो उठा था उसका संग्रह। वह सारा कुछ अपने इस प्राण से प्यारे यंत्र के साथ विजया को देने के लिए ले आया था। उसने सोचा, यह सब न दिया जाय तो सिर्फ इस यंत्र को ही लेकर कोई क्या करेगा? पहले तो विजया कुछ देख न सकी—केवल धुआं और धुंधलका। जितना ही नरेन पूछता कि क्या देख रही हैं, उतनी ही विजया को हंसी आती। न ध्यान था इधर, न चेष्टा। देखने का कौशल वह जी-जान से बताने की कोशिश कर रहा था, एक-एक कल-पुर्जा तरह-तरह से घुमा-फिरा कर देखना सहज बनाने की चेष्टा कर रहा था, मगर देखे कौन? जो समझा रहा था, उसकी आवाज से दूसरे का कलेजा डोल-डोल उठता था, लम्बी सांसों से उसके बिखरे बाल उड़कर सर्वांग में रोमांच ला रहे थे, हाथ से हाथ छू जाता कि देह अवश-सी हो जाती थी—जीवाणु के स्वच्छ-शरीर के भीतर क्या है, क्या नहीं है, यह जानकर उसका क्या आता-जाता है? कौन मलेरिया से उजड़ रहा है, और कौन तपेदिक से घर सूने कर रहा है—यह जान-चीन्ह कर उसे क्या लाभ? आखिर वह उसे रोक तो सकती नहीं! आखिर वह डाक्टर तो है नहीं!

दसेक मिनट जूझकर नरेन खीझ कर सीधे उठ बैठा। बोला—छोड़िए भी, यह आपके बस का नहीं। ऐसी मोटी अक्ल मैंने देखी ही नहीं।

जी-जान से हंसी रोक कर विजया बोली—मेरी अक्ल मोटी है या आप समझा नहीं पाते!

अपनी रूखी बात से मन ही मन शर्मिन्दा होकर नरेन बोला—और कैसे

समझाऊं, कहिए ? आपकी अक्ल ऐसी कुछ मोटी नहीं, लेकिन मैं समझता हूँ, आप ध्यान ही नहीं दे रही हैं। मैं बकबक करके जान दे रहा हूँ और आप नाहक ही उसमें आँख गड़ा कर मुंह नीचे किये सिर्फ हंस रही हैं।

किसने कहा मैं हंस रही हूँ।

मैं कह रहा हूँ।

आपकी गलती है।

मेरी गलती ? खैर, वही सही। मगर यह यंत्र तो गलत नहीं, फिर क्यों देख नहीं पाईं।

आपका यंत्र खराब है, इसलिये।

नरेन अचरज से अवाक् हो गया। कहा, खराब ! पता है आपको, ऐसा पावरफुल माइक्रोसकोप यहां ज्यादा लोगों को नहीं है ? ऐसा साफ दिखाने में—और खुद एक बार जांच देखने की बेसब्री से झुकने गया कि विजया के माथा से माथ लड़ गया।

ऊः—कहकर विजया ने सर हटा लिया और सहलाने लगी। नरेन बेमौके पड़कर क्या तो कहने जा रहा था कि वह हंस पड़ी। बोली—माथा लड़ा देने से क्या होता है, मालूम है ? सींग निकलता है।

नरेन हंसा। बोला—निकलना हो तो आप ही के माथे से निकलना चाहिये।

क्या खूब ! आपके इस टूटे हुए पुराने यन्त्र को मैंने अच्छा नहीं कहा, इस लिए मेरा माथा सींग निकलने लायक हो गया !

नरेन्द्र हंसा तो, मगर उसका मुंह सूख गया। सिर हिला कर बोला—मैं सच कह रहा हूँ आपसे, टूटा हुआ नहीं है। चूंकि मैं फटाहाल हूँ इसलिए आपको लग रहा है कि मैं रुपए ठग लेना चाहता हूँ, पर बाद में आपको पता चलेगा।

विजया बोली—बाद में पता चल कर क्या होगा, कहिये ? फिर आपको पाऊंगी कहां ?

नरेन तीखे स्वर में बोला—फिर आपने क्यों कहा कि आप लेंगी। नाहक ही मुझे कष्ट क्यों दिया ?

विजया गम्भीर स्वर में बोली—आपने ही क्यों नहीं बताया था कि वह टूटा है ?

लेकिन तुरन्त अपनी रंजिश घोंट गया और बोला—खैर, वही सही। मैं तर्क नहीं करना चाहता—यह टूटा ही है ! आपने इतना-सा नुकसान तो मेरा कर दिया कि अब कल मेरा जाना न हो सकेगा। परन्तु सब आपकी तरह अंधे नहीं हैं, कलकत्ते में मैं मजे से बेच लूंगा, सो जानिये। अच्छा तो जाता हूँ। वह यंत्र को वक्स में

सहेज ने लगा।

विजया गम्भीर होकर बोली—मगर अभी आप जा कैसे सकते हैं ? आपको तो खाकर जाना होगा।

नहीं, उसकी जरूरत नहीं।

जरूरत तो है।

नरेन ने कहा–आप मन ही मन हंस रही है। मेरा मजाक उड़ा रही है!

कल खाने को कहा था, तो क्या मजाक उड़ाया था! वह नहीं होने का, आपको खाकर जाना पड़ेगा। जरा देर बैठिए, मैं जाती हूँ–यह कह कर अपनी हंसी दबाती हुई विजया सारे कमरे में रूप को तरगे लहरा कर चली गई। पांचेक मिनट बाद वह खुद अपने हाथ में भोजन की थाली और नौकर के हाथों चाय का इन्तजाम लेकर लौट आई। तिपाई को खाली देख कर कहा, इसी बीच सहेज भी लिया। गुस्सा तो कम नहीं है देखती हूँ!

नरेन जरा उदास-सा बोला—आप नही लेंगी—इसमें गुस्सा क्या ? लेकिन जरा सोच देंखे, इतनी भारी चीज लेकर इतनी दूर आने और जाने में तकलीफ तो होती है!

मेज पर थाली रखकर विजया ने कहा—हो सकती है। लेकिन यह तकलीफ आपने मेरी खातिर तो नहीं की, की है अपने लिये। खैर, खाइए। मैं चाय तैयार करती हूँ।

नरेन बैठा ही रह गया, यह देखकर वह फिर बोली—न होगा, तो मै ही ले लूंगी उसे, आपको ढोकर नहीं ले जाना होगा। आप खाना शुरू कीजिए।

अपने को अपमानित समझ कर नरेन बोला—मैंने दया करने का अनुरोध तो नहीं किया।

विजया बोली, उस दिन लेकिन किया था, जब मामा की ओर से कहने आये थे।

वह दूसरे के लिए, अपने लिए नहीं। अपनी यह आदत नहीं।

इसमें सच्चाई थी, विजया से यह छिपी न थी। इसलिए उसे बात जरा लगी। बोली—सो जो भी हो, उसे आप वापिस नहीं ले जा सकते—वह यहीं रहेगा। लीजिए, खाइए।

संदिग्ध स्वर से नरेन ने पूछा—इसका मतलब ?

विजया बोली, आखिर कुछ तो मतलब है।

जवाब सुनकर कुछ देर वह स्तब्ध होकर बैठा रहा। शायद मन में उस मतलब की खोज की और तुरन्त गुस्से में आकर बोला—वह क्या है, मैं वही साफ-साफ आपसे जानना चाहता हूँ। खरीदने के बहाने मंगवा कर उसे क्या रोक रखना

चाहती हैं। पिता जी क्या इसे भी आपके पास गिरवी रख गये थे? तब तो आप मुझे भी रोक ले सकती हैं? मजे में कह सकती हैं कि पिता जी मुझे भी आपके पास बंधक रख गए हैं।

विजया का चेहरा तमतमा आया। गर्दन घुमाकर बोली—कालीपदो खड़ा क्या है तू? ये चीजें उतार कर रख दे और पान ले आ।

नौकर ने केतली-वेतली उतार ली और चला गया। विजया सिर झुकाकर चुपचाप चाय बनाने लगी और पास ही गुस्से से मुंह फुलाकर नरेन चौकी पर बैठा रहा।

बारह

सृष्टि तत्व की जो गूढ़ बातें हैं, उनके बारे में विजया ने बड़े-बड़े पंडितों से बहुत-बहुत विचार सुने, बहुत-बहुत गवेषणायें सुनीं लेकिन जो हिस्सा उसका ज्ञेय है, वह कहाँ से शुरू हुआ, कार्य क्या है उसका, उसकी आकृति और प्रकृति कैसी है, इतिहास क्या है उसका—यह सब इतने सुलझे और साफ शब्दों में और किसी से कभी सुना है, उसे याद न आया। जिस यंत्र को उसने टूटा कह कर अभी-अभी हंसी उड़ाई, उसी के सहारे क्या ही अनोखा और अद्भुत व्यापार उसे दिखाई पड़ा! इस दुबले-पतले और पगले से आदमी ने डाक्टरी पास की है, इसी पर तो यकीन नहीं आना चाहता! और सिर्फ इतना ही नहीं, जीवों के बारे में उसकी जानकारी की गहराई, विश्वास की दृढ़ता, याद रखने की गजब की शक्ति का परिचय पाकर वह हैरान रह गई। मगर एक मामूली-से आदमी जैसा इसे नाराज कर देना कितना आसान है! अन्त-अन्त में कुछ तो वह सुन रही थी और कुछ उसके कानों तक पहुँचता ही न था। मुंह की तरफ टुकुर-टुकुर ताकती थी। अपने आवेश में जब वह बकता ही चला जा रहा था, तब श्रोता संभवतः उसके त्याग, उसकी सतता, उसके भोलेपन की मन ही मन सोच स्नेह, श्रद्धा और भक्ति से विभोर बनी बैठी थी।

अचानक नरेन को ध्यान आया कि वह फिजूल ही बकता चला जा रहा है। बोला, आप कुछ सुन नहीं रही हैं।

चकित-सी विजया बोली—सुन तो रही हूँ।

क्या सुन रही हैं, कहिये तो?

वाः, भला हर कोई एक ही दिन में सीख सकता है ?

नरेन हताश होकर बोला—नः, आपसे कुछ न हो सकेगा। जनम में आप जैसी अनमनी मैंने दूसरी देखी नहीं।

विजया बिना जरा झिझके बोली—एक ही दिन में होता है कहीं ? आपने क्या एक ही दिन में जान लिया था ?

नरेन ठठा कर हस पड़ा—आपको तो सौ साल में भी न आयगा। फिर यह सब बतायगा भी कौन ?

होंठ दबाकर हंसती हुई विजया बोली—आप ! नही तो आपका यह टूटा यंत्र लेगा कौन ?

नरेन गम्भीर होकर बोला—आपके लेने की भी जरूरत नहीं और मैं सिखाने से भी रहा।

विजया बोली—तो चित्र बनाना सिखा दीजिये। वह तो सीख सकूंगी ?

नरेन बिगड़ कर बोला—वह भी नहीं। जिसमें लोगों को खाने-पीने की सुध नहीं रहती, जब उसी में आप जी न लगा सकीं, तो चित्र में ध्यान दे सकेंगी ? हर्गिज नहीं।

चित्र बनाना भी नहीं सीख सकूंगी ?

नहीं।

विजया बनावटी गम्भीरता के साथ बोली—कुछ न सीख पाऊं तो सिर पर सींग उग आयेंगे।

उसके कहने की अदा और बात से नरेन जोरों से हंस पड़ा। बोला—वही आपकी सही सजा है।

विजया ने मुंह घुमाकर हंसी रोकी। बोली—क्यों नहीं ! यह क्यों नहीं कहते कि आपमें सिखाने की क्षमता नहीं। मगर ये नौकर क्या कर रहे हैं, बत्ती क्यों नहीं दे जाते ? जरा बैठे आप, मैं बत्ती को कह आऊं। वह उठी और दरवाजे का पर्दा हटाया कि इस तरह से ठिठक गई, गोया भूत देखा हो। सामने ही बैठके में दो कुर्सियों पर दोनों बाप-बेटे, रासविहारी और विलासविहारी बैठे थे। विलास के चेहरे पर जैसे किसी ने स्याही पोत दी हो। अपने को जब्त करके विजया ने आगे बढ़कर पूछा—आप कब आये चाचा जी ? मुझे बुलाया क्यों नहीं ?

रासबिहारी सूखी हंसी हंस कर बोले—आधा घन्टा हो गया बिटिया। तुम बातों में मशगूल थीं, इसीलिए नहीं बुलाया। यही शायद जगदीश का लड़का है ? क्या चाहता है ?

बगल के कमरे तक आवाज नहीं पहुँचे, विजया ऐसे धीमे से बोली—अपना माइक्रोसकोप बेच कर वे वर्मा चल देना चाहते हैं। वही दिखा रहे थे।

विलास चीख-सा पड़ा—माइक्रोसकोप ! ठगी की और कोई जगह नहीं मिली उसे !

रासविहारी ने बेटे की भर्त्सना की—ऐसा कहना क्या ? उसका मतलब तो हम नहीं जानते—अच्छा भी तो हो सकता है।

विजया की ओर ताकते हुए गर्दन हिलाकर बोले—जिसके बारे में जानता नहीं, उस पर अपनी राय देना मैं वाजिब नहीं समझता। उसका अभिप्राय बुरा न भी तो हो सकता है, क्यों बिटिया ? जरा रुके। फिर बोले—लेकिन जोर करके कुछ कहा भी नहीं जा सकता, यह भी ठीक है। खैर, हो चाहे जो भी, अपने को उससे मतलब भी क्या ? दूरबीन भी होता तो जब कभी दूरदराज देखने के काम आता—कौन, कालीपदो। उस कमरे में बत्ती देने जा रहा है। उन बाबू से कह देना, यंत्र हम न खरीद सकेंगे। वे जा सकते हैं।

विजया डरते-डरते बोली—मैं कह चुकी हूँ, लूंगी।

रासविहारी कुछ चकित होकर बोले—लोगी ! आखिर क्यों ? वह अपने किस काम आयगा ?

विजया चुप हो रही।

रासविहारी ने पूछा—कितना दाम माँगते हैं ?

दो सौ रुपए।

रासविहारी की भौहें फैल गईं। बोले—दो सौ ! फिर तो विलास ने निहायत—क्यों विलास, कालेज में एफ. ए. पढ़ते समय कैमिस्ट्री में तो तुमने यह सब काफी देखा है—एक माइक्रोस्कोप का दाम दो सौ रुपए ? कालीपदो, जा, उनसे कह दे, यह मनसूबा यहाँ नहीं चलने का।

लेकिन जिससे कहना था, वह अपने ही कानों सब सुन रहा था, इसमें संदेह नहीं। कालीपदो जाने लगा तो विजया ने शांत लेकिन दृढ़ स्वर में कहा—तुम सिर्फ बत्ती दे आओ। कहना होगा, सो मैं खुद ही कहूँगी।

विलास ने श्लेष करके पिता से कहा—झूठमूठ आप क्यों बेआबरू होने गए पिता जी। उन्हें शायद अभी भी कुछ दिखाना बाकी है।

रासविहारी कुछ बोले नहीं, लेकिन गुस्से से विजया का चेहरा लाल हो उठा। विलास ने यह देखा, फिर भी कह उठा—माइक्रोस्कोप तो बहुत तरह के हमने भी देखे हैं पिता जी, मगर ठठाकर हंसने का कोई विषय कभी किसी में नहीं पाया।

कल उसे भोजन कराया गया था, यह भी उसने सुना था। आज की यह हंसी तो कानों सुनी। विजया का आज का साज-सिंगार भी उसकी नजर से न चूका। दाह के मारे वह इस कदर जल रहा था कि सही-गलत का होशोहवास

जाता रहा। विजया विलास की तरफ पीठ करके बोली—मुझ से कोई खास बात करनी है चाचा जी ?

रासविहारी ने नजर बचाकर बेटे को कटाक्ष किया और जरा हंसकर स्निग्ध स्वर में बोले—बात तो है बिटिया। मगर उसकी जल्दी भी क्या ?

थोड़ा थम कर बोले—और, मैंने विचार कर देखा, जब उनसे कह चुकी हो, तो जो भी हो चाहे, लेना तो चाहिये ही। आखिर दो सौ रुपए का दाम ज्यादा है या बात का ? न हो तो उन्हें कल आकर रुपए ले जाने की कहला दो न बेटी।

विजया ने इस बात का जवाब न देकर पूछा—आपसे क्या कल बात नही हो सकती है चाचा जी ?

रासविहारी ने हैरान-सा होकर पूछा—क्यों भला ?

विजया एक पल रुकी और हिचक-झिझक को बलपूर्वक रोक कर बोली—उन्हें रात हो रही है—दूर जाना है। उनसे मुझे कुछ बात करनी है।

उसकी इस ढीठ साफगोई से मन ही मन वे हैरान हुए, लेकिन बाहर से इस भाव को जरा भी जाहिर न होने दिया। देखा, बेटे की दो छोटी-छोटी आँखें खूंखार जानवर-सी अंधेरे में झक-झक कर रही है और जाने क्या तो कहने के लिए वह जूझ-सा रहा है। धूर्त रासविहारी लमहे में स्थिति समझ गए और कटाक्ष से बेटे को रोकते हुए खुशी-खुशी बोले—ठीक तो है। कल सवेरे ही आऊंगा मैं। विलास बेटे अंधेरा हो जायगा। चलो हम लोग चलें। वे उठ खड़े हुए। बेटे की बाह में हल्का-सा झटका देकर उसके रुंधे हुए प्रचन्ड क्रोध के फट पड़ने के पहले ही उसे साथ लेकर चल दिए।

विजया ने उसी वक्त से विलास की तरफ ताका नही था। लिहाजा उसके चेहरे का भाव, उसकी निगाह को आँखों न देख पाने के बावजूद मन ही मन सारा कुछ अनुभव करके बड़ी देर तक वह लकड़ी सी खड़ी रह गई।

कालीपदो कमरे में बत्ती देने आया। बोला, उस कमरे में बत्ती दे आया मां-जी।

अच्छा, कह कर विजया ने अपने को सयत किया और पर्दा हटा कर उस कमरे में दाखिल हुई। नरेन गर्दन झुकाए कुछ सोच रहा था, उठ खड़ा हुआ। उसके निश्वास जब्त करने की नाकामयाब कोशिश भी विजया ताड़ गई। कुछ देर खड़ा रह कर नरेन दुःख के साथ बोला—इसे मैं साथ ही लिए जा रहा हूँ। आज का दिन आपका बड़ा बुरा बीता। जाने सुबह किसका मुंह देख कर जगी थीं। मैंने आपको बहुत बुरा-भला कहा, वे भी सुना गए।

विजया का हृदय तब भी जल रहा था, मुंह उठा कर ताकते ही उसके अन्तर का दाह दोनों आंखों में दीप्त हो उठा। अविचलित कंठ से वह बोली—जिसमें रोज

उसी का मुंह देखकर मेरी नींद टूटे। मैं इसलिए नहीं कह रही हूँ, चूंकि आपने अपने कानों सुन लिया, आपके बारे में उन्होंने असम्मान की जो बातें कही हैं, वह उनकी अनधिकार चर्चा है, यह मैं उन्हें कल समझा दूंगी।

अतिथि का अपमान विजया को कैसा लगा, यह नरेन समझ गया था, लेकिन शांत सहज भाव से कहा—क्या जरूरत पड़ी है। चूंकि इन चीजों के बारे में उन्हें जानकारी नहीं है, इसी से सन्देह हुआ है, वरना मेरे असम्मान से उन्हें क्या लाभ? शुरू में आपको भी तो कई कारणों से सदेह हुआ था, तो क्या असम्मान करने के लिए? वे आपके अपने हैं, शुभैषी हैं, मेरी वजह से उन्हें नाराज न करें। हाँ, रात होती जा रही है—मैं जाता हूँ।

कल या परसों एक बार आ सकेंगे?

कल या परसों? लेकिन अब तो समय न होगा। कल मैं जा रहा हूँ, कल ही बर्मा जरूर नहीं जा रहा हूँ। कलकत्ते में दो-चार दिन ठहरना होगा। लेकिन भेंट करने का तो अब—

विजया की दोनों आंखें आँसुओं में डूब गईं। वह न तो नजर उठा सकी, न बोल सकी।

नरेन स्वयं हंस पड़ा। बोला—आप खुद इतना हंसाती हैं और ऐसी मामूली-सी बात पर आपको इतना गुस्सा आता है? मैंने ही बल्कि खीझकर आपको मोटी अक्ल, और भी जाने क्या-क्या कह दिया, लेकिन उस पर तो नाराज न हुईं, बल्कि होंठ दबा कर हंस रही थीं, देखकर मुझे और भी गुस्सा आ रहा था। आप मुझे सदा याद आती रहेंगी—आप खूब हसा सकती हैं।

वर्षा थम जाने के बाद हवा के झोंके से जैसे पत्तों का पानी चू पड़ता है, वैसे ही अन्तिम बात पर विजया की आंखों से आँसू की कुछ बूंदें टप-टप टपक पड़ी। लेकिन कहीं दूसरे की निगाह न पड़े, इस डर से वह माथा नीचे किए चुपचाप खड़ी रही।

नरेन बोला—आप इसे न ले सकीं, इसके लिए दुखी हैं—कहकर बीच ही में इस सूधे वैज्ञानिक ने पल भर में एक अजीब हरकत कर दी। यकायक हाथ बढ़ाकर विजया की ठोढ़ी पकड़ कर कह उठा—अरे, आप रो रही हैं?

बिजली की गति से विजया दो कदम पीछे हट गई। आंखें पोंछ लीं। नरेन हक्का-बक्का सा पूछ बैठा—क्या हो गया?

ये बातें उस बेचारे की बुद्धि के परे हैं। वह कीटाणुओं को पहचानता है, उनके नाम-धाम, जात-गोत की कोई भी खबर उसे अजानी नहीं, उनके काम-करतूत, तौर-तरीके के बारे में उससे कभी भी तिल भर भूल नहीं होती, उनके आचार-व्यवहार का सारा लेखा उसकी अंगुली की नोंक पर है—मगर यह क्या? जिसे

नासमझ कहकर गाली देने से छिपकर हंसती है और श्रद्धा तथा कृतज्ञतावश प्रशंसा करने से बेतरह रो पड़ती है, ऐसी अजीब फितरत के जीव से संसार के ज्ञानी लोगों का सहज कारबार कैसे चले ? वह कुछ देर हक्का-बक्का खड़ा रहा और ज्योंही बैग उठाकर चलने लगा कि विजया रुंधे कंठ से बोल उठी—वह मेरा है, उसे आप रख दीजिए और अपनी रुलाई के आवेग को न रोक पाकर जल्दी से कमरे से निकल गई।

नरेन ने उसे रख दिया और किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा कुछ देर खड़ा रहा। बाहर आकर देखा, कोई कहीं नहीं। और भी एकाध मिनट चुप खड़ा राह देखता रहा, अन्त में खाली हाथ अंधेरी राह पर चल पड़ा।

विजया लौटी तो देखा, बैग पड़ा है, मालिक नदारद। वह रुपया लाने के लिए कमरे में गई थी लेकिन बिस्तर में मुंह गाड़ कर रुलाई रोकने में इतना समय लग गया, इसका होश न था। आवाज पाकर कालीपदो आया। पूछने पर जबानी उसने गिरस्ती के काम की एक लम्बी फिहरिश्त पेश कर दी—कहा, मैं तो अन्दर था, जाने बाबू कब चले गए। दरबान कन्हैयासिंह ने सफाई दी, मैंने अरहर की दाल उतारी और रोटी ठोंक रहा था, कब जो दुबक कर बाबू निकल गए, मालूम नहीं।

तेरह

विलासविहारी की विशाल कीर्ति—गांव में ब्रह्म-मन्दिर की प्रतिष्ठा का दिन नजदीक आ गया। एक-एक कर अतिथि जुटने लगे। न केवल कलकत्ते से, आस-पास से भी कुछ लोग सपत्नीक पधारे। शुभ दिन कल था। आज शाम को रासविहारी ने अपने यहां एक प्रीतभोज का आयोजन किया।

स्वार्थ-हीन की आशंका दुनियां में किसी-किसी को कैसा कुशाग्र बुद्धि और दूरदर्शी किए देती है, वह नीचे की घटना से साबित होगी।

आमंत्रितों के बीच में बैठ कर बूढ़े रासबिहारी ने अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए अपने छुटपन के साथी स्वर्गीय वनमाली का जिक्र करते हुए अधमुंदी आंखों, गम्भीर स्वर में कहा—भगवान ने उन्हें असमय में ही बुला लिया—उनकी मंगल-इच्छा के खिलाफ मेरी कोई नालिश नहीं, लेकिन वह मुझे क्या बनाकर रख गया है, यह मुझे बाहर से देखकर आप अनुमान तक नहीं कर सकते। गरचे हम दोनों के मिलने का दिन दिन-दिन करीब आ रहा है, मैं हर पल उसका आभास

पा रहा हूँ, फिर भी उस एक मात्र, अद्वितीय निराकार ब्रह्म के चरणों में मेरी प्रार्थना है कि उस दिन को जिसमें वे और भी निकट कर दें। यह कह कर उन्होंने कुरते से आंखों के कोनों को पोंछा। इसके बाद जरा देर मौन, गम्भीर बने रहे, फिर पहले से ज्यादा खिल कर बात करने लगे। उनके बचपन की खेलकूद, किशोरावस्था की पढ़ाई-लिखाई, उसके बाद यौवन में सत्य धर्म अपनाने का इतिहास बता कर बोले, लेकिन गांव का अत्याचार वनमाली के कोमल हृदय से न सहा गया—वे कलकत्ते चले गए। लेकिन मैंने सारे जुल्मों-सितम सहकर गांव में ही रहने की शपथ ली। उफ, उन जुल्मों की पूछिये मत ! तो भी मैंने मन में कहा—सत्य की जय होकर ही रहेगी उनकी महिमा से एक दिन जीत ही होगी। वह शुभ दिन आज आ पहुँचा—जभी इतने दिनों के बाद आज यहां आप लोगों के चरणों की धूल पड़ी। बनमाली आज हम लोगों के बीच नहीं हैं—वे दो दिन पहले ही चले गए, लेकिन मैं आँखें बन्द करते ही देख पाता हूँ, वह, वहाँ वे आनन्द से मीठा-मीठा हंस रहे हैं। और, आंखें मूंदकर वे फिर स्थिर हो रहे।

वहाँ जो मौजूद थे, सबका मन उत्तेजित हो उठा—विजया की दोनों आंखों में आंसू छलक आए। रासविहारी ने आँखें खोलीं। झट दायाँ हाथ फैलाकर बोले—वह रही, उनकी इकलौती लड़की विजया। पिता के सभी गुणों की अधिकारिणी—लेकिन कर्त्तव्य में कठोर। सत्य में निर्भीक। स्थिर। और वह मेरा लड़का विलासविहारी। ऐसा ही अटल, ऐसा ही दृढ़। बाहर से ये दोनों अभी अलग होते हुए भी, हृदय से—हाँ, एक और शुभ दिन नजदीक आ रहा है, जब फिर आप लोगों की चरणधूलि के कल्याण से इन दोनों का सम्मिलित जीवन धन्य होगा।

एक अस्फुट, मधुर कलस्वर से सभा मुखरित हो उठी। जो महिला बगल में बैठी थीं, उन्होंने विजया की हथेली को अपने हाथ के लेकर हलके से दबाया।

एक गहरा दीर्घश्वास छोड़कर रासविहारीबोले—वही उनकी अकेली संतान है,अपनी आंखों यह दिन देख जाने की उन्हें बड़ी साध थी। लेकिन कसूर मेरा। आज आप सबके सामने कबूल करता हूँ कि इसका जिम्मेवार मैं हूँ। कमल के पत्ते पर ओस की बूंद सा है मानव का जीवन—यह हम सिर्फ जबानी कहा करते हैं, काम के वक्त याद नहीं रखते। वह इतनी जल्दी हमें छोड़ जाएंगे, यह तो सोचा ही नहीं।

रासविहारी कुछ देर चुप हो गये। पश्चाताप से बिंधे हृदय की छवि दीपालोक में उनके चेहरे पर फूट उठी। फिर से एक गंभीर दीर्घश्वास छोड़ते हुए बोले—लेकिन अब मुझे होश आया है। सो अपनी सेहत को देखते हुए आगामी फागुन से ज्यादा देर करने की हिम्मत नहीं पड़ती। क्या पता, कहीं मुझे भी बिना देखे ही जाना पड़े।

फिर एक अव्यक्त ध्वनि उठी। रासविहारी दाएं और बाएं देखकर विजया को लक्ष्य करके कहने लगे, वनमाली अपनी सारी जायदाद के साथ अपनी बिटिया

को भी मेरे हाथ सौंप गए हैं, मैं भी धर्म का ख्याल रखते हुए अपना कर्त्तव्य कर जाऊंगा। आप लोगों के आशीर्वाद से ये भी दीर्घजीवी हों और सत्य पर अटल रहकर अपना कर्त्तव्य करें। जहां से उनके पिता को निर्वासित किया गया था, वहीं जम कर सत्य धर्म का प्रचार करें, यही मेरी एकमात्र प्रार्थना है।'

बूढ़े आचार्य दयालचन्द्र ने आशीर्वाद बरसाया।

इसके बाद रासविहारी ने विजया से कहा—बिटिया, तुम्हारे पिता नहीं, तुम्हारी साध्वी माता बहुत पहले ही स्वर्ग चली गईं, नहीं तो यह बात तुमसे आज मुझे नहीं पूछनी पड़ती। शर्माओ मत बेटी, बोलो, अपने इन पूजनीय अतिथियों को अगले फागुन में फिर चरणों की धूल देने का आमंत्रण यहीं कर दूं।

विजया बोले क्या, क्षोभ, खीझ और भय से उसका गला रुंध गया। वह नजर नीची किए खड़ी रही। रासविहारी एक क्षण राह देख कर बोले—दीर्घजीवी हो बिटिया, तुम्हें कुछ नहीं कहना है—हम लोग समझ गए।

वे उठ खड़े हुए। हाथ जोड़ कर बोले—अगले फागुन में ही आप लोगों के चरणों की धूल की प्रार्थना करता हूँ।

सब अपनी अपनी सहमति देने लगे। विजया से सहा नहीं गया। वह अव्यक्त स्वर से बोल उठी—पिता जी की मृत्यु के साल भर के अन्दर ही—उसका गला भर आया। बात को वह पूरी न कर सकी।

रासविहारी तुरत ताड़ गए। गहरे पछतावे के साथ तुरत बोल उठे—ठीक तो बिटिया। यह तो मुझे याद ही न था। मगर तुमने इस बूढ़े की भूल बता दी।

विजया ने चुपचाप अपनी आंखें पोंछीं। रासविहारी ने यह भी गौर किया। निश्वास छोड़ कर गीले गले से बोले—सब उनकी इच्छा। जरा रुक कर बोले—वही होगा। लेकिन उसको भी तो अब देर नहीं।

उन्होंने सबकी तरफ देख कर कहा—अच्छा, तो शुभ कार्य वैशाख में ही संपन्न होगा। आप लोगों से यही बात पक्की रही। विलास, बेटे, रात हो रही है—सुबह से तो काम का अन्त नहीं रहेगा—भोजन का प्रबंध—नहीं, नही, नौकरों के भरोसे नहीं—तुम खुद जाओ—चलो, मैं चलता हूँ—तो आप लोगों की इजाजत हो, तो मैं जरा···। बेटे के पीछे-पीछे वे अन्दर चले गए।

समय पर प्रीतिभोज हो गया। बड़े पैमाने पर सब कुछ हुआ था, कोई त्रुटि नहीं हुई। रात के करीब बारह बज रहे थे, एक खंभे की आड़ में अकेली खड़ी विजया पालकी का इन्तजार कर रही थी। मानो एकाएक उसका आविष्कार करके रासविहारी चौंक उठे—यहां अकेली क्यों खड़ी हो बिटिया, अन्दर आओ।

सिर हिलाकर विजया बोली, नहीं चाचाजी, मैं ठीक ही हूँ।

सर्दी लग जायगी बिटिया !

नहीं लगेगी ।

रासविहारी ने 'घर की लक्ष्मी' आदि कह कर एक किस्त और आशीर्वाद किया । विजया पत्थर-की मूरत सी खड़ी स्नेह के इस अभिनय को सहती रही ।

रासविहारी को अचानक एक बात याद आ गई । बोले—तुम्हें यह कहना कतई भूल गया था बेटी । उस माइक्रोस्कोप की कीमत मैंने उसे दे दी है ।

आठ-दस दिन हो गए, नरेन वही जो उसे रखकर गया है, फिर नहीं आया । पीछे के दिन विजया के कैसे कटे, यह वही जानती है । उसने उसके फूफी के घर की महज दूरी जानी थी, लेकिन यह पूछा भी नहीं कि वह है कहाँ, किस गाँव में । अपनी यह भूल उसे गरम सीखचे-सी चुभती रही, मगर कोई उपाय करते न बना । अभी रासविहारी ने जो कहा, वह चकित हो गई । पूछा—कब दिया ?

रासविहारी ने जरा सोच कर कहा—क्या जानें, शायद उसके दूसरे ही दिन । मैंने सुना, लेने के लिए ही तुमने उसे रख लिया । बात बात ही है कि जब बात दी जा चुकी, तब चाहे ठगाएं या जो हो, रुपए भी दे दिए गए—जिन्दगी भर यही तो मैं समझता आया हूँ । मैंने देखा, बेचारे को रुपयों की सख्त जरूरत है । रुपए मिल जाएं तो वह चला जाय—जाकर कुछ करने की जुगत कर सके । हजार हो, वह भी तो आखिर कोई विराना नहीं बिटिया, वह भी मेरे एक मित्र का ही लड़का है । मैंने देखा, जाने के लिए अकुला गया है—रुपये मिलें कि जाय । फिर जैसा तुम्हारा देना, वैसा ही मेरा देना । सो मैंने फौरन दे दिया । उसका धर्म वह जाने । दस रुपये ज्यादा लिए हैं, तो ले ।

विजया के मुंह में जीभ मानो जम गई । ऐसा लगा, अब कभी बात नहीं निकलेगी । कुछ देर तक काफी कोशिश करके उसने पूछा—कहाँ दिया ?

पता नहीं कैसे, रासविहारी ने सवाल को बिल्कुल अलग समझा तथा चौंक कर बोले—अरे, कह क्या रही हो, रुपए दुबारे ले लिए क्या ? लेकिन उसकी सूरत से तो ऐसा नहीं लगा ? और दोष भी किसे दूं । इसी तरह से लोगों से ठगाते-ठगाते अपनी दाढ़ी पका ली । खैर, दो सौ और गए । वे रुपए, न होगा, मैं ही भरूंगा—आजीवन ऐसी सजा ढोते-ढोते कंधे पर ढेला पड़ गया है, अब महसूस नहीं होता । खैर वह मैं···

विजया से और सहा नहीं गया । वह रूखे स्वर में बोली—आप झूठ-मूठ में खौफ क्यों खा रहे है चाचाजी । दो बार रुपये लेने वाले आदमी वे नहीं हैं—भूखे मर जाएं, तब भी नहीं । मगर आपसे भेंट कहां हुई ? रुपए दिए कब आपने ?

रासविहारी बेहद निश्चिंत होकर निश्वास छोड़ते हुए बोले—खैर, राहत मिली । रुपये कुछ कम भी तो नहीं—दो सौ ! जाने के लिए परेशान । अचानक भेंट होते ही— कौन खड़ा है ? विलास ! पालकी का क्या हुआ ? सर्दी लग रही है !

जो काम खुद न देखूं, वही न होने का ? और बिगड़ कर एक खंभे को विलास समझ कर वे जल्दी से उसी तरफ चल दिए।

चौदह

वह भी दिन था कि विलास को आत्मसमर्पण करना विजया के लिए कुछ कठिन न था। लेकिन आज सिर्फ विलास क्यों, इतनी बड़ी दुनियाँ के इतने करोड़ लोगों में से एक के सिवाय और किसी ने उसे स्पर्श किया है, यह सोच कर भी उसका सर्वांग घृणा और लज्जा से और सारा अन्तःकरण किस एक गहरे पाप के भय से भीत और सशंकित हो उठता। इसी बात को वह रासविहारी के यहाँ से पालकी पर लौटते समय तिल-तिल करके जाँच-परख रही थी।

उसके बारे में उसके पिता का क्या ख्याल था, यह जानने का पूरा मौका नहीं मिल सका। लेकिन उनके मरने के बाद यह स्थिर-सा हो चुका था कि उसके भावी जीवन की धारणा रासविहारी से मिल कर प्रवाहित होगी। इसमें कोई इधर-उधर हो सकता है, इस संभावना की कल्पना तक कभी उसके मन में नहीं जगी।

पर यह जो एक अनासक्त उदासीन आदमी आसमान के जानें किस अदेखे छोर से अचानक धूमकेतु की नाईं आ धमका और पल में अपनी पूंछ के जोरों के झपेटे से सारा कुछ उसने उलट-पुलट दिया, उसके निश्चित पथ की लकीर तक को पोंछ कर खुद न जाने कहां खिसक पड़ा— निशानी तक नहीं छोड़ गया—यह सत्य है या कोरा सपना, अपनी सम्पूर्ण आत्मा को जाग्रत करके विजया आज यही सोच रही थी। यदि यह सपना है, तो इसकी माया कब तक और कैसे मिटेगी, और अगर सत्य है, तो वह सत्य जीवन में सार्थक ही कैसे होगा ?

घर आकर बिस्तर पर लेट गई, लेकिन नींद उसके उत्तप्त दिमाग के पास तक नहीं फटकी। उसके हृदय में जो आशंका आज बारम्बार जगने लगी, वह यह कि जो चिंता कुछ दिनों से उसके हृदय को रात-दिन आन्दोलित कर रही है, उसमें कुछ सार भी है कि वह आकाश-कुसुम की माला भर है उसकी ?

उसके मां नहीं, पिता भी परलोकवासी : भाई-बहन तो कभी थे नहीं— अपना कहने को एक रासविहारी के सिवाय और कोई नहीं। बन्धु कहो, बांधव कहो, अभिभावक कहो, सब वही। लेकिन अपना कोई मतलब गांठने के लिए ही वे उसे आजन्म परिचित कलकत्ते के समाज से हटाकर यहां गांव में ले आए हैं, विजया

की आँखों में यह बात आज पानी की तरह साफ हो गई। उस स्वच्छता में से जहां तक देखा जा सकता था, सब उसे साफ दीख रहा था। चले जाने के लिए नरेन को अनमाँगी सहायता देना, अपने यहां प्रीतिभोज का यह आयोजन, सम्मानित अतिथियों के सामने विवाह का प्रस्ताव, उसके शर्म से मौन रह जाने को सम्मति कह कर निःसंकोच प्रचार करना—चारों तरफ से उसे जकड़ने की जो चेष्टाएं बूढ़े की चल रहीं थीं, वे छिपी न रहीं।

मगर मजा यह कि अत्याचार-उपद्रव की जरा भी निशानी रासविहारी की किसी बात में कहीं न थी। पर बूढ़े की विनम्र स्नेह-सरस मंगल-कामना की आड़ में खड़ा उसका कठिन कठोर शासन उसे प्रतिपल ठेल कर जाल की तरफ बढ़ाए दे रहा था, यह अनुभव करते ही अपनी लाचारी की तस्वीर उसे इतनी साफ दिखाई दी कि सूने घर में भी वह आँतक से सिहर उठी। तमाम रात वह जरा देर को भी न सो सकी, अपने स्वर्गीय पिता को पुकारती हुई बार-बार रो-रोकर कहती रही—पिताजी, आपने तो इन लोगों को पहचान पाया था, फिर क्यों मुझे इन लोगों के जबड़े में इस तरह से डाल गए ?

कभी उसने खुद ही विलास को पसन्द किया था, और उससे मिल कर पिता की राय के खिलाफ नरेन को बर्बाद करना चाहा था, वही चाह आज उसकी सारी शुभ-इच्छाओं को पराजित करके विजयी हो रही है, यह सोच कर उसका कलेजा फटने लगा। वह बार-बार यही कहने लगी—स्नेह से अन्धे होकर पिताजी अनर्थ की इस जड़ को अपने ही हाथों क्यों नहीं उखाड़ गये ? उन्हीं की सूझ-बूझ पर सारा कुछ छोड़ गए, और यही कर गये तो उसकी स्वाधीनता के रास्ते को चारों तरफ से क्यों बन्द कर गए। पूरे तकिए को भिगोकर वह यही सोचती रही कि उसके क्षुब्ध अभिमान की विफल नालिश क्या स्वर्गवासी पिता के कानों पहुँच नहीं पाती ? उनके हाथ क्या इसके प्रतिकार का कोई उपाय नहीं ?

दूसरे दिन परेश की मां के जगाए जगी, तो देर हो चुकी थी। जगते ही सुना बाहरी बैठका आमंत्रितों से भर गया है, एक वही उपस्थित नहीं। अपनी इस चूक को सुधार लेने के लिए वह जल्दी क्या करेगी कि आज दिन भर होने वाले समारोह के हंगामे की सोचते ही उसका जी मानो वितृष्णा से भर गया। सर्दियों के सबेरे के सूरज की किरणें बगीचे में आमों के माथे पर बिखर पड़ी थीं और उन्हीं के पत्तों की फांकों में से खेलते हुए गाय चराने के लिए जाते हुए चरवाहे बालकों की टोली दिखाई पड़ रही थी। जब से यहां आई, यह दृश्य देखते हुए वह अघाती नहीं थी। बहुत बार तो बहुत-से जरूरी काम छोड़कर भी वह इसकी ओर देखती रह जाती थी। लेकिन आज वह सोच भी नहीं सकी कि अब तक इसमें कौन-सा माधुर्य था। बल्कि आज यह उसे पुराना, बासी जैसा फीका लगा। इस दृश्य से अपनी थकी आंखों को समेट

कर उसने देखा, कालीपदो एक-एक छलाँग में तीन-तीन सीढ़ियां तड़प कर ऊपर आ रहा है। उससे नजर मिलते ही वह बीच ही में रुक गया और बेहद परेशानी का इशारा करते हुए बोला— मां जी, जल्दी, जल्दी। छोटे बाबू बेहिसाब बिगड़ उठे हैं। आज भी इतनी देरी करनी चाहिए !

लेकिन बारूद में एक चिनगारी पड जाने से जो विप्लव कर बैठती है, नौकर की इस बात ने विजया के तन-मन में ठीक वही किया। उसे लगा पांव से बालों की नोक तक जैसे लमहे में एक भीषण आग लहक उठी। लेकिन अचानक वह कुछ बोल न सकी, स्फटिक का टुकड़ा जैसे दोपहर की धूप में तेज बिखेरता रहता है, उसी प्रकार उसकी आंखों से केवल ज्वाला छिटकने लगी। उन आंखों की ओर ताक कर कालीपदो डर से सिटपिटा गया। कुछ कहा ही चाहता था कि अपने को सम्हाल कर विजया बोली—तू नीचे जा कालीपदो। उसने अंगुली से नीचे की तरफ दिखा दिया।

इस घर में छोटे बाबू के मानी विलासविहारी और बड़े बाबू के मानी रासविहारी है, विजया यह जानती थी। लेकिन ये बाप-बेटे यहां इतने बड़े हो गए हैं कि उनके क्रोध की गुरुता आज नौकर-चाकरों के सामने मकान की मालकिन तक को पार कर गई है—यह बात विजया को आज पहली बार मालूम हुई। आज उसने साफ समझा कि इससे यही तथ्य निकलता है कि विलास ही यहां का वास्तविक स्वामी है और वह उसकी आश्रिता है, महज कृपा पर पलने वाली। इस तथ्य ने उसके मन की आग पर पानी का काम नहीं किया, यह कहना ही फिजूल है।

आध घंटे के बाद जब वह हाथ-मुंह धोकर, कपड़े बदल कर पहुँची, तो सब चाय पी रहे थे। उपस्थित लगभग सभी लोग उठ खड़े हुए और उसके आँख-मुंह की शुष्कता को देखकर बहुत-से अस्फुट कंठों के प्रश्न भी सुनाई पड़े। लेकिन एकाएक विलासविहारी के तीखे और कड़वे स्वर में सब डूब गये। चाय के प्याले को ठक् से मेज पर रख कर वह बोल उठा—नींद अभी नहीं टूटती तो क्या था ! तुम्हारे व्यवहार से मैं लगातार डिसगस्टेड होता जा रहा हूँ, यह जताए बिना मैं न रह सका।

खीझ जताने का अधिकार उन्हें बेशक है ! लेकिन बाहर के इतने-इतने भले लोगों के सामने स्वामी की यह कर्त्तव्यपरायणता निहायत अभद्रता-सी ही लोगों को चकित और व्यथित कर गई। लेकिन विजया ने उसकी तरफ देखा तक नहीं। मानो कुछ हुआ ही न हो, इस भाव से सबको नमस्कार करके, जहां बूढे आचार्य दयाल बाबू बैठे थे, उधर को बढ़ने लगी। बेचारे बूढ़े आदमी बड़े कुंठित हो पड़े थे। उनके पास जाकर विजया ने शांत स्वर में कहा—आपके चाय-पान में कोई त्रुटि तो न हुई। मुझसे अपराध हो गया, आज जगने में मुझे देर हो गई।

स्नेहविगलित स्वर में एक बारगी बेटी संबोधन करके वे बोले—नहीं बेटी, हमें कुछ भी असुविधा नहीं हुई। विलास बाबू, रासविहारी बाबू ने कुछ उठा नहीं रक्खा। लेकिन तुम कैसे तो दिख रही हो बिटिया, जी कुछ खराब तो नहीं ?

ये सब दिन कलकत्ते नहीं रहते, इसीलिए विजया पहले से इन्हें नहीं पहचानती थी। कल भी उसने इन्हें गौर करकेनहीं देखा लेकिन आज कमरे में कदम रखते ही उसकी सौम्य-शांत मूर्ति से मानो नितांत अपने-से लगे वे। इसीलिए सबको छोड़कर वह सीधे उन्हीं के पास जा खड़ी हुई। उनके स्निग्ध कोमल स्वर से उसके अन्तर का दाह मानो आधा पानी हो गया और सहसा उसे लगा, कैसे तो उसके पिता की आवाज का आभास इनके स्वर में है।

दयाल एक कोच पर बैठे थे। बगल में थोडी सी जगह थी। उन्होंने वह जगह दिखा कर कहा—खड़ी क्यों हो बिटिया, यहां बैठ जाओ। तबीयत तो खराब नहीं है ?

विजया बगल में बैठ तो गई, पर जवाब न दे सकी। गर्दन घुमा कर दूसरी तरफ देखती रही। अपने आंसू को रोकना उसके लिए मानो क्रमशः कठिन होता जा रहा था। बूढ़े ने फिर वही सवाल किया।

जवाब में सिर हिलाकर विजया किसी कदर कह सकी—नहीं।

उसकी भर्राई आवाज बूढ़े से चूकी नहीं, वे जरा देर चुप रहे और बात को भाँप कर मन ही मन जरा हसे। जो इस घर के मालिक की जगह को जरा देर पहले दखल किए बैठे थे, उन्होने अपनी प्रेमिका मकानमालकिन को कडवा कुछ कहा, तो अनाड़ियों को वह जितना भी रूढ़ क्यों न जंचे, ऐसे ज्ञान-वृद्ध, जो यौवन के इतिहास को पढ़कर खत्म कर चुके है, अगर इस पर मन ही मन जरा हंसे, तो उन्हें दोष नही दिया जा सकता।

अपनी बगल में बैठी उस नवीना मानिनी को आश्वस्त होने देने का मौका देने के ख्याल से बूढ़े खुद ही धीरे-धीरे बात करने लगे। इतनी कम उम्र में सत्य धर्म के प्रति उनकी अचल निष्ठा और प्रेम की प्रशंसा के पुल बांधने के बाद बोले—भगवान की दया से तुम लोगों के महान उद्देश्य की दिन-दिन उन्नति हो, लेकिन बेटी, तुमने जिस मन्दिर की गांव मे स्थापना की, उसे कायम रखने के लिए काफी श्रम और स्वार्थत्याग की जरूरत है। मैं खुद भी तो देहात मे रहता हूँ, मैंने देखा है, अभी भी यह धर्म देहाती समाज के रस से जैसे जीना नही चाहता। इसीलिए, मेरा ख्याल है, अगर इसे जिला सको, तो देश की एक बहुत बड़ी समस्या का समाधान होगा। तुम लोगों के इस प्रयास को मैं क्या कह कर आशीर्वाद दूं यहीं नहीं सोच पाता।

विजया की जुबान पर यह आ रहा था कि मन्दिर-प्रतिष्ठा का मुझे अब कोई उत्साह न रहा, इसकी मुझे जरा भी सार्थकता नहीं नजर आती। लेकिन इस बात को

वह पी गई। धीमें से पूछा—यह आप क्यों कह रहे हैं कि इससे एक बहुत बड़ी समस्या का समाधान होगा ?

दयाल बोले, और क्या ? मेरा तो हार्दिक विश्वास है कि सिर्फ हमारा यही धर्म बंगाल के गाँवों के कोटि-कोटि कुसंस्कारों से मुक्ति दिला सकता है। लेकिन मुझे यह भी मालूम है कि जहाँ जिसका स्थान नहीं, जहाँ जिसकी जरूरत नहीं, वहाँ वह बच नहीं सकता। फिर भी जतन से, कोशिशों से अगर एक को जिलाया जा सके, तो वह आशा-भरोसा का केन्द्र नही होगा ? हमारे घरों के दोष-गुण की बात तुम खुद भी तो कुछ कम नहीं जानती बिटिया ! अपने मन में डूब कर उन्हें जरा विचार तो देखो।

विजया ने और कुछ न पूछा। चुप होकर सोचने लगी। उसमें स्वभावतया ही स्वदेश की मंगल-कामना थी, आचार्य की इस बात से वह आलोड़ित हो उठी। इस मंदिर-प्रतिष्ठा के नाते एक बहुत बड़े नाम की आड़ से विलास उसके हृदय के दुखते स्थान पर ही बार-बार चोट कर रहा था। वह वेदना से तड़पती थी और प्रतिकार का उपाय न था, लिहाजा उसका मन इस व्यापार के खिलाफ ही गुस्से से अन्धा हो उठा था। लेकिन दयाल ने जब अपनी प्रशांत मूर्ति और स्निग्ध कंठ के आह्वान से विलास की चेष्टा की इस दिशा-विशेष की ओर नजर डालने का अनुरोध किया, तो सच ही वह मानो अपना भ्रम देखने लगी। उसके जी में आया, शायद हो कि विलास वास्तव में ही हृदयहीन और क्रूर नहीं है, उसकी कठोरता, हो सकता है, धर्म की प्रबल निष्ठा का ही प्रकाश हो। मानव इतिहास में ऐसे उदाहरणों की तो कमी नहीं। उसे याद आया, उसने कहीं पढ़ा है कि संसार का हर महान कार्य किसी न किसी के लिए क्षतिकर होता है, जो ऐसे भार अपनी इच्छा से उठाते हैं, वे बहुतों के कल्याण के नाते मामूली क्षति पर ऐसा सोचने का मौका नहीं पाते। इसीलिए संसार में बहुत बार वे निर्दय और निष्ठुर समझे जाते हैं। सब दिन की शिक्षा और संस्कार से ब्रह्म-धर्म के प्रति अनुराग विजया को किसी से कम नहीं था। उसी धर्म के विस्तार से देश का इतना कल्याण हो सकता है, यह सुनकर उसका शिक्षित और सत्यप्रिय हृदय अपने आप विलास को क्षमा किए बिना न रह सका। और तो और, वह अपने से ही कहने लगी, संसार में जो महान कार्य करने आते हैं, उनके काम अक्षर-अक्षर अगर हम जैसे साधारण लोगो से न मिलें, तो उन्हें दोषी ठहराना ठीक नहीं, बल्कि अन्याय है, ऐसे अन्याय को अन्याय समझ कर गुंजाइश नहीं दे सकती।

समय ज्यादा हो रहा था, सो एक-एक करके लोग उठने लगे थे। विजया भी उठ कर खड़ी हुई थी। रासविहारी ने बेटे को ओट में ले जाकर क्या तो कहा। वह मानो इसी मौके के इन्तजार में था, पास आकर बोला—तुम्हारी तबियत क्या

सवेरे से ही ठीक नहीं है ? महज आध घन्टा पहले भी वह इस सवाल को टाल कर जो चाहे सो कह कर चली जाती। लेकिन उसने सिर उठा कर देखा। बोली—नहीं, ठीक ही है । कल रात नींद नहीं आई—शायद इसीलिए अस्वस्थ सी लग रही हूँ।

विलास का चेहरा खुशी से खिल उठा। ऐसे बहुत से लोग हैं, जो आघात के बदले आघात किए बिना नहीं रह सकते। अपना चाहे लाख नुकसान हो, फिर भी नहीं सह सकते। विलास ऐसों ही में से एक है। उसके प्रति विजया का आचरण जितना ही अप्रीतिकर होता जा रहा था, उसका अपना आचरण उससे भी ज्यादा निष्ठुर होता जा रहा था। घात-प्रतिघात की यह आग जब हद को गुजरती तब पके बालों वाले अनुभवी पिता की रोक-टोक, फटकार, सहनशीलता के परम लाभ और चरम सिद्धि का कोई असर अनभिज्ञ और ढीठ लड़के पर नहीं पड़ता। लेकिन विजया के एक ही कोमल वाक्य ने मानो विलास के स्वभाव को ही बदल दिया। अपने रूखे स्वर को भरसक मुलायम करके उसने कहा—तो फिर तुम अभी धूप में मत निकलना। सवेरे-सवेरे नहा खा-कर थोड़ा सो सको, तो अच्छा। ऋतु बदलने का समय है। तबीयत खराब न हो जाए। यह कह कर उसने चेहरे पर उत्कंठा जाहिर की, शायद अपने व्यवहार के लिए क्षमा माँगने को भी तैयार हुआ, पर उसके स्वभाव में यह बात थी ही नहीं, सो बिना कुछ कहे उन लोगों के पीछे तेजी से निकल पड़ा।

जब तक वह आंखों से ओझल न हो गया, विजया उसकी ओर ताकती रही। उसके बाद एक उसांस लेकर वह ऊपर के कमरे में चली गई। कुछ दिनों से एक अनबोलती पीर काँटे-सी सर्वदा उसके मन में गड़ती रहती थी, आज अचानक ऐसा लगा, उसका मानो पता नहीं चल रहा है।

सांझ के बाद यथारीति ब्राह्ममन्दिर की प्रतिष्ठा हो गई। अन्दर एक खास जगह में अगल-बगल दो कुर्सियाँ रक्खी गई थीं। उनमें से एक पर जब बड़े समारोह के साथ विजया को बिठाला गया तो यह समझने में किसी को देर नहीं लगी कि दूसरी किसके इन्तजार में खाली पड़ी है। पल भर के लिए विजया का हृदय हू-हू जरूर कर उठा, पर जरा ही देर बाद जब विलास आकर उस पर बैठ गया, तो उस जलन को बुझते भी देर न लगी।

पन्द्रह

जल चुकी लौकी के नाचीज खोल की तरह उत्सव खत्म हो जाने पर ब्राह्म-मन्दिर भी लोगों के ध्यान से हट न जाए, इस आशंका से विलासविहारी उत्सव का किसी तरह से अन्त नहीं होने देना चाहता था। लेकिन जो आमंत्रण पर आए थे, उन्हें आखिर घर-द्वार है, काम-धाम है, पराये खर्च से खुशियां मनाने से ही नहीं चल सकता। इसलिए अन्त आखिर एक दिन करना ही पड़ा। उस दिन रासविहारी ने छोटा-सा भाषण देकर अन्त में कहा, जिनकी असीम दया से हम बुतपरस्ती के घोर अंधेरे से प्रकाश में आ सके, उन एकमेवोद्वितीयम्, निराकार परब्रह्म के चरण कमलों में जिन्होंने यह मन्दिर उत्सर्ग किया, उनका मंगल हो। मैं हृदय से प्रार्थना करता हूँ कि निकट भविष्य में जो दो निर्मल नवीन जीवन सदा के लिए एक होंगे—वह शुभ दिन देखने के लिए भगवान जिसमें हमें जीवित रक्खें। और उन दो जीवनों की ओर देखकर बोले, बेटी विजया, विलास, तुम लोग इन्हें प्रणाम करो। आप लोग भी हमारे बच्चों को आशीर्वाद करें।

विजया और विलास ने जमीन पर सिर टेक कर प्रवीण ब्राह्मणों को प्रणाम किया, उन लोगों ने भी अस्फुट स्वर में उन्हें आशीर्वाद दिया। उसके बाद सभा भंग हुई।

सांझ के बाद विजया जब घर लौटी, तो उसके मन में कोई विराग, कोई चंचलता नहीं थी। धर्म के आनन्द और उत्साह से उसका हृदय ऐसा लबालब हो गया था कि वह आप अपने को ही कहने लगी, पार्थिव सुख ही सिर्फ सुख नहीं—बल्कि धर्म के लिए, औरों के लिए उसका त्याग ही एकमात्र श्रेय है।

विलास से मत का और कहीं मेल चाहे न हो, धर्म के बारे में कभी उनमें मतभेद न होगा, यह बात उसने जोर करके अपने को समझाया। बिस्तर पर पड़ी-पड़ी बार-बार कहने लगी, कि यह अच्छा ही हुआ कि विलास जैसे एक स्थिरसंकल्प स्वधर्मपरायण, कर्त्तव्यनिष्ठ आदमी से उसका जीवन सदा के लिए बंधने जा रहा है। भगवान उससे अपने अनेक कार्य करा लेंगे, इसलिए उसके मन की गति को इस तरह से बदल दिया है।

दूसरे दिन विलास ने सब से हाथ जोड़कर निवेदन किया कि वे अगर महीने में कम-से-कम एक बार भी आकर मन्दिर की मर्यादा बढ़ाएं तो हम आजन्म अनुगृहीत

रहेंगे। बहुत से लोग इस अनुरोध को स्वीकार करके ही घर लौटे।

रासविहारी ने आकर कहा, बेटी विजया, अगर अपने मन्दिर का स्थायित्व चाहती हो, तो दयाल बाबू को यहां रखने की कोशिश करो। विजया विस्मित और पुलकित होकर बोली—यह संभव है चाचा जी ? रासविहारी हसकर बोले—संभव न होता तो मैं कहता क्यों ? मैं इन्हें छुटपन से ही जानता हूँ—एक तरह से बाल्य-बन्धु ही समझो। हालत चाहे अच्छी न हो, आदमी नेक है। अपनी जमींदारी में कोई काम देकर सहज ही उन्हें रख सकती हो। मन्दिर में भी कमरों की कमी नहीं, दो-चार कमरों में मजे से सपरिवार रह सकते हैं।

इस बूढ़े सज्जन के प्रति सचमुच ही विजया को श्रद्धा हुई थी। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है, यह सुनकर उस श्रद्धा में करुणा आ मिली। रासविहारी के प्रस्ताव पर वह तुरन्त सहमत हो गई। बोली—उन्हें यहीं रखिए, मुझे बड़ी खुशी होगी, चाचा जी।

वही हुआ। दयाल सपरिवार वहां आ गए।

दिन बीतने लगे। पूस बीता। आधा माघ आ पहुँचा। जमींदारी और मन्दिर का काम सुचारु रूप से चलने लगा—कहीं कोई विरोध या अशांति है, ऐसी कल्पना में भी किसी के न आया।

नरेन की कोई खबर नहीं। खबर होने की बात भी नहीं। दो दिन के लिए घर आया था, दो दिन के बाद चला गया। लेकिन विजया के जी में एक पीड़ा-सी होती, जब-जब उस माइक्रोस्कोप पर नजर पड़ती। और कुछ नहीं, सिर्फ यह कि उनके कष्ट के समय अगर उसकी कुछ ज्यादा कीमत दी गई होती। और एक बात याद करके वह जितनी ही चकित होती, उतनी ही कुंठित हो पड़ती। दो ही दिन के परिचय में जाने कैसे उस आदमी से इतना स्नेह हो गया था, गनीमत कि जाहिर न हुआ ! वरना झूठा मोह आखिर एक दिन झूठ में खो जाता—लेकिन जीवन भर शर्म की हद नहीं रह जाती ! इसलिए दो-दिन की स्नेह-ममता के उस पात्र की जभी याद आ जाती, जी-जान से वह उसे मन से दूर ढकेल देती। इस तरह माघ भी निकल गया।

फागुन की शुरूआत होते ही एकाएक गर्मी पड़ गई और बुखार फैलने लगा। दो दिन से दयाल बाबू बुखार के शिकार थे। सुबह उन्हें देखने जाने के लिए एक बारगी तैयार होकर ही विजया नीचे उतरी थी। दरबान कन्हैयासिंह अपनी लाठी ले आने गया था, इसी फांक में विजया बैठी एक प्याला चाय पी रही थी।

नमस्का—र !

चौंक कर विजया ने ताका। देखा, नरेन अन्दर दाखिल हो रहा है।

उसके हाथ का प्याला हाथ में ही रह गया। एकटक देखती ही रह गई

वह। न तो नमस्कार किया, न बैठने को कहा।

नरेन ने एक कुर्सी से अपनी लाठी टिका दी और दूसरी कुर्सी खींच कर बैठ गया, बोला, अपना भी यह कान अभी निबटा नहीं—एक प्याला चाय और लाने का हुक्म फरमाइये तो।

'तुरन्त'—कह कर विजया प्याला रखकर कमरे से बाहर चली गई। लेकिन कालीपदो को चाय की कहकर तुरन्त ही वह वापिस न आ सकी। ऊपर जाने वाली सीढ़ी की रेलिंग थामे चुपचाप खड़ी रही। उसका कलेजा भारी आंधी आए समुद्र जैसा उन्मत्त हो उठा। किसी भी वजह से मनुष्य का हृदय ऐसा भी डोल उठता है, वह जानती ही न थी, और यह साफ समझ रही थी कि जब तक यह आन्दोलन शांत नहीं होता, सहज भाव से किसी से बात करना सम्भव नहीं। पांच-छः मिनट वैसी ही चुप खड़ी रही वहाँ, जब यह देखा कि कालीपदो चाय लेकर जा रहा है, तो वह भी उसके पीछे-पीछे कमरे में दाखिल हुई।

कालीपदो के लौट जाने के बाद विजया की ओर देखकर नरेन ने कहा—आप भीतर से आजिज हो गई है। कही जा रही थीं और इस बीच टपक कर मैंने अड़चन डाल दी। मगर मैं पांच-छः मिनट से ज्यादा आपका वक्त न लूंगा।

विजया बोली, अच्छा, पहले आप चाय पीजिए। और इतने में पच्छिम तरफ वाली खिड़की पर नजर पड़ते ही वह हैरान रह गई। बोली--यह खिड़की कौन खोल गया।

नरेन बोला--कोई नही, मै ?

कैसे खोला इसे ?

जैसे खोलते हैं लोग। खीचकर। कोई कसूर बन पड़ा।

विजया सिर हिलाकर बोली--नही। कुछ देर वह उसकी लम्बी पतली उंगलियों को देखती रही। कहा, आपकी उंगलियां क्या लोहे की हैं ? वह खिड़की जब बन्द रहती है, तो बिना पीछे से धक्का दिए खींच कर खोले, ऐसा आदमी मैंने नहीं देखा।

सुनकर नरेन जोरों से हंस पड़ा। कमरा गूंज उठा। वही हंसी। याद आते ही विजया के रोएं खड़े हो गए। हसी रुकी तो नरेन ने सहज भाव से कहा—सच ही मेरी अंगुलियाँ बड़ी सख्त हैं। कसकर दवा दूं तो जिस किसी का भी हाथ शायद टूट जाए।

विजया हंसी दबाकर गम्भीर होकर बोली—आपका सर उससे भी सख्त है। टक्कर मारने से···

बात खत्म होने से पहले ही नरेन फिर उसी प्रकार जोरों से हंस पड़ा। इस आदमी की हंसी सुबह की किरन-सी इतनी मीठी, ऐसी उपयोग की चीज है कि

हर्गिज लोभ नहीं रोका जा सकता।

जेब से दो सौ रुपए के नोट निकाल कर मेज पर रखते हुए नरेन बोला, इसीलिए आया था। मैं धोखेबाज हूँ, ठग हूँ, जाने और क्या-क्या गालियाँ आपने कहला भेजी थीं इन थोड़े से रुपयों के लिए। ये रहे आपके रुपये, मेरी चीज मुझे दे दीजिए।

विजया का चेहरा एकाएक आरक्त हो उठा। लेकिन तुरन्त अपने को संभाल कर बोली—और क्या-क्या कहला भेजा था, कहिए तो।

नरेन बोला, उतना याद नहीं मुझे। उसे मंगवा दीजिए। मैं साढ़े नौ बजे की ही गाड़ी से कलकत्ते चला जाऊंगा। हाँ, मुझे कलकत्त में ही एक अच्छी नौकरी मिल गई है—अब उतनी दूर न जाना होगा।

विजया का चेहरा दमक उठा। बोली—खुशकिस्मत हैं आप।

नरेन बोला—हाँ। लेकिन मुझे ज्यादा समय नहीं। नौ बज रहे हैं····

पलक मारने भर की देर में विजया के चेहरे की दमक बुझ गई। नरेन ने लेकिन देखा भी नहीं। बोला—मुझे तुरन्त जाना है, वह मंगवा दीजिए।

विजया ने उसकी ओर नजर उठाकर देखते हुए कहा—आपसे क्या यही शर्त हुई थी कि चूंकि कृपा करके आप रुपए ले आए हैं, इसलिए आपको तुरत वापिस दे देना पड़ेगा?

नरेन शर्मिदा होकर बोला—बेशक यह नहीं, मगर आपको उसकी जरूरत भी क्या?

आज नहीं है, इसलिए कभी नहीं होगी, यह किसने कहा?

सिर हिलाकर नरेन दृढ़ता से बोला—मैं कहता हूँ। वह चीज आपके किसी काम न आयेगी। लेकिन मेरे···

विजया ने जवाब दिया—लेकिन बेचते वक्त तो आपने कहा था कि यह मेरे बड़े काम की है! मैंने कहला भेजा कि मुझे ठग गये, इसलिए आप नाराज हो रहे हैं? उस समय और, और अब और बात।

शर्म से नरेन एक बारगी फीका पड़ गया। कुछ देर चुप रह कर बोला—देखिये, तब मैंने सोचा था, ऐसी चीज को आप काम मे लायेंगी, यों डाल नहीं देंगी। अच्छा, आप तो सामान बंधक रखकर भी रुपये देती हैं। इसे भी वही क्यों नही समझ लें। मैं रुपयों का सूद दे रहा हूँ।

विजया बोली—कितना सूद देंगे?

नरेन बोला—जो वाजिब हो, देने को तैयार हूँ।

विजया ने गर्दन हिलाकर कहा—लेकिन मैं तैयार नहीं हूँ। मैंने कलकत्ते में खोज-पूछ कराके देख लिया है, इसे मै मजे में चार सौ रुपये में निकाल सकती हूँ।

नरेन सीधे उठकर खड़ा हो गया। बोला—ठीक है, वही करें आप—मुझे कोई जरूरत नहीं। जो दो सौ का चार सौ लेना चाहे, उसे मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता।

मुंह झुकाकर विजया ने जी-जान से हंसी रोक कर जब सिर उठाया, तो केवल इस आदमी को छोड़कर संसार में शायद और किसी के आगे भी वह आत्म-गोपन नहीं कर पाती। लेकिन नरेन का उधर ध्यान ही न था। उसने तीखे स्वर में कहा—मैं जानता होता कि आप एक शाइलक हैं, तो हर्गिज नहीं आता।

विजया भलेमानस-सी बोली—कर्ज के चलते जब आपका सर्बस हजम कर गई, तब भी नहीं सोचा ?

नरेन बोला—नहीं, क्योंकि उसमें आप का हाथ नहीं था। यह काम आपके और मेरे पिता कर गये थे। इसके लिए हम जिम्मेवार नहीं हैं। खैर, मैं चला।

विजया बोली—खाना खाकर नहीं जायेंगे ?

उदंड की नाईं नरेन बोला—नहीं, खाने के लिए नहीं आया।

विजया शांत भाव से बोली—अच्छा आप तो डाक्टर हैं। नब्ज देखना जानते है ?

अबकी उसके होंठों पर हसी की रेखा पकड़ा गई। नरेन क्रोध से दहक उठा। बोला—मैं क्या आपके मजाक का पात्र हूँ ? रुपया आपको बहुत-बहुत रह सकता है, लेकिन रुपये के जोर से किसी को यह अधिकार नहीं आ जाता। आप जरा सोच-समझ कर बोलें, और उसने अपनी छड़ी सम्भाल ली।

विजया बोली—नही तो आपके बदन में ताकत है और हाथ में छड़ी ?

अपनी छड़ी फेंक कर नरेन हताश हो कुर्सी पर बैठ गया—छिः, आप तो जो मुंह में आ रहा है, वही कह रही हैं। आपसे पार पाना मुश्किल है।

लेकिन याद रहे !—कहकर वह अपने को और नहीं सम्भाल सकी। हंसी रोकती हुई तेजी से चली गई वहाँ से।

सूने कमरे में नरेन हतबुद्धि-सा कुछ देर बैठा रहा। आखिर हाथ में अपनी छड़ी लेकर खड़ा हुआ कि विजया धीरे से कमरे में आई। बोली—आपकी ही वजह से जब देर हो गई, तो आपको भी जाने न दूंगी। आप नब्ज देखना जानते हैं, जरा मेरे साथ चलिये।

जाने की बात का नरेन को यकीन न आया। तो भी पूछा—नब्ज देखने के लिए कहाँ जाना होगा ?

विजया उसकी ओर देखकर गंभीर भाव से बोली—यहां कोई अच्छा डाक्टर नहीं। नये आचार्य होकर जो हमारे यहां आए हैं—उन्हें मैं बहुत श्रद्धा करती हूँ। दो दिन से उन्हें बहुत बुखार है, चलिए, जरा उन्हें देख लीजिए।

अच्छा, चलिए।

विजया बोली—तो जरा रुक जाइए। वह लड़का जो है, परश, उसे तो आप पहचानते हैं, परसों से उसे भी बुखार है। उसे ले आने के लिए उसकी मां को कह आई हूँ।

इतने में परेश को कमरे की तरफ भेजती हुई परेश की माँ दरवाजे के पास आकर खड़ी हुई। नरेन ने एक निगाह उसे देख भर लिया और कहा, अपने बच्चे को अब ले जाओ, देख लिया।

परेश की मां और विजया दोनों ताज्जुब में पड़ गईं। माँ ने आरजू करके कहा—बदन में बेहद दर्द है हुजूर, जरा नब्ज देख कर कोई दवा देते···

दर्द की मैं जानता हूँ। बच्चे को ले जाओ। हवा मत लगाना। दवा मैं देता हूँ।

मां जरा दुखी होकर बेटे को लिवा ले गई। विजया के विस्मित मुखड़े की तरफ देखकर नरेन बोला—चेचक इधर जोर पकड़ रहा है। इस लड़के के चेहरे पर भी मैंने चेचक के लक्षण साफ देखे। जरा सावधानी से रखने को कह देंगी

विजया का चेहरा स्याह हो गया। चेचक! चेचक क्यों होगा?

नरेन बोला—क्यों होगा, यह लम्बी दास्तान है। लेकिन हुआ है आज साफ झलक नहीं रहा है, लेकिन कल उसकी तरफ देखते ही पता चलेगा। मैं समझता हूँ, आपके आचार्य महोदय को भी अब देखने जाने की खास जरूरत नहीं—उनकी बीमारी का भी कल ही पता चलेगा।

डर से विजया का सारा शरीर झिमझिमा उठा। वह बेबस बेजान-सी एक कुर्सी पर बैठ पड़ी और अस्फुट स्वर मे कहा—मुझको भी जरूर चेचक होगा नरेन बाबू, कल रात मुझे भी बुखार हुआ था, बदन में जोरों का दर्द है।

नरेन हंसा। बोला—दरअसल जोरों का दर्द नहीं है, जो जोरों का है, वह है डर आपका। और जरा बुखार ही आ गया तो क्या? आस-पास चेचक फैला है, इसलिए गाँव भर को चेचक हो होगा, इसके क्या मानी!

विजया की आँखें छलछला उठीं। बोली—और होगा, तो मेरी देखभाल कौन करेगा? मेरा है कौन?

नरेन फिर हंसा! बोला—देखने वाले बहुतेरे मिल जायेंगे, इसकी फिक्र न करें—मगर आपको होगा कुछ नहीं।

हताश-सी सिर हिलाकर विजया बोली—न हो कुछ, वही ठीक है। लेकिन कल रात मुझे काफी बुखार था। फिर भी सुबह उसे भुला कर दयाल बाबू को देखने जा रही थी। अभी भी थोड़ा-थोड़ा बुखार है देखिए। यह कह कर उसने अपना दाहना हाथ उसकी तरफ बढ़ा दिया। नरेन करीब गया। अपने सख्त हाथों में उसकी

कोमल कलाई लेकर जरा देर देखा और धीरे-धीरे छोड़कर बोला—आज कुछ खाइए मत। चुपचाप लेट रहिए जाकर। कोई डर नहीं, कल-परसों मैं फिर आऊंगा।

आपकी कृपा—कहकर विजया आँखें बन्द करके चुप हो रही। पर यह बात नरेन के हृदय में तीर की तरह जाकर चुभी। जवाब में उसने कुछ कहा जरूर नहीं, लेकिन अपनी लाठी सम्भाल कर जब वह घर से बाहर निकल पड़ा, तो इस डरी हुई नारी की असहाय दया-याचना उसके बलवान पुरुष-हृदय के इस छोर से उस छोर तक को मथने लगी।

दूसरे दिन कामों की भीड़ में वह किसी भी प्रकार से कलकत्ता नहीं छोड़ सका। लेकिन उसके अगले दिन सुबह नौ बजे वह गांव आ पहुँचा। घर में कदम रखते ही कालीपदो ने दौड़ कर खबर दी, माँ जी को बड़ा बुखार है बाबूजी, आप सीधे ऊपर चलिए।

नरेन जब कमरे में पहुँचा, विजया जोरों के ज्वर में पड़ी तड़प रही थी और कोई एक प्रौढ़ा स्त्री उसके सिरहाने बैठ कर पंखा झल रही थी। और पास ही कुर्सियों पर बाप-बेटे, रासविहारी और विलासविहारी अजीब गंभीर मुंह किए बैठे थे। दोनों में से किसी का भी हृदय डाक्टर के आने से खुशी और उम्मीद से खिल नहीं पड़ा, यह न भी कहें तो हर्ज नहीं।

विलास ने बिना किसी भूमिका के सीधे पूछा—आप शायद परसों इन्हें चेचक का खतरा बता गये है ?

इतनी बड़ी मिथ्या कि सहसा कोई जबाब नहीं दिया जा सकता। लेकिन यह सुनकर विजया ने लाल-लाल आंखों से उधर ताका। पहले तो वह मानो समझ नहीं पाई, फिर दोनों हाथ बढ़ा कर बोली—आइए।

बैठने की और कोई जगह वहां नहीं थी, सो नरेन उसके बिछावन पर ही एक ओर बैठ गया। तुरत विजया ने उसके दोनों हाथ जोर से पकड़ कर कहा—कल आये होते, तो मुझे इतना बुखार नहीं आया होता—मैं तमाम दिन राह देखती रही।

नरेन डाक्टर ठहरा—उसे समझते देर न लगी कि ज्वर की उग्रता शराब के नशे की नाईं बहुत-बहुत अजीबोगरीब बातें आदमी के भीतर से खींच कर निकाल करती है, अच्छी हालत में उनका अस्तित्व न तो जबान पर, न मन में, कहीं नहीं रहता। किन्तु करीब ही बैठे अभागे बाप-बेटे के सिर के बाल तक गुस्से के मारे खड़े हो गये। नरेन ने दिलासा देते हुए प्रसन्न-मुख से कहा, घबराहट काहे की, दो ही दिन में बुखार ठीक हो जायगा।

उसके हाथ को एक बारगी अपनी छाती पर खींच कर विजया करुण स्वर में बोली—लेकिन यह कहो कि जब तक मैं चंगी नहीं हो जाती, तुम कहीं नहीं जाओगे।

तुम चले जाओगे तो मैं नहीं बचूंगी।

जवाब देने के लिये नरेन ने आंखें उठाईं कि दो जोड़े भयंकर आंखों से उसका मुकाबला हो गया। देखा, बहुत करीब आए बेखौफ शिकार पर टूट पड़ने के पहले भूखा बाघ जैसे तकता है, ठीक उसी तरह दो जली आँखों से विलासविहारी उसे ताक रहा है।

सोलह

नरेन अवाक् देखता रह गया, विजया के सवाल का जवाब देते न बना। आँखों की हिंसक नजर महज आदमी क्यों, बहुत से जानवर तक समझ सकते हैं। लिहाजा आदमी यह चाहे जितना भी भोला हो, दुनियां का तजुर्बा उसे चाहे जितना कम हो, यह बात वह लमहे में ताड़ गया कि कुर्सी पर बैठे बाप-बेटे की निगाह में और जो भाव चाहे हो, उसमें हृदय की प्रीति तो नहीं झलकती है। यह पता उसे था कि ये लोग उस पर प्रसन्न नहीं हैं। जिस दिन विजया को वह माइक्रोसकोप दिखाने आया था, बहुत-सी बातें अपने ही कानों सुन गया था। और रासविहारी जिस दिन उसे खुद दाम देने गये थे, उस दिन भी हितोपदेश के बहाने बूढ़े ने कुछ कम खरा-खोटा नहीं सुनाया। लेकिन वास्तव में जब उसने धोका नहीं दिया, वह चीज दो के बजाय चार सौ रुपए ला सकती है—कसौटी हो चुकी है, तब भी इन्हें नाराजगी क्यों है, यह वह सोच नहीं सका। फिर चेचक का खतरा बताना। उसने तो डराया नही, बात बल्कि ठीक उल्टी। यह झूठ किसी दूसरे ने फैलाया या विजया ने खुद ऐसा कहा, यह ठीक कर पाने के पहले ही विलासबिहारी और एक बार चीख उठा। नौकर कालीपदो ने बहुत संभव उत्सुकता से ही परदे को जरा खिसका कर अन्दर झांका था कि नजर पड़ते ही वह जामे से बाहर हो गया—अबे सूअर यहाँ, एक कुर्सी ले आ।

घर के सभी चौंक उठे। कालीपदो ने गालियाँ तो खूब समझीं, पर घबराहट में वह यह नहीं समझ पाया कि करना क्या है, सो वह कमरे में आकर कभी इधर, कभी उधर जाने लगा। बूढ़े रासविहारी ने अपने को सम्हाल लिया था गंभीर होकर उन्होंने कहा—कालीपदो, उस कमरे से एक कुर्सी ले आओ बाबू के लिए। कालीपदो तेजी से चला गया। रासबिहारी ने लड़के की तरफ मुड़कर अपने शांत और उदार स्वर में कहा, रोगी का कमरा—ऐसा बेताब मत हो जाओ विलास। टेंपर कूल करना

किसी भले आदमी को नहीं सोहता।

उद्धत की नाईं विलास बोला—इसमें कोई टेंपर लूज न करे तो क्या करे ? न कहना न सुनना, हरामजादा नौकर एक ऐसे असभ्य को कमरे में ले आया, जिसे औरतों की मर्यादा रखने तक की तमीज नहीं।

अचानक जोरों के किसी धक्के से जैसे शराबी का नशा फट जाता है, वैसे ही विजया के बुखार का घोट जाता रहा। उसने चुपचाप नरेन का हाथ छोड़ दिया और करवट बदल कर दीवार की तरफ को मुंह फेर लिया।

कालीपदो एक कुर्सी ले आया। नरेन बिस्तर पर से उठ कर उस पर जा बैठा। रासविहारी से विजया के चेहरे का भाव ताड़ने में चूक नहीं हुई। वे जरा हंस कर अपने बेटे से ही बोले—मैं सब समझता हूँ विलास। ऐसी हालत में तुम्हारा नाराज होना अस्वाभाविक नही, बल्कि स्वाभाविक ही है, मैं मानता हूँ, लेकिन तुम्हें यह सोचना भी लाजिम था कि सब कोई जान कर ही अपराध नहीं करते। सब तरह के तौर-तरीके आचार-व्यवहार अगर सभी कोई जानते, तो फिर चिंता किस बात की थी। इसीलिए नाराज होने के बजाय शाँति से किसी की गलती को सुधार लेना चाहिये।

यह गलती किस की थी, यह समझने में किसी को देर नहीं लगी। विलास बोला, नही पिताजी, ऐसा इंपर्टिनेंस बर्दाश्त नहीं होता। उसके सिवाय यहां के नौकर जैसे अभागे हैं, वैसे ही बदजात। कल ही सबको निकालता हूँ, फिर चैन लूंगा।

रासविहारी फिर हंसे और स्नेह से झिड़कते के ढग पर अबकी शायद घर की दीवारों को सुना कर बोले—इसका जी जब खराब रहता है, तो क्या जो बोल बैठेगा कुछ ठीक नहीं। और दोष लड़के को भी क्या दूं, मैं बूढ़ा आदमी, तबीयत खराब की सुनकर मैं खुद कितना चंचल हो पड़ा। घर में ही एक को चेचक निकला, ऊपर से ये हजरत खतरा बता गए।

अब तक नरेन चुप था। अब की उसने टोककर कहा—जी नहीं, मैंने हरगिज खतरे की बात नहीं कही।

विलास ने जमीन पर अपने एक पैर को पटक कर कहा—आप जरूर कह गए हैं। कालोपदो गवाह है।

नरेन बोला—कालीपदो ने गलत सुना है।

जवाब में जाने विलास और क्या गजब ढाने जा रहा था। पिता ने रोकते हुए कहा – आप, रुको भी विलास। जब ये इनकार कर रहे हैं, तो क्या कालीपदो का एतबार करना पड़ेगा ? जरूर ये सच बता रहे हैं।

विलास फिर भी कुछ कहने जा रहा था। कटाक्ष से उसे रोक कर रासविहारी ने कहा—इस मामूली-सी बीमारी में ही दिमाग से हाथ मत धो बैठो विलास, स्थिर

रहो। मंगलमय भगवान हमारी परीक्षा के लिए ही हमें आफतों में डाला करते हैं, विपद में सबसे पहले तुम लोग इसी बात को क्यों भूल जाते हो, मैं तो समझ नहीं पाता।

थोड़ी देर स्थिर रह कर फिर बोले—और अगर बीमारी के बारे में गलत कुछ कही दिया हो, तो क्या हुआ ? एक से एक काबिल और विचक्षण डाक्टरों को ऐसा भ्रम होता है, ये तो अभी बच्चे हैं। इतना कहकर उन्होंने नरेन की ओर मुखातिब होकर कहा, खैर, तो आप बुखार तो बहुत मामूली ही बता रहे हैं ? चिंता की कोई बात नहीं, यही तो आपकी राय है ?

नरेन अब तक काफी अपमान चुपचाप सहता रहा था, अब जरा टेढ़ा जवाब दिए बिना उससे न रहा गया। बोला, मेरे कहने से क्या आता-जाता है ? मुझ पर निर्भर तो करते नहीं। अच्छा हो किसी काबिल विचक्षण डाक्टर को दिखाकर उन्हीं की राय लें।

बात में चिकोटी चाहे जो हो, यह जवाब देने का अधिकार उसे था। लेकिन विलास बिल्कुल उछल पड़ा—हमलावर की तरह चीख उठा—किस से बात कर रहे हो, यह सोच कर बात करना, कहे देता हूँ। और कहीं होता तो तुम्हारे इस व्यंग करने का···

शुरू से ही वजह-बेवजह झगड़ पड़ने की इसकी जी-जान से कोशिश देख नरेन अचरज से ठक रह गया। लेकिन क्या, किसलिए—उसके व्यवहार में कहां ऐसी त्रुटि हो रही है, इसे वह समझ नहीं सका। हकीकत में बात यह थी कि उस आदमी के असल में जलन कहां थी, नरेन को आज भी यह मालूम न था। विजया के यहां आते ही गांव के रोगी पड़ोसियों की टोली जब विजया और विलास के भावी संबंध की चर्चा में अपने समय का सदुपयोग किया करती थी, तो दूसरे गांव का रहने वाला यह नया वैज्ञानिक अटूट ध्यान लगाकर जीवाणु-कीट के संबंध निरूपण में ही जुटा रहता, गाँव की जनश्रुति उसके कानों तक पहुँचती ही नहीं। उसके बाद ब्राह्म-मन्दिर की स्थापना के समय जब यह रिश्ता पक्का होकर कहीं फैलने को बाकी न रहा, तो वह कलकत्ते जा चुका था। आज बाप-बेटे की बातचीत के ढंग में कभी-कभी क्या तो एक अनिश्चित और अस्पष्ट पीड़ा-सी उसे झलक रही थी, लेकिन सोच-विचार कर उसे स्पष्ट करने का समय या प्रयोजन, उसे कुछ भी न था।

ऐसे ही समय विजया ने इधर को मुंह फेरा। नरेन की ओर जरा देर अपनी पीड़ित आंखें रोपकर बोली—मैं जब तक जिन्दा रहूँगी, आपकी कृतज्ञ रहूँगी। लेकिन इन्होंने जब दूसरे डाक्टर से मेरा इलाज कराने का तै किया है, तो आप नाहक ही अपमान न सहें। लौटते हुए लेकिन दयाल बाबू को जरा देख जायेंगे, सिर्फ मेरी यह आरजू रक्खें। और, किसी जवाब का बिना इन्तजार किए उसने फिर

मुंह फेर लिया। रासविहारी बहुत पहले ही असली बात भांप गए थे। तुरन्त बोल उठे—अजीब बात! तुमने जिसे बुलवा भेजा है, किसकी मजाल है कि उसका अपमान करे?

उसके बाद बेटे की तरह-तरह से लानत-मलामत करके बार-बार यही कहने लगे कि बीमारी को सख्त समझ कर उत्कंठा से विलास के भरे-बुरे का ज्ञान जाता रहा है और साथ ही एकमात्र अद्वितीय निराकार परब्रह्म की इच्छा के बारे में बहुत-सी आध्यात्मिक और गूढ़ तत्वों का मर्म बता दिया।

नरेन कुछ न बोला। पिता-पुत्र के पास से तत्वकथा और अपमान का बोझा लेकर चुपचाप दोनों कन्धों पर लटका कर उठ खड़ा हुआ और अपनी छड़ी तथा बैग उठा कर उसी तरह चुपचाप निकल गया।

रासविहारी ने पीछे से आवाज दी, नरेन बाबू, आपसे कुछ जरूरी बात करनी है। कहकर अपने बेटे को अप्रतिद्वन्द्वी, एकमात्र और अद्वितीय रूप में विजया के कमरे में अधिष्ठित करके वे नरेन के पीछे-पीछे नीचे उतर गये।

बगल के एक कमरे में नरेन को बिठाकर भूमिका के बहाने वे बोले, दस आदमी के सामने तुम्हें बाबू ही कहूँ या जो कहूँ बेटे, लेकिन मैं यह नहीं भूल सकता कि तुम अपने जगदीश के बेटे हो। वनमाली और जगदीश, दोनों स्वर्ग गए, एक मैं ही रह गया हूँ, लेकिन हम तीनों क्या थे, यह आभास मैंने तुम्हें उसी दिन दे दिया था—मेरा कलेजा मानो फटने लगता है।

वास्तव में उस दिन जब माइक्रोस्कोप का दाम देने गए थे, उन्होंने बहुत कुछ कहा था। नरेन चुप रहा।

अचानक मानो उसी दिन की बात आ गई, वह बोले—उस काम की चीज को बेच देने के कारण मैं सचमुच ही तुम पर खीझ उठा था नरेन। जरा हंसकर बोले—देखो बेटे, यह खीझ उठा कहना बड़ा रूढ़ है। नहीं खीझा कहना ही दुनियादारी के लिहाज से ठीक होता है, कहने और सुनने, सब तरह से खतरे से खाली—लेकिन छोड़ो भी। उन्होंने निश्वास त्यागा और मानो बहुत कुछ आत्मगत भाव से ही कहने लगे—जो मेरे बस का नहीं, उस पर दुःख करना फिजूल है। कितनों का अप्रिय बनता हूँ, लेकिन लोग गाली देते हैं, दोस्त कहते हैं, ठीक है, झूठ जब कभी तुमसे बोलते न बना रासविहारी, तो झूठ बोलने को हम कहते भी नहीं, लेकिन जरा घुमा-फिरा कर कहने से ही अगर गाली-गुफ्ते से छुटकारा मिले, तो वही क्यों नहीं करते? सुनकर मैं अवाक होकर सिर्फ सोचता रह जाता हूँ बेटे कि जो हुआ नहीं, उसे बनाकर, घुमा-फिराकर कहा कैसे जाय? ये मेरा भला ही चाहते हैं, यह समझता हूँ मैं, लेकिन मंगलमय ने जिस शक्ति से मुझे वंचित किया है, वह असाध्य साधन मैं करूं भी तो कैसे? खैर, अपने बारे में कहना-सुनना मुझे बिल्कुल

पसन्द नहीं—इससे बड़ी खीझ है मुझे। पीछे तुम्हें दुःख हो, इसीलिए इतना कह रहा हूँ। इसके बाद कुछ देर छत की लकड़ियों को देखते रहे और फिर बोले—और एक बात बता दूं, आजीवन यहीं दुनियाँ में ही रहा, बाल भी पका लिए ठीक है, लेकिन क्या कहने से, क्या करने से यहां सुख-सुविधा मिलती है, यह बात आज भी इस पकी खोपड़ी में न समाई। वरना यह कहकर आज मैं तुम्हें पीड़ा क्यों पहुँचाता कि मैं तुमसे नाराज हुआ था ?

नरेन ने विनय के साथ कहा, तो सत्य है, वही कहा है—इसमें दुःख होने का क्या है ?

रासविहारी गर्दन हिलाते हुए बोले—ऊंहूँ, यह मत कहो नरेन, कड़वी बात जी पर जरूर चोट करती है। जो सुनता है उसे तो चोट लगती ही है, जो कहता है, उसे भी लगती है। जगदीश्वर !

नरेन सिर झुकाए चुप रहा। रासविहारी उठते हुये धर्म के उच्छास को संयत करके कहने लगे, लेकिन उसके बाद चुप न रहा गया। सोचा, यह क्या ! बेचारा बड़े दुःख से अपने काम की चीज को बेंच गया है। कीमत उसकी कुछ भी चाहे हो, जब जबान दे दी गई है, तो सोचना कैसा, दाम देने में भी देर नहीं होनी चाहिए। मैंने मन में सोचा, बेटी विजया जब जी में आवे, जितने दिनों में जी चाहे रुपया दिया करें, मगर मैं जाकर रुपए दे आऊं। जब उन्हीं रुपयों से उसे विदेश जाना है, फिर तो एक भी दिन की देर ठीक नहीं।

उस समय की कड़वी बातों को याद करके नरेन ने पूछा—उनकी क्या दाम देने की इच्छा नहीं थी ?

बूढ़े ने गम्भीर होकर कहा, यह बात तो मुझे नहीं लगी। लेकिन यों समझो कि—नः, रहने दो। कहकर वे मौन हो गए।

चार सौ रुपए में उसके बिक जाने वाली बात नरेन की जीभ पर आ गई, लेकिन कैसी तो एक तकलीफ होने के कारण वह उस विषय में कुछ न बोला।

रासविहारी ने अब काम की बात छेड़ी। वह आदमी पहचानते थे। नरेन की आज की बातचीत और सलूक से उन्हें पक्का संदेह हो गया था कि वह असली बात अभी तक नहीं जानता है और ऐसे अनमने तथा उदासीन स्वभाव के लोगों को जब तक आँखों में उंगलीं गड़ा कर दिखा नहीं दिया जाता तो खुद से छानबीन करके भी ये कुछ जानना नहीं चाहते। बोले—विलास के व्यवहार से आज मैंने जितना दुःख, उतनी ही लज्जा का अनुभव किया। उस माइक्रोस्कोप की ही बताऊं, विजया अगर उसकी राय लेकर खरीदती तो कोई बात ही नहीं उठती। तुम्हीं बताओ, यह उसका फर्ज नहीं था क्या ?

विजया का फर्ज ठीक-ठीक समझ न पाकर नरेन जिज्ञासु-सा देखता रहा।

रासविहारी बोले, उसके बीमार होने की खबर से ही विलास कैसा उत्कंठित हो उठा है, यह तुमसे छिपा नहीं है। होना वाजिब ही है—बुरा-भला सबकी जिम्मेवारी तो उसी के मत्थे है। इलाज और डाक्टर, ठीक करना तो उसी का काम है! उसकी राय के बिना तो कुछ भी नहीं हो सकता। आखिर बिजया ने खुद भी इस बात को समझा, लेकिन दो दिन पहले यह सोचती तो यह अप्रिय घटना नहीं घट पाती। निरी बच्ची तो है नहीं—सोचना उचित था।

सोचना क्यों उचित था, तब तक भा इसे न समझ पाकर नरेन बूढ़े की बात पर हामी न भर सका। लेकिन उसके भीतर उथल-पुथल-सी होने लगी। इतने पर भी समझ लेने जैसी बात उसके मुंह से न निकली। वह सिर्फ अपनी शंकित आंखें बूढ़े की ओर रखकर देखता रहा।

रासविहारी बोले, लेकिन बेटे, विलास के मन की अवस्था समझकर अपने मन में कोई ग्लानि मत रखना। मेरा एक और अनुरोध है नरेन, इनका ब्याह तो बैसाख ही में होगा, अगर तुम्हारा कलकत्ते ही रहना हो तो उस मंगल कार्य में शामिल होना होगा, यह कह रखता हूँ मैं।

नरेन कुछ बोल न सका। गर्दन हिलाकर सिर्फ 'अच्छा' कहा।

फिर तो रासविहारी पुलकित हृदय से बहुत-सी बातें कहने लगे। कहने लगे यह विवाह मंगलमय की इच्छा है, वर-कन्या के जन्मकाल से ही यह तै था और इस सिलसिले में विजया के परलोकवासी पिता से उनकी क्या-क्या बातें हुई थीं आदि बहुत-बहुत पुराना इतिहास सुनाकर सहसा बोल उठे—अच्छा, कलकत्ते ही रहोगे? सुविधा कर लेने की है गुंजाइश?

नरेन बोला—हां। विलायती दवा की एक दूकान में छोटी-सी जगह मिल गई है।

रासविहारी खुश होकर बोले—बहुत खूब! दवा की दुकान कुछ पैसा कर पाए तो बन जाओगे।

नरेन इस इशारे के पास भी न फटका। बोला—जी हां—सुनकर रासविहारी उत्सुकता को दबा न सके। जरा आगा-पीछा करके पूछा—तो तनखा क्या मिल जाती है?

नरेन बोला—बाद में शायद कुछ ज्यादा दें—अभी सिर्फ चार सौ रुपए मिलते हैं।

चार सौ! अपने फीके चेहरे पर कपाल तक आँखें चढ़ा कर रासविहारी बोले—बहुत खूब! वाह! सुनकर बड़ी खुशी हुई।

दिन चढ़ता जा रहा था। नरेन उठकर खड़ा हुआ। दयाल चाबू को चेचक के दो-एक दाने दिखाई पड़े थे। उन्हें देखते हुए जाना था। पूछा—अच्छा वह परेश

कैसा है, बता सकते हैं ?

रासविहारी ने वेखटके कहा—उसे उसके गांव पर भेज दिया गया है—कैसा है, नहीं कह सकते ।

दोनों कमरे से बाहर निकले । उन्हें फिर से ऊपर जाना था । बेटा वहां इन्तजार ही कर रहा था । उसने इलाज का क्या किया, यह भी जानना था । बरामदे के छोर पर जाकर नरेन एक क्षण के लिए ठिठक पड़ा, उसके बाद धीरे-धीरे रासविहारी के पास आकर बोला—आप मेरी तरफ से विलास बाबू से एक बात कह देंगे । कहेंगे कि ज्यादा तेज बुखार होने पर आदमी का आवेग निहायत मामूली कारण से भी उबल सकता है । विजया के बारे में डाक्टर की इस बात पर जिसमें वे अविश्वास न करें । और मुंह फेर कर वह तेजी से चला गया ।

स्नान नहीं, भोजन नदारद, माथे के ऊपर कड़ी धूप और बैंहार से नरेन दिघड़ा की ओर जा रहा था । लेकिन कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था उसे । इसीलिए चलते-चलते अपने आप से ही वह पूछ रहा था, आखिर उसे क्या गर्ज पड़ी है ? किस एक औरत ने अपनी श्रद्धा के पात्र को देखने का अनुरोध किया है, इसीलिए जिसे उसने कभी आंखों भी नहीं देखा, उसी को देखने के लिए इस तेज धूप में वह बैंहार से चल पड़ा है ! यह गलत अनुरोध करने का उसे तिल भर भी हक न था, यह सोच उसका सर्वांग जल उठा और इस अनुरोध की रक्षा करने के लिए जाना भी अपने सम्मान के लिहाज से नुकसानदेह है, यह वह अपने आप को समझने लगा—तो भी लौट न सका । पा-पा करके दिघड़ा की ओर बढ़ चला और थोड़ी ही देर में उस नितांत दंभी आग्रह के पालन के लिए अपने ही घर के द्वार पर जा पहुँचा ।

सत्रह

कागज के एक टुकड़े पर अपना नाम और अपनी विलायती डिग्री लिखकर नरेन के अन्दर भेज दिया था । उसे पढ़कर दयाल बहुत संत्रस्त हो गए । एक इतना बड़ा डाक्टर पैदल चलकर उन्हें देखने आया है, यह मानों उन्हें अपनी ही एक अशोभन स्पर्द्धा और अपराध-सा लगा और उन्हीं को वंचित करके वे इस घर में रह रहे हैं, इस शर्म से कैसे वे मुंह दिखाएं सोच नहीं सके जरा ही देर में गोरा, छरछरा-सा एक युवक उनके कमरे में दाखिल हुआ, तो वे अवाक्, मुग्ध होकर देखते रह गए । उन्हें लगा, बीमारी उन्हें चाहे जितनी बड़ी हो और जो हो—अब की वे जी

गए। बास्तव में रोग मामूली है, फिक्र की कोई बात नहीं—यह भरोसा पाकर वे उठ बैठे, यहां तक कि डाक्टर साहब को स्टेशन तक साथ जाकर छोड़ आना संभव है या नहीं, यह सोचने लगे। विजया खुद बीमार होते हुए भी उन्हें भूली नहीं है, उसी ने आग्रह करके उन्हें भेजा है, यह सुनकर कृतज्ञता और आनन्द से दयाल की आंखें छलछला उठीं। बात की बात में इस नए चिकित्सक और प्राचीन आचार्य में बात जम गई। नरेन के जी में आज बड़ी ग्लानि जमा हुई थी, लेकिन इस बूढ़े के संतोष, सहृदयता और हृदय की पवित्रता के संस्पर्श से उसका आधा धुल गया। बातों से उसने समझा, धर्म सम्बन्धी अध्ययन-मनन उनका यद्यपि मामूली है, तथापि वे धर्म को हृदय से प्यार करते हैं और इस अकृत्रिमता ने ही मानो धर्म के सत्य की ओर उनकी दृष्टि को इतना स्वच्छ कर दिया है। किसी धर्म के खिलाफ उन्हें कोई शिकायत नहीं तथा मनुष्य अगर सच्चा हो तो हर धर्म उसे असली तत्व दे सकता है, यही उनका विश्वास है। विलासविहारी के कानों यह साम्प्रदायिक मतवाद पहुँच जाने पर उनका आचार्य पद कायम रह पाता या नही, संदेह है, पर बूढ़े की शांत, सरल और विषयलेशहीन बात सुनकर नरेन मुग्ध हो गया। रासविहारी और विलासविहारी के भी उन्होंने बहुत गुण गाये। जिनकी भी चर्चा करते, कहते कि उनके जैसा साधु पुरुष मैंने नहीं देखा। आदमी पहचानने की उनकी अनोखी क्षमता देख नरेन मन ही मन हसा। अन्त में विलास के प्रसंग में अगले वैसाख महीने में विवाह का जिक्र करके बड़ी तृप्ति के साथ जताया कि उस समय आचार्य पद मैं ही लूं, यही विजया की अभिलाषा है, और यह कहने से भी बाज न आए कि यही विवाह ब्राह्मसमाज का आदर्श होना चाहिए।

लेकिन वे अगर सौभाग्य और आनन्द की अधिकता से इतना विह्वल न हो गए होते, तो सहज ही देख पाते कि अन्तिम बात उनके श्रोता के चेहरे पर किस कदर स्याही पर स्याही पोत रही थी।

नहाने-खाने के लिए उन्होंने नरेन को लाख कहा, पर उसे राजी न कर सके। कोई डेढ़ घन्टे बाद नरेन जब सचमुच ही श्रद्धा से उन्हें नमस्कार करके वहां से निकला तो उसे यह समझना बाकी नही रह गया कि उसे पीड़ा कहां है, क्यों सारी दुनिया उसे कड़वी और स्वादहीन हो गई है। नदी पार करते ही बाएं बड़ी दूर पर जमींदार-महल का शिखर नजर आया और उसकी आंखें फिर से जल उठी। उसन मुंह फेर लिया। बैहार के रास्ते सीधे स्टेशन की ओर तेजी से चलने लगा। आज अचानक इतनी बड़ी चोट न लगी होती, तो इतनी जल्दी बह अपने मन को नहीं पहचान पाता। अब तक उसे यही मालूम था कि जीवन मे उसके हृदय ने सिर्फ विज्ञान को ही प्यार किया है। वहाँ और किसी चीज को कभी जगह मिल ही नहीं सकती, इस बात को इतना निस्संदेह विश्वास करता था, जभी संसार की और-और

कामना की वस्तुएं उसके लिए एक बारगी तुच्छ हो गई थीं। लेकिन आज जब आघात से यह राज खुल गया कि उसके अनजानते हृदय ने और एक चीज को वैसा ही प्यार किया है, तो दुःख और अचरज से चौंक ही नहीं उठा, आप अपने निकट ही बड़ा छोटा बन गया। आज अब किसी बात का मतलब समझने में उसे अड़चन नहीं पड़ी। विजया का सारा आचरण, सारी बातें ही उपहास हैं और इस पर विलास के साथ जाने वह कितना हंसती रही होगी, इसकी कल्पना करके उसका सर्वांग लज्जा से बार-बार सिहर उठने लगा। अभी उस दिन उसका सर्वस्व लेकर उसे दर-दर का भिखारी बनाने में भी जिसे तनिक झिझक न हुई, उसी के आगे अपना दुखड़ा रोकर अपना अन्तिम संबल बेच जाने की कुमति उसमें किस महापाप से आई? अपने को हजारों धिक्कार देकर वह यही कहने लगा—मेरे साथ ठीक ही हुआ है। जो बेहया उस निर्दयी औरत की एक मामूली बात पर अपना काम-काज छोड़कर इतनी दूर दौड़ा आ सकता है, यह सजा उसके लिए बजा ही है। अच्छा ही किया कि बेआबरू करके विलास ने उसे घर से निकाल दिया। स्टेशन पर पहुँच कर देखा, जो माइक्रोस्कोप इतने दुःखों की जड़ है, उसी को लेकर कालीपदो खड़ा है। पास आकर वह बोला—डाक्टर साहब, यह माँ जी ने भेजा है।

नरेन ने रुखाई से कहा—क्यों?

क्यों, सो कालीपदो नहीं जानता था। लेकिन चीज डाक्टर साहब की है और इसी के लिए बहुत सारे अनर्थ हो चुके हैं, सामने या आडआट से कालीपदो को कुछ जानना बाकी न था। अपनी अक्ल लड़ा कर हंसते हुए उसने कहा—आपने वापिस जो मांगा था!

मन ही मन बेहिसाब बिगड़ कर वह बोला—नहीं, नहीं मांगा था। कीमत के रुपये मेरे पास नहीं है।

कालीपदो ने सोचा यह रूठ कर कह रहे है। नौकर वह पुराना है, रुपये पैसे के बारे में विजया के मन के भाव और आचरण के बहुत उदाहरण वह आंखों देख चुका है। अपने उस ज्ञान को और भी जरा बढ़ा-चढ़ा कर जरा हंसते हुये, जरा लापरवाही के भाव से बोला—हुस, क्या तो कीमत! मां जी के लिये दो-चार सौ रुपया भी रुपया है! आप ले जाइये। जब रुपये आपको हो जायें, भेज देंगे।

रुपये के बारे में उसके प्रति विजया के ऐसे अयाचित विश्वास ने नरेन के क्रोध को कुछ नर्म तो कर दिया, लेकिन उसकी आवाज की कड़वाहट को वह न मिटा सका। सौ दो सौ के बदले चार सौ देने की लाचारी बताते हुए जब उसने कहा, न-न, तू इसे वापस ले जा कालीपदो, मुझे जरूरत नहीं इसकी। दो सौ की जगह चार सौ मैं न दे सकूंगा—तो कालीपदो बोला, नहीं-नहीं डाक्टर साहब, आप इसे लेते जाइए। मैं गाड़ी पर रख कर जाऊंगा।

इसमें उसे थोड़ी-सी अपनी गर्ज थी। विलास को वह फूटी आंखों नहीं देख सकता था, इसलिए उस पर आक्रोश के नाते नरेन के प्रति उसमें थोड़ी-सी सहानुभूति पैदा हुई थी। इसीलिये विजया ने गरचे दरवान को ले आने का आदेश दिया था, तो भी खुद से चाह कर उस भारी चीज को कालीपदो खुद इतनी दूर ढोकर ले आया। नरेन आनाकानी कर रहा है, यह देख वह और पास जाकर धीमी आवाज करके बोला आप ले जाइए डाक्टर साहब। मां जी अच्छी हो जायें तो दाम आपको छोड़ भी दे सकती हैं।

इस इशारे से तो नरेन आग की तरह लहक उठा। अच्छा! उसने बुलाया और फिर भी विलास ने उसका अपमान किया, यह बुद्धि उसी की किंचित कृपा का पुरस्कार है।

लेकिन प्लैटफार्म पर और-और भी लोग थे, इसीलिए कालीपदो के सिर से एक बला टल गई। नरेन ने किसी कदर अपने को जब्त किया और बाहर का रास्ता दिखाते हुये कहा—जाओ, मेरे सामने से चले जाओ। और मुंह फेरकर वह दूसरी ओर चला गया।

कालीपदो काठ का मारा-सा खडा रह गया। आखिर हुआ क्या, उसकी खोपड़ी में बात आई नहीं। पन्द्रह मिनट के बाद गाड़ी आई। नरेन गाड़ी पर सवार हो गया, तो कालीपदो धीरे-धीरे फर्स्टक्लास की खिड़की के पास पहुँचा। आवाज दी--डाक्टर बाबू! नरेन दूसरी ओर देख रहा था। मुंह घुमाते ही कालीपदो के सूखे-से चेहरे पर नजर पड़ी। उससे ऐसा रूखा व्यवहार करके मन ही मन वह जरा दुखी हुआ था, इसलिए जरा हंसकर सदय-स्वर से बोला—अब क्या है कालीपदो?

उसने कागज का एक टुकड़ा और पेंसिल बढ़ाते हुए कहा—जी, आपका पता जरा···

मेरा पता लेकर क्या करेगा तू?

मैं कुछ न करूंगा, माँ जी ने मांगा है।

मांजी के नाम से नरेन आपे में न रहा। अचानक उपट कर बोल उठा—हट जा मेरे सामने से, बेहूदा, पाजी कहीं का।

चौक कर कालीपदो दो कदम पीछे हट गया। इतने में सीटी देकर गाड़ी खुल गई।

कालीपदो लौट आया। ऊपर के कमरे में पहुँचा। विजया खाट के बाजू पर सिर टेक आँखें बन्द करके बैठी थी। आहट हुई कि उसने आंखें खोलीं। कालीपदो बोला—लौटा दिया मां जी, नहीं लिया।

विजया की नजर में वेदना या विस्मय, कुछ नहीं झलका। हाथ के कागज-पेंसिल को टेबिल पर रखते हुए वह बोला—बाप रे, गजब का गुस्सा। पता जो पूछा

तो जैसे मारने दोड़े ! इस पर भी विजया ने कुछ न कहा।

रास्ते भर कालीपदो रिहर्सल-सा करता आया था कि मालकिन से जाकर वह क्या जवाब देगा उनके आग्रह का ? लेकिन आकर कोई उत्साह न देख उसने नजर उठा कर देखा—विजया की आंखें वैसे ही निर्विकार, वैसी ही सूनी पड़ी हैं। सहसा उसे लगा, जान-सुनकर ही जैसे विजया ने उसे इस बेकार के काम में भेजा था। वह ठगा-सा जरा देर चुप खड़ा रहा और अन्त में धीरे-धीरे चला गया।

अठारह

पांच ही छः दिन में विजया चंगी तो हो गई, मगर सेहत सुधारने में देर होने लगी। विलास ने अच्छा डाक्टर दिखाने तथा पौस्टिक दवा और पथ्य के प्रबन्ध में कोर-कसर न की, लेकिन उसकी कमजोरी जैसे दिन-दिन बढ़ने ही लगी। इधर फागुन बीत चला, बीच में बाकी सिर्फ चैत। वैसाख के पहले ही हफ्ते में बेटे का ब्याह कर देंगे—रासविहारी का यही संकल्प था। लेकिन दूल्हा दिन-दिन जितना ही तन्दुरुस्त और कांतिमान होने लगा, कन्या उतनी ही दुबली और मलिन होने लगी—यह देख रासविहारी रोज-रोज आकर उद्वेग प्रकाश करने लगे। कोशिश में कहीं से कोई कमी भी नही हो रही थी—फिर यह क्या ! माइक्रोस्कोप वाली घटना जाने कैसे तो जरा बढ़-चढ़ कर बाप-बेटे के कानों पहुँची थी। सुनकर छोटे बाबू जितनी ही उछल-कूद करने लगे, बड़े बाबू उतना ही उन्हें शांत करने लगे। अन्त में उन्होंने बेटे को चेता दिया कि इन छोटी-मोटी बातों के लिये उछलते फिरना न केवल फिजूल है, बल्कि ऐसी बीमार हालत में उस पर हंगामा करने से हित का विपरीत भी हो सकता है। विलास संसार में और जितने भी लोगों को चाहे तुच्छ और नाचीज समझता हो, अपने पिता की पकी बुद्धि की मन ही मन खातिर करता था, क्योंकि दुनियादारी में उस बुद्धि की कामयाबी की इतनी ज्यादा नजीरें थीं कि उस पर संदेह की गुंजाइश ही न थी। इसीलिये जी में उसके जितना भी जहर चाहे जमा हो रहा हो, लेकिन खुलकर बगावत करने की उसे हिम्मत नहीं पड़ी। अब लेकिन न सह सका। उस दिन एक महज मामूली कारण से कालीपदो के पीछे हाथ धोकर पड़ गया। तब अबपीटा पीटा करते-करते आखिर गुमाश्ते को उसका हिसाब साफ कर देने को कहकर उसे डिसमिस कर दिया।

डाक्टर ने सुबह-शाम विजया को थोड़ा-थोड़ा टहलने को कहा था। उस

रोज सुबह नदी-किनारे से टहलकर विजया जैसे ही घर आई, कालीपदो ने रुआसा-सा आकर कहा—माँ जी, छोटे बाबू ने मुझे जवाब दे दिया।

अचरज से विजया ने पूछा—क्यों ?

कालीपदो रो पड़ा। बोला—मालिक सरग गए, उनसे मैंने कभी गाली नहीं सुनी, लेकिन आज—और वह बार-बार अपनी आँखें पोंछने लगा। रुलाई रुकने पर उसने जो बताया, उसका सारांश यही कि गरचे उसने कोई कसूर नहीं किया, फिर भी छोटे बाबू उसे फूटी आंखों नहीं देख सकते। डाक्टर साहब को मैं बक्स देने गया था, यह उन्हें क्यों नहीं बताया, उन्हें मैं बुलाकर क्यों लाया—आदि-इत्यादि।

विजया चौकी पर बड़ी सस्त होकर बैठी रही। बड़ी देर तक कुछ भी न बोली। बाद में पूछा—वे है कहां ?

कालीपदो बोला—कचहरी मे कागज-पत्तर देख रहे है।

विजया देर तक आगा-पीछा करके बोली—खैर, जाने दो। तुम काम करो जाकर। कहकर वह खुद भी चली गई। घन्टे भर बाद उसने खिड़की में से देखा, विलास कचहरी से निकला और घर चला गया। खोज-खबर के लिए आज वह क्यों नही आया, वह समझ गई।

दयाल स्वस्थ होकर नियमित काम पर आने लगे थे। शाम की तरफ जब वह घर लौटने लगते, विजया कभी-कभी उनके साथ हो जाती और बातें करते हुए कुछ दूर आगे तक उन्हें छोड़ आया करती।

दयाल का हृदय नरेन के प्रति आदर और कृतज्ञता से भरा हुआ था। बीमारी की बात आते ही वह इस नए डाक्टर की प्रशंसा में सहस्र-मुख हो उठते थे। विजया चुपचाप सुना करती, कोई आग्रह नही दिखाती, इसलिए दयाल खुल कर कह नहीं पाते थे कि उनकी बड़ी इच्छा है कि उन्हीं को बुलवाकर तुम्हारी बीमारी के बारे में पूछा जाय। भीतर का राज तो उन्हें मालूम नहीं था, लिहाजा विजया की मौन उपेक्षा से उन्हें पीड़ा होती और हजार तरह के इशारे से वे जताना चाहते कि वह नया चाहे हों, पर जो नामी-गरामी डाक्टरों की जमात तुम्हारी झूठी चिकित्सा मे समय और पैसा बर्बाद करा रही है, वह उनसे कहीं काबिल है, यह मैं, शपथ लेकर कह सकता हूँ।

लेकिन इस छुपे हुए रहस्य का पता लगते उन्हें ज्यादा दिन न लगे। पांच-छे दिन के बाद ही एक रोज वे विजया के कमरे मे आकर बोले—कालीपदो को तो अब रखते नही बनता बिटिया।

विजया को यह आशंका थी ही। फिर भी पूछा—क्यों ?

दयाल बोले—तुम जिसे अपने यहां नहीं रख सकी, मैं उसे किस साहस पर रखूं ?

विजया भीतर से नाराज होकर बोली—लेकिन वह भी तो मेरा ही घर है। दयाल लज्जित होकर बोले—बेशक ! हम सभी तो तुम्हारे ही आश्रित हैं बिटिया। लेकिन···

विजया ने पूछा—उन्होंने क्या आपको मना किया है ?

दयाल चुप रह गये। विजया समझ गई। बोली—तो उसे मेरे ही पास वापस भेज दीजिए। वह मेरे पिता का नौकर है, मैं उसे जवाब नहीं दे सकती।

दयाल कुछ क्षण चुप रहे। उसके बाद संकोच के साथ बोले—लेकिन यह अच्छा न होगा बेटी। उनके खिलाफ करना तुम्हारे लिए उचित नहीं।

विजया सोचकर बोली—तो आप मुझे क्या करने को कहते है ?

दयाल बोले—तुम्हें कुछ भी न करना होगा। कालीपदो खुद ही घर जाना चाहता है। मेरी राय है, जब तक वह जाए।

विजया बडी देर तक मौन रही। एक उसांस लेकर बोली—तो वैसा ही हो। लेकिन न जाने के पहले एक बार उसे मेरे पास भेज देंगे।

उसांस की आवाज से बूढ़े ने उधर ताका। विजया के मलिन मुखड़े पर गहरी घृणा की छाप देखकर वे काठ हो गए। उस दिन इस सम्बन्ध में कुछ छेड़ने का उन्हें साहस न हुआ।

इसके बाद चार-पांच दिन दयाल दिखाई ही न दिये। कचहरी में पुछवाया। पता चला, काम पर वह नहीं आ रहे हैं। उद्विग्न होकर सोचने लगी, किसी को भेज कर उनकी खोज ली जाय या नहीं। फिर दरवाजे के बाहर उन्हीं के खांसने की आवाज हुई। विजया खुशी से उठ खडी हुई और आदर से उन्हें अन्दर लिवा आई।

दयाल की स्त्री चिररोगिनी है। अचानक उन्ही की तबियत ज्यादा खराब हो गई, जिससे वह कई दिनो तक बाहर नहीं निकल पाए। फिर उनके चेहरे पर जो उद्वेगहीन भाव था, उससे विजया समझ गई कि डर की कोई बात नहीं। तो भी पूछा—अब वे कैसी है ?

दयाल बोले—आज वे अच्छी है। मैंने नरेन बाबू को लिखा था। कल तीसरे पहर आकर वे दवा दे गए। गजब का इलाज ! चौबीस ही घन्टे के अन्दर बीमारी बारह आने जाती रही ?

विजया होंठ दबाकर हंसती हुई बोली—क्यों न हो, आप लोगों का उन पर विश्वास कितना है ?

दयाल बोले—यह सही है। मगर विश्वास तो यों ही नहीं आता ! हमने जांच कर देखा है न। लगता है, घर में कदम रखते ही मानो सब ठीक हो जायगा।

जरूर ! कहकर विजया फिर जरा हंसी। अब की दयाल खुद भी जरा हंसे। बोले—फकत उन्हीं का नहीं, और एक जने के लिए बता गए हैं। यह कह कर

उन्होंने टेबिल पर एक कागज का टुकड़ा रख दिया।

प्रेसस्क्रिप्शन था। ऊपर विजया का नाम लिखा था। लिखावट पर नजर पड़ते ही उसके हृदय में वे कुछ हरूफ आनन्द के तीर से लगे। तुरन्त उसका चेहरा लाल हो उठा और उसी दम राख की तरह फीका पड़ गया।

बूढ़े अपने इस कृतित्व से ऐसे मग्न हो गये थे कि उधर उन्होंने ताका ही नहीं। बोले—मगर मैं टालने हर्गिज न दूंगा। इस दवा को आजमा कर देखना ही पड़ेगा।

विजया अपने को सम्हाल कर बोली—मगर यह तो अंधेरे में ढेला फेंकना हुआ···

गर्व से दमक कर दयाल बोले—इस! ऐसा भला! यह क्या तुम्हारा कोई नेटिव डाक्टर है कि फीस दो और व्यवस्था लिखा लो? यह तो विलायत का पढ़ा हुआ बहुत बड़ा डाक्टर है! अपनी आँखों देखे बिना कुछ नहीं करने का। इनकी जिम्मेवारी कुछ ऐसी-वैसी होती है?

सहज विस्मय से आंखें फाड़कर विजया ने कहा—अपनी आंखों देख कर कैसे? किसने कहा कि वे मुझे देख गए है? यह तो आपकी जबानी सुनकर उन्होंने दवा लिख दी।

दयाल ने बारम्बार सिर हिलाकरकहा— हर्गिज नहीं। कल तुम जब बगीचे में रेलिंग पकड़ कर खड़ी थीं। वे ठीक तुम्हारे ही सामने से गुजरे थे। तुम्हें भली-भांति देखा था उन्होंने। तुम अनमनी थी, शायद इसीलिए···

हठात चौककर विजया बोली—वे क्या साहबी बाने में थे? हैट था माथे पर? दयाल कोतुक से हंस पड़े जोरों से। हंसते-हंसते कहने लगे—भला कौन कह सकता है कि पक्का अंग्रेज नहीं? कौन कह सकता है कि वह हमारा स्वजाति बंगाली है? खुद मैं ही हैरान रह गया था!

वे सामने से गुजर गए, ठीक आंखों के सामने से उसे देखते हुए और उसने एक सरसरी निगाह डालने के सिवाय उसे देखा तक नहीं। पुलिस का कोई अंग्रेज कर्मचारी होगा, बल्कि यह सोचकर उसने लापरवाही से नजर झुका ही ली थी। उसके हृदय में क्या आंधी बह गई, बूढ़े को खबर ही न हुई। वह अपनी ही धुन में कहते गए—बस, चैत का महीना ही तो रहा। वैसाख के पहले ही हफ्ते में या बहुत हुआ तो दूसरे हफ्ते में शादी। मैंने कहा, बिटिया तो चंगी ही नहीं हो रही है डाक्टर साहब, कोई दवा दीजिए कि—उनके मुंह की बात वहीं तक रह गई।

यों अचानक उन्हें चुप हो जाते देख विजया ने आँख उठाकर उनकी नजर का अनुसरण किया। देखा, विलास आ रहा है। कोई बात चल रही थी और उसके आते ही वह बन्द हो गई—आते ही यह अनुभव करके क्रोध से विलास का आंख-

मुंह काला पड़ गया। लेकिन अपने को भरसक सम्हाल कर वह एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। सामने ही वह नुस्खा पड़ा था। नजर पड़ते ही उठाकर उसे ऊपर से नीचे तक तीन-चार बार देखा। टेबिल पर उसे रख कर बोला—नरेन डाक्टर का नुस्खा देख रहा हूँ। आया कैसे—डाक से ?

किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। विजया जरा मुह घुमा कर खिड़की से बाहर देखने लगी।

हिंसा से जली हंसी हंसकर विलास बोला—डाक्टर तो बस नरेन डाक्टर ! जभी शायद औरों की दवा खाई नहीं जाती, शीशियों में ही सड़ती रहती है और बाद में फेंक दी जाती है। खैर, मगर कलयुग के इस धन्वंतरी ने यह नुस्खा भेजा कैसे, जरा सुनूं ? डाक से ?

इसका भी किसी ने जवाब नहीं दिया।

इस पर विलास ने दयाल से कहा—अब तक तो आप भाषण दे रहे थे। सीढ़ी पर से ही सुनाई पड़ रहा था—आपको कुछ पता है ?

जब से दयाल ने विलास के मातहत यहां नौकरी ली, वह मन ही मन उससे बाघ जैसा डरते थे। कालीपदो से भी बहुत कुछ सुन रक्खा था। सो विलास के नुस्खा उठाते समय से ही उनका कलेजा बांस के पत्ते-सा कांप रहा था। यह प्रश्न सुनते ही उनकी जीभ मुंह में जड़-सी हो गई, बात न फूटी।

विलास ने थोड़ा रुक कर कहा—एक बारगी भीगी-बिल्ली बन गए ? मैं पूछता हूँ, जानते हैं कुछ ?

नौकरी का डर बोझ से लदे गरीब को कैसा हीन बना देता है, यह देखकर कष्ट होता है। दयाल चौंक कर अस्फुट स्वर में बोले—जी हाँ, मैं ही ले आया हूँ।

अच्छा, यह बात है ! कहां मिला वह ?

दयाल ने डरते-डरते किसी कदर बात बता दी।

विलास कुछ देर स्तब्ध रहा। उसके बाद बोला—मैंने आपको पिछले साल हिसाब सुधारने को कहा था, हो गया ?

दयाल उड़े हुए चेहरे से बोले—जी, दो दिन में कर लूंगा।

अब तक क्यों नहीं हुआ ?

घर में बीमारी के चलते परेशानी थी। खुद पकाना पड़ता था—आ ही न सका।

जवाब में विलास भोंड़ी आवाज में दयाल की नकल बनाते हुये हाथ हिलाकर बोला—आ ही न सका ! फिर क्या है, मुझे राजा बना दिया ! फिर तीखा होकर बोला—मैंने जभी पिता जी से कह दिया था कि ऐसे बूढ़े-ढेढ़े से काम नहीं चलने का।

अब, इतनी देर के बाद, विजया ने गर्दन घुमाई। शांत, गम्भीर भाव, लेकिन आंखों से चिनगारियां फूट रही थीं। धीमे लेकिन सख्त स्वर में बोली—पता है आपको, दयाल बाबू को यहाँ कौन लाया है ? आपके पिता जी नहीं–मैं।

विलास धमक गया। उसकी ऐसी आवाज उसने कभी नहीं सुनी, ऐसी नजर भी कभी नहीं देखी। मगर वह झुकने वाला न था। सो एक पल चुप रहकर बोला—जो भी लाए, मुझे जानने की जरूरत नही। मैं काम चाहता हूँ—मेरा नाता काम से है।

विजया बोली—जिनके घर मुसीबत हो, वे काम करने कैसे आएं ?

विलास उद्धत की नाईं बोला—मुसीबत की दुहाई सभी दिया करते हैं। लेकिन वही सुनता रहूँ तो मेरा काम नहीं चल सकता। मैंने जरूरी काम का हुक्म दिया था, क्यों नहीं हुआ इसी की कैफियत मांगता हूँ मुसीबत की नहीं सुनना चाहता।

विजया के होंठ काँपने लगे। बोली—सभी झूठे नहीं होते—सभी झूठमूठ मुसीबत की दुहाई नहीं दिया करते—कम से कम मन्दिर के आचार्य नहीं देते ! खैर, मैं आप से पूछना चाहती हूँ, आपको जब मालूम है कि काम जरूरी है, होना ही चाहिये, तो खुद क्यों नहीं किया ? आपने क्यो चार दिन का नागा किया। आप पर क्या मुसीबत आई थी, सुनूं ?

विलास अचरज से हक्का-बक्का हो गया। बोला—मैं खुद बही लिखूं ! मैंने नागा क्यों किया !

विजया बोली—जरूर। हर माह आप दो सौ रुपए लिया करते हैं। वह रुपए मैं आपको यो ही तो नही देती, काम के लिए देती हूँ।

कल के पुतले-सा विलास बोल गया—मैं तुम्हारा नौकर हूँ, मुलाजिम हूँ मै ?

अह्यस क्रोध से विजया को हिताहित का ज्ञान नहीं रह गया था, वह तीखे स्वर में बोली—काम करने के लिए जिसे तनखा देनी पडती है, उसे उसके सिवाय और क्या कहा जाता है ? आपके अनगिनती अत्याचार मैं जबान बन्द किए सहती रही हूँ, लेकिन जितना ही सहती रही हूँ, उत्पात बढ़ता ही गया है। जाइए, नीचे जाइए। मालिक नौकर के सिवाय आज से आपके साथ मेरा कोई नाता नहीं रहेगा। जिस तरीके से मेरे दूसरे कर्मचारी काम करते हैं, वैसा करते बने तो करें, नहीं तो मेरी कचहरी में दाखिल होने की कोशिश न करें।

विलास उछल पड़ा। दाएं हाथ की तर्जनी हिलाते हुए बोला—यह हिम्मत तुम्हारी !

विजया ने कहा, मेरी नहीं, आपकी। मेरे ही स्टेट में नौकरी करेंगे और मुझी पर अत्याचार ! मुझे 'तुम' कहने का अधिकार आपको किसने दिया ? मेरे नौकर को मेरे ही घर में जवाब देना मेरे अतिथि की मेरी ही आँखों के सामने तौहीन

करना—यह सब हिमाकत कहाँ से आई आपको ?

विलास क्रोध से पागल हो गया। चीखकर घर को गुंजाते हुए बोला—अतिथि के बाप का पुण्य बल था कि उस दिन उसकी मरम्मत नहीं की—उसका एक हाथ नहीं तोड़ दिया। कमीना, बदमाश, धोखेबाज, लोफर कहीं का ! फिर जो कभी उसे देखा···

चीख से डरकर गोपाल कन्हैयासिंह को बुला लाया था, दरवाजे पर उसकी शक्ल जो दिखाई दी, सो शर्मिन्दा हो विजया ने अपनी आवाज को संयत और स्वाभाविक करके कहा—आपको पता नहीं है, मगर मैं जानती हूँ कि आपकी यह कितनी बड़ी खुश किस्मती थी कि हाथ उठाने का आपको साहस नहीं हुआ। वे एक उच्चशिक्षित बड़े डाक्टर हैं। उस दिन आपने हाथ उठाया भी होता, तो एक बीमार औरत के कमरे में हंगामा न करके वे उसे बर्दास्त करके चले जाते। मगर मेरा यह कहा हर्गिज न भूलें कि आइंदे कभी उनके बदन पर हाथ लगाने का आप को शौक हो आए, तो पीछे से लगायेंगे, या अपने जैसे और पांच-सात जने को साथ लेकर तब सामने से लगायेंगे। खैर, शोर गुल बहुत हो चुका, रहने दीजिए। नीचे से डरकर नौकर-चाकर, दरवान तक दौड़ कर आ पहुंचे हैं। जाइए, नीचे जाइए।—और, प्रत्युत्तर का इन्तजार बिना किए ही बगल के दरवाजे से वह उस कमरे में चली गई।

उन्नीस

बेटे की जबानी यह घटना सुन कर गुस्सा, खीझ और उम्मीद टूट जाने की निराशा से रासविहारी के ब्रह्म-ज्ञान तथा आनुषंगिक आदि का नकाब एक पल में खिसक पड़ा। वे तीखे-कड़वे शब्दों में बोले—अरे बाबा, हिंदू लोग जो हमें नीच कहते हैं, वह झूठ थोड़े ही है। ब्राह्म ही हुए या जो हुए, हैं तो आखिर कैवर्त ही ? ब्राह्मण-कायस्थ का लड़का होता तो भलमनसाहत भी सीखता, किस बात से अपना भला-बुरा होता—नहीं होता है, यह अकल भी आती। जाओ, अब हल बैल लेकर खेतों में अपने कुल-धर्म को करते फिरो। उठते-बैठते तुझे मैं तोते की तरह रटाता रहा कि भले-भले यह काम हो जाने दो, फिर जो जी में आए, करना। सो नहीं, सब्र नहीं—चला उसको उभाड़ने। वह ठहरी राय-परिवार की लड़की। खूंखार हरि राय की पाती, जिसके डर से बाघ-बैल एक घाट में पानी पिया करते

थे। तू जबर्दस्ती उसकी नाक में रस्सी पिन्हाने गया—बेवकूफ कहीं का इज्जत-आबरू गया, इतनी बड़ी जमींदारी की उम्मीद निकल गई, महीने-महीने तनखा के नाम पर दो सौ रुपये आते थे, वह गए—जा, खेतिहर का लड़का अब जोत-कौड़ कर पेट चला। और अब मेरे पास नालिश करने पहुँचे हैं। जा, मेरी नजर के सामने से हट जा, अभागा, शैतान।

विलास खुद भी समझ रहा था कि यह न हुआ होता तो अच्छा था। तिस पर पिता का यह भीषण मूर्ति को देख कर उसकी तेज हुंकार ठंडी पड़ गई। फिर भी वह कोई कैफियत देने जा रहा था कि पिता नाराज होकर कमरे में चले गये। लेकिन गुस्से में बेटे को जो भी चाहे कहें, काम में कभी उत्तेजनावश जल्दीबाजी में उसे उन्होंने बिगाड़ा नहीं, आलस से भी चौपट होने की नौबत नहीं आने दी। इसलिए उस रोज तो उन्होंने विजया को शांत होने का मौका दिया और दूसरे दिन अपनी वही शांति और गंभीरता लिए विजया के बैठके में प्रकट हुए और एक कुर्सी लेकर बैठ गये।

विजया के क्रोध का पागलपन उतर गया, वह अपनी उस असंयत रूढ़ता और बेहया बकवास की याद कर लाज से गड़ी जा रही थी। घर के नौकर-चाकर और कर्मचारियों के सामने वह ऐसा जो एक नाटक खेल गई, इसी बीच वह शायद बढ़-चढ़ कर गांव में घर-घर चर्चा का विषय बन बैठा हो, तलाब और नदी के घाट पर औरतों के हंसी मजाक की खूराक बन गया हो शायद। इसके भोंड़ेपन की कल्पना से तब से वह कमरे से बाहर तक न निकली। उसकी शर्मिंदगी सौगुनी ज्यादा, यह सोच कर बढ़ गई कि आज जिसे खुले आम नौकर कहने में उसे जरा भी हिचक न हुई, दो दिन बाद उसी को पति कहकर वरमाला गले डालने की बात भी कहीं फैलने से बाकी नहीं है।

सो, जब रासविहारी धीरे-धीरे कमरे में आए और प्रसन्न मन से आसन ग्रहण किया, विजया सिर उठा कर उनकी ओर ताक भी न सकी। लेकिन इसी की वह हर पल प्रतीक्षा करती रही थी और जो-जो दलीलें और कटु आलोचनाएं उठने वाली थीं. मोटा-मोटी उसका लेखा उसने कल से ही लगा लिया था। इसीलिए एक प्रकार से वह स्थिर ही बैठी रही। लेकिन बूढ़े ने बिल्कुल उलटा राग अलाप कर विजया को दंग कर दिया। निश्वास छोड़ कर बोले—बेटी विजया, यह सुनते ही मुझे जो खुशी हुई है कि मैं कल ही दौड़ा आता यहां, अगर इस पेट की बीमारी ने मुझे बिस्तर पर पड़े रहने को मजबूर न किया होता। युग-युग जियो बेटी। तुमसे यही तो उम्मीद करता हूँ—यही मैं चाहता हूँ।—कह कर फिर एक उच्च-कोटि का दीर्घनिश्वास छोड़ कर बोले—उस सर्वशक्तिमान से यही प्रार्थना करता हूँ कि सुख, दुःख, भले-बुरे में वे मुझे जो धर्म है, जो न्याय है, उस पर अटूट-श्रद्धा

रखने की शक्ति दें। इसके बाद हाथ जोड़ कर माथे से लगाते हुए उन्होंने शायद उसी सर्वशक्तिमान को प्रणाम किया।

उसके बाद तुरत आंखें खोलकर आवेश में कहने लगे, मगर मैं किसी भी तरह यह नहीं समझ पाता कि मेरे जैसे भोले-भाले विरक्त आदमी का बेटा होते हुए भी विलास ऐसा पक्का दुनियादार कैसे बन बैठा ? जिसके बाप को आज तक भी दुनियादारी नहीं आई, हानि-लाभ की धारणा न हो सकी, वह इसी उम्र में ऐसा पक्का कर्मठ कैसे हो गया ? उनकी क्या लीला है, क्या संसार का रहस्य है, समझने का उपाय नहीं—। और फिर आंखें बन्द करके उन्होंने सिर झुका लिया।

विजया चुप बैठी रही। रासविहारी थोड़ा चुप रह कर फिर कहने लगे, मगर अति किसी बात की अच्छी नहीं। मैं जानता हूँ, काम ही विलास की जान है। काम के लिए वह अन्धा है। कर्त्तव्य की उपेक्षा उसे शूल-सी दुख देती है, लेकिन तो क्या मानी की मर्यादा नहीं रखनी होगी ? दयाल जैसे आदमी की गलती भी क्या क्षमा नहीं की जायगी ? मानता हूँ, अपराध छोटे-बड़े और धनी-निर्धन का विचार नहीं करता। तो क्या अक्षर-अक्षर उसका पालन करना होगा ? मैं सब समझता हूँ, काम न करना भी गुनाह है, खबर दिए बिना नागा करना भी गुनाह है—दफ्तर का अनुशासन तोड़ना आफिस मास्टर के लिए बहुत बड़ा अपराध है, तो क्या दयाल को भी—नहीं-नहीं बिटिया, हम बूढ़े आदमी हैं, अपने में न तो वह तेज है, न वह बल ही—विलास की कर्त्तव्यनिष्ठा की साहब लोग लाख तारीफ करें, उसे जितना बड़ा चाहे समझें, हम लेकिन हर्गिज अच्छा नहीं कह सकते। हुआ चाहे अपना लड़का, इस मुंह से झूठ तो लेकिन नहीं निकल सकता। मैं कहता हूँ, काम न हो दो दिन बाद ही होता, दस रुपये का नुकसान ही न होता, लेकिन क्या किसी की भूल-भ्रांति, दुर्बलता के लिए माफी नहीं दी जा सकती ? तुम्हारी जायदाद की चिन्ता में ही विलास का मन डूबा रहता है, यह मैं उसकी हर बात से समझता हूँ। किन्तु मुझे भूल मत समझना बेटी, खुद संसार-विरागी होते हुए भी मैं जगह-जायदाद को बचाना गृहस्थ का परम धर्म मानता हूँ। उसकी तरक्की करना और भी बड़ा धर्म है, क्योंकि उसके बिना संसार का कल्याण नहीं किया जा सकता। विलास के हाथों अगर तुम्हारी जमींदारी दुगनी, चौगुनी यहाँ तक कि दस गुनी हुई—यह सुना तो मुझे जरा भी अचरज न होगा—और हो भी रही है, मैं देख रहा हूँ। सब ठीक है, सब सच है—परन्तु इस तरक्की में कहीं जरा-अड़चन आ पड़े तो धीरज छोड़ दें, यह भी बुरा है। मैं इसीलिए उस अद्वितीय निराकार के पाद-पद्मों में बार-बार यही याचना करता हूँ कि उसकी ढिठाई के लिए तुमने उसे जो सजा दी है, उसी से वह जिसमें भविष्य के लिए चेते। काम और काम ! संसार में केवल क्या काम

के लिए ही आना हुआ है। काज के पैरों पर दया-माया की भी बलि चढ़ानी होगी ? ठीक ही हुआ, तुम्हारे ही हाथों उसे सबसे अच्छा सबक पाने का सुअवसर मिला।

विजया कुछ भी न बोली। रासविहारी कुछ देर तक गोया अपने मन में ही मग्न रहे। उसके बाद सिर उठाया। जरा हंसे और कोमल-कंठ से कहने लगे, मेरी दो संतानों में से एक काम-पागल और दूसरी दया-माया में उन्मादिनी ! एक कठोर कर्मठ, दूसरी स्नेहममता की निर्झरिणी ! मैं कल से यही सोच रहा हूँ, भगवान इन दोनों की जोडी से जब रथ चलाएंगे तो न जाने कौन सा स्वर्ग उतर आयगा। मेरी एक और विनती है बिटिया, यह अलौकिक वस्तु देख जानेको जिस में वे मुझे एक दिन के लिए भी जीवित रक्खें। यह कह कर इस बार उन्होंने सेज पर माथा रख कर प्रणाम किया। सिर उठाकर बोले—गजब है, धर्म पर भी तो उसे ऐसा वैसा अनुराग नहीं। मन्दिर-प्रतिष्ठा के लिए क्या जी तोड कोशिश की उसने ? जो उसे जानता नहीं, वह यही सोचेगा कि बिलास का ब्राह्मधर्म के सिवा संसार में और कोई उद्देश्य ही नहीं। वह सिर्फ इसी के लिए जी रहा है—और शायद कुछ नहीं जानता। मगर मेरी भी भूल देखो। बेटे की चर्चा में इस कदर भूल बैठा हूँ कि तुम्हीं को समझा रहा हूँ—मानो मुझसे तुमने उसको कम समझा है ! मानो मुझसे तुम उसका कम भला चाहने वाली हो !—वे हलका-हलका हंसे—मुझे जो इतनी खुशी है, वह इसीलिए तो। तुम्हारे दिल को मैं आईने की तरह साफ देख पाता हूँ। तुम्हारे कल्याण का हाथ तो बड़ा साफ दीख रहा है। और यह भी कहूँ, तुम्हारे सिवा यह काम कर ही कौन सकता है, करेगा ही कौन ? उसके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, सबकी संगिनी तो तुम्हीं हो। उसकी क्षमता तुम्हारी बुद्धि वह भार ढोएगा, तुम राह दिखाओगी। तुम्हारा सम्मिलित जीवन जभी तो सार्थक होगा ! इसी से आज मैं फूला नहीं समाता। मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि विलास को अब कोई भय नहीं, उसके भविष्य पर मुझे जरा भी आशंकित नहीं होना है लेकिन पूछता हूँ मैं, इतनी सूझ-बूझ, इतना ज्ञान, भावी जीवन को सफल बनाने की ऐसी अक्ल इस नन्हे-से सर में अब तक कहां छिपाए थी बिटिया ? मैं तो हैरान रह गया आज।

विजया का सर्वांग चंचल हो उठा, लेकिन वह चुप ही बैठी रही। रासविहारी ने घड़ी देखी और चौंक-से पड़े—अरे ! दस बजने लगे। एक बार दयाल की स्त्री को जो देखने जाना है।

ठीक ही हैं।—रासविहारी दरवाजे की ओर दो कदम बढ़े फिर थम गए। बोले—लेकिन असली बात तो कहने से रह ही गई।—वे लौट आए और जहाँ बैठे थे, वहीं बैठ कर बोले—अपने इस बूढ़े चाचा का एक अनुरोध तुम्हें रखना है विजया ! कहो, रक्खोगी ?

विजया मन ही मन डर गई। उसके चेहरे के भाव को कनखियों से ताक कर रामविहारी ने कहा—वह नहीं होने का। चचा का यह हठ रखना ही होगा। कहो, रक्खोगी।

विजया ने अस्फुट स्वर में कहा—कहिये।

रामविहारी बोले—उसने न केवल सोना-खाना छोड़ दिया है, बल्कि अफसोस के मारे भी जल रहा है, मैं जानता हूँ। लेकिन ऐसे में तुम्हें जरा सख्त होना है बिटिया। कल वह अभिमान से नहीं आया, लेकिन आज नहीं रह सकेगा, आ ही पहुँचेगा। लेकिन माफी माँगते ही तुम माफ कर दो, ऐसा मत करना। यही मेरा अनुरोध है। जिस बात के लिए सजा दी है, वह सजा कम से कम और एक दिन वह भोगे।

विजया के चेहरे पर आश्चर्य की झलक देखकर वे जरा हंसे। स्नेह-भीगे स्वर में बोले—तुम्हें खुद कितनी तकलीफ हो रही है, यह क्या मुझसे छिपी है बिटिया? मैं क्या तुम्हें पहचानता नहीं? आखिर मेरी ही तो बिटिया हो। तुम बल्कि उससे भी ज्यादा कष्ट पा रही हो—मैं यह भी जानता हूँ। लेकिन गुनाह की सजा पूरी हुए बिना प्रायश्चित तो होता नहीं। कम से कम यह गहरा दुख और एक दिन भोगे बिना वह मुक्त नहीं होगा! इतना कठोर न होते बने, तो आज उससे भेंट ही न करो, वह निराश लौट जाय। यह पीड़ा उसे कुछ और पा लेने दो—यही मेरा एकांत अनुरोध है।

रासविहारी के चले जाने के बाद विजया अकृत्रिम विस्मय से अभिभूत-सी बैठी रह गई। उनसे ऐसी बातों, ऐसे व्यवहार की तो उसने आशा ही नहीं की थी। वरन् इसका ठीक उलटा होगा, इस आशंका से उनके आते ही वह अपने को सख्त कर लेने की सोचे बैठी थी। विलास अकेला चोट खाकर लौट गया है, लेकिन जवाबी चोट के लिए अकेला नहीं आएगा और वैसे मै रासविहारी से सख्ती से निबटारे की नौबत आएगी—उस वीभत्सता की नंगी तस्वीर अपने मन में आँक कर तब से उसे जरा भी चैन न थी।

अब जब रासविहारी धीरे-धीरे चले गए तो उसके दिल पर से एक भारी पत्थर ही सिर्फ उतर न गया, बल्कि यह भी याद आया कि कभी इस आदमी को वह हृदय से श्रद्धा करती थी, और, वह उतनी बड़ी श्रद्धा धीरे-धीरे कैसे हट गई, उसका भी धुंधला सा आभास याद आकर उसे दुखाने लगा। ऐसा भी एक सन्देह उसके मन में झांकने लगा कि शायद हो कि बूढ़े के वास्तविक इरादे को न समझ पाकर ही उसके प्रति अन्याय किया है और उसके परलोकवासी पिता अपने बाल्यबन्धु के प्रति इस अन्याय से क्षुब्ध हो रहे हैं। वह आप ही आपको बार-बार कहने लगी, कहाँ अपराध के लिए तो वे अपने बेटे को भी माफ नहीं करते, बल्कि वे तो बार-

बार यही आग्रह कर गए कि मैं सहज ही उसे क्षमा करके उसकी सजा को कम न कर दूं।

और एक बात! बूढ़े के सभी अनुरोध, उपरोक्त आन्दोलन-आलोचना में गोपन होते हुए भी जो इशारा सबसे ज्यादा फूट उठा था, वह था विलास का अपार प्यार और उसी का अवश्यंभावी फल है—घोर ईर्ष्या।

यह बात विजया की अजानी थी, सो नहीं, लेकिन बाहर के आलोड़न से मानो वह नई लहरों में तरांगत होकर उसके हृदय में लगी। अब तक जो उसके हृदय की सतह में छनकर जमा था, वही बाहर के आघात से फूल कर हृदय के बाहर बिखरने लगा। इसीलिए रासविहारी के गए देर हो गई, तो भी उनकी बातें उसके कानों में गूंज रही थीं और वह चुपचाप खिड़की से बाहर देखती हुई खोई-सी बैठी थी। ईर्ष्या दुनियां में सदा का एक निंदित सत्य है, मगर उसी निंदित चीज ने बिजया की नजरों में विलास की बहुत-सी निंदाओं को फीका कर दिया। और, जिसे विपक्षी समझकर इन दोनों बाप-बेटों की हजारों प्रकार की प्रतिहिंसा की विभीषिका कल से उसके एक-एक पल को अवश और निर्जीव किए दे रही थी, आज फिर उन्हीं को अपना समझने का मौका पाकर उसने सन्तोष की सांस ली।

कालीपदो ने आकर पूछा—मां जी तो मैं फिर अपने घर एक चिट्ठी लिख भेजूं कि मैं नहीं जा सकूंगा?

विजया आगा-पीछा करके बोली—अच्छा....।

कालीपदो चला जा रहा था। विजया ने पुकार कर लज्जा-दुविधा जड़े स्वर में कहा—मैं क्या कहती हूँ कालीपदो, चिट्ठी जब तुम लिख ही चुके हो, तो महीने भर के लिए घर से घूम ही आओ। उनकी भी बात रहे और तुम्हारा भी घर जाना—काफी दिन से गए भी तो नहीं हो, क्या ख्याल है?

कालीपदो मन ही मन हैरान हुआ, मगर राजी होकर बोला—अच्छा तो मैं महीने भर के लिए घर से हो ही आता हूँ मां जी। यह कहकर जब कालीपदो चला गया, तो अपनी कमजोरी पर विजया को कैसी तो लज्जा हो आई, लेकिन इस पर भी फिर उसे बुलाकर मना करते भी न बना। उसमें भी लाज लगने लगी।

बीस

चहारदिवारी के किनारे जिन कुछ कमरों में विजया की जमींदारी का काम-काज होता था, उनके सामने ही लीची के कुछ घने पेड़ थे, इससे इस घर के बरामदे से उन कमरों का लगभग कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। इसके सिवाय, पूरब वाली दीवार में जो छोटा-सा दरवाजा था, उससे कब कौन कर्मचारी आता है, कब जाता है, यह जानने का कोई उपाय न था।

उसी दिन से दयाल फिर विजया के यहाँ नहीं आए। काम करने के लिए कचहरी भी आते हैं या नहीं, यह पूछताछ करने में भी उसे हिचक हुई, और विलासविहारी अब इधर नहीं फटकते, यह बात बिना किसी से पूछे ही उसने स्वतः सिद्ध मान ली थी। बीच में एक दिन दसेक मिनट के लिए रासविहारी भेंट करने आये थे, पर मामूली तौर पर तबीयत के हाल-चाल के सिवाय कोई बात न हुई।

मनुष्य के अन्तर की बात अन्तर्यामी ही जाने, लेकिन जिस प्रसन्नता और सौजन्य के साथ उस दिन उन्होंने बेटे के खिलाफ वकालत की थी, किसी अजाने कारण से उनका वह भाव बदल गया था, निश्चित रूप से यह जानकर विजया ने उद्वेग का अनुभव किया। कुल मिलाकर एक असन्तोष और अस्थिरता में ही उनके दिन बीत रहे थे। ऐसे ही कई दिन और कट गए।

तीसरे पहर जरा टहल आने के ख्याल से विजया नदी की ओर अकेली ही चलने को थी, बूढ़ा नायब बहुत-से कागज-पत्तर लेकर आ सामने खड़ा हुआ। भक्तिपूर्वक नमस्ते करके पूछा—आप कहीं बाहर जा रही हैं मां जी ? कन्हैयासिंह कहाँ है ?

विजया मुस्करा कर बोली—पास ही नदी के किनारे से हो आती हूँ जरा। दरबान की जरूरत नहीं। मुझ से कोई काम है ?

नायब बोला—जी, था थोड़ा सा। खैर, कल ही होगा।—कह कर वह लौटने लगा। विजया ने फिर से मुस्करा कर पूछा—थोड़ा ही सा काम है, तो आज ही कहिये न ? यह इतना काजग-पत्तर ?

वही सब दिखाकर नायब ने कहा—आप ही के पास आया हूँ। पिछले साल का हिसाब ठीक हो गया है, सही बनानी होगी। और, छोटे बाबू का हुक्म है, चालू साल के हिसाब में रोज-रोज आपका दस्तखत जरूरी है।

विजया बहुत हैरान हुई। वह लौटकर बैठके में बैठ गई। पीछे-पीछे नायब

आया। बहियां मेज पर रक्खीं और उसमें से एक को खोलने लगा कि बिजया ने टोक कर पूछा—यह हुक्म छोटे बाबू ने कब दिया है ?

आज ही सबेरे।

आज सबेरे वे आए थे ?

वे तो रोज ही आ रहे हैं ?

अभी वे कचहरी में हैं ?

नायब ने गर्दन हिलाकर कहा—जी, मुझे कागज-पत्तर सम्हाल कर अभी-अभी चले गए।

उस दिन का हंगामा किसी अमले से छिपा न था। विजया के सवाल का मतलब समझकर नायब ने धीरे-धीरे बहुत कुछ बताया। विलास बाबू रोज ठीक ग्यारह बजे आते है, किसी से विशेष बोलते नहीं, काम करके पाँच बजे चले जाते हैं। दयाल बाबू की स्त्री बीमार हैं, जब तक वे अच्छी नहीं हो जाती—तब तक के लिए उन्हें छुट्टी दे दी है—आदि-आदि बहुत-सी जानकारी उसने मालकिन को कराई।

शर्माई-सी सब सुन कर विजया ने समझा, विलास ने ये सारे नए कायदे-कानून रूठ कर ही शुरू किए हैं। फिर भी उसने यह नहीं कहा कि मेरी सही की जरूरत नहीं—अब तक जिनकी सही पर सब चलता रहा है, उन्हीं की सही से चलेगा। बल्कि यह कहा, आज रहने दीजिये। कल सबेरे आकर मुझ से सही करा लीजिएगा। नायब को उसने रुखसत किया और वहीं स्तब्ध हो बैठी रही। बाहर दिन का प्रकाश धीरे-धीरे बुझ गया, पड़ोसियों के घर-घर की शंखध्वनि से साँझ का आसमान गूंज उठा, फिर भी उसके उठने के आसार नहीं दिखाई दिए। पता नहीं, वह कब तक और इसी तरह बैठी रहती, लेकिन रोशनी लेकर बैरा कमरे में ज्यों ही घुसा कि अंधेरे में अकेली मालकिन को देख वह चौंक उठा—खुद विजया भी लजाकर खड़ी हो गई और बाहर निकलते ही हैरान रह गई।

जो नजर आया, वह उसकी कल्पना के भी परे था। भला वह किसी भी कारण से, किसी भी बहाने फिर इस घर में कदम रख सकता है ? लेकिन उस धुंधलके में भी साफ नजर आया कि उस दिन का वही साहब हैट समेत लगभग साढ़े छे फुट लंबा शरीर लिए गेट के अन्दर दाखिल हुआ और आम बगालियों से कम से कम ढाई गुना लम्बा डग भरता हुआ इधर ही आ रहा है।

आज उसे पुलिस कर्मचारी समझने की गलती न हुई। लेकिन आनन्द की उस अपरिमित दमकती रेखा का उसकी आकाश-पाताल व्यापी निराशा जो निगल गई ! पेड़-पौधों से घिरी आड़ी-टेढ़ी राह पर कभी-कभी उसकी देह छिप जरूर जाने लगी, लेकिन कंकरीली राह पर उसके जूते की आवाज क्रमशः निकटतर होती गई।

विजया ने मन में सोचा, इन्हें सादर बुलाकर बिठाना अन्याय है, लेकिन दरवाजे के बाहर से लौटा देना तो असाध्य ही है !

इस संकट से बचने की कोई तरकीब नहीं सूझी, सो जैसे ही राह के मोड़ पर कामिनी के पेड़ के पास उसकी ऋजु देह सामने आई कि वह मुड़ कर झट अपने कमरे में चली गई। बूढ़े नायब को कुछ पता न था, वह मजे में चला जा रहा था, अचानक साहब को देखकर वह डर गया। साहब ने उससे पूछा तो उसकी आवाज से पहचान उसकी जान में जान आई। बोला—जी हां, बैठके में ही हैं। कहकर नायब चला गया। सवाल और जवाब दोनों ही विजया के कानों पहुँचा। जरा ही देर में अन्दर जाकर नरेन ने नमस्कार किया। लाठी और टोपी मेज पर रखकर हसते-हंसते कहा—अच्छा, देखता हूँ, मेरी दवा से गजब का लाभ हुआ है। वाह !

थोडी ही देर पहले विजया ने सोचा था, आज शायद उससे आंखें उठाकर ताकते भी न बनेगा—किसी बात का जवाब तक न निकल सकेगा मुंह से। मगर गजब, उसकी आवाज का सुनना था कि न केवल उसकी दुविधा और संकोच ही छूमन्तर हो गया, बल्कि उसके हृदय के अंधेरे कोने में पड़ी सुर में बधी हुई वीणा के तार पर मानो अनजानते किसी ने उंगली फेर दी और लहमे मे अपना सारा विषाद भुला कर विजया बोल उठी—कैसे जाना ? मुझे देखकर या किसी से सुनकर ?

नरेन ने कहा—सुनकर। क्यों, आपने दयाल बाबू से सुना नहीं क्या कि मेरी दवा खाने की भी जरूरत नहीं पडती,नुस्खे पर महज जरा नजर डाल कर फाड़ फेंकने से भी आधा लाभ होता है ? और अपनी रसिकता पर खिलकर ठहाके की हसी से उसने कमरे को कपा दिया।

विजया समझ गई, हो न हो, दयाल से सारी बाते सुनकर ही आज व्यंग करने आया है। इस अस्वाभाविक ठहाके से मन ही मन नाराज होकर ठोकर लगाती हुई बोली—ओ, शायद इसीलिए बाकी आधा भी ठीक करने के लिए कृपापूर्वक नुस्खा लिख देने को पधारे है ?

चिकोटी से नरेन की हंसी थम गई। बोला—सच कह रहा हूँ, खासा तमाशा है यह !

विजया बोली–जभी इतने खुश हो पड़े है ?

नरेन का मुख मंडल गम्भीर हो उठा। बोला—खुश हुआ हूँ ? हर्गिज नही। बेशक इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि सुनकर पहले तो मजा आया था, लेकिन उसके बाद सच ही दुखी हुआ हूँ। विलास बाबू का मिजाज़ अच्छा नहीं है, ठीक है यह, नाहक ही नाराज होकर और का अपमान कर बैठते हैं, लेकिन इसीलिए आप भी उतावली होकर अपमान की बात कर बैठें, यह भी तो अच्छा

नहीं। सोच तो देखिये जरा, यह बात जाहिर हो जाय, तो भविष्य में कितनी बड़ी लज्जा और क्षोभ का कारण होगी ! यकीन कीजिए, सुनकर सच ही मैं बड़ा दुखी हुआ हूं। मेरे लिए आप दोनों में ऐसी एक अप्रिय घटना घट जाने से—

उसके हृदय की पवित्रता पर विजया मन ही मन मुग्ध हो गई। फिर भी मजाक में बोली—लेकिन हंसी भी तो दबा नहीं पा रहे हैं। और खुद भी हंस पड़ी।

अब की जबरन जोरों का गम्भीर बनकर नरेन बोला, बार-बार ऐसा क्यों सोचती हैं आप ? वास्तव में मैं दुखी हुआ हूं लेकिन उस समय मैं आप लोगों के बारे में कुछ नहीं जानता था।—कुछ देर चुप रह कर बोला—उसी दिन सारा कुछ समझा कर उनके पिता जी ने बताया—ईर्ष्या। दयाल बाबू ने भी कल यही कहा। सुन कर क्या शर्मिन्दगी हुई मुझे, कह नहीं सकता। लेकिन इतने लोगों में मुझ से ईर्ष्या करने का क्या है, यह भी तो नहीं समझ पाता। आप ब्रह्म समाज की हैं, जरूरत हो तो सबसे बात करती हैं, मुझसे भी बात की। इसमें उन्होंने कौन-सा ऐसा गुनाह देखा, यह मैं आज भी खोज कर न पा सका। खैर, आप लोग हमें माफ कीजिए···और क्या तो कहते हैं, अभिनन्दन ! वही मैं भी करता हूं। आप लोग सुखी हों।

अपने आचरण की चर्चा करते हुए भी उसने विजया के उस दिन के आचरण की बात न उठाई—विजया ने यह गौर किया, पर उसकी अन्तिम बात से यकायक उसकी आंख उमड़ आईं। गर्दन फेरकर वह किसी प्रकार से अपने आँसू रोकने लगी।

उसके जवाब का इन्तजार बिना किए ही नरेन ने पूछा—अच्छा यह तो कहिए, उस दिन कालीपदो से आपने माइक्रोसकोप क्यों भिजवाया था ?

रुंधे स्वर को साफ करके विजया बोली—आपने खुद ही तो अपनी चीज वापस मांगी थी।

नरेन बोला—ठीक है, लेकिन दाम के बारे में नहीं कहलाया। फिर तो मेरा···

विजया बोली—नहीं। बुखार में मुझ से भूल गई थी। लेकिन उस भूल की सजा तो कुछ कम नहीं दी आपने !

नरेन लजा कर बोला—लेकिन कालीपदो ने कहा—

टोक कर विजया बोली—वह मैंने सुना है। लेकिन जो भी कहे, पर आपको उपहार देने की स्पर्द्धा मुझे हो सकती है, यह आपने कैसे यकीन किया ? और सच ही ऐसा किया तो अपने हाथों क्यों नहीं सजा दी ? मैंने आपका क्या बिगाड़ा था ? कहते-कहते उसकी आवाज भर्रा गई।

नरेन ने लज्जित और चकित होकर देखा, विजया मुंह फेरकर खिड़की से

बाहर देख रही है। मुंह नहीं नजर आया, नजर आई सिर्फ गले में की हीरे की कंठी थोड़ी-सी—रोशनी में अजीब चमक फैला रही थी। दोनों कुछ देर चुप रहे। फिर नरेन बोला—रवैया मेरा ठीक नहीं हुआ, यह मैंने उसी समय समझा था, लेकिन तब तक गाड़ी खुल गई थी। बेचारे कालीपदो का क्या दोष। उस पर मेरा बिगड़ना हर्गिज वाजिब न हुआ। फिर जरा देर चुप रह कर बोला—देखिए, यह ईर्ष्या चीज जो कितनी बुरी है, अब मैंने भली तरह समझा है। वह सिर्फ अपने आप ही नहीं बढ़ती जाती, छूत की बीमारी की नाईं और पर भी हमला करने से बाज नहीं आती। अब मैं खूब समझता हूँ, मुझ से ईर्ष्या करने का भ्रम विलास बाबू के लिए कुछ हो ही नहीं सकता। उनके पिता ने भी इसके लिए दुख और लज्जा प्रकट की थी, परन्तु सुनकर शायद आप चकित हों कि मेरी अपनी भी कम गलती नहीं हुई।

विजया ने पलट कर पूछा—आपकी भूल कैसी ?

नरेन ने बड़ा सहज और स्वाभाविक जवाब दिया, नाहक ही मुझे वैसा करने से आपको सच ही क्लेश पहुँचा था, यह तो आपकी बात से सब की समझ में आ गया था। उसके ऊपर से जब रासविहारी बाबू ने ले जाकर अपने बेटे की ईर्ष्या का जिक्र करते हुए मुझे दुःख न करने को कहा, तो मेरा दुःख एकाएक मानो बढ़ गया। जी में बार-बार यही होने लगा, हो न हो कोई कारण जरूर है, नहीं तो यों ही कोई किसी से हिंसा नहीं करता। आज मैं आप से सच-सच बता रहा हूँ, उसके बाद आठ-दस दिनों तक चौबीस घन्टे में शायद तेईस घन्टे मैं आप ही को सोचा करता था। जभी तो कहा—अजीब छूत की बीमारी है यह ! काम-काज गया भाड़ में—रात-दिन आपकी चिंता ही मन में चक्कर काटने लगी। क्या जरूरत थी इसकी कहिये तो। और सिर्फ इतना ही ! दो-तीन दिन खामखा इस रास्ते से मैं गया—सिर्फ आपको देखने के लिये ! कई दिनों तक एक खासा पागल भूत मुझ पर सवार हो गया था !—कहकर वह हंसने लगा !

विजया ने मुंह उठाकर देखा नहीं, एक भी बात का जवाब नहीं दिया, चुपचाप उठी और बगल के दरवाजे से अन्दर चली गई। एक जने के होठों की हंसी पल में बुझ गई। वह जिधर से गई - उसी अंधेरे की तरफ अपलक देखता हुआ हक्का-बक्का-सा नरेन सोचने लगा—अजाने फिर कौन-सा कसूर कर बैठा !

लिहाजा जब बैरे ने आकर खबर दी कि आप चले मत जायें, आपकी चाय बन रही है, तो नरेन परेशान-सा कह उठा—चाय की तो मुझे जरूरत नहीं !

लेकिन मां जी ने आपको बैठने के लिए कहा है। कह कर बैरा चला गया। इसने भी नरेन को कम हैरान नहीं किया।

कोई पन्द्रह मिनट बाद नौकर से चाय और खुद भोजन की थाली लिये

विजया आई। लाख कोशिश करके भी वह अपने चेहरे पर से रोने की छाया पोंछ नहीं पाई, मद्धिम रोशनी में यह शायद और किसी को दिखाई नहीं देता, लेकिन डाक्टर की अभ्यस्त आंखों से यह छिपा न रहा—तो भी अब वह अचानक कोई फतवा नहीं दे बैठा। थोड़े ही दिनों में बहुत कुछ में सावधान होना उसने सीख लिया था। एक दिन लगभग अपरिचित होते हुए भी मन के मामूली कुतूहल और इच्छा की चंचलता को दबा न पाने के कारण उसने विजया की ठोढ़ी पकड़ ली थी, आज अब वह दिन न रहा उसका। इसीलिये वह चुप ही रहा।

टेबिल पर चाय रखकर नौकर चला गया। उसी के पास भोजन की थाली रखकर विजया अपनी जगह जा बैठी। थाली खींचकर नरेन कुछ इस ढंग से खाने लगा, गोया इसी का इन्तजार कर रहा था।

पाँच-छे मिनट चुपचाप कटे। विजया ही पहले बोली। मौन का भार और न सह पाकर वह मानो जबरन ही हंसकर बोली—हां आपने अपने उस पगले भूत की बात खत्म तो नहीं की?

नरेन शायद और कुछ सोच रहा था। इसीलिये सिर उठाकर बोला—किसकी कह रही हैं आप?

विजया बोली—वही उस पगले भूत की, जो कई दिनों तक आप पर सवार हो गया था। उतर गया तो वह?

अबकी नरेन भी मुड़कर हंसा—हां उतर गया।

विजया बोली-खैर, जान बची लाखों पाए! वरना जानें और कब तक आप से घुड़-दौड़ करता फिरता?

चाय का प्याला मुंह से लगाते हुए नरेन ने सिर्फ कहा—हां।

विजया ने फिर कोई अच्छी सी बात कहनी चाही, लेकिन अचानक कोई बात खोज न पाकर आकंठ उच्छ्वसित दीर्घश्वास को दबाकर चुप रह गई। दूसरे के सिर से भूत उतर जाने के आनन्द को खींचते चल सकना उसके बूते से न बना।

कमरा फिर कुछ देर तक स्तब्ध रह गया। धीरे-सुस्ते चाय का प्याला खाली करके नरेन ने टेबिल पर रख दिया। जेब से घड़ी निकाल कर बोला—बस, दस मिनट हैं। मैं चला।

विजया ने धीमे से पूछा—कलकत्ता जाने की यही शायद अन्तिम गाड़ी है?

उठकर सर पर हैट रखते हुए बोला—एक और है जरूर, पर डेढ़ घन्टे के बाद। तो चलता हूँ, नमस्कार।—कहकर उसने अपनी छड़ी सम्हाली और जरा तेजी से ही निकल पड़ा।

इक्कीस

विलास ठीक समय पर कचहरी आता और काम करके लौट जाता। खास कोई जरूरत पड़ जाती तो किसी को भेज कर विजया की राय लेता, लेकिन खुद नहीं जाता। विजया यह भी समझ गई थी कि बिना बुलाये वह नहीं आने का। लेकिन उसके सलूक में पछतावा और चोट खाए अभिमान की वेदना के सिवा क्रोध की ज्वाला न थी, सो विजया का भी गुस्सा ठंडा पड़ गया था।

बल्कि अपने ही व्यवहार में मानो कैसी तो एक नाटकीयता का अनुभव करके उसे कभी-कभी लज्जा हो आती। अक्सर उसे ऐसा लगता, न जानें कितने लोग इस पर हंसी-मजाक कर रहे हैं। इसके सिवा जो आदमी सबकी आंखों में सर्वेसर्वा बना हुआ था, खास तौर से जमींदारी के सिलसिले में डाँट-फटकार कर जिन्हें दुश्मन बना रक्खा था, उन सबकी निगाहों में अचानक उसकी ऐसी हेठी करके विजया अपने जी में सचमुच ही पीड़ा महसूस कर रही थी। पहले की स्थिति को न लौटा कर केवल इस घटना को किसी कदर अगर वह एक बार भी 'ना' कर दे पाती, तो जी जाती। उसके मन की जब ऐसी स्थिति हो रही थी, ऐसे ही में एक दिन तीसरे पहर कचहरी के बैरे ने आकर खबर दी, विलास बाबू मिलना चाहते हैं।

बिल्कुल नई-सी बात थी। विजया चिट्ठी लिख रही थी। नजर उठाकर बोली—आने को कह दो। अज्ञात आशंका से उसका मन धड़कने लगा। लेकिन विलास के अन्दर आते ही वह उठकर खड़ी हो गई। शांत भाव से नमस्कार किया। कहा, आइए। विलास बैठ गया। बोला—काम की भीड़ से आ नहीं पाया था। तबीयत तो ठीक है ?

गर्दन हिलाकर विजया ने कहा—हाँ।

वही दवा चल रही है ?

विजया ने इसका जवाब नहीं दिया। उस प्रश्न को न दुहरा कर विलास ने कहा—कल नए साल का पहला दिन है। मैं चाहता हूं, कल सबको बुलाकर सवेरे जरा भगवान का भजन करें।

उसने अपने पिछले सवाल के लिए ज्यादा तंग नहीं किया, इससे विजया

के जी पर से एक भार उतर गया। वह खुश होकर बोली—यह तो बड़ी अच्छी बात है।

विलास बोला - लेकिन नाना कारणों से मन्दिर में जाने की सुविधा नहीं हुई। अगर तुम्हें एतराज न हो तो, मेरे ख्याल में, यहीं—

विजया तुरत राजी हो गई, बल्कि उत्साहित हो उठी। बोली—तो घर को जरा फूल-पत्तों से सजा दिया जाय, तो कैसा रहे? आपके यहां फूलों की कमी तो है नहीं-सवेरे ही अगर माली से कह दें-क्या ख्याल है? नहीं हो सकेगा?

विलास ने आनन्द का खास कोई आडंबर नही दिखाया। बोला, ठीक है, वही होगा। मै सब ठीक कर दूंगा।

विजया कुछ देर चुप रही। फिर बोली—कल साल का पहला दिन है। मैं समझती हूं, कुछ खाने-पीने का आयोजन—

विलास ने इस प्रस्ताव का भी समर्थन किया और बताया, जाते हुए वह नायब से कह जायगा कि उपासना के बाद अच्छे-से जलपान का भी इंतजाम जिसमें रहे। इधर-उधर की दो-चार बातों के बाद जब विलास चला गया तो बहुत दिनों के बाद विजया के मन में तृप्ति और उल्लास की दक्खिनी बयार बहने लगी। उस दिन की उस मुठभेड़ के बाद जो चीज अव्यक्त ग्लानि के रूप में उसे हर पल कष्ट दे रही थी, उसका भार कितना अधिक था, आज उससे छुटकारा पाकर उसने इसका जैसा अनुभव किया, शायद और कभी नहीं किया था, इसीलिए आजदुःख के साथ उसने महसूस किया कि इन्हीं कै दिनों में विलास पहले से दुबला हो गया है। अपमान और पछतावे की चोट ने उसकी प्रकृति को बदल दिया है, यह अपनी आंखों से देखकर अनजानते ही विजया के एक दीर्घनिश्वास निकल पड़ा और वह मन ही मन रासविहारी की उस दिन की बातों पर गौर करने लगी। भाषा, भाव-भंगी, इशारा, सब प्रकार से यही दिखाया गया कि विलास उसे बहुत ही प्यार करता है, लेकिन भूले भी कभी इस प्यार की बात को विजया के मन में जगह नहीं मिलती। बल्कि जब साँझ के झुटपुटे में सूने घर में उसका साथीविहीन मन छटपटाने लगता तो कल्पना के चुपचाप कदम बढ़ा कर जो आदमी उसके पास आ बैठता, वह विलास नहीं, कोई और था। अलसाई दोपहरी में जब जी नहीं लगता, सिलाई भी नहीं रुचती, विशाल मकान धूप से खाँ-खाँ करता रहता, तो दूर भविष्य में इस सूने घर-गिरस्ती बसाने की जो स्निग्ध छवि उसकी आंखों में धीरे-धीरे जगती, उसमें विलास का कही जरा भी स्थान नहीं होता गोकि जो उसकी सारी जगह ऐसे घेर बैठता, जीवन-यात्रा के बीहड़ पथ पर सहायक या सहयोगी के रूप में उसका मूल्य विलास से कहीं कम था। वह जैसा ही अनिपुण था, वैसा ही निरुपाय। मुसीबत में उससे कोई मदद ही नहीं मिल सकती। तो भी यह सोचकर

आनन्द के आवेग से विजया का देह-मन थर-थर कांपने लगता कि उस निकम्मे के सारे अकाज का बोझा वह माथे पर ढोती चल रही है। विलास के चले जाने के बाद उसके मनोभाव में आज भी जो कोई परिवर्तन हुआ, सो नहीं, लेकिन आज बिना याचना के ही उसने विलास के दोष पर फिर से विचार का भार अपने हाथों ले लिया और उसके जिस स्वभाव का परिचय घटना-चक्र से मिला था, वास्तव में उसका स्वभाव उतना गिरा हुआ नहीं है, यह उसने बिना किसी से तर्क किये आप ही आप मान लिया। यहां तक कि अत्यन्त उदारता के साथ उसने अपने तईं यह भी नहीं छिपाया कि विलास जैसी मानसिक अवस्था में संसार के ज्यादातर लोगों का रवैया इससे भिन्न नहीं होता। उसने प्यार किया है और प्यार के अपराध ने ही उसे लांछित और दंडित किया है, बार-बार यही सोच कर उसने दयामिश्रित ममता से उसे माफ कर दिया।

सुबह जगते ही सुना, विलास बहुत पहले से ही लोगों के साथ हाल की सजावट में जुट पड़ा है। वह झटपट नीचे उतर आई। लजाते हुए कहा—मुझे बुलवा क्यों नहीं लिया ?

विलास स्निग्ध स्वर में बोला—जरूरत क्या थी।

विजया जरा हंसकर बोली—इतनी निकम्मी हूँ मैं कि इसमें भी थोड़ी मदद नहीं कर सकती ! खैर, कहिए, मैं क्या करूं ?

दिनों बाद आज विलास हंसा। बोला—तुम सिर्फ यह देखती रहो कि हमसे भूल हो रही है या नहीं।

अच्छा, कहकर विजया एक कोच पर जा बैठी। कुछ ही देर में पूछा—और खाने का इंतजाम ?

विलास ने मुड़कर देखा। कहा, सब ठीक हो रहा है, चिन्ता मत करो।

तो मैं उसी तरफ जाऊं तो कैसा ?

ठीक है। कहकर विलास फिर काम में लग गया।

आठ बजते-बजते सब ठीक-ठीक हो गया। इस बीच विजया कई बार आई-गई, छोटी-मोटी बातों पर विलास की राय पूछी—कहीं कोई संकोच नहीं हुआ। जानें कब अजाने ही दोनों के संचित विरोध की ग्लानि जाती रही थी और बात-चीत का रास्ता इतना सहज और सुगम हो गया था कि दोनों में से किसी ने शायद ख्याल ही नहीं किया।

विजया हंस कर बोली—मुझे निकम्मी समझ कर आपने छांट दिया, मगर मैंने भी आपकी गलती निकाली है, कहे देती हूँ।

कुछ चकित-सा होकर विलास ने कहा—निकम्मी तो हर्गिज नहीं सोचा, लेकिन···भूल कैसी ?

विजया बोली—हम हैं तो कुल चार-पांच जने, लेकिन भोजन का प्रबंध कोई बास आदमी का हो गया, पता है ?

विलास बोला—सो तो होगा। पिता जी ने अपने कुछ दोस्तों को कहा है। कौन-कौन आएंगे, यह तो ठीक मालूम नहीं।

विजया बहुत ही अचरज में पड़ गई। बोली—कहां, यह तो मुझे नहीं बताया ?

विलास खुद भी अचरज में आ गया। पूछा—कल मेरे यहां से जाने के बाद पिता जी ने तुम्हें पत्र नही भेजा ?

नहीं।

लेकिन उन्होने तो कहा—विलास थम गया।

विजया ने पूछा—क्या कहा ?

विलास कुछ क्षण चुप रहकर बोला—शायद हो कि मुझसे ही सुनने में भूल हुई हो। चिट्ठी लिखने की सोच फिर शायद भूल गए।

विजया ने और कुछ नहीं पूछा। लेकिन उसके अन्दर की प्रसन्नता की चांदनी एकाएक बदली से ढंक गई।

आधे घन्टे के बाद रासबिहारी स्वयं आ पहुंचे और नौ बजते-बजते उनके आमंत्रित मित्र एक-एक कर आने लगे। इनमें से सभी ब्राह्म-समाज के नहीं थे, शायद रासबिहारी के एकांत अनुरोध को न टाल सकने के कारण आने को मजबूर हुए थे।

रासविहारी ने सबका सादर स्वागत किया और विजया से जिनका साक्षात् परिचय नहीं था, उनका परिचय करते हुए उस घनिष्ट सम्बन्ध का इशारा करने में भी न चूके, जो निकट भविष्य में उसका उनसे होने वाला था। विजया ने धीमे से स्वागत करके उन्हें बैठने का अनुरोध किया। वह जब इन शिष्टाचारों के निर्वाह में लगी थी, तो पास ही बगीचे की पगडंडी पर दयाल बाबू दिखाई दिये। अकेले नहीं, आज एक अपरिचित तरुणी भी उनके साथ थी। देखने में बह खूबसूरत थी, उम्र में विजया से शायद कुछ बड़ी हो। करीब आकर दयाल ने उससे अपनी भानजी बताया। नाम नलिनी। कलकत्ते के कालेज में बी० ए० में पढ़ती है। गर्मी की छुट्टियां अभी शुरू नहीं हुई थीं, लेकिन मामी की सेवा सुश्रूषा के ख्याल से कुछ पहले ही, दो दिन हुए आ गई है। और गर्मी की छुट्टियां यहीं बिता कर जायगी।

यह नहीं कि नलिनी को विजया ने कलकत्ते में बिल्कुल देखा ही नहीं, परिचय नहीं था। जो हो, इतने जाने-अजाने पुरुषों के बीच वही आज उसकी सबसे अंतरंग लगी। विजया ने बाहें फैला कर उसका स्वागत किया और अन्दर ले गई।

पास बिठाकर गपशप करने लगी।

उपासना साढ़े नौ बजे शुरू होने को थी। अभी भी कुछ समय था, इसलिए सब बाहर के बरामदे में खड़े-खड़े बातें कर रहे थे। ऐसे में घर के अन्दर रासबिहारी की ऊंची आवाज सुनाई पड़ी। बड़े आदर से वे किसी को कह रहे थे—आओ बेटे, आओ। इतना काम रहते समय निकाल कर तुम आ सकोगे, यह आशा नहीं थी मुझे।

आखिर ये सम्मानित भले आदमी हैं कौन, यह जानने के लिए विजया ने सिर उठाया कि देखा, सामने नरेन है।

रासविहारी ने उन्हें न्योता दिया और वह इसीलिए इस घर में आया। बात ऐसी अनहोनी-सी थी कि विजया की सारी चिन्ता-शक्ति ही उलझ गई। वह फिर सिर उठा कर उधर देख नहीं सकी, लेकिन विलासबिहारी की विनीत स्वागत-वाणी सुनाई पड़ी और कुछ ही क्षण में दोनों को लेकर रासबिहारी कमरे के बीच में आ खड़े हुए। साथ-साथ और भी बहुत-से लोग आए। बूढ़े ने शांत-गंभीर स्वर में इन दोनों युवकों को संबोधन करके कहा—अपने-अपने पिता के रिश्ते से तुम दोनों भाई होते हो, आज खास तौर से यह बात मैं तुमसे कहना चाहता हूँ। बनमाली गये, जगदीश भी जा चुके—अब मेरी भी बुलाहट होगी। संसार में शरीर के सिवाय हम तीनों का कुछ भी भिन्न न था, आज के छोकरे तुम लोग शायद इसे न समझो—समझना सँभव भी नहीं—मैं समझाना भी नहीं चाहता। मैं आज नये साल के इस शुभ दिन में तुमसे सिर्फ यही अनुरोध करना चाहता हूँ कि अपने गृह-विच्छेद की स्याही से इस बूढ़े के इन बाकी कै दिनों को अन्धेरा मत कर दो। उनकी आखिरी बात कांप कर ठीक मानों रुलाई से रुंध गई। नरेन से रहा न गया। आगे बढ़कर उसने विलास का एक हाथ अपने दायें हाथ में लेकर आवेग के साथ कहा—विलास बाबू, आप मेरी सारी भूलों को माफ कर दें। मैं माफी मांगता हूँ।

जवाब में हाथ छुड़ा कर विलास ने जोर से नरेन को गले लगा लिया। कहा—भूल मैंने की है नरेन। तुम मुझे माफ करो।

बूढ़े रासबिहारी मुंदी आंखों कांपते कंठ से बोले—हे सर्वशक्तिमान परमपिता परमेश्वर! इस दया, इस करुणा के लिए तुम्हारे पाद-पद्मों में मेरा कोटि-कोटि प्रणाम।—उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर कपाल से लगाया और चादर के छोर से आंखें पोंछते हुए बोले—आज का यह शुभ मुहूर्त तुम दोनों के जीवन में अक्षय हो। आप सब भी आशीर्वाद करें। यह कहकर वे विस्मय-विह्वल अतिथियों की ओर देखने लगे।

दयाल के सिवा कोई कुछ नहीं जानते थे, फलस्वरूप इस मर्मस्पर्शी करुण अनुष्ठान का असली मतलब समझ न पाने के कारण सच ही उनके अचरज का कोई

हद्दोहिसाब न था। रासबिहारी पल भर में इसे भांप गए। हल्का हंसकर बोल उठे, वह कैसे कहते हैं न, दुधारी तलवार, आते भी घाव, जाते भी घाव। मेरी भी यही हालत थी। यह भी मेरा लड़का, वह भी मेरा लड़का—और, आँखों के इशारे से नरेन तथा विलास को दिखाकर कहा—अपने दाएं हाथ की जैसी पीड़ा, बाएं की भी वैसी ही। लेकिन आप लोगों की दया से आज मेरा बड़ा ही शुभ दिन है, बड़े ही आनंद का दिन। मैं और क्या कहूँ!

अन्दरूनी बात को न समझते हुए भी जवाब में सबने हर्षसूचक एक प्रकार की अस्फुट ध्वनि की।

रासबिहारी ने गर्दन को जरा आड़े करके कपड़े की कोर से फिर आँखें पोंछ कर पास की कुर्सी पर चुपचाप जा बैठे। उस स्निग्ध गंभीर मुखड़े को देखकर किसी को यह समझना बाकी न रह गया कि अनिर्वचनीय भावों से उनका हृदय इस कदर भर उठा है कि वहाँ वाक्य के लिए तिल भर भी जगह नहीं रह गई है। पकी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए दयाल उठ खड़े हुए और उपासना के पहले भूमिका के तौर पर बोले—जहां विरुद्ध हृदय मिलते हैं, वहां भगवान का आसन बिछता है। लिहाजा आज यहाँ परमपिता के आविर्भाव में दुविधा करने की गुंजाइश नहीं।

इसके बाद उन्होंने नए साल के पहले दिन प्रायः पन्द्रह मिनट की एक अच्छी सी उपासना की। उनको निश्छल विश्वास और आन्तरिक भक्ति थी, इसलिए जो कुछ कहा, सब सबको सत्य और मधुर ही प्रतीत हुआ। सबकी पलकों पर सफलता का आभास दिखाई दिया, केवल रासबिहारी की आंखों से आंसू की बेरोक धारा बहने लगी। वे चेत में हैं या अचेत हैं, देर तक यही नहीं समझ में आया।

और एक जने के मन के भाव का पता न चल सका—वह थी विजया। शुरू से आखिर तक वह आंखें नीची किए पत्थर की मूर्ति की नाईं स्थिर बैठी रही। जब सिर उठाया, तो उसका चेहरा अस्वाभाविक रूप से पत्थर की तरह ही सादा दिखाई पड़ा।

दयाल की भक्ति गद्-गद् ध्वनि की प्रतिध्वनि उस समय बहुतों के हृदय में झंकृत हो रही थी। ऐसे में रासबिहारी ने आंखें खोलीं और खड़े होकर लगभग रोने जैसा बोले—मुझमें साधना का वह बल नहीं, लेकिन दयाल का महा वाक्य कितना बड़ा सत्य है, आज मैंने उसकी उपलब्धि की। सम्मिलत हृदय के संगम कर उस एकमात्र अद्वितीय परब्रह्म का आविर्भाव होता है, अपने हृदय में आज इसे प्रत्यक्ष करके मैं सदा के लिये धन्य-धन्य हो गया—और, आगे बढ़कर दयाल को अपनी छाती से चिपका कर कांपते हुए स्वर में बोले—दयाल, भाई मेरे, यह सिर्फ तुम्हारे पुण्य, तुम्हारे ही आशीर्वाद का फल है।

दयाल की आंखें छलछला आईं। उनसे कुछ कहते न बना, चुप खड़े रहे।

बगल वाले कमरे में जलपान का भरपूर प्रबन्ध था। विलास ने जैसे ही इसका इशारा किया, रासविहारी ने बाधा देकर अतिथियों को लक्ष्य करके कहा, आप लोगों से आज एक और आशीर्वाद की भीख माँगता हूँ। वनमाली जिन्दा होते, तो अपनी बेटी के ब्याह की बात खुद वही आपसे कहते, मुझे नहीं कहनी पड़ती।—पर अभी वह भार मुझी पर पड़ा है। मैं इस समय वर-कन्या का पिता हूँ। इसी महीने के आखिरी हफ्ते में मैंने पूर्णिमा-तिथि को विवाह का दिन तै किया है—आप लोग हृदय से आशीर्वाद दें कि यह शुभ कार्य निर्विघ्न संपन्न हो—। यह कहकर उन्होंने एक जोड़ा सोने का कंगन जेब से निकाल कर दयाल के हाथ पर रख दिया।

दयाल कंगन लेकर विजया की ओर बढ़े। हाथ बढ़ाकर बोले—शुभ काम की सूचना से मनसा वाचा कर्मणा तुम्हारा कल्याण चाहता हूँ, हाथ बढ़ाओ बिटिया।

लेकिन उस सिर गाड़े मूर्ति-सी बैठी रमणी की तरफ से कोई चेष्टा नहीं हुई। दयाल ने अपने अनुरोध को दुहराया। फिर भी वह उसी तरह बैठी रही। नलिनी पास ही बैठी थी, उसने अपने मामा का यह संकट समझा और हसकर विजया की दोनों कलाई उसने बढ़ा दीं और आशीर्वाद के स्वर्णवलय समझ कर मूर्छित सी बेबस नारी के अवश दोनों हाथों में दयाल ने एक-एक करके अत्याचार की हथकड़ी डाल दी।

लेकिन किसी ने कुछ न समझा, बल्कि इसे मधुर लज्जा समझ, स्वाभाविक और संगत जान सब खिल पड़े और देखते ही देखते शुभ-कामनाओं के कल-गुन्जन से घर मुखरित हो उठा।

खाना-पीना हो चुका। देर हो रही थी, इसलिए एक-एक करके सब रुखसत होने लगे इस समय किस तरह से अपने को जब्त करके विजया अतिथियों का सम्मान और मर्यादा रख सकी, यह अन्तर्यामी के सिवा और जिस एक आदमी से छिपा न रहा, वह था रासविहारी। मगर उन्होंने इसका आभास तक न होने दिया। खाने के बाद एक लौंग मुंह में डालते हुये बोले—तो मैं चला बेटी। बूढ़ा आदमी। धूप बढ़ जायेगी तो चलना मुश्किल। यह कह कर फिर एक बार आशीर्वाद दिया और छाता खोलकर निकल पड़े।

सब जा चुके थे। सिर्फ विजया और नलिनी बरामदे के एक ओर खड़ी बात कर रही थीं। विजया बोली—आपसे परिचय होने से कितनी खुशी हुई, कह नहीं सकती। यहाँ जब से आई हूँ, बिल्कुल अकेली पड़ गई हूँ। ऐसी कोई नहीं कि दो बातें कर सकूं। आप जब चाहें, जब सुविधा हो, आया करें।

नलिनी खुशी-खुशी राजी हुई।

विजया बोली—शायद आज उस बेला मैं भी आपकी मामीजी को देखने

जाऊं। लेकिन तुरत घूप की ओर देखकर परेशान-सी बोल उठी—दयाल बाबू जरूर कचहरी पहुँच गये, उन्हें बुलवा भेजूं, कहकर जैसे ही वह बढ़ी कि रोक कर नलिनी ने कहा—वे तो अभी घर जायेंगे नहीं, एक बारगी शाम को ही लौटेंगे।

विजया शर्मा कर बोली—तो यह मुझसे पहले क्यों नहीं बताया? मैं दरबान को बुला देती हूँ। वह आपको···

नलिनी बोली, दरबान को बुलाने की जरूरत नहीं, मैं नरेन बाबू की राह देख रही हूँ। वे अपने मामा से मिलने गये हैं–तुरन्त आ जायेंगे।

विजया चकित होकर बोली, अच्छा, उनसे आपका पहले से परिचय था क्या? मुझे तो नहीं मालूम था।

नलिनी बोली—परिचय नहीं था। मामा की चिट्ठी पाकर परसों स्टेशन आई, तो देखा खड़े हैं। उन्हीं के साथ आई।

विजया बोली—ओ, यह बात है।

नलिनी बोली, हाँ। मगर आदमी कितने अच्छे हैं! दो ही दिन में जमाने के अपने-से हो गये हैं। अभी हमारे ही यहां नहायेंगे, खायेंगे फिर तीसरे पहर की गाड़ी से कलकत्ते जायेंगे, यही तै हुआ है। मेरी मामी जी भी उन्हें लड़के जैसा प्यार करती हैं।

विजया गर्दन हिलाकर बोली, हां। बड़े अच्छे आदमी हैं।

नलिनी कहने लगी, उनसे कभी किसी का मनमुटाव भी हो सकता है, यह आज अपनी आँखों न देखा होता तो मैं किसी तरह यकीन हीं नहीं कर पाती। मुझे बड़ी खुशी हुई कि विलास बाबू से आज उनका मेल हो गया लेकिन उनके पिता जी भी कितने अच्छे आदमी हैं। मेरा ख्याल है, अपने समाज के हर किसी को उन्हीं जैसा होने की कोशिश करनी चाहिये। जिस दिन रासविहारी बाबू का आदर्श अपने समाज के घर-घर प्रतिष्ठित होगा, उसी दिन समझूंगी कि अपना ब्राह्मधर्म सफल हुआ, सार्थक हुआ। आपका क्या ख्याल है? ठीक है न?

थोड़ी ही दूर पर हाथ में टोपी सम्हाले तेजी से इधर ही आता हुआ नरेन दिखाई पड़ा। विजया उसके सवाल को टाल गई और उधर की ओर दिखाती हुई बोली—लीजिये, वे आ रहे हैं।

नरेन करीब आया। विजया को लक्ष्य करके बोला—अच्छा इसी बीच में दोनों में घनिष्ठता भी हो गई। सचमुच, साल के पहले दिन मेरा सुप्रभात समझो। सबेरा वड़ा अच्छा कटा। उम्मीद बंधती है कि यह साल अच्छा ही कटेगा। मगर आप ऐसी फीकी पड़ी सी क्यों लग रही है, कहिये तो?

विजया आजिजी से बोली—आखिर एक दिन में यह सवाल कितनी बार पूछना चाहिए, सो तो कहिये?

नरेन ने हंसकर कहा—और एक बार पूछ चुका हूँ, क्यों ? मगर उससे क्या हो गया। आप झट से इतनी बिगड़ क्यों जाती हैं ? यह तो मेरी पुरानी आदत है। और, वह हंसने लगा।

विजया किसी तरह से अपनी हंसी को रोक कर बनावटी गंभीरता से बोली, इस विषय में हर कोई क्या आप जैसा निर्दोष हो सकता है ? फिर भी देखिए, कालीपदो जैसे ऐसे भी निंदुक हैं, जो आप जैसे साधु को भी बिगड़ैल कहते हैं।

कालीपदो का नाम सुनकर नरेन ठठाकर हंस पड़ा। हंसी रुक जाने पर वोला, आप बेहिसाब रूठने वाली हैं, किसी भी हालत में किसी का कसूर माफ नहीं कर सकतीं। इस ऐसे भी लोग से आपका मतलब और किनसे है ? कालीपदो और आप, यही तो ?

विजया ने सिर हिलाकर कहा—और स्टेशन में जिन-जिन लोगों ने देखा, वे भी।

नरेन ने कहा—और ?

विजया बोली—और जिन्होंने सुना, वे भी।

नरेन बोला—फिर तो यों कहिए कि मेरे बारे में राज भर के लोगों की यही राय है ?

विजया अपनी उस गंभीरता को कायम रखकर ही बोली—हां, हम सभी की यही राय है।

नरेन बोला—धन्यवाद। अब आपके बारे में लोगों की क्या राय है, सो बताइये।—कहकर हंसने लगा।

इसके इशारे से विजया का चेहरा तमतमा उठा। लेकिन दूसरे ही क्षण वह हंसकर बोली, आप अपनी बड़ाई नहीं करनी चाहिये, पाप होता है। वह बल्कि आप बताइए। लेकिन अभी नहीं, नहाने-खाने के बाद। देर भी तो काफी हो चुकी, वह काम भी यहीं निबटा लें, तो न हो ? उसने नलिनी की तरफ ताका।

नलिनी बोली—लेकिन मामी जी जो इन्तजार करती रह जाएंगी ?

विजया ने कहा—मैं आदमी से उन्हें कहला भेजती हूँ।

नलिनी कुंठित-सी हुई। कहा, मुझे जाना ही पड़ेगा। बीमार ठहरीं बिचारी, सारी दोपहर कोई पास न होगा, तो कष्ट होगा।

कहना वाजिब था, लिहाजा जिद करते न बना। लेकिन उसकी ओर ताक कर जानें किस ख्याल से तो नलिनी बोल उठी—आप न हो तो यहीं नहाएं-खाएं नरेन बाबू, मामी जी को मैं खबर कर दूंगी। हाँ, जाने के पहले उनसे मिलने आइएगा।

और, आपने मुझे ऐसा एहसान फरामोश नीच समझा कि इस धूप में मैं

आपको अकेली छोड़ दूं ?—इसके बाद विजया की ओर देखते हुए नरेन बोला, आपके पास तो एक अच्छी-सी दावत बाकी है ही, उसी दिन होगा जरा सबेरे-सबेरे पहुँच कर इस न्योते को भी पूरने की कोशिश करूंगा। तो नमस्कार। नलिनी से कहा—बस, और देर न करें। उसने अपनी टोपी सिर पर रख ली।

नलिनी उतर कर करीब गई। पर और एक जने जो काठ-सी खड़ी रही, उसकी दोनों आँखों से धार चढ़ाई छुरी-सी चमक छिटकने लगी—पहले दोनों में से किसी से नहीं देखा। देखा होता तो शायद दो-एक कदम आगे बढ़कर ही नरेन फिर पीछे मुड़कर हंसते हुए यह कहने का साहस हर्गिज नहीं कर सकता कि अच्छा, एक काम करें तो न हो ? जो चीज शुरू से ही अनर्थों की जड़ रही है जिसके लिए इलाके भर में अपनी बदनामी है, आज के इस आनन्द के दिन में वह मुझी को ईनाम में क्यों नहीं दे देतीं ? रुपये दो सौ, कल या परसों मैं भेज दूंगा। इतना बोल कर उसने फिर हंसना चाहा, लेकिन उत्साह के अभाव में बना नहीं। बल्कि जवाब में उधर से एक बारगी अप्रत्याशित और बड़ा ही कड़ा जवाब मिला। विजया ने कहा, कीमत लेकर कोई चीज देने को मैं उपहार नहीं, बेचना कहती हूँ। ऐसा उपहार देकर आप खुश हो सकते हैं, लेकिन आपकी शिक्षा कुछ और तरह की है। सो आज खुशी के दिन उसे नहीं बेचना चाहती।

इस आघात की कठोरता से नरेन ठक् रह गया। एक तो यों ही वह विजया के रुख का कोई ठीक-ठिकाना नहीं पाता था, तिसपर आज तो उसके जी में भूख की आग-सी जल रही थी—सो उसकी अचानक जो आंच निकल आई, नरेन उसे पहचान न सका। वह जरा देर रूखे चेहरे की तरफ चुपचाप देखता रहा, फिर बड़ी पीडा के साथ बोला—मैं अपनी गई-बीती हालत की बात भूल भी नहीं गया हूँ और उसे छिपाने की भी चेष्टा नहीं की है कि आप उसकी याद दिला रही है।

उसने नलिनी को दिखाते हुए कहा, मैं इन्हें भी सारा किस्सा बता चुका हूँ। पिता जी बड़ी तकलीफ मे रहकर गुजरे। उनके मरने के बाद घर-द्वार, जो भी जायदाद यहां थी, सब कर्ज के कारण बिक गई—मैंने किसी से कुछ नहीं छिपाया। मैंने उपहार दिया है, ऐसा तो कहा नहीं। अच्छा, आप ही कहें, नहीं कहा है यह सब ?

शर्मा कर नलिनी ने हामी भरी—हाँ।

विजया का चेहरा दुःख, लज्जा, क्षोभ से विवर्ण हो उठा—वह विह्वल-सी सिर्फ उन दोनों की ओर देखती रह गई।

उसकी उस अपरिसीम वेदना को मथते हुए मलिन मुंह लिए नरेन ने फिर कहा—मेरी बात पर आप प्रायः बहुत बिगड़ उठती हैं। शायद यह सोचती हों कि अपनी अवस्था को तड़प कर मैं अपने को आप लोगों के बराबर बताना चाहता

हूँ—हो भी सकता है, हर बात में अपना वजन ठीक नहीं रख सकता—लेकिन वह मेरे सामने स्वभाव का दोष है। लेकिन खैर, कोई असम्मान किया हो तो मुझे माफ करें। और, मुंह फेर कर वह चल पड़ा।

बाईस

रास्ते भर उन दोनों में यही बात होती रही। नलिनी ने पूछा, क्या उपहार देने की कह रहे थे ?

थके हुए स्वर में नरेन बोला—फिर कभी बताऊंगा, आज नहीं।

बाँस के उस पुल के पास जाकर नरेन सहसा रुक गया। बोला—आज तो मुझे माफ करना होगा, मैं लौट जाता हूँ। लेकिन नलिनी को विस्मय से अभिभूत देखकर बोला—यों एकाएक लौट जाना कितना बड़ा जुल्म हो रहा है, वह मैं जानता हूँ। फिर भी मुझे माफ करना पड़ेगा—आज मैं किसी भी हालत में न जा सकूंगा। अपनी मामी जी से कह देंगी, फिर कभी आकर मैं···

उसके इस आकस्मिक बदल जाने से नलिनी को जितना आश्चर्य हुआ था, उससे कहीं ज्यादा हुआ उसकी आवाज सुनकर और उसका चेहरा देखकर। इसीलिए उसने और ज्यादा आग्रह नही किया। सिर्फ इतना ही बोली, आपने खाना भी तो नहीं खाया। अब फिर कब आएंगे।

परसों आने की कोशिश करूंगा। यह कहकर वह जिधर से आया था, उसी राह स्टेशन की ओर तेजी से चल दिया।

बैहार लगभग पार कर चुका था कि देखा कोई लड़का हाथ ऊंचा किए जी-जान से उसकी तरफ दौड़ा आ रहा था। वह उसी के लिए दौड़ा आ रहा है और हाथ के इशारे से उसे ही रुकने को कह रहा है, यह सोचकर नरेन रुक गया। थोड़ी ही देर में परेश आ पहुंचा। बोला—तुम्हें मां जी ने बुला भेजा है। चलो।

मुझे ?

हिं—चलो न।

नरेन ने फिर खड़ा रह कर संदेह के स्वर में कहा—तू समझ नहीं पाया परेश—मुझे नहीं।

जोरों से सिर हिलाकर परेश बोला—हिं—तुम्हीं को। तुम्हारे सर पर

साहब की टोपी जो है। चलो।

नरेन फिर कुछ देर चुप रहा। पूछा—तेरी मां जी ने क्या कहा तुझसे ?

परेश बोला—मां जी दौड़ कर ऊपर की सीढ़ी छत से नीचे आई—बोली—परेश, जरा दौड़ कर जा, उस बाबू को सीधे यहां पकड़ ला। कहा—सर पर साहब की टोपी है—जा, भागकर जा, तुझे बढ़िया-सा एक लट्टू ले दूंगी।—चलो न।

अब उसकी परेशानी का मतलब समझ में आया। लट्टू के लोभ से वह इस कड़ी धूप में इंजन की रफ्तार से दौड़ा आया है। उसे साथ ले जाए बिना न लौटेगा। एक बार जी में आया कि अपनी ही ओर से उसे लट्टू का दाम देकर बिदा कर दे। लेकिन आज ही उसके इस तरह से बुलाने का कारण क्या हो सकता है—यह कुतूहल वह रोक न सका। फिर भी जाना ठीक होगा या नहीं, यह तै करने में कुछ और देर लग गई और तै भी कुछ न हो पाया, लेकिन आखिरकार अनिश्चित पैर उसके उसी ओर धीरे-धीरे बढ़ने लगे। तमाम राह वह मन में बुलाने के कारण को ही ढूंढने में जान खपाता रहा, लेकिन यह उसकी नजर में न आया कि बुलाना ही सबसे बड़ा कारण है बाहर के कमरे में कदम रखते ही विजया सामने जा खड़ी हुई। दो गीली और उत्सुक आंखों से उसे देखते हुए तीखे स्वर में बोली, बिना खाए-पीये इस धूप में बड़े निकल जो पड़े ? मैं नाहक ही बिगड़ती हूँ, मैं बड़ी बुरी हूँ—और खुद ?

नरेन बड़े अचरज से बोला—यानी ? किसने कहा, आप बुरी हैं आपसे यह सब किसने कहा ?

विजया के होंठ कांपने लगे। बोली—आपने कहा है। आपने नलिनी के सामने मेरा इस तरह से अपमान क्यों किया ? अपमान भी मेरा ही किया और मुझी को सजा देने के ख्याल से बिना खाए-पीये चले जा रहे हैं ? मैंने क्या बिगाड़ा है आपका ? कहते-कहते उसकी आंखें डबडबा आईं। उसी को सम्हाल लेने के लिए ही शायद वह उधर की खिड़की पर जाकर बाहर की ओर देखती हुई इधर पीठ करके खड़ी हो गई। नरेन हक्का-बक्का-सा खड़ा रह गया। इस तोहमत का कहां कौन-सा जवाब है, जैसे यह ढूंढे न मिला, वैसे ही यह भी न सोच पाया कि इसका कारण क्या है।

बैरा आकर बता गया कि नहाने का पानी रख दिया है। विजया ने मुड़कर शांत भाव से कहा, देर मत कीजिये, जाइये।

नहाकर नरेन खाने बैठा। हाथ में पंखा लिए जब विजया उसके पास आकर बैठ गई, तो छिपे तौर से उसके सर्वांग को झकझोरती हुई लज्जा की आंधी-सी बह गई। झलने को तैयार हुई, तो नरेन ने बड़े संकोच से कहा—पंखा झलने की

जरूरत नहीं, आप रख दीजिए उसे।

विजया मुस्कराकर बोली—आपको न हो जरूरत, मुझे है। पिताजी अक्सर कहा करते थे, आदमी को कभी यों ही बैठे नहीं रहना चाहिए।

नरेन ने पूछा—आपने भी तो अभी खाया नहीं है ?

विजया बोली—नहीं। मर्दों के पहले हमें खाना भी नहीं चाहिये।

नरेन खुश होकर बोला—अच्छा, ब्राह्म होने के बावजूद आपका आचार-व्यवहार तो हम लोगों जैसा ही है।

विजया ने यह नहीं बताया कि बहुत से कम ब्राह्म-परिवार में ऐसा नहीं, बल्कि ठीक उलटा होता है। केवल उसके पिता ही अपने घर हिंदू-व्यवहार कायम रख गए थे। उसने बताया बल्कि यह कि इसमें अचरज की तो कोई बात नहीं। हम न तो विलायत से ही आए हैं और न ही हमें काबुल से ही आचार-व्यवहार मंगवाना पड़ा है। ऐसा न हो, जभी ताज्जुब की बात होती।

दरवाजे पर से नौकर ने इत्तला दी—मां जी, सरकार बाबू खाता-बही लिए नीचे खड़े हैं। क्या उन्हें अभी वापिस जाने को कह दूं ?

विजया ने गर्दन हिलाई—हां। आज अब देखने की फुर्सत नहीं। कह दो कल लाएं।

नौकर चला गया, तो नरेन ने विजया की तरफ नजर उठाकर देखते हुए कहा, यही मुझे सबसे अच्छा लगता है।

यही क्या ?

नौकरों का यह पुकारना। कहकर वह हंसते हुए बोला, आप ब्राह्म-महिला भी हैं, आलोक-प्राप्त भी और खास तौर से बड़े आदमी भी। ऐसे आलोक-प्राप्त बहुत-से परिवार में आज-कल मुझे इलाज के सिलसिले में जाना पड़ता है। उन परिवारों में नौकर-चाकर महिलाओं को मेमसाहब कहा करते हैं। सच्ची मेम-साहबें उन्हें जिस निगाह से देखती हैं, चूंकि वह मालूम है, इसलिए वेतनभोगी नौकरों से मेमसाहब कहला कर अपनी आत्ममर्यादा बनाये रखती हैं।—और परिहास जैसा हा-हा करके उसने कमरे को गुंजा दिया। विजया खुद भी हंस पड़ी। नरेन की हंसी रुकी तो वह फिर बोला—जैसे, नौकर-नौकरानियों के मां-जी कहकर पुकारने के बजाय मेमसाहब कहना ज्यादा इज्जत का हो ! पहले दिन तो मैं समझ ही नहीं सका कि बैरा मेमसाहब कहता किसे हैं। नौकर ने कहा क्या, जानती हैं ? कहा, मैंने बहुत-से साहबों के यहां काम किया है, वास्तव में मेमसाहब कहते किसे हैं, यह मुझे खूब मालूम है। मगर करूं क्या डाक्टर साहब ? नए दरबान ने मालकिन को मां-जी कह दिया था, इसलिए मेमसाहब ने उसे एक रुपया जुर्माना कर दिया। गनीमत कहिये कि नौकरी बच गई ! इतना तो बिगड़ीं। अच्छा, आपने तो ऐसा

बहुत देखा होगा, है न ?

हंसकर विजया ने गर्दन हिलाई ।

नरेन बोला—एक दिन मुझे यह देखना होगा कि इन मेमसाहबों के बच्चे मां को मां कहते हैं या मेमसाहब ! और फिर अपने मजाक की खुशी में हंसकर उसने जैसे आसमान सर पर उठा लेने की तैयारी की ।

विजया ने मुस्कराकर कहा—खा-पी कर दिन भर दूसरों की चर्चा का मजा लें, मुझे कोई एतराज नहीं, लेकिन आज मुझे खाने न देंगे क्या ?

शर्मा कर जल्दी-जल्दी नरेन दो-चार कौर निगल गया और फिर सब भूल गया । बोला—आखिर मैं भी तो चार-पांच साल विलायत रहा, लेकिन ये देशी साहब···

तर्जनी उठा कर शासन करने के ढंग से विजया बोली—फिर पराई निन्दा ।

आच्छा, बस । कहकर वह फिर खाने लगा । और तुरत बोला—लेकिन अब और नहीं खाया जाता···

विजया बोली—वाह, कुछ भी तो नहीं खाया ! उंहूँ, अभी नही उठ सकते । न हो पराई निन्दा करते-करते ही अनमना होकर खाएं । में कुछ न कहूँगी ।

नरेन हंसना चाह रहा था कि सहसा गंभीर हो उठा । बोला—आप इसी में कह रही हैं कि खाना नहीं हुआ—कलकत्ते का मेरा रोज का खाना देखें तो आप दंग रह जाएं । देख नहीं रही हैं, इन्ही कै महीनों में किस कदर दुबला हो गया हूँ । मेरे डेरे का रसोइया जैसा पाजी है, वैसा ही बदमाश है कंबख्त नौकर । सुबह-सुबह पका-चुका कर कहां चल देता है, ठिकाना नहीं—मुझे लौटने में कभी दो बज जाते हैं, कभी चार भी । वही ठंडा खाना । दूध कभी बिल्ली पी जाती है, कभी खिड़की में से घुसकर कौआ सब बिखेर देता है । देखते ही घृणा होती है । आधे दिन तो खाना ही नहीं नसीब होता ।

गुस्से से विजया का चेहरा लाल हो उठा । बोली—ऐसे नौकर-चाकरों को निकाल बाहर नहीं करते ? अपने डेरे में, इतने रुपये कमाने के बाद भी अगर इतनी तकलीफ है, तो नौकरी करने का कौन-सा लाभ है ?

नरेन बोला, एक हिसाब से आपका कहना ठीक है । एक दिन बक्स में से किसने तो दो सौ रुपये चुरा लिये, एक दिन खुद ही कहां तो सौ-सौ के दो नोट भुला आया । अन्यमनस्क आदमी को तो कदम-कदम पर मुसीबत । जरा रुक कर बोला—सहते-सहते लेकिन कष्ट का आदी हो गया हूँ, अब वैसा नहीं खलता । सिर्फ भूख लगने पर खाने की तकलीफ कभी-कभी असह्य हो उठती है ।

विजया सिर झुकाए चुप रही । नरेन कहने लगा, सच पूछिये तो नौकरी

मुझे अच्छी भी नहीं लगती, मुझसे करते भी नहीं बनती। जरूरत भी बड़ी मामूली है अपनी—आप जैसा कोई बड़ा आदमी दोनों जून दो मुट्ठी खाने को दे देता और मैं अपनी धुन में लगा रह पाता तो और कुछ भी न चाहता। लेकिन वैसे बड़े आदमी क्या हैं अब ? कहकर फिर उसने हंसी का एक ऊंचा हलकोरा उठाया। बिजया पहले सी ही सिर झुकाए बैठी रही। नरेन बोला, लेकिन आपके पिता जिंदा रहे होते तो शायद मेरा बड़ा उपकार होता—वे जरूर मुझे इस टुकड़खोरी से रिहाई दिलाते।

उत्सुक आंखों उसे देखकर विजया ने पूछा—यह आपने कैसे जाना ? आप तो उन्हें पहचानते भी न थे ?

नरेन बोला—नहीं। मैंने भी उन्हें कभी नहीं देखा, उन्होंने भी शायद मुझे कभी नहीं देखा। फिर भी वे मुझे बहुत स्नेह करते थे। पता है आपको, मुझे रुपया देकर विलायत किसने भेजा था ? उन्होंने ही। अच्छा, हमारे कर्ज के बारे में उन्होंने क्या आपसे कभी कुछ न कहा ?

विजया बोली—कहना ही तो संभव लगता है। मगर आपका मतलब क्या है, यह बिना जाने तो जवाब नहीं दे सकती मैं।

नरेन कुछ देर जानें क्या सोचता रहा। बोला, छोड़िये भी। अब यह चर्चा बिल्कुल फिजूल है।

विजया बेताब-सी होकर बोली—न, कहिए आप। मैं सुनना चाहती हूँ।

नरेन फिर जरा सोच कर बोला, जो चुक-चुका कर खत्म हो गया, उसे सुन कर भी क्या करना ?

विजया जिद कर बैठी—उंहूँ। यह नहीं हो सकता। मैं सुनना चाहती हूँ, आप कहिये।

उसके आग्रह की प्रबलता देख नरेन हंसा, बोला, वह बेमतलब होगा, इतना ही नहीं—कहने में मुझे भी शर्म आती है। शायद हो कि आप यह सोचें कि मैं चालाकी से आपके सेंटिमेंट पर आघात करके—

अधीर होकर विजया बीच ही में बोल उठी, अब और खुशामद नहीं कर सकती मैं, आपके पैरों पड़ती हूँ, कहिए।

खा-पी चुकने के बाद।

नहीं, अभी ही—

अच्छा, कहता हूँ, कहता हूँ। लेकिन एक बात पूछूं, हमारे घर के बारे में कभी उन्होंने आपसे कुछ नहीं कहा ?

विजया बहुत ही असहिष्णु हो गई, मगर कोई जवाब न दिया।

नरेन ने मुस्करा कर कहा, अच्छा, नाराज न हों, कहता हूँ। मैं जब विला-

यत जा रहा था, तभी अपने पिता जी से मुझे मालूम हुआ कि मुझे आपके पिता जी ही भेज रहे हैं। तीन दिन हुए, दयाल बाबू ने मुझे चिट्ठियों का एक गट्ठर दिया। जिस कमरे में टूटे-फूटे असबाब पड़े हैं, चिट्ठियां उसी कमरे की एक दराज में थीं। मेरे पिता जी की चीज के नाते दयाल बाबू ने चिट्ठियां मुझे ही दीं। पढ़कर मैंने देखा, उनमें से दो-एक आपके पिताजी की लिखी हुई हैं। शायद आपने सुना हो, कर्ज के दुःख से अन्तिम दिनों पिता जी जुआ खेलने लगे थे। एक चिट्ठी में शायद इसी का इशारा था। उसके बाद नीचे की ओर एक जगह उन्होंने दिलासा देते हुए पिता जी को लिखा, घर की फिक्र मत करो, नरेन आखिर मेरा भी तो लड़का है, घर मैंने उसको उपहार दिया।

मुंह उठाकर विजया ने कहा, उसके बाद ?

नरेन बोला—उसके बाद दूसरी-दूसरी बातें लिखी हैं। लेकिन यह चिट्ठी बहुत पहले की लिखी है बहुत मुमकिन है कि आगे चलकर उनका वह इरादा बदल गया हो और इसीलिए आप से कुछ कह जाना जरूरी न समझा हो।

अपने पिता की अन्तिम इच्छाओं का एक-एक अक्षर याद आकर विजया के दीर्घ निश्वास निकला। कुछ क्षण वह स्थिर रही, रहकर बोली, तो यह कहें कि घर पर दावा करेंगे, कह कर वह हंसी।

नरेन खुद भी हंसा। प्रस्ताव को मजे का मजाक समझ कर बोला, दावा जरूर करूंगा और आपही को गवाह रक्खूंगा। आशा है, सच बात ही बताएंगी।

सिर हिलाकर विजया ने कहा—बेशक। लेकिन गवाह क्यों रक्खेंगे ?

नरेन बोला—नहीं तो साबित कैसे होगा ? आखिर अदालत में यह तो प्रमाणित करना पड़ेगा कि घर मेरा है।

विजया गंभीर होकर बोली—दूसरी अदालत की जरूरत नहीं, पिता जी का आदेश ही मेरी अदालत है। घर मैं आपको लौटा दूंगी।

उसके मुंह की शक्ल और आवाज ठीक ठट्ठा-सी बेशक न लगी, मगर उसके सिवाय और हो क्या सकता है, यह सोचने की भी गुंजाइश नहीं। खास कर विजया के परिहास की भंगिमा ऐसी गूढ थी कि उसकी शक्ल से बलपूर्वक कुछ कहना बड़ा कठिन था। इसीलिए खुद भी नरेन बनावटी गंभीरता से बोला तो उनकी चिट्ठी आंखों देखे बिना ही शायद घर मुझे दे देंगी ?

विजया बोली, नहीं, चिट्ठी मैं देखना चाहती हूँ। लेकिन, उसमें अगर यही बात हो, तो उनका आदेश मैं हर्गिज न उठाऊंगी।

नरेन बोला—आखीर तक उनका वही इरादा था, इसका ही सबूत वहां है ?

विजया ने जवाब दिया, इरादा नहीं था, इसका भी तो सबूत नहीं ?

नरेन बोला, लेकिन मैं अगर न लूं, दावा न करूं ?

विजया बोली—यह आपकी मर्जी। वैसी हालत में आपकी फूफी के बेटे हैं। मेरा विश्वास है, अनुरोध करने पर वे दावा करने से इनकार न करेंगे।

नरेन हंसकर बोला—यह विश्वास अपना भी है। यहां तक कि मैं हलफ लेकर भी कहने को तैयार हूँ।

विजया इस हंसी में साथ न दे सकी। चुप रही।

नरेन फिर बोला–गर्ज कि मैं लूं न लूं, आप देकर ही रहेंगी ?

विजया बोली, गर्ज कि पिता की दान की हुई चीज मैं हड़प नहीं करूंगी, यही मेरी प्रतिज्ञा है।

उसके संकल्प की दृढ़ता देख नरेन मन ही मन दंग रह गया, मुग्ध हो गया। कुछ देर मौन रहकर स्निग्ध स्वर में बोला, उस घर को जब अच्छे काम के लिए दान किया है, तो मैं न भी लूं तो आपको हड़प जाने का पाप न लगेगा। इसके सिवाय, वापस लेकर मैं करूंगा क्या ? मेरा अपना कोई है नहीं कि उसमें रहेगा। मुझे कहीं न कहीं बाहर काम करना ही पड़ेगा। उससे तो जो व्यवस्था की गई है, वही सबसे अच्छी है। एक बात और। वह यह कि विलास बाबू को हर्गिज राजी न कर सकेंगी आप।

इस अन्तिम बात से विजया जल-भुन उठी। बोली, अपनी चीज के लिए दूसरे को राजी कराने की चेष्टा करने का फालतू समय मेरे पास नहीं। मगर आप तो और एक काम कर सकते हैं। घर की जब आपको जरूरत नहीं, तो आप उसका जो वाजिब हो, दाम मुझसे ले लीजिये। फिर तो आपको नौकरी भी नहीं करनी पड़ेगी और मजे में अपना काम भी कर सकेंगे। आप राजी हो जायं नरेन बाबू। एकांत विनती भरा अनुनय का यह स्वर अकस्मात नरेन के हृदय में तीर की तरह जा चुभा और उसे चंचल कर दिया, और गरचे विजया के झुके हुए मुखड़े पर विनय के छिपे इशारे को पढ़ने का मौका न मिला, तो भी यह समझने में देर न लगी कि यह मजाक नहीं, सत्य है। पिता के कर्ज के लिए उसे गृहहीन बनाकर यह बेचारी सुखी नहीं है, बल्कि जी में पीड़ा ही महसूस करती है और किसी बहाने अपने दुःख के उस भार को उतारना चाहती है, यह निश्चित जान उसका हृदय भर उठा। लेकिन, इसी नाते यह प्रस्ताव तो नही माना जा सकता। जो प्राप्त नहीं, उसकी भीख भी कैसे ले ? एक बड़ी बात और भी। जो सांसारिक बातें पहले बिल्कुल समस्या-सी थीं, उनमें से बहुतेरी अब उसके लिए सहज हो गई थीं, उसने साफ समझा, आवेग में विलास के लिए विजया कहे चाहे जो भी, उसकी अड़चन को ठेलकर वह अपने इस संकल्प को अन्त तक किसी भी तरह कार्य-रूप में

नहीं बदल सकेगी । इससे उसकी लज्जा और पीड़ा ही बढ़ेगी, और कुछ न होगी ।

नरेन कुछ क्षण उसके गड़े हुए मुखड़े की तरफ देखता रहा और मजाक के तौर पर बोला—आपके मन की बात मैं समझ गया । किसी बहाने गरीब को कुछ दान करना चाहती हैं, यही न ?

ठीक यही बात और भी हो चुकी थी एक बार । उसी के दुहराए जाने से वेदना से म्लान होकर विजया ने नजर उठाई और कहा, इस बात से मुझे कितनी तकलीफ होती है, आपको मालूम है ?

मन ही मन हंसकर नरेन बोला—तो असली बात क्या है, सुनूं ?

विजया ने कहा, मैंने बराबर सच बात ही कही है, लेकिन आपके मन में पाप है, इसीलिए आप यकीन नहीं कर सके । आप गरीब हों, चाहे बड़े आदमी हों, मेरा क्या ? मैं तो केवल अपने पिता के आदेश का पालन करने के लिए आपको लौटा रही हूं ।

नरेन अचानक भयंकर गम्भीर हो गया । उसमें भी थोड़ी-सी मिथ्या रह गई, बोला, उसे छोड़िए, प्रतिज्ञा तो बड़ी-बड़ी किए जा रही हैं, लेकिन पिता जी के हुक्म मुताबिक लौटाना हो तो और कितनी चीज लौटानी होंगी, मालूम है ? सिर्फ घर ही नहीं ।

विजया बोली—ठीक तो है । अपनी सारी ही संपत्ति लौटा लीजिए ।

अबकी नरेन ने गर्दन हिलाई । बोला, चीख कर मुझे दावा करने को तो कह रही हैं । यह भी डर दिखा रही हैं कि मैं न करूं तो मेरी फूफी के बेटों को दावा करने के लिए कहेंगी । लेकिन उनकी आज्ञा के अनुसार मेरा दावा कहां तक पहुँच सकता है, जानती हैं ? केवल मकान और कुछ बीघे जमीन ही नहीं, उससे कहीं ज्यादा ।

विजया ने उत्सुक होकर पूछा—पिताजी आपको और क्या दिया है ?

नरेन बोला—उनकी वह चिट्ठी भी मेरे पास हैं । उन्होंने सिर्फ उतना-सा ही दान देकर मुझे विदा नहीं कर दिया था । यहां जो कुछ देख रही हैं आप, उस दान में सब हैं । मैं सिर्फ मकान पर ही दावा नहीं कर सकता । यह मकान, यह घर, यह सारी मेज-कुर्सी, आईना-दीवारगी, खाट-पलंग, घर की नौकर-नौकरानी, अमले-मुलाजिम—यहां तक कि उनकी मालकिन तक पर दावा कर सकता हूँ, मालूम है ? रट तो लगा रही हैं पिता के हुक्म की बार-बार—देंगी यह सब ?

पांव के नाखून से सिर के बाल तक सिहर उठे विजया के । मगर उसने कोई जवाब न दिया । मुंह झुकाए कठोर होकर बैठी रही ।

गर्व के साथ कौर मुंह में डालते हुये चिकोटी काट कर नरेन बोला—क्यों,

लग रहा है कि दे सकेंगीं सब ? न हो तो बल्कि जरा विलास बाबू से एकांत में राय-मशबिरा कर लें।—वह ठठा कर हंसने लगा।

लेकिन इस बार विजया ने माथा जो उठाया तो उसकी वह जोरों की हंसी गोया मार खाकर सन्न हो गई ! विजया के चेहरे पर जैसे लहू ही नहीं—ऐसे सूखे और पीले चेहरे पर नजर पड़ते ही नरेन परेशान होकर बोल उठा, आप पागल हो गईं क्या ? मैं क्या सच ही यह दावा करने जा रहा हूं या कि कभी करूंगा ? इससे तो लोग मुझी को पकड़ कर पागलखाने में डाल देंगे।

विजया मानो कुछ सुन ही नहीं पाई। बोली, कहां है, देखूं पिता जी की चिट्ठी ?

नरेन अचरज से बोला— खूब फरमाया, मैं क्या जेब में लिए फिरता हूं ? फिर उसे देखकर आपको लाभ क्या है ?

न हो लाभ, आप उन्हें दरबान के मारफत भेज दें जरा। दरवान आपके साथ कलकत्ते जायगा ?

इतनी हड़बड़ ?

हाँ।

तेईस

रात उनींदी गई, इसकी पूरी थकावट लिए सुबह जब विजया नीचे बैठके में आई, तो देखा, सिरिश्ते की बहियां मेज पर करीने से रक्खी हैं और बूढ़ा गुमाश्ता करीब ही खड़ा इन्तजार कर रहा है। वह झुककर बोला—माँ जी, यह सब आज ही हो जाना चाहिए।

उसे दो घन्टे के बाद आने को कह कर विजया ने ऊपर वाली बही उठा ली और खिड़की से सटा हुआ जो कोच पड़ा था, उस पर जा बैठी। ध्यान देने की उसमें शक्ति ही न थी—उसकी उद्‌भ्रांत दृष्टि लेखा से परे खिड़की से बाहर इधर-उधर भाग रही थी। एकाएक नजर आया, बगीचे के एक ओर एक पेड़ के नीचे खड़े बूढ़े रासविहारी परेश से क्या सब तो पूछ रहे हैं। अंगुली से कभी तो नीचे का कमरा कभी छत की तरफ इशारा कर रहे हैं। दोनों की बात तो एक भी नहीं सुनाई पड़ी, तो भी विजया पल भर में बूढ़े के रहस्यमय इशारे का मर्म समझ गई।

थोड़ी ही देर में परेश को छोड़कर वे कचहरी में दाखिल हो गये। परेश

लौटा आ रहा था। खिड़की की राह इशारा करके विजया ने उसे बुलाकर पूछा—तुझसे क्या पूछ रहे थे ?

परेश बोला—अच्छा तुम्हीं कहो माँ-जी, सरकार बाबू से पैसे लेकर मैं लटै-गुड्डी लाने नहीं चला गया था ? डाक्टर बाबू जब खा रहे थे, तब मैं घर था भला ?

विजया बोली, नहीं।

परेश बोला, फिर जो बड़े बाबू कह रहे हैं कि कंबख्त ठीक-ठीक बता, नहीं तो प्यादों से बंधवाकर तुझे मोगली चढ़ाऊंगा। मैंने कह दिया, नए दरवान ने तुमसे झूठ-मूठ का लगाया है। मुझसे मां जी ने कहा, परेश भागकर जा, डाक्टर साहब को बुलाला, तो मैं तुझे बढ़िया-सा लटै ले दूंगी—जब तो मैं गया। मगर यह बड़े बाबू को बता मत देना मां जी तुमसे कहने को मना किया है।

विजया ने परेश को दिलासा देकर विदा किया कि उनसे न कहेगी और फिर जहां बैठी थी, बैठकर खाता उलटने लगी। लेकिन अबकी उसकी नजरों के आगे सारे आंकड़े लिपे-पुते हो गए। न केवल इसलिये कि रात जगी थी, बल्कि असह्य क्रोध से उसकी दोनों आँखें आग की लौ सी जलने लगी। जरा ही देर में बाहर लाठी ठकठकाकर धीरे-धीरे रासविहारी अन्दर आये और विजया का ध्यान खींचने के लिए हलका-सा खाँसकर एक कुर्सी पर बैठ गये।

बिजया ने खाता से नजर उठाकर कहा, आइये आज इतना सवेरे ? रास-विहारी ने तुरत उस सवाल का जवाब न देकर बड़ी बेसब्री से पूछा—तुम्हारी आँखें बेतरह लाल हैं बिटिया, सर्दी तो नहीं लगी ?

सिर हिलाकर विजया ने बताया, नहीं।

रासविहारी जैसे सुना ही नहीं, उत्कन्ठा दिखाते हुए बोले—न कहने से ही तो नहीं सुनने का ? या तो रात अच्छी नींद नहीं आई या कुछ—

नहीं, कुछ भी नहीं हुआ है।

मगर आंखें यों लाल होने का कोई कारण तो—

विजया ने फिर कोई जवाब न देकर काम में लग गई। यह देखकर रास-विहारी थम गये। थोड़ी देर थमकर बोले—धूप के डर से ही सबेरे-सबेरे आना पड़ा बिटिया। दस्तावेजों को जरा देखना है। सुना, घोषपाड़ा की सीमा के लिये चौधरी लोग मुकदमा करने वाले हैं।

जमींदारी के निहायत जरूरी कागज-पत्तर वनमाली अपने ही पास रक्खा करते थे। एक तो हरदम इनकी जरूरत ही नहीं पड़ती फिर खो न जाय कहीं, यह कह-कर कभी भी उन्होंने उन चीजों को अलग नहीं होने दिया। कलकत्ते से यहां आते समय विजया ये कागज अपने साथ लाई थी और अपने सोने के कमरे की लोहे वाली

आलमारी में बंद करके रखा था। विजया ने पूछा—वे मुकदमा करेंगे किसने कहा ?

रासविहारी समझदार वाली मुख्तसर हंसी हंसकर बोले—कहा किसी ने नहीं बिटिया, मुझे हवा में खबर मिल जाती हैं, यह न होता तो इतनी बड़ी जमींदारी अबतक चला पता ?

विजया ने पूछा—कितनी जमीन का दावा वे कर रहे हैं ?

मनही मन लेखा लगाकर रासविहारी बोले, होगी····बहुत कम भी हुई तो दो बीघा जमीन तो होगी।

विजया ने लापरवाही से कहा—बस ? तो इतनी जमीन वही ले लें। इसके लिये मामले-मुकदमे की जरूरत नहीं।

रासविहारी ने बड़े आश्चर्य मान करके दुःख के साथ कहा, तुम्हारी जैसी लड़की के मुंह से ऐसी बात की उम्मीद मैंने नहीं की थी बिटिया। आज अगर बिना किसी हुज्जत के दो बीघे छोड़ दें तो कल दो सौ बीघे न छोड़ने पड़ेंगे, यह किसने कहा ?

मगर ताज्जुब, इतनी बड़ी झिड़की के बाद भी विजया न डोली। उसने सहज ढंग से कहा, लेकिन सच ही तो हमें दो सौ बीघे छोड़ने नही पड़ रहे हैं। मैं कहती हूँ, मामूली सी बात के लिए मामले मुकदमे की जरूरत नहीं।

रासविहारी मर्माहत हुये। बार-बार सर हिलाकर बोले—यह हर्गिज नहीं हो सकती बिटिया, हर्गिज नहीं। तुम्हारे पिता जी जब सब कुछ मुझ पर सौंप गये हैं, तो जब तक मैं जिन्दा हूँ, बगैर प्रतिवाद के दो बीघा तो क्या, दो अंगुल भी जगह छोड़ देने से भारी पाप होगा। उसके सिवा भी और कारण हैं, जिसके लिए उन कागजों को एक बार अच्छी तरह से देखना जरूरी है। जरा तकलीफ करो, ऊपर से बक्स मंगवा दो।

विजया ने उठने की कोशिश नहीं की, बल्कि पूछा, और भी कारण हैं ?

रासविहारी बोले—हां।

विजया बोली—क्या ?

मनही मन बेतरह खीझ उठने पर भी अपने को जब्त करके रासविहारी ने कहा, कारण आखिर एक तो है नहीं, जबानी क्या कैफियत दूं तुम्हें ?

इतने में खाता-बही लेने के लिये सरकार बाबू के आते ही लज्जित होकर विजया ने कहा, इस बेला तो नहीं कर सकी, उस बेला आकर ले जाइएगा।

जी, जैसा हुक्म हो—कहकर सरकार लौटा जा रहा था। विजया ने पुकार कर कहा—एक काम है लेकिन। आपको मालूम है, कचहरी का वह नया दरबान कब से बहाल हुआ है ?

सरकार बोला—कोई तीन महीने हुये होंगे।

विजया बोली, जो भी हो, उसकी अब जरूरत नहीं। इस महीने के बीस दिन अभी भी बाकी हैं, इतने दिनों की ज्यादा तनखा देकर उसे आज ही जवाब दे दीजियेगा।

सरकार हैरान होकर चले गये। उसका कसूर क्या है, यह पूछने को जी चाहा, मगर हिम्मत नहीं पड़ी।

विजया समझ गई और बोली, किसी कसूर के लिए नहीं, लेकिन वह मुझे जंचता नहीं, इसलिये जवाब दे रही हूँ। तनखा लेकिन पूरे महीने की दीजियेगा।

रासविहारी का चेहरा क्षण में तमतमा उठा, पर क्षण में ही अपने को सम्हाल कर हंसते हुए बोले, तो बिना कसूर के किसी की रोटी मारना क्या अच्छा है बिटिया ?

विजया ने इसका कोई जवाब नहीं दिया, इससे भरोसा पाकर सरकार ने कहना चाहा—तो फिर उसे—

हां, हटा दें, आज ही। विजया ने खाते में जी लगाया। सरकार ने फिर भी कुछ उम्मीद की और जरा देर खड़ा रहा। आखिर चला गया। रासविहारी पांचेक मिनट चुप बैठे रहे और फिर अपनी उसी प्रार्थना को दुहराया, जरा तकलीफ गवारा करके उठे बिना नहीं चलने का बेटी। पुराने दस्ताबेजों को एकबार शुरू से आखीर तक पढ़ना ही पड़ेगा।

सिर उठाये बिना ही विजया बोली— क्यों ?

रासविहारी गंभीर होकर बोले, कहा तो, विशेष जरूरत है। बार-बार वही बात कहने का तो मुझे समय नहीं विजया।

विजया वही देखती रही और बोली, यह तो ठीक कहा आपने, मगर कारण एक भी न बताया।

बताए बिना तुम न उठोगी ? रासविहारी ने कुछ क्षण आसरा देखा और धीरज खोकर बोल बैठे, इसका मतलब यह कि तुम मेरा विश्वास नहीं करती ?

विजया नजर झुकाये काम करती रही, कोई जवाब नहीं दिया। इस चुप्पी का मतलब इतना साफ था, इतना तीखा था कि मारे क्रोध के रासविहारी का चेहरा स्याह पड़ गया। उन्होंने फर्श पर अपनी छड़ी को ठोककर कहा, तुम किसलिये मेरा इतना बड़ा अपमान करने की साहस करती हो ? किसलिए मेरा अविश्वास करती हो, कहो तो ?

विजया ने शान्त कंठ से कहा, मेरा भी तो आप विश्वास नहीं करते। मेरे पैसों से मेरे ही पीछे जासूस लगाने से मन का भाव क्या हो सकता है, यह आप जरूर समझ सकते हैं, इस पर मेरी संपत्ति के मूल दस्तावेज वगैरह हासिल करने का मतलब मैं और कुछ लगाऊं, तो वह अस्वाभाविक है ? या वह आपका

अपमान करना है ?

रासविहारी को मानो काठ मार गया। उनकी इतनी पक्की चाल कलकत्ते की विलासिता और आदर-जतन में पली एक भोली लड़की के सामने पकड़ जायेगी, उनके पक्के दिमाग में इसकी संभावना आई ही नहीं और इसी की शिकायत वह उनके मुंह पर करेगी, यह तो मानो उनके स्वप्न से भी परे था।

बड़ी देर तक विमूढ़ से बैठे रहने के बाद रासविहारी ने फिर एकबार जूझने के लिये कमर कसी। और, ऐसे स्वभाव के लोगों का जो सबसे बड़ा अस्त्र है, तूणीर से उसी को निकालकर उस बेबस बालिका पर छोड़ा। बोले, वनमाली की पत रखने के लिए मैंने ऐसा किया। एक मित्र के कर्त्तव्य के नाते ही तुम्हारी गति-विधि पर मुझे नजर रखनी पड़ी है। एक अभागे को बैहार से पकड़वा मंगाकर उसके साथ कल तमाम दिन जो बिताया, क्या मैं इसका मतलब नहीं समझ सकता ? और इतना नहीं ? उस दिन आधी रात तक उससे हंसी-मजाक करके भी तुम्हारा पेट नहीं भरा, न लौट सकने के बहाने उसे यहीं रहना पड़ा। इससे तुम्हें तो शर्म नहीं आती, लेकिन हम लोगों को तो घर-बाहर मुंह दिखाना मुहाल हो गया। समाज में किसी के सामने सिर उठाने की गुंजाइश न रही।

बात इतनी मर्मांतक न होती तो शायद हो कि विजया अपमान और क्रोध से उसी समय जोरों से उसका प्रतिवाद करती, लेकिन इस चोट ने उसे मानो विवश बना दिया।

कनखियों से विजया के रक्तहीन चेहरे पर अपने ब्रह्मास्त्र की महिमा देखकर रासविहारी बड़ी तृप्ति से कुछ देर चुप रहे। उसके बाद बोले, ये क्या अच्छी हरकते हैं बिटिया, इन्हें रोकने का कोशिश करना क्या मेरा फर्ज नहीं ?

विजया को स्तब्ध देखकर फिर से जोर देकर बोले, उंहूँ, चुप रह जाने से काम न चलेगा विजया, जवाब तुम्हें देना होगा।

फिर भी विजया चुप ही रही तो हाथ की छड़ी को दुबारे जमीन पर ठोंक कर बोले, न, चुप रहने से न होगा। ये मामले संगीन हैं—जवाब देना ही पड़ेगा।

अब इतनी देर के बाद विजया ने सिर उठाकर ताका। उसके फीके होंठ एक बार कांप उठे, फिर धीरे-धीरे बोली, मामला जितना ही संगीन क्यों न हो, झूठी बात का क्या मैं जवाब दे सकती हूँ आपको ?

रासविहारी ने जोश के साथ पूछा—तुम इसे झूठा कहकर उड़ाना चाहती हो ?

विजया फिर थोड़ा चुप रहकर वैसे ही धीमे-धीमे बोली, उड़ाना मैं बिल्कुल नहीं चाहती चाचा जी। मैं आपको सिर्फ यही कहना चाहती हूँ कि यह झूठा है और यह झूठा है, यह बात आप खुद सबसे ज्यादा जानते हैं, यह भी आपको

बता देना चाहती हूँ।

रासविहारी सिट-पिटा से गये। पहली बात के लिए तो वे तैयार थे, लेकिन आखिरी बात के लिए बिल्कुल नहीं। किसी भी हालत में उनके मुंह पर विजया उन्हें झूठा और झूठी बदनामी फैलाने का जुर्म लगा सकती है, यह बात उनकी कल्पना से भी परे थी। उनके मुंह से अपनी कोई बात न निकल सकी—कल के खिलौने की तरह उन्होंने विजया की बात को दुहराया—यह झूठा है, यह बात मैं सबसे ज्यादा जानता हूँ ?

विजया उठ खड़ी हुई। बोली—आप गुरुजन हैं, इस बात पर आपसे वाद-विवाद करने को जी नहीं चाहता। दस्ताबेज रहने दें अभी, मामला-मुकदमा जरूरी समझूंगी, तो आपको बुलवा भेजूंगी। कहकर वह बगल के दरवाजे से अन्दर चली गई।

चौब्बीस

सबसे पहले तो विजया के जी में आया था कि जैसे भी हो कल सवेरे ही कलकत्ता भाग कर इस व्याधा के फंदे से जान बचानी होगी। लेकिन उत्तेजना का पहला बार जैसे ही कट गया, उसे लगा, इससे जाल की फंसरी गले में और कसा जायगी, इतना ही नहीं, साथ ही साथ निंदा का धुंआं उठकर वहां के आसमान तक को गन्दा करने से बाज न आयगा। ऐसे में वह कलकत्ते के समाज में ही कैसे मुंह दिखाएगी ? लेकिन यहां भी वह घर से न निकल सकी। गर ये वह समझ रही कि उसे छोड़ने के लिए नहीं बल्कि अपनाने के लिए ही रासविहारी ने यह निंदा निकाली और एक बारगी निराश न हो जाने तक इस झूठ का वे प्रचार नहीं करेंगे, तो भी दो दिन के बाद जब हिसाब की बहियां लेकर गुमाश्ते ने भेंट करना चाहा, तो तबियत की नासाजगी का बहाना बताकर विजया ने बहियां ऊपर मंगवालीं। अपने कर्मचारी के सामने होने में भी उसे शर्म आने लगी कि कहीं किसी सूराख से बात उसके कानों पहुंच गई हो और उसकी भी नजर में अवज्ञा और उपहास छिपा हो।

एक बात से वह जितना ही डर रही थी, उतनी ही जी-जान से उसकी कामना कर रही थी—उसके पिता की चिट्ठी लेकर नरेन खुद ही आएगा लेकिन पांच-छः दिनों में उस समस्या का हल हो गया डाकिए के मार्फत चिट्ठी आई जरूर

मगर डाक से । नरेन खुद नहीं आया । वह क्यों नहीं आया, यह अनुमान करने में उसे जरा भी देर न लगी । उसने ठीक यही संदेह किया था कि किसी बहाने नरेन के कानों यह खबर पहुँचा कर रासबिहारी इस घर का दरवाजा उसके लिए बन्द न कर दे । हाथ में चिट्ठी लेकर विजया सोचने लगी । लेकिन इतनी आसानी से अगर उसका इधर का रास्ता बन्द हो जाय, इस तरह अनायास अगर वह भी इस झूठे कलंक का बोझा उसके माथे चढ़ा कर डरसे खिसक पड़े, तो बदनामी का यह भार जितना भी झूठा क्यों न हो, वह ढोती फिरेगी किस सहारे ? वैसे यह झूठा भार ही परम सत्य होकर उसे धूल में मिला देगा ।

ऐसी ही अभिभूत हो थिर बैठी वह कितना क्या जो सोचने लगी, उसका अन्त नहीं । बड़ी देर बाद खड़ी हुई और अपने स्वर्गीय पिता के हाथो लिखी दोनों चिट्ठियों को माथे से दबा कर झर-झर आंसू बहाने लगी । आँखें पोंछ कर बार-बार वह चिट्ठी पढ़ना चाहने लगी, बार-बार आंसू से दृष्टि धुंधली हो उठी । अन्त में बड़ी देर में जब उसने उन्हें पढ़ लिया तो पिता की आंतरिक इच्छा उससे अविदित न रही । कभी उसी के लिए उन्होंने नरेन को आदमी बनाना चाहा था, यह बात स्फटिक की तरह स्वच्छ हो उठा और यह बात और चाहे जिससे छिपी हो, रास-विहारी से छिपी न थी, यह समझना बाकी न रहा ।

और भी पांच-छः दिन निकल गए । एक दिन सुबह जगकर विजया ने देखा, घर में राज-मजूरे लगे हैं । बाँस-वांस बाँधकर वे घर की पोताई की जुगत कर रहे हैं । कारण सोचते ही उसके सर्वांग को अबश बनाते हुए याद आया, पूर्णिमा को सिर्फ सात दिन रह गये हैं ।

दिन भर तेजी से काम होता रहा, तो भी वह किसी को बुलाकर यह न पूछ सकी कि यह किसके हुक्म से हो रहा है या इसके लिये उससे पूछा क्यों नहीं गया ।

बहुत दिनों के बाद आज कन्हैयासिंह के साथ विजया नदी के किनारे घूमने निकली थी । एकाएक दयाल आ पहुँचे । बोले--मैं आज तुम्हें ढूंढता फिर रहा हूँ बिटिया ।

विजया ने चकित होकर कारण पूछा, तो बोले, अब समय कहाँ रहा ? निमंत्रण-पत्र छपाना होगा, तुम्हारी सखी-सहेलियों और मित्रों को सादर बुलाने की चेष्टा करनी होगी—उनके नाम-धाम मालूम हो जायं तो—

विजया ने सख्त होकर पूछा—निमंत्रण पत्र शायद मेरे ही नाम से छपाया जायगा ?

दयाल मन ही मन जानते थे कि यह विवाह सुखकर नहीं । संकुचित होकर बोले—नहीं बिटिया, तुम्हारे नाम से क्यों ? रासविहारी जब वर-कन्या दोनों ही के

अभिभावक हैं, तो न्योता उन्हीं के नाम से किया जायगा, यही तै पाया है।

विजया बोली, तो क्या उन्होंने ही किया है ?

दयाल गर्दन हिला कर बोले—हाँ, किया तो उन्हीं ने है।

विजया बोली—तो यह भी वही तै करें। मेरे सखी-सहेली, मित्र कोई नहीं।

दयाल इसका जबाव न दे सके। चलते-चलते बात हो रही थी। विजया अचानक पूछ बैठी, आपने जो चिट्ठियां नरेन बाबू को दी थीं, उन्हें क्या पढ़ा था आपने ?

दयाल बोले—नहीं बेटी, दूसरे की चिट्ठी मैं क्यों पढ़ूं ? नरेन के पिता का नाम देखकर मैंने सोचा, चिट्ठिया जिनकी हैं, उनके लड़के को ही देना वाजिब है। एक बार जी में आया था कि तुम्हें पूछ लूं, क्यों बिटिया, कोई गलती हुई ?

बूढ़े को शर्मिंदा होते देख विजया स्निग्ध स्वर में बोली—उनके पिता की चीज, उन्हें दी, ठीक तो किया। अच्छा, उन्होंने क्या इस सम्बन्ध में आपसे कुछ नहीं कहा ?

दयाल बोले, कुछ नहीं,। लेकिन अगर कुछ जानना हो तो उनसे पूछ कर मैं कल ही तुम्हें बता सकता हूँ।

विजया ने अचरज से पूछा, कल ही कैसे बता सकेंगे ?

दयाल बोले, लगता है, बता सकूंगा। आजकल वे रोज ही मेरे यहां आया करते हैं न।

विजया शंकित होकर बोली, आपकी स्त्री की बीमारी फिर बढ़ गई है, आपने तो मुझे यह नहीं बताया ?

दयाल मुस्काकर बोले, न, अभी वे अच्छी हैं। नरेन का इलाज और भगवान की दया—। उन्होंने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया।

विजया के अचरज की सीमा न रही। दयाल की ओर देखकर उसने पूछा—फिर उन्हें रोज क्यों आना पड़ता है ?

दयाल प्रसन्नवदन बोले, जरूरत न हो, मगर जन्मभूमि की माया क्या सहज ही जाती है बेटी ! इसके सिवा इधर उसे काम बहुत कम हैं वहां दोस्त-अहबाब भी खास नहीं—इसीलिए साँझ यहीं बिता जाते हैं। और खास करके मेरी स्त्री उन्हें एक बारगी बेटे-सा ही मानती हैं। मानने लायक है भी। बातों-बातों में जब इतनी दूर आ ही गई बिटिया, तो एक बार अपने इस घर में चलो न ?

चलिए—कहकर विजया साथ-साथ चलने लगी।

दयाल कहने लगे, मैंने तो इतना निर्मल, ऐसा भला आदमी अपनी इतनी बड़ी उम्र में कभी देखा ही नहीं। नलिनी की इच्छा है, बी. ए. पास करके डाक्टरी

पढ़ गी। इसके लिए उसे कितना उत्साह देते हैं, कितनी मदद देते हैं, इसका ठिकाना नहीं।

विजया चौंक उठी। कलकत्ते से इतनी दूर आकर सांझ बिताने का यही सन्देह इतनी देर से उसके मन में जहर सा उफन रहा था। दयाल ने मुड़ कर देखा, स्नेहार्द्र स्वर में बोले, तो फिर रहने भी दो, थक गई हो तुम।

विजया बोली, नहीं, चलिए।

उसकी गति के धीमेपन से ही दयाल ने थकने की बात उठाई थी, लेकिन उसकी शक्ल देखी होती, तो यह बात जवान पर लाने का भी साहस नहीं कर पाते।

उस समय कदम-कदम पर कठिन धरती जो विजया के पैरों के नीचे से खिसकती जा रही थी, इसका अन्दाज लगाना दयाल के लिए असम्भव था। जभी वह कहते गए, नरेन की मदद से नलिनी ने कई किताबें खत्म कर डालीं। लिखने-पढ़ने का दोनों को ही बड़ा अनुराग है।

देर तक चुपचाप चलने के बाद आखिरी कोशिश करके अपने को संयत बनाकर विजया ने धीरे-धीरे पूछा, आप क्या और कोई शुबहा नहीं करते ?

दयाल ने खास कोई अचरज नहीं दिखाया। सहज भाव से पूछा—कैसा शुबहा बेटी ?

इस सवाल का जवाब भी विजया तुरत न दे सकी। उसकी छाती मानो फटी जाने लगी। अन्त में कहा, मेरा ख्याल है, नलिनी के बारे में उनके भाव को साफ स्वीकार करना उचित है।

दयाल ने हामी भरते हुए कहा—ठीक है। लेकिन उसका समय अभी बीत तो नहीं गया। बल्कि मुझे लगता है, जब तक दोनों का परिचय और थोड़ा गहरा नहीं हो जाता, तब तक कुछ न कहना ही ठीक है।

विजया समझ गई, यह सवाल औरों के मन में भी उठा है। कुछ देर चुप रहकर बोली, लेकिन नलिनी के लिए तो नुकसानदेह हो सकता है। उन्हें मन को स्थिर करने में शायद समय लगे, लेकिन तब तक नलिनी का—

संकोच और पीड़ा की बात उसके मुंह से न निकली। लेकिन दयाल ने शायद समस्या की इस दिशा को सोच नहीं देखा था। संदिग्ध स्वर में बोले—बहुत ठीक। लेकिन अपनी स्त्री से मैंने जहाँ तक सुना है, उससे—लेकिन तुमसे तो कहा है, नरेन का हम लोग खूब विश्वास करते हैं। उनसे किसी का कोई नुकसान हो सकता है और वे भी भूल से भी किसी के प्रति अन्याय कर सकते हैं, यह तो मैं सोच भी नहीं सकता।

वे न सोच सकें, लेकिन फिर भी उसी समय अन्याय किस हद तक पहुँच

रहा था, यह केवल अन्तर्यामी ही जानते थे।

दोनों जब दयाल के बैठके में पहुँचे, संध्या की छाया घनी हो आई थी। एक मेज के दो ओर दो कुर्सियों पर बैठे नरेन और नलिनी। सामने खुली किताब। हरूफ धुंधले हो उठने की वजह से पढ़ना छोड़कर आलोचना शुरू हो गई थी। नलिनी इधर को मुंह किए बैठी थी। उसी ने विजया को पहले देखा और उमगकर स्वागत किया। लेकिन विजया का मुखड़ा वेदना से विवर्ण हो गया, साँझ के धुंधले प्रकाश में यह उसे नजर न आया। नरेन झट उठ खड़ा हुआ। नमस्कार करके पूछा—अच्छी तो हैं आप ?

विजया ने प्रति नमस्कार किया, उसके सवाल का भी जवाब न दिया, सुना ही न हो जैसे, कुछ इस ढंग से उसकी तरफ पीठ करके नलिनी से कहा, कहां, आप फिर तो कभी आई नहीं ?

नरेन सामने आकर मुस्कराते हुए बोला—और मुझे शायद पहचान भी न पाईं ?

शांत अवज्ञा के स्वर में विजया बोली, पहचान पाने से पहचानना ही पड़ेगा, इसके कोई मानी है ? नलिनी से बोली, चलिए जरा आपकी मामी जी से बात कर आऊं। और एक नजर इधर देखकर लगभग उसे घसीटती ही ले गई। सीढ़ी पर दो-एक कदम चढ़ते ही नलिनी ने पुकार कर कहा, मगर चाय पिए बिना चल मत दीजिएगा नरेन बाबू।

नरेन इसका भी कोई जवाब न दे सका—अपमान और अचरज से काठ का मारा-सा खड़ा रहा और बूढ़े दयाल बाबू उसकी इस अप्रत्याशित लज्जा का हिस्सा बंटाने के लिए फीका पड़ा चेहरा लिए चुपचाप खड़े रहे। फिर भी जानें कैसे उन्हें यही संदेह होता रहा कि जाहिर जो कुछ हुआ, वही हकीकत नहीं—इस बेवजह की लापरवाही के पीछे जो चीज आँखों की आड़ रह गई, वह और चाहे जो हो, उपेक्षा अवहेलना नहीं।

जरा देर में चाय की बुलाहट हुई। आज नरेन दयाल के आग्रह को टालकर नीचे ही रह गया। लेकिन उसे नीचे अकेले छोड़कर जाने में दयाल को झिझकते देख तुरत हस कर बोला, मैं घर का ही ठहरा, मेरे लिए संकोच न करें। आपकी मान्य अतिथि के सम्मान में त्रुटि न होनी चाहिए। आप जल्द जाइए।

दुखी और लज्जित हो ऊपर जाते-जाते दयाल बोले, तो तुम जरा देर बैठोगे ?

नौकर बत्ती रख गया था। सामने की खुली किताब को करीब खींच कर नरेन ने कहा, जी हां, क्यों नहीं ?

करीब आधे घटे के बाद जब तीनों जने नीचे उतरे, तो नरेन किताब रखकर उठ खड़ा हुआ। आज वह चला ही गया होता, तो अच्छा था, क्योंकि उसका यों

अकेले इन्तजार करते रहना सबको लज्जा और कुंठा से गड़ता-सा रहा।

नलिनी ने सलज्ज भाव से कहा, आपकी चाय लाने को कह आई हूँ, आ ही चली।

किन्तु विजया ने कोई बात न की, यहाँ तक कि उधर ताका तक नहीं और बाहर निकल गई। कन्हैयासिंह दरवाजे के पास बैठा था, अपनी लाठी सम्हाल कर उठ खड़ा हुआ। बाहर आकर विजया ने देखा, आसमान पर बादल का नाम तक नहीं—नवमी का चांद ठीक सामने ही अटक-सा गया है। उसे लगने लगा, पैरों के नीचे पड़ी घास से लेकर पास और दूर पर जो कुछ भी नजर आ रहा है—आकाश, मैदान, दूर के गांव की वन-रेखा, नदी, पानी—सब इस मौन चांदनी में खड़े-खड़े झीम रहे हैं। किसी से किसी का कोई सम्बन्ध नहीं, परिचय नहीं, कौन तो जाने नींद में उन्हें स्वतन्त्र जगत से तोड़ कर जहां-तहाँ फेंक गया है—अब जब नींद टूटी है, तो वे एक दूसरे के अजानी शकल को अवाक होकर देख रहे हैं। चलते-चलते उसकी आँखों से बेरोक आंसू बह चला और उसे पोंछती हुई वह कहने लगी, अब और नहीं बनता, मुझे से और नहीं बनता।

घर आते ही खबर मिली, जाने क्यों तो रासविहारी शाम से ही बैठके में इन्तजार कर रहे हैं। सुनते ही उसकी तबियत खट्टी हो गई और बिना कुछ बोले वह बगल की सीढ़ी से ऊपर अपने कमरे में चली गई। लेकिन यह भी उसका अजाना न था कि लाख देर हो, इस परम सहिष्णु आदमी का धीरज टूट नहीं सकता। जब वे मिलने को बैठे हैं तो रात चाहे जितनी हो, बिना मिलें जायेंगे नहीं।

कुछ ही क्षण में परेश ने आकर खबर दी, बड़े बाबू आ रहे हैं और कहना था कि दरवाजे पर उनके चप्पल की आवाज सुनाई दी।

विजया बोली, आइए।

अन्दर जाकर रासविहारी चौकी पर बैठे। बोले—जब से मैं यही तो कह रहा था कि इतने-इतने नौकर-चाकर हैं, किसी को यह होश न आया कि घर से लालटेन लेकर जायें। दयाल को भी सोचना चाहिए था कि चांदनी के भरोसे न छोड़कर रोशनी साथ कर दें। और इसी से सोचता हूँ, भगवान, तुमने अपने-विरान में यहाँ कैसा भेद कर रक्खा है! उन्होंने लम्बा निश्वास छोड़ा। मगर विजया कुछ न बोली। रासविहारी ने खांस कर कुछ आगा-पीछा करते हुए अपनी जेब से एक कागज निकाल कर कहा, जो करना है, सब कर चुका हूँ मैं। सिर्फ दस्तखत करना है। इसे लेकिन कल ही भेज देना होगा। और उन्होंने वह कागज विजया के हाथ में रख दिया। देखते ही विजया समझ गई, यह ब्राह्म-विवाह का कानूनी कागज है। छपा और हाथ का लिखा, शुरू से अन्त तक दो-तीन बार पढ़कर आखिर उसने सिर उठाया। समय ज्यादा नहीं हुआ, मगर इतनी ही देर में उसके

दिल में अजीब बात हुई। उसकी इतनी देर की इतनी बड़ी वेदना कैसी तो एक कठिन उदासीनता और तीखी वितृष्णा में बदल गई। उसे लगा, संसार के सारे पुरुष एक ही सांचे के ढले हैं। रासविहारी, दयाल, विलास, नरेन—किसी से किसी का फर्क नहीं। बुद्धि और अवस्था के हिसाब से बाहरी भेद जो झलके, बस। नहीं तो अपने सुख और सुविधा के लिए नीचता, कृतघ्नता, निर्दयता में नारी के लिए सब समान ही हैं। आज सबसे ज्यादा दयाल के आचरण ने ही दुखाया। क्योंकि पता नहीं कैसे, उसको यह निश्चित विश्वास हो गया था कि वे उन दोनों के हृदय की एकांत कामना की वस्तु को जानते है। और इस दयाल के लिए उसने क्या नहीं किया ? संपूर्ण हृदय से उन पर श्रद्धा की, प्यार किया, एकांग अपना समझा। लेकिन अपनी भानजी के कल्याण के लिए सब जान-सुन कर भी उन्होंने उस स्नेह और श्रद्धा को कोई मर्यादा नहीं रक्खी। उन्हीं की आंखों के सामने ही जब रोज-रोज एक अनात्मीया नारी के चरम दुख की राह बन रही थी, तो उसके मन में कितनी दुविधा, कितनी करुणा पैदा हुई थी ? फिर रासविहारी से उनका मूल प्रभेद कहा और कितना है ? और नरेन की बात को तो उसने सोच की सीमा से बाहर ही ठेल रक्खा था, अभी भी उसके विचार का मान नही किया। सिर्फ इतना ही वह बार-बार खुद से कहने लगी, जब सभी समान ही हैं, तो विलास के विरुद्ध ही उसका विद्वेष किस बात का ? बल्कि वही तो सबसे निर्दोष है। उसी ने तो सबसे कम अपराध किया है ! वास्तव में, उसी की तो बात और व्यवहार में समता देखी गई ! उसका जो भी कसूर है, सिर्फ उसी के लिए। वह जरा स्थिर रही, फिर उसने अपने आपको समझाया, विलास का प्रेम सत्य और सजीव है, इसीलिए वह चुपचाप बर्दास्त नहीं कर सका, विरोधी शक्ति के खिलाफ वह हथियार लेकर सदा तना रहा है। उसे जाओ कह देने ही से सस्ती सज्जनता बचाकर वह रूठ कर कभी चला नहीं गया। यही अगर कसूर हो, तो उसे सजा देने का अधिकार और जिसे चाहे हो, उसे नहीं है। एक और बात याद आई, वह इस वास्तव संसार की उस दृष्टि से देखा जाय, तो विलास की योग्यता सबसे ज्यादा है। उस निकम्मे नरेन के मुकाबले तो उसे किसी भी प्रकार से उपेक्षा का पात्र नहीं कहा जा सकता।

रासविहारी उसकी गम्भीर और निर्वाक् मुखड़ा देखकर बड़े उत्कंठित हो उठे। बोले, तो दावात-कलम यहाँ है कि नीचे से लाने को कहूँ बिटिया ?

चौंक कर विजया ने देखा। अतीत की घिनौनी, वीभत्स स्मृति पर उसकी चिन्ता की डोरी धीरे-धीरे एक बारीक जाल बुन रही थी, स्वार्थ से अंधे इस बूढ़े की कठोर उतावली ने छुरी की नाई उसे पल में चाक-चाक करके आदि से अन्त तक उधेड़ दिया और दूसरे ही क्षण विजया जी-जान से निर्दय-सी होकर बोल उठी, अच्छा, एक बात पूछती हूँ चाचा जी, क्या आपकी यह राय है, कि पाप जितना बड़ा ही

क्यों न हो, रुपये के तले दब जाता है ?

रासविहारी इस सवाल का मतलब ठीक न समझ सके। सगबगा कर बोले, क्यों, ऐसा क्यों बिटिया ?

विजया अडिग दृढ़ कंठ से बोली, नहीं तो मेरे उतने बड़े पाप की परवा न करके आप मुझे अपनाना चाहते ?

रासविहारी शर्म से तिलमिला उठे। हतबुद्धि होकर बोले, वह तो झूठ है। तुम्हारा बड़ा से बड़ा दुश्मन भी तुम पर वह दोष नहीं लगा सकता।

विजया बोली, दुश्मन शायद न लगा सके। मैं पूछती हूँ, विलास बाबू मुझे श्रद्धा की नजर से देख सकेंगे ?

रासविहारी बोले, श्रद्धा की नजर से नहीं देख सकेगा ? तुमको ? विलास ! अच्छा—और जोर से आवाज दी, विलास !

विलास पास ही कहीं इन्तजार कर रहा था शायद, अन्दर आ गया। रासविहारी बोल उठे, जरा सुनो तो सही विलास, बेटी विजया कह रही है, तुम उसे श्रद्धा की नजर से देख सकोगे ? सुनो भला—

लेकिन विलास से झटपट कोई जवाब देते न बना—सवाल को समझ ही न सका हो मानो, इसी भाव से सिर्फ ताकता रह गया।

विजया बोली, उस रोज चाचा जी ने घर के नौकर-चाकरों से खोज पूछ करने के बाद मुझ से आकर कहा था कि मैं बडी रात तक नरेन बाबू से हंसी-मज़ाक करके भी तृप्त न हुई, आखिर गाड़ी न मिलने के बहाने नरेन उस रात यहीं रहे और सुबह गए। ऐसी हालत में—

बात रासविहारी की चीख-पुकार में दब गई। वे बार-बार कहने लगे, हर्गिज नहीं, हर्गिज नहीं। नामुमकिन है यह ! बिल्कुल झूठ—सरासर—आदि-इत्यादि।

विलास का चेहरा स्याह पड़ गया। वह बोला—मैंने नहीं सुना। रासविहारी फिर चीख उठे—भला यह कहां से सुनोगे—यह तो सफेद झूठ है। यह तो—इसी से कम्बख्त दरवान को मैंने—देख लेना तुम, मैं इस परेश के बच्चे को कैसी सजा देता हूँ। मैं—

विलास बोला—सारी दुनिया भी इसकी गवाही देती, तो भी मैं यकीन नहीं करता।

विजया ने सख्त होकर पूछा—आखिर क्यों नही करते यकीन ? मेरी जायदाद के लिए ?

इसी बात का छोर पकड़ कर रासविहारी ने फिर बक-बक करना शुरू कर दिया था, परन्तु बेटे की शक्ल देख कर यकायक रुक गए।

विलास की आँखें जल उठीं, लेकिन उसकी आवाज में उच्छ्वास या उग्रता जरा भी न दीखी। उसने शांत-स्निग्ध स्वर में कहा, नहीं, तुम्हारी जायदाद का हमें जरा भी लोभ नहीं।

सारा कमरा सन्नाटे में पड़ गया और उस चुप्पी में ही एक साथ मानो सारी बातों का घिनौनापन दिखाई दे गया। यह मानो बाजार में खरीद-फरोख्त का दस्तूर हो रहा हो, जिसमें लाज-शर्म, श्री-शोभा का नाम नहीं—केवल दो आदमी एक नंगे स्वार्थ के दो छोरों को कसकर पकड़े हुए अपनी ओर जी-जान से खींचातानी कर रहे हों।

बड़े कष्टों से अपनी कमाई हुई इतनी उम्र की प्रशात गम्भीरता को बहाकर रासविहारी जैसे एक इतर की नाई हो-हल्ला और वाद-विवाद कर रहे थे, विलास की संयम के सामने वह त्रुटि जैसे उन्हें भी खली, वैसे ही अपनी प्रगल्भता पर विजया भी मर्माहत हुई। मुसीबत जितनी भी बड़ी क्यों न हो, कोई भी भली औरत आपे से बाहर हो अपने चरित्र को समाधान का विषय बनाकर पुरुष से इस तरह मर्यादा की सीमा से परे वाद-विवाद कर सकती है, यह उसे जरा देर के लिए एक और मुमकिन-सी बात लगी। उसे लगा, दामपत्य जीवन का जो भी माधुर्य हैं, जो भी पवित्र है, सभी मानो उसके लिए प्रकट होकर मिट्टी में मिल गया।

घर के सन्नाटे को भंग करते हुए विलास ने ही पहले बात की। बोला, विजया, पिता जी चाहे जों कहें, हम उन्हें समझ पाएं या न पायें, लेकिन हमें यह हर्गिज न भूल जाना चाहिये कि जिन्होंने ब्रह्म के चरणों में अपने आपको चढ़ा दिया है वे कभी अन्याय नही कर सकते। मैं कहूँ, तुम्हारे सिवाय तुम्हारी जगह-जायदाद का हमें जरा भी लोभ नहीं है।

विजया ने अपना बदरंग और फीकी निगाहें जरा देर विलास पर रोपकर पूछा—सच कह रहे हैं ?

विलास आगे बढ़ गया। विजया का दायाँ हाथ अपने हाथ में लेकर बोला, मुझ में अगर कोई सच्चाई है, तो मैं तुम लोगों के सामने सच ही कह रहा हूं।

कुछ देर दोनों इसी तरह खड़े रहे। फिर विजया ने धीरे-धीरे अपना हाथ हटा लिया और टेबिल के पास जाकर कलम उठाली। लहमे के लिए शायद हो कि झिझकी, शायद न झिझकी—ठीक-ठीक कुछ कहा नहीं जा सकता—पर दूसरे ही क्षण बड़े-बड़े हरूफो मे अपना हस्ताक्षर बनाकर रासविहारी को कागज देती हुई बोली, लीजिए।

रासविहारी ने मोड़कर कागज को जेब में रक्खा और खड़े होकर वनमाली के शोक मे काफी आंसू बहाया और निराकार परब्रह्म की अपार दया का गुण गाया—फिर रात हो रही है, यह कहकर चले गए।

पिता के चले जाने के बाद विलास गम्भीर और लकड़ी जैसा सख्त खड़ा होकर बोला, मैं जानता हूँ, तुम हम लोगों से प्रेम नहीं रखती। लेकिन आप लोगों की तरह मैं भी अगर उस प्रेम को ही सबसे ऊंचा स्थान देता, तो आज खुले शब्दों में कह जाता कि विजया, तुमने जिसे प्यार किया है, उसी को अपनाओ। मुझमें वह क्षमता, वह उदारता, वह त्याग है। पिता जी से आजीवन मैं झूठी शिक्षा नहीं पाता आ रहा हूँ।

जरा देर मौन रह कर फिर कहने लगा, लेकिन एक कामुक रूप तृष्णा जिसे प्रेम समझने की गलती इन्सान करता है, वही क्या ब्राह्म कुमार-कुमारियों के विवाह का चरम लक्ष्य है ? हर्गिज नहीं, ऐसा हर्गिज नहीं हो सकता। इसका विराट् लक्ष्य है सत्य, मुक्ति, ब्रह्म के चरणों में युगल-आत्मा का आत्म-समर्पण देख लेना, एक दिन मुझसे इस सत्य को तुम जरूर समझोगी। नरेन जब तक नहीं आया था, तब की बातों को सोच देखो विजया !

क्या कहने को तो विजया ने सिर उठाया, लेकिन उसके होंठ कांप उठे, प्रबल उच्छ्वास से उसका गला रुंध गया—मुंह से कोई बात न निकल सकी। कपाल तक दोनों हाथ लेजाकर सिर्फ नमस्कार करके वह बगल के दरवाजे से अन्दर चली गई।

पच्चीस

कठिन सन्देह की आंच से विजया का हृदय कितना दुखी और बदहवास हो उठा था, एकबारगी आत्मसमर्पण कर देने के पहले तक वह उसे ठीक-ठीक समझ नहीं सकी। सबेरे आज नींद जो टूटी, तो लगा, उसका मन शांत हो गया है। क्योंकि मन में चंचलता की झलक तक न दिखाई पड़ी। बाहर आंखें फैलाई तो लगा, सारा आकाश मानो सावनी सबेरे-सा धुंधले मेघों के भार से पृथ्वी पर औंधा-सा पड़ा है। ऐसे दिन में बिछावन छोड़ना न छोड़ना उसे एक-सा लगा। और आज वह यह सोच ही न पाई कि और दिन जगने में जरा देर हो जाने से भी क्यों मन लज्जित हो पड़ता था, क्यों ऐसा लगता था कि बहुत वक्त बर्बाद गया। उसे ऐसा काम ही क्या है कि दो-एक घन्टे बिस्तर पर पड़ी रह जाय, तो न चले ? घर में नौकर-चाकरों की भरमार है, जमींदारी ढंग से चल रही है, उसका समूचा भावी जीवन अगर ऐसे ही आराम और चैन से कट जाय तो इससे अच्छी बात और क्या

हो सकती है ? खिड़की से बाहर देखा, गाछ की हरियाली तक आज कैसी बदल गई है, उसके पत्ते तक थिर-गम्भीर हो उठे हैं। झगड़ा-झंझट, वाद-विवाद, अशांति, उत्पात—सारे संसार में कहीं रही नहीं गयां है—महज एक रात में सब मुनि का तपोवन बन गया हो जैसे।

सम्पूर्ण मन पर छाए हुए अवसाद को शाँति समझ कर विजया फालिज मारे हुए की नाईं और देर तक बिस्तर पर पड़ी रह सकती थी। लेकिन परेश की माँ ने दरवाजे पर आकर चीखना-पुकारना शुरू कर दिया। जो तड़के ही जागा करती हो, वह इतनी देर तक सोई पड़ी रहे—उत्कंठा से बार-बार चिल्लाकर किवाड़ खुलवा कर ही उसने दम लिया।

मुंह हाथ धोकर कपड़े बदले और नीचे चली कि सुना, रासविहारी आज खुद आकर मजूरों के काम की निगरानी कर रहे हैं। दो ही दिन तो रह गए थे केवल, इसी बीच समूचे मकान को नया-सा बना देता था माँज-घिसकर।

जरा ही देर पहले विजया ने सोचा था, पिछली रात जिस कठिन मसले का हल हो गया, आखिर निबटारा हो गया और किसी भी बजह से किसी के लिए अब उसका अन्यथा नही हो सकता, उसके भले-बुरे और न्याय-अन्याय पर वह मन में भी कभी वितर्क नहीं करेगी। इस विश्वास के साथ अब वह उस पर संदेह की छाया भी न पड़ने देगी कि वह मंगलमय की इच्छा से मंगल के ही लिए हुआ हे। लेकिन अचानक उसे लगा, यह मुमकिन नही। रासविहारी नीचे हैं, जाते ही उनसे आमना-सामना होगा, यह सोचकर उसका सर्वांग विमुख बन बैठा और वह सीढ़ी से लौट आई। बरामदे पर देर तक चहलकदमी करती रही, फिर भी जब काटे समय नहीं कटने लगा तो उसे बचपन की साथियों की याद आई। जमाने से किसी से भेंट-मुलाकात नही हुई, खत-किताबत भी नही—आज उन्ही को याद करके कुछ खत लिखने का ख्याल हो आया और वह पढ़ने के कमरे में आई। मन में कितनी पीड़ायें पूंजीभूत थीं उसके ! चिट्ठियों में उन्ही पीड़ाओ को खोलते हुए वह बात की बात में मुग्ध हो गई। जैसे इतना समय निकल गया, कितना आंसू बह निकला, कोई पता नही। इतने मे परेश की मा आई--दीदी जी एक तो बज गया। खाओगी नहीं ?

उसने घड़ी की तरफ देखा और फिर लिखने में जुट रही थी कि परेश की मां ने लज्जित मृदु-स्वर में कहा—अरे, डाक्टर साहब आ रहे हैं। और, वह जल्दी से हट गई। चौंक कर विजया ने मुड़कर देखा, परेश के पीछे-पीछे नरेन आ रहा है।

नरेन पहले भी एक बार ऊपर आ चुका था, फिर भी वह विना कोई खबर दिए इस तरह ऊपर चला आयगा, विजया यह सोच भी न सकती थी। सूखा चेहरा,

बड़े-बड़े रूखे बाल बिखरे, पर अन्दर कदम रखते ही जब वह बोल उठा, उस दिन आपने मुझे पहचानना क्यों नहीं चाहा, यह तो कहिए ? और, वह एक कुर्सी पर बैठ गया, तो उसकी शक्ल, उसकी आवाज, उसके सर्वांग में हृदय को बोझिल करने वाली ऐसी थकावट झलकी कि विजया जवाब क्या दे, असह्य वेदना से बिल्कुल तिलमिला उठी। उत्कंठा और व्यग्रता से खड़ी होकर उसने पूछा, आपको हुआ क्या है नरेन बाबू, तबीयत तो नहीं खराब है ?

गर्दन हिलाकर नरेन बोला, नहीं, ठीक हो गई। जरा-सा बुखार हुआ भी था मगर उसी से इतना कमजोर हो पड़ा कि पहले न आ सका—मगर उस दिन मैंने कसूर क्या किया था आज तो बताइए ?

परेश खड़ा था। विजया ने कहा, परेश, अपनी माँ से कह जाकर, जल्दी से कुछ खाने को लाए। नरेन से पूछा, मेरा ख्याल है, सुबह से कुछ खाया नहीं है ?

नहीं, लेकिन मैं उसके लिए परेशान नहीं हूँ।

लेकिन मैं परेशान हूँ, कहकर विजया परेश के पीछे-पीछे खुद भी नीचे चली गई।

थोड़ी देर में भोजन की थाली और उस पर गरम दूध का कटोरा रखकर ले आई तथा अतिथि के सामने रख दिया। नरेन खाने लगा और मुस्करा कर बोला—अजीब हैं आप। दूसरे के घर में पहचानना भी नहीं चाहतीं और अपने घर में इतना ज्यादा चीन्हती हैं कि ताज्जुब ! उस दिन जो वाकया गुजर गया, उससे मैंने सोचा, मगर खबर भेजूं तो आप शायद मिलना भी न चाहेंगी, इसीलिए बिना खबर किए ही परेश के साथ आ धमका। अब लगता है, धोका नहीं हुआ।

विजया कोई बात न बोली। नरेन भी जरा चुप रहा, फिर बोला—मामूली सा बुखार, लेकिन इस कदर कमजोर कर दिया है कि मैं खुद दंग हूँ। अगर जल्दी ही फिर आप लोगों से भेंट होने की उम्मीद होती, तो आज मैं नहीं आता। इतनी दूर चलकर आने में सच ही मुझे बडी तकलीफ हुई।

विजया वैसी ही चुप बनी रही। शायद बात को ठीक समझ भी न सकी। दूध के कटोरे को खाली करके रखते हुए नरेन बोला, आप लोगों को पता शायद न हो कि मैंने यहां की नौकरी छोड़ दी है। आज इस तरह यहां आने का यह भी एक बड़ा कारण है—कहकर उसने जेब से एक लाल कागज निकाल कर कहा—आप लोगों के विवाह का निमन्त्रण मुझे मिला है। लेकिन उस शुभ कार्य को आंखों देखने का सौभाग्य मुझे न होगा। उसी दिन सबेरे हमारा जहाज कराची से खुलेगा।

विजया ने डर कर पूछा—कराची से ? आप जा कहां रहे हैं ?

नरेन बोला—दक्षिणी अफ्रीका। पश्चिम में भी एक जगह मिली थी, लेकिन जब नौकरी ही करनी है, तो बड़ी ही अच्छी। मेरे लिए जैसा पंजाब, वैसा ही केप-

कालोनी। क्या ख्याल है ? शायद अब हमारी कभी मुलाकात ही न हो।

अन्तिम बातें शायद विजया के कानों भी न पहुँची। वह बड़ी व्यग्रता से सवाल पर सवाल करने लगी—नलिनी राजी हो गई ? हो भी गई हों तो आप इतनी जल्दी जा कैसे सकेंगे, मैं समझ भी नहीं पाती। उन्हें खोलकर सब बताया है ? इतनी दूर के लिए उन्होंने राय भी कैसी दी ?

नरेन हंसकर बोला—रुकिए जरा, रुकिए। अभी किसी से सारी बातें कहीं नहीं हैं, लेकिन—

बात खत्म करने दे, इतना भी धीरज विजया को न रहा। बीच ही में वह आग-बबूला होकर बोल उठी—यह हर्गिज नहीं हो सकता है। आप लोग आखिर हमें बक्स-बिछौना समझते हैं कि इच्छा हो या नहीं हो, रस्सी से बांधकर गाड़ी पर डाल देने से ही साथ जाना पड़ेगा ? यह हर्गिज न होगा। उनकी राय न हो तो आप उन्हें इतनी दूर नहीं ले जा सकते ?

नरेन का चेहरा फक हो गया। जरा देर हक्का-बक्का हो रहा उसके बाद बोला—माजरा क्या है, यह तो कहिये ? यहां आने से पहले दयाल बाबू से भी भेंट हुई थी। सुनकर वे भी चौंके और ऐसा ही कुछ एतराज किया—मैं समझ न सका। इतने लोगों के होते नलिनी की राय पर ही मेरा जाना-न-जाना क्यों मुनहसर है और वही मुझे क्यों कन्धा देगी—यह बात पहेली-सी लग रही है। असल में बात क्या हैं, खोलकर तो कहें ?

बिजया ने नजर गड़ा कर एक बार उसे देखा और धीरे-धीरे कहा, उनसे आपने विवाह का प्रस्ताव नहीं किया है ?

नरेन मानो आसमान से गिर पड़ा। बोला—नहीं, किसी दिन नहीं। अचानक विजया के चेहरे पर खून दौड़ गया और उसका चेहरा लाल हो उठा। मगर तुरत अपने को सम्हाल कर कहा—न किया हो सही, करना तो चाहिये था। आपकी इच्छा तो आखिर किसी से छिपी नहीं है।

नरेन देर तक काठ का मारा-सा बैठा रहकर बोला—वह अनर्थ किया किसने, मैं यह सोच रहा हूँ। जरूर यह नलिनी का खुद का किया हुआ नहीं है, क्योंकि उन्हें शुरू से ही मालूम था कि यह असम्भव है ! पर—

विजया ने पूछा—असम्भव क्यों है ?

नरेन बोला—छोड़िए भी। लेकिन एक कारण उसका यह हैं कि मैं हिंदू हूँ, वह ब्राह्म समाज की हैं। फिर हम दोनों की जात भी एक नहीं।

विजया ने उदास होकर पूछा—आप जात मानते हैं ?

नरेन बोला—जरूर। हिन्दुओं में जातिभेद है। एक से दूसरे का विवाह नहीं होता—इसे क्या आप भी नहीं मानतीं ?

विजया बोली—मानती हूँ, मगर इसे अच्छा नहीं समझती। आप शिक्षित होकर इसे अच्छा कैसे समझते हैं ?

नरेन हंसने लगा। बोला, डाक्टर की अक्ल थोड़ी गंदली किस्म की होती है। खास कर मुझ जैसों की, जो माइक्रोसकोप से कीटाणुओं जैसी नाचीज वस्तु को देख कर ही समय काटा करते हैं। लिहाजा, ऐसी हालत में मुझे माफ ही कर दे न।

विजया समझ गई, नरेन जाति भेद के सवाल को चालाकी से टाल गया, इसलिए खुश होकर बोली, अच्छा, और जात की छोड़िए। जात जहां एक हो, वहाँ भी क्या केवल अलग धर्मगत के लिए ही आप विवाह को असम्भव मानते हैं ? आप कैसे हिन्दू हुए। आप तो अजात हैं। आपके लिए भी कोई ब्राह्म लड़की विवाह के लायक नहीं, यह सोचते हैं आप ? इतना अहंकार आपको किस बात का है ? और यही अगर आपकी सही राय है, तो यह आपने पहले ही क्यों नहीं बता दिया था ?

कहते-कहते उसकी दोनों आंखें छलक आईं। आंसू छिपाने के लिए उसने मुंह फेर लिया। लेकिन वह नरेन की नजर से उसे एक बारगी छिपा न सकी। वह कुछ चकित-सा होकर बोला, लेकिन अभी जो कह रही हैं, यह तो मेरी राय नहीं है।

विजया बिना इधर मुंह फेरे रुंधे गले से बोली—बेशक यही आपकी वास्तविक राय है।

नरेन बोला, नही। मेरी कसौटी की होती तो पता चलता कि यह मेरी सही तो क्या, झूठ की भी राय नहीं। इसके सिवा नलिनी की बात को लेकर आप नाहक क्यों तकलीफ उठा रही हैं। मुझे मालूम है कि उनका मन कहाँ बंधा है और उन्हें भी ठीक पता चल जायगा कि मैं भी दुनिया के दूसरे छोर को क्यों भाग रहा हूँ। सो मेरे चले जाने के लिए आप खामखा परेशान न हों।

विजया बिजली की तेजी से खड़ी हो गई। कहा, क्या आपका यह ख्याल है कि उनकी असहमति न हो तो आपका जी चाहे जहां जा सकते हैं ?

नरेन की छाती के अन्दर की बातें बिजली की रेखाओं सी सिहर उठीं, पर साथ ही उसकी निगाह मेज पर के उस लाल निमंत्रण-पत्र पर भी पड़ी। वह एक क्षण स्थिर रहकर बोला, बात सही है, मैं आपकी असहमति पर भी कुछ नहीं कर सकता। मगर आपको तो मेरी तमाम बातें मालूम है। मेरे जीवन की जो आकांक्षा है, वह भी आपसे अविदित नहीं। विदेश में वह आकाँक्षा कभी पूरी हो भी सकती है, लेकिन मेरे जैसे एक इतने बड़े निकम्मे और दीन-दरिद्र का इस देश में रहने न रहने से कुछ जायगा—जायगा नहीं।

विजया सिर झुकाये कुछ क्षण चुप रह कर धीरे-धीरे बोली, आप दीन-

दरिद्र तो नहीं हैं। आपको सभी कुछ है। चाहते ही वापस आ सकते हैं।

नरेन बोला, चाहते ही तो पा सकता हूं, परन्तु आपने देना चाहा था, यह मुझे याद है और सदा याद रहेगा। लेकिन सोचिए लेने का भी एक अधिकार होना चाहिए, वह अधिकार मुझे नहीं।

विजया उसी भांति सिर झुकाये बोली, है क्यों नहीं! सम्पत्ति मेरी नहीं, पिता जी की है। नही होती तो मेरे सर्वस्व पर मजाक से भी दाबा करने की बात आप जवान पर नहीं ला सकते। मैं होती तो वहीं हथियार नहीं डाल देती। वे जो भी दे गए हैं, सब कुछ पर कब्जा करती, तिल भर भी छोड़ नही देती।

नरेन चुप रहा। विजया भी और कुछ न बोली। नजर नीची किए बैठी रही। कोई दो मिनट उसी तरह से चुपचाप कटा। अचानक एक गहरे दीर्घनिश्वास से चकित होकर विजया ने देखा, नरेन का चेहरा अजीब-सा हो गया। दोनों की आंखें मिलते ही वह बोल उठा—नलिनी ने ठीक ही समझा था विजया, लेकिन मैंने विश्वास नहीं किया। मेरे जैसे एक निकम्मे आदमी की भी किसी को कोई जरूरत हो सकती है, इसे मैंने हंस कर उड़ा दिया था। तो तुमने हुक्म क्यों नहीं किया? मेरे लिए तो इसका सपना देखना भी पागलपन था विजया!

आज इतने दिनों के बाद उसके मुंह से अपना नाम सुन कर विजया एड़ी से चोटी तक कांप उठी, वह जबर्दस्ती मुंह पर आंचल रखकर रुलाई रोकने लगी।

पीछे आहट पाकर नरेन ने मुड़ कर देखा, दयाल आ रहा है।

दरवाजे पर खड़े होकर उन्होंने चुपचाप एक बार दोनों को देखा, उसके बाद विजया के सोफे पर एक ओर बैठ कर उसके सिर पर दायाँ हाथ रखकर बोले—बेटी!

उसने उनके आगमन का अनुभव किया था और जी-जान से इस शर्मनाक रुलाई को रोकने की कोशिश कर रही थी। लेकिन करुणा भरे इस 'बेटी' सम्बोधन का नतीजा उलटा हुआ। क्या पता, अपने पिता की याद से ही धीरज छुटाया नहीं, लमहे में वह बूढ़े की जांघ पर लुढक पड़ी और उनकी गोद में मुंह गाड़कर रोने लगी।

दयाल की आंखों से आंसू बह निकला। इस मार्मिक रुदन का मर्म दुनिया में सिर्फ वही जानते थे उसके सर पर हौले-होले हाथ फेरते हुए कहने लगे, यह अन्याय सिर्फ मेरे कसूर से हुआ बिटिया, इस दुर्घटना का जिम्मेबार मैं ही हूँ। किसे पता था कि नरेन मन ही मन केवल तुम्हीं को···। नलिनी से अब तक मेरी यही बातें हो रही थीं—वह सब कुछ जानती थी। मैं नादान, मैंने तुम्हें गलती से भूल खबर दी और इस दुःख को लिवा लाया। अब शायद कोई प्रतिकार—

दीवाल घड़ी में तीन वज गए। तीनों बुत से बैठे रहे। उनकी गोद में

विजया का दुर्दम दुःख धीरे-धीरे ठंडा पड़ता आ रहा है, समझ कर उसकी पीठ थपथपाते हुए दयाल ने धीरे-धीरे कहा, इसका अब क्या कोई उपाय नहीं हो सकता है बेटी ?

विजया ने उसी प्रकार मुंह छिपाए हुए ही टूटे स्वर में कहा, नहीं-नहीं, मरने के सिवाय मेरे लिए और दूसरा रास्ता नहीं।

दयाल ने कहना चाहा, छिः बेटी, लेकिन—

विजया जोरों से सिर हिलाते हुए बोली—नहीं-नहीं, इसमें अब किन्तु की गुंजाइश नहीं। मैंने वचन दिया है, जीते-जी उसे तोड़ नहीं सकती दयाल बाबू ! मर नहीं सकूं, तो मैं—कहते-कहते फिर उसका गला रुंध गया। दयाल के मुंह से भी बात न निकला। वे धीरे-धीरे उसके बालों को सिर्फ सहलाते रहे।

परेश की माँ ने परेश के जरिये बाहर से कहला भेजा—मां जी, दिन के तीन बज गए।

सुनकर दयाल बेतरह परेशान हो उठे और नहाने-खाने का बार-बार अनुरोध करते हुए उसके सिर उठाने का कोशिश करने लगे।

परेश बोला—तुम्हारी बजह से कोई खा नहीं पा रहा है मा जी ! इस पर आखें पोंछ कर विजया उठ बैठी और किसी की तरफ देखे बिना धीरे-धीरे चली गई।

दयाल बोले, नरेन, तुम्हारा भी तो नहाना-खाना नहीं हुआ ? नरेन अनमना-सा जाने क्या सोच रहा था। सिर उठाकर बोला—नहीं

तो मेरे साथ चलो।

चलिए—कहकर वह उठा और दयाल के साथ चल पड़ा।

छब्बीस

उस दिन सांझ को आसन्न विवाह के सिलसिले में कुछ जरूरी बातें करके बाप-बेटे, दोनों के जाने के बाद विजया अपने अध्ययन-कक्ष में जाते ही हैरान रह गई। दयाल ऐसे तन्मय बैठे थे कि उन्हें किसी के आने का भी पता न चला। वे कब आए, कितनी देर बैठे हैं—विजया को कुछ भी मालूम न था। लेकिन उन्हें इस कदर तल्लीन देख ध्यान तोड़ कर कौतूहल निवृत्ति की उसे इच्छा न हुई। वह जैसे आई थी, वैसे ही चुपचाप निकल गई। लेकिन घन्टे भर बाद

लौटकर भी जब देखा कि वे उसी तरह बैठे ही हुए हैं, तो धीरे-धीरे सामने जा खड़ी हुई।

चकित से दयाल ने कहा—तुम्हारी ही राह देख रहा था।

स्निग्ध स्वर में विजया बोली, बुला क्यों न लिया ?

दयाल बोले, तुम लोग बातें कर रहे थे, इसीलिए नहीं टोका। कल दोपहर को मेरे यहां तुम्हारा निमंत्रण रहा। न-न, न हर्गिज न होगा। कहीं ना कह कर टाल दो, इसी डर से खुद इतनी दूर चलकर आया हूँ। लेकिन दोपहर को पैदल मत आना। मैंने पालकी-कहार ठीक कर रक्खा है, वे आकर तुम्हें ठीक समय पर ले जायंगे।

बूढ़े की करुणा भरी बात से विजया की आंखें छलछला उठीं। बोली—आपने किसी के मार्फत लिख भेजा होता, तो भी मैं ना न कहती। नाहक ही आप पैदल चलकर इतनी दूर आए ?

दयाल उठकर उसके पास गए। एक हाथ पकड़कर बोले याद रहे, बूढ़े चचा को वचन दे रही हो। कहीं न गई, तो फिर मुझे दौड़कर आना पड़ेगा— छुट-कारा नहीं।

विजया सिर हिलाकर बोली, अच्छा।

लेकिन उनके ऐसे प्रबल आग्रह से वह मन में चकित हुई। एक तो इसके पहले उन्होंने कभी निमंत्रण नहीं किया, फिर सांझ के बजाय दोपहर के भोजन का न्योता। और वचन के पालन के लिये बार-बार ऐसा अनुरोध—यह कैसा तो सहज और स्वाभाविक नही लगा। यह तै है कि आज दोपहर तक भी न्योते का संकल्प उनके मन में नहीं था—परन्तु इतने ही में जाने-आने के लिए सवारी तक का इंत-जाम वे कर आये हैं।

असमंजस के भाव को छिपा कर विजया ने हंसकर पूछा, आखिर क्यों, सुन सकती हूँ ?

दयाल जरा भी हिचके बिना बोले, नहीं-नहीं, दोपहर से पहले मैं तुम्हें यह न बता सकूंगा।

विजया बोली, खैर, वह न बताएं, और कौन-कौन आमंत्रित हैं, यह तो कहिये ?

दयाल बोले, तुम सबको पहचान कहां पाओगी। वे मेरे उसी टोले के मित्र है। तुम जिन्हें पहचान सकोगी, वे हैं रासविहारी और नरेन।

दयाल चले गये तो विजया बड़ी देर तक स्थिर बैठी मन में इसके हेतु को ढूंढती रही। लेकिन जितना ही सोचने लगी, जानें कैसे एक अगम सन्देह से उसके मन का अन्धकार बढ़ता ही चला गया।

दूसरे दिन जब ढाई बजे तक पालकी नहीं पहुँची और विजया तैयार बैठी रही। तो एक ओर तो उसके आश्चर्य की सीमा न रही, दूसरी ओर उसने काफी आराम महसूस किया। यह तै था कि परेश की माँ साथ जायगी। उसने इसे लगा-कर कोई दस बार विजया को खाने के लिए तंग किया और बार-बार पूछा, कहीं बूढ़े दयाल सठिया तो नहीं गए, वे न्योता देकर भूल तो नहीं गये ? लेकिन किसी को भेज कर खोज-खबर लेने में भी विजया को संकोच रहा था कि कहीं किसी अचिंतनीय कारण से अगर वे न्योते की बात भूल गए, तो उन्हें बड़ी शर्मिंदगी में डालना होगा। इस अनहोनी स्थिति-विपदा में उसका दुविधा में पड़ा मन क्या करे, वह कुछ ठीक नहीं कर पा रही थी कि ऐसे समय हाँफते हुए आकर परेश ने बताया—पालकी आ रही है।

विजया जब बाहर निकली, तो दोपहरी कब की ढल चुकी थी। तीसरा पहर हो चुका था। मजूरों के पीछे रासविहारी परेशान थे, पालकी के करीब आकर मुस्कराते हुए बोले—अचानक दयाल को यह खिलाने-पिलाने की क्या धुन सवार हो गई, नहीं जानता। साँझ के बाद मुझे भी जाना होगा, बहुत-बहुत कह गए हैं। मगर पालकी भेजने में देर होगी, तो मैं न जा सकूंगा। कह देना बिटिया।

दयाल के दरवाजे पर आम के पत्तों का बन्दनवार लगा था, दोनों तरफ धर रक्खे थे, विजया अचरज में पड़ गई। उसने अन्दर कदम रक्खा। दयाल मुहल्ले के कुछ लोगों से बात कर रहे थे। 'बेटी' कहकर लपके और उसका हाथ पकड़ लिया।

सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते विजया ने रुष्ट अभिमान के साथ कहा—भूख से मेरी जान निकल गई। यही आपके मध्याह्न भोजन का न्योता है ?

दयाल स्निग्ध स्वर में बोले—आज तो तुम लोगों को खाना नहीं चाहिए बेटी। नरेन तो निर्जीव-सा लेट हो गया है। आज भर के लिए तो कम से कम काने भट चारज जी का शासन मानना ही पड़ेगा।

दुमंजिले के हालघर में विवाह का सारा आयोजन तैयार था। वे सब हैं क्या, समझ न पाने के बावजूद विजया के प्राण काँप उठे—मुंह खोल कर वह पूछने का भी साहस न कर सकी।

दयाल सहज ढंग से समझाते हुए कहा, शाम के बाद ही लग्न है। आज तुम्हारा ब्याह जो है बिटिया ! सौभाग्य से दिन-लग्न जुट गया, न जुटता तो भी आज ही करना पड़ता, टाला नहीं जा सकता था, खैर, सब ठीक-ठीक मिल गया। जभी तो भट चारज जी ने हंसकर कहा—मानो तुम्हीं लोगों के लिये पत्रा में इस लग्न की सृष्टि हुई थी।

विजया का चेहरा फक पड़ पड़ गया। बोली—आप क्या मेरा हिन्दू-विवाह कराएंगे ?

दयाल बोले, हिंदू विवाह क्या विवाह नहीं है बेटी ? लेकिन सांप्रदायिक मत ने मनुष्य को ऐसा अन्धा बना रक्खा है कि कल तमाम दिन सोचकर भी इस छोटी-सी बात का कूल-किनारा न पा सका। लेकिन नलिनी ने पल भर में मुझे समझा दिया। उसने कहा, मामा जी, उनके पिता उन्हें जिनके हाथों सौंप गए हैं, आप उन्हें-उन्हीं के हाथों सौंपिये, नहीं तो ब्राह्म-विवाह के बहाने कुपात्र के साथ में सौंपेंगे तो अधर्म की सीमा न रहेगी। और सच्चा विवाह तो मन का मिलन है। वरना ब्याह का मंत्र हिन्दी हो या संस्कृत, उसे भटचारज जी पढ़ायेंगे या आचार्य, इससे क्या आता-जाता है ? इतनी पेचीदी समस्या बिल्कुल पानी हो गई। मैंने मन ही मन कहा, भगवान तुमसे तो कुछ छिपा नहीं ! इन दोनों का ब्याह चाहे जिस मत से करा दूं। मैं जानता हूँ, मैं जानता हूँ कि तुम्हारे चरणों में अपराधी न बनूंगा। मगर मैंने फिर भी कहा, लेकिन एक बात है नलिनी। विजया उन्हें वचन जो दे चुकी है। वे तो इसी के भरोसे बैठे है। इसका क्या होगा ?

नलिनी बोली, मामा जी, आप तो जानते हैं, विजया के अन्तर्यामी ने कभी हामी नहीं भरी—उससे बड़ा क्या विजया का धर्म ही होगा ? उसके अन्तर के सत्य की उपेक्षा करके उसके मुंह की बात को ही बड़ा मानना होगा ?

मैंने अचरज से कहा, तूने यह सब कहाँ सीखा बेटी ?

नलिनी बोली—मैंने नरेन बाबू से सीखा। वे बार-बार कहते हैं, सत्य का स्थान कलेजे में होता है, जबान पर नहीं। महज जबान से निकल पड़ने से ही कोई चीज कभी सत्य नहीं हो सकती। फिर भी उसी को लोग सबसे आगे, सबके ऊपर स्थापित करना चाहते हैं, वह इसलिए नहीं कि सत्य को प्यार करते हैं, बल्कि इस-लिए कि वे सत्य भाषण के दंभ को प्यार करते हैं।

जरा चुप होकर बोले, तुम नरेन को नहीं जानती बेटी, वह तुम्हें कितना अधिक प्यार करता है, वह भीं शायद ठीक ठीक नहीं जानती। वह ऐसा है कि असत्य का बोझा तुम्हारे सिर लादकर वह तुम्हें ग्रहण करना हर्गिज कबूल नहीं करता। जरा शुरू से अन्त तक उसके कामों की सोच तो देखो।

विजया कुछ न बोली। काठ की मारी-सी खड़ी रही।

नलिनी अन्दर काम में व्यस्त थी। पता चला तो दौड़ी आई और विजया को छाती से जकड़ लिया। उसके कान में कहा—तुम्हें सजाने का भार नरेन बाबू ने मुझे दिया है। चलो। और उसे एक प्रकार से खींचकर ले गई।

दो घन्टे बाद जब फूल-चंदन से उसे वधू वेस में सजाकर आसन पर बिठाया और सामने की खिड़की खोल दी, तो साथ ही दक्षिणी हवा और चांदनी उसके

परलोकवासी माता-पिता के आशीर्वाद की तरह लज्जित मुखड़े पर आकर के पड़ी।

जो कन्यादान करने बैठीं, पता चला, वे विजया के दूर के रिश्ते में फूफी होती है। मंत्र पढ़ाते समय काने भट्टाचार्य जी ने बताया, दो-तीन पुश्त पहले वही लोग जमींदार घर के कुल-पुरोहित थे।

विवाह हो चुका। वर-वधू को ले जाने की तैयारी हो रही थी कि विवाह-सभा में रासबिहारी आकर उपस्थित हुए। दयाल ने खड़े होकर सादर उनकी अभ्यर्थना की और हाथ जोड़ कर कहा—आओ भाई, आओ। विवाह निर्विघ्न संपन्न हो चुका—अब आज के दिन मन में कोई ग्लानि न रक्खो, तुम इन दोनों को आशीर्वाद दो भाई!

रासविहारी कुछ देर सन्न-से खड़े रहे और फिर सहज स्वर में बोले—आखिर बनमाली की बिटिया का व्याह हिंदू-मत से ही कराया दयाल? मुझे बताया होता, तो इसकी तो जरूरत नहीं पड़ती।

दयाल सिटपिटा कर बोले—सभी विवाह तो एक ही हैं भाई।

रासविहारी ने सख्ती से कहा, नहीं। परन्तु वनमाली की बेटी ने गांव से अपने बाप के आजीवन निर्वासन की बात को भी जरा सोच कर न देखा?

नलिनी पास ही खड़ी थी। बोली, उनकी लड़की ने अपने स्वर्गीय पिता के सच्चे आदेश का ही पालन किया है। अनुष्ठान की बात पर सोचने का अवकाश न मिला। आप खुद भी तो वनमाली बाबू की आंतरिक इच्छा को जानते थे। उसमें कोई त्रुटि नहीं हुई।

रासविहारी ने इस दुर्मुख लड़की की ओर एक हिंसक नजर डाल कर सिर्फ कहा—हुँ। कहकर वे लौट पड़ने लगे कि नलिनी ने कहा—वाह, आप ब्याह-मंडप से यों ही लौट जाएंगे! यह नहीं होने का। आपको खाकर जाना पड़ेगा। मैंने किस कष्ट से तो मामा को भेज कर आपको न्योता देकर बुलाया है।

रासविहारी बोले नही। सिर्फ फिर से एक जलती हुई निगाह उस पर डाल कर धीरे-धीरे बाहर चले गए।

मुद्रक—सत्य प्रिंटिंग प्रेस २ शिव नगर करोल बाग दिल्ली ।

देहाती समाज

एक

वेणी घोषाल ने मुखर्जी परिवार के अंदर आंगन में कदम रखते ही एक प्रौढ़ा स्त्री को देखकर पूछा—रमा कहाँ है मौसी ?

मौसी आह्निक कर रही थीं। इशारे से उन्होंने रसोई घर दिखा दिया। वेणी रसोई की ओर गए। चौखट के पास खड़े रहकर बोले —तो फिर तुमने क्या तै किया रमा ?

जलते चूल्हे पर से छनछनाती कडाही को उतारकर रमा ने उनकी तरफ निगाह फेरी—काहे का बड़े भैया ?

वेणी बोले तारिणी चाचा के श्राद्ध का बहन ! रमेश तो कल आ गया। लगता है, बाप का श्राद्ध खासी धूमधाम से करेगा—जाओगी ?

आश्चर्य से रमा ने आँखें फाड़कर कहा मैं जाऊँगी तारिणी घोषाल के यहा ?

वेणी तनिक सकुचा कर बोला—वह तो मालूम है बहन। और चाहे जो जाय तुम लोग हर्गिज नहीं जाने के। मगर मैंने सुना, छोकरा खुद घर-घर जाकर कहेगा—शैतानी सूझ मे वह बाप से भी बढ़ा हुआ है— कही आया तो क्या कहोगी आखिर ?

गुस्से से रमा बोली—मैं कुछ नहीं कहूँगी—जवाब बाहर दरवान देगा।

पूजा पर बैठी हुई मौसी के कानों मे यह दलबन्दी की बात जो गई, वह पूजा छोड़ कर आ पहुँची। बहन बेटी की बात पूरी भी न हो पाई कि भुने-लावा-सी छिटक कर बोल पड़ीं—दरबान क्यों, मैं क्या कहना नही जानती ? उस कमीने को वह सुनाऊँगी वह कि कंबख्त जिन्दगी मे कभी मुखर्जी-परिवार मे सिर नहीं घुसेड़ेगा। तारिणी घोषाल का लड़का न्योता करने आएगा मेरे यहाँ ? मै कुछ भी भूली नहीं हूँ वेणीमाधव ! तारिणी ने अपने इसी बेटे से अपनी रमा का ब्याह करना चाहा था—उस समय अपने यतीन की पैदाइश नहीं हुई थी, सोचा था, इस तरह यदु मुखर्जी की सारी जायदाद कब्जे में आ जायेगी—समझ गए बेटे ! जब इस में दाल न गली तो भैरव अचारज से जाने क्या तो जप-तप टोना-टोटका करके बिटिया के नसीब में ऐसी आग लगा दी कि छः महीने भी न गुजरे, बिचारी का सुहाग धुल गया ! छोटी जात होकर यदु की बेटी को बहू बनाने का हौसला ! हरामजादे को मौत भी आखिर वैसी ही हुई—बेटे के हाथ से आग तक न नसीब हुई। छोटी जात के

मुंह में आग !—मौसी गोया कुश्ती लड़ी हो, इस तरह हांफने लगी। बार-बार छोटी जात कहने से वेणी का चेहरा उतर गया था, क्योंकि तारणी घोषाल उसी का चचा था। रमा ने गौर किया और तिरस्कार करती हुई मौसी से बोली—तुम भी मौसी नाहक ही किसी की जात का उलाहना देती हो ! जात तो किसी के अपने हाथ की बनाई नहीं ? जो जहाँ पैदा हुआ उसके लिए वही ठीक है।

वेणी शर्मा कर हल्का हँसते हुए बोले— नहीं रमा, मौसी ने ठीक ही कहा है। कितने बड़े कुलीन की बेटी हो तुम, तुम्हें भला हम अपने घर ले जा सकते हैं ? बहन ! जुबान पर यह लाना ही छोटे चाचा की बेअदबी थी। और यह टोना-टोटका वाली बात भी सही है। दुनियां मे ऐसी कोई बात नहीं, जो छोटे चाचा और यह भैरव अचारज न कर सकें। वही भैरव अचारज तो आज-कल रमेश का सलाहकार बना है।

मौसी ने कहा - यह तो जानी बात है। दस-बारह साल तो यह छोकरा गांव ही न आया—इतने दिन था कहाँ ?

मैं क्या जानूं चाची ? छोटे चाचा से जो हाल तुम लोगों का था, वही अपना। सुना, बम्बई या कहाँ तो था इतने दिन। कोई कहता है डाक्टरी पास करके आया है, कोई कहता है वकालत और कोई कहता है, सब झूठ है, वह पक्का पियक्कड है। जब घर आया तो आँखें उसकी अड़हूल के फूल-सी सुर्ख हो रहीं थी।

अच्छा ! फिर तो उसे घर मे आने देना ही उचित वहीं। उत्साहित होकर वेणी सिर हिलाकर बोले—बिल्कुल नहीं। अच्छा रमा रमेश की याद है तुम्हें ?

अपनी बदनसीबी का जिक्र निकल आया इससे मन ही मन रमा लज्जित हो पड़ी थी। शर्माकर हँसती हुई बोली—बखूबी ! मुझसे ज्यादा बड़ा तो है नहीं वह। फिर शीतलाथान की चटशाला में दोनों ही जने पढ़ते थे। लेकिन उनकी माँ के मरने का मुझे खूब ख्याल है। चाची मुझे बहुत मानती थी।

मौसी फिर एक बार तुनक उठीं—उसके मानने के मँह पर झाड़ू। वह प्यार महज अपना उल्लू सीधा करने के लिए था। उनका मनसूबा ही तुझे अपनाने का था।

वेणी पुरखे की तरह ताईद करते हुए बोले—इसमें क्या शक मौसी ! छोटी चाची तो—

बात पूरी भी न पड़ी थी कि नाखुश-सी रमा बोल उठी—उस पुराने पचड़े की जरूरत नहीं मौसी।

रमेश के पिता से रमा की जितनी चाहे अनबन रही हो, मगर उसकी माँ के लिए बहाँ तो वेदना-सी थी। इतने दिनों के बाद भी वह बिल्कुल मिट नहीं गई

थी। वेणी ने फौरन हां में हां मिलाई—बजा कह रही हो; छोटी चाची भले बाप की बेटी थीं। आज भी उनकी चर्चा निकल आती है, तो मां आंसू बहाती है।

जाने क्या से क्या प्रसंग आ पड़े, यह सोच वेणी इन बातों को दबाकर बोल उठे—तो यही तै रहा कि टस से मस न होगी ?

रमा हँसी। कहा—पिताजी कहा करते थे आग, कर्ज और दुश्मन का मान न रखना। जीते जी तारणी घोषाल ने हमें कम नहीं सताया- पिताजी तक को जेल भिजवाने की ताक में रहे। मैं वह भूली नहीं हूँ और जब तक जिन्दा रहूँगी नहीं भूलूंगी। रमेश आखिर उसी दुश्मन का तो लड़का है। और यों भी मेरे जाने की तो गुंजाइश ही नहीं। पिताजी हम दानों भाई-बहन को जायदाद बाँट कर दे गए हैं, मगर सारी सम्पत्ति के बचाव की जिम्मेदारी मुझी पर जो है। सो हम तो नहीं ही जाते, जो हमारे संपर्क में है, उन्हें भी न जाने दूंगी। जरा देर सोचकर बोली—अच्छा बड़े भैया, ऐसी कोई तरकीब नहीं कर सकते कि कोई भी ब्राह्मण उसके यहाँ जाय ही नहीं ?

वेणी जरा नजदीक खिसक आए और धीमे-धीमे बोले—वही कोशिश तो कर रहा हूँ बहन। तुम मेरी पीठ पर रहना, बस, मैं और कोई फिक्र नहीं करता। रमेश को मैं इस कुआंपुर से निकाल न बाहर करूं तो मेरा नाम नहीं। उसके बाद मैं रहा और रहा वह भैरव अचारज। तारिणी घोषाल तो रहे नहीं, देखता हूँ मैं, बच्चू को कौन बचाता है।

रमा बोली—बचाएगा रमेश घोषाल ! देख लेना बड़े भैया, मैं कहे रखती हूँ, दुश्मनी मे यह भी कुछ उठा न रखेगा।

वेणी थोड़ा और समीप खिसक आए। इधर-उधर जरा देख लिया और चौखट पर उकड़ूँ बैठ गए। उसके बाद आवाज को और भी धीमी करके कहा—रमा बांस को अगर नवाना चाहती हो, तो यही वक्त है, पक जाने पर नहीं नवने का। गाँठ बाँध लो। जगह जायदाद को बचाने का अभी उसे शऊर नहीं आया है ! अगर दुश्मन की जड इसी समय न उखाड़ पाई तो बाद में हर्गिज नहीं उखाड़ सकोगी। हमें हर पल यह याद रखना होगा कि यह है तारिणी घोषाल का लड़का, दूसरा कोई नहीं।

यह मैं खूब समझती हूँ बड़े भैया।

तुम समझती क्या नहीं बहन! लड़का बनाते-बनाते ईश्वर तुम्हें लड़की बना बैठे, और क्या। हम आपस में बातें करते ही रहते हैं कि अक्ल में पक्का जमींदार भी तुम से पीछे रह जाता है। खैर, कल फिर आऊँगा; आज अब काफी वक्त हो गया। अपनी तारीफ से बेहद खुश होकर रमा उठ खड़ी हुई और कुछ टोकने ही जा

रही थी कि उसका कलेजा धक् से रह गया। आँगन के एक सिरे से अपरिचित गले की गंभीर आवाज आई— रानी कहाँ है रे ?

रमेश की माँ उसे छुटपन से इसी नाम से पुकारा करती थी। खुद भी वह इसे भूल गई थी। उसने वेणी की तरफ ताका, तो उसका समूचा चेहरा नीला पड़ गया था। और दूसरे ही क्षण रूखे बाल, खाली पाँव, माथे पर मारकीन लिपटा— रमेश आकर खड़ा हुआ। वेणी पर नजर पड़ते ही बोल उठा—अरे, बड़े भैया ! चलिए, चलिए, आपके बिना करेगा कौन ? मैं तमाम आपको ढूंढता चल रहा हूँ। कहाँ है रानी ? कहकर वह किवाड के सामने आ पहुँचा। भागने का चारा न रहा। रमा गर्दन झुका कर रह गई। रमेश ने एक नजर उसकी तरफ देखा और बड़े अचरज से बोला— यह रही ! उफ् कित्ती बड़ी हो गई तू ! अच्छी तो है ?

रमा उसी तरह सिर झुकाए खडी रही, कुछ बोल न सकी। लेकिन रमेश जरा हँसकर तुरन्त बोला—पहचान तो रही है ? मैं तेरा रमेश भैया हूँ ! रमा फिर भी मर न उठा सकी लेकिन धीमे से पूछा—आप अच्छे है ?

हाँ बहन, ठीक ही हूं। मगर यह आप क्यों ? वेणी की तरफ देखकर जरा फीका हँसते हुए बोला, रमा की वह बात मैं कभी भूल नहीं पाया बड़े भैया ! मां जब गुजरीं, यह तो तब बडी नन्हीं-सी थी। उसी उम्र में मेरे आंसू पोंछती हुई बोली थी, तुम रोओ मत, मेरी मां को हम दोनो जने बांट लेंगे।— तुझे इसकी याद नहीं है रमा, है न ? अच्छा, मेरी मां की याद है ?

सुनकर रमा की गर्दन लाज के मारे मानो और झुक गई। वह गर्दन हिला कर भी यह न जता सका कि हां, चाची की उसे बखूबी याद है। रमेश खास तौर से रमा को लक्ष्य करके कहने लगा— अब तो समय रहा नहीं, बीच में महज दो-तीन दिन रह गए हैं, करना हो सो कर-करा दो; जिसे निरा बेपनाह कहते हैं, मैं वही होकर तुम लोगों के दरवाजे आया हूं। तुम लोगों के गए बिना जरा भी कोई इंतजाम नहीं कर पा रहा हूं।

मौसी चुपचाप रमेश के पीछे आ खड़ी हुईं। वेणी या रमा ने जब किसी भी बात का जवाब न दिया तो सामने आकर बोली, तुम भैया, तारिणी घोषाल के बेटे हो न ?

रमेश ने मौसी जी को पहले कभी देखा न था। क्योंकि वह जब यहां से जा चुका था, तो रमा की मा की बीमारी में वह इस घर मे दाखिल हुई थीं और हुईं सो हुईं, फिर नहीं गईं। रमेश कुछ आवाक्-सा ही उनकी तरफ देखता रहा। मौसी बोलीं - नहीं तो ऐसा बेहया आखिर और कौन होगा। जैसा बाप, वैसा बेटा ! न कहना, न सुनना, एकाएक किसी गृहस्थ घर में आकर उत्पात मचाने में शर्म नहीं आती तुम्हें ? रमेश काठ का मारा-सा देखता रह गया।

मैं चला—कहकर वेणी वहाँ से झटपट खिसक पड़ा। रमा अंदर से बोली—खामखा बकझक क्या कर रही हो मौसी, अपना काम करो जाकर।

मौसी ने समझा, वह बहन बेटी के छिपे इशारे को भांप गईं। सो अपनी बोली में थोड़ा और जहर घोलकर बोलीं—बस-बस, बकबक मत कर रमा। जो काम करना ही है, उसक लिए मुझे तुम लोगों जैसी आँख की शर्म नहीं होती। भला वेणी को इस तरह से खिसक पड़ने की क्या जरूरत थी! कहीं जाना था कि भैया, न तो हम तुम्हारे गुमाश्ते है, न खास तालुके की रैयत कि तुम्हारे यहाँ श्राद्ध में पानी भरने और आटा गूंधने जाँय। तारिणी गुजरा, गाँव भर के लोगों का जी जुड़ाया; यह कहने का भार मुझ पर न सौंप कर खुद ही मुँह पर सुना गया होता तो मर्द का काम किया होता।

रमेश तो भी अवश बेबस-सा खड़ा रहा। वास्तव में ये बातें उसके दुःस्वप्न के भी अगोचर थीं। अंदर से किबाड़ की सांकल झन्-झन् बज उठी। लेकिन किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया। मौसी ने रमेश के चुप और पीले पड़े चेहरे को देखकर फिर से कहा—जो भी हो, वाम्हन लड़के को नौकर-दरवान से मैं तौहीन नहीं कराना चाहती—जरा सोच-समझ कर काम करो भैया, जाओ। नन्हे-नादान नहीं कि किसी भले आदमी के घर में पैठकर मनुहार करते फिरो! तुम्हारे यहां रमा कभी पांव धोने नहीं जा सकती, मैं कह देती हूं।

रमेश अचानक मानों नींद से जागा और दूसरे ही क्षण उसकी चौड़ी छाती के अंदर से एक ऐसा निश्वास निकल पडा कि उसकी आवाज से वह खुद ही चौंक पड़ा। अंदर किवाड़ की ओट से रमा ने नजर उठा कर देखा। रमेश ने एक बार तो शायद आगा-पीछा किया, उसके बाद रसोई की ओर मुखातिब होकर बोला—जब जाना हो ही नहीं सकता, तो चारा क्या है! मगर मुझे यह मालूम तो नहीं था—अनजानते यह उपद्रव कर गया, इसके लिए मुझे माफ करना रानी! और, वह धीरे-धीरे चला गया। कमरे के अंदर से चूं तक न आई। जिससे माफी मांगी गई, वह जो चुपचाप उसके मुँह की ओर ताकती रह गई, रमेश यह जान भी न पाया। वेणी तुरत लौट आया। वह गये नहीं थे, बाहर छिपकर इंतजार कर रहे थे। मौसी से नजर मिलते ही उल्लास और हँसी से उसका चेहरा खिल उठा। पास आकर बोले—सुना तो करारा दिया मौसी! ऐसा सुनाना अपने बस का न था। भला यह नौकर-दरवान से बनता रमा! बाहर से मैंने गौर किया, छोकरा आसाढ़ के मेघ-सा मुँह लिए निकला। ठीक हुआ।

मौसी आहत अभिमान के स्वर में बोलीं—ठीक हुआ, सो तो समझा, लेकिन

इन दो औरतों के जिम्मे छोड़कर खिसक पड़ने के बजाय खुद ही कह जाते तो और भी ठीक होता ! और कहते न भी बनता तो मैंने क्या कहा, खड़े रहकर यह क्यों नही सुन गए ? यों खिसक पडना ठीक नही हुआ ।

मौसी की बातों की झांस मे वेणी के होठों की हँसी गायब हो गई । लेकिन ज्यादा देर सोचने की नौबत नही आई, अचानक रमा अंदर से जवाब दे बैठी; अब तक वह कुछ बोली न थी । बोली, जब तुम्हीं ने कहा मौसी, तो वही तो सबसे बेहतर हुआ । कोई लाख चाहे कह ले, जीभ मे तुम्हारे जैसा इतना जहर कोई नहीं छिडक पाता—

मौसी और वेणी, दोनों बेहिसाब ताज्जुब मे आ गए । मौसी रसोई की ओर मुडकर बोलीं—क्या कहा री ?

कुछ नही । पूजा पर बैठकर मात बार तो उठ चुकी—जाओ उसे तो चुका लो, खाना-वाना नही बनेगा ? यह कहकर रमा अंदर मे निकली और किसी से कोई बात न बोलकर बरामदा पार कर के उस कमरे में घुस गई । वेणी सूखा चेहरा लिए बोले—माजरा क्या है मौसी ?

मैं क्या जानूं बेटा ! उस राज-रानी का मिजाज समझ पाना क्या हम जैसी दासी-बाँदी के बस की बात है । और क्रोध तथा क्षोभ से चेहरा स्याह किए मौसी अपनी पूजा के आसन पर जाकर बैठ गई और शायद भगवान् का नाम ही जपने लगीं । वेणी धीरे-धीरे चल दिए ।

दो

इस कुंआपुर की जमींदारी को हासिल करने का एक इतिहास है, जिसे यहाँ बता देना जरूरी है । कोई सौ साल पहले महाकुलीन बलराम मुखर्जी अपने हमनाम दोस्त बलराम घोषाल को लेकर बलरामपुर से यहाँ आए । मुखर्जी महज कुलीन ही न थे, अक्लमंद भी थे । शादी करने के बाद वर्दवान राजा के यहाँ नौकरी करके और क्या-क्या करके इस जायदाद को उन्होंने हासिल किया । घोषाल ने भी इसी तरफ शादी की । लेकिन पिता का कर्ज भरने के सिवाय उन्हे और कोई जुर्रत न थी, लिहाजा उनके दिन कष्टों मे ही कट रहे थे । क्या तो विवाह के ही चलते दोनों दोस्तों में अनबन हो गई । यह अनबन इस हद तक गुजरी कि एक ही बस्ती में रहने के बावजूद उन्होंने लंबे बीस वर्षों तक एक दूसरे का मुँह नहीं देखा । बलराम मुखर्जी

का जिस दिन देहांत हुआ, घोषाल ने उस दिन भी उनके यहाँ कदम न रक्खा। लेकिन उनके मरने के दूसरे ही दिन बड़े ही अचरज की बात सुनने में आई। खुद उन्होंने सारी जायदाद का आधा अपने और अपने दोस्तों के बेटों को रत्ती-रत्ती बांट दिया। तभी से कुँआपुर की जायदाद का भोग-दखल दोनों परिवार के वंशज करते आ रहे हैं। ये खुद भी अपने को गर्व से जमींदार कहा करते थे, गाँव वाले भी इनकार नहीं करते।

जब का जिक्र कर रहा हूं, घोषाल का खानदान भी बँट गया था। छोटे फरीक तारिणी घोषाल मुकदमे के सिलसिले में शहर गए और छः दिन पहले एकाएक जिस दिन अदालत के पांच-सात छोटे-बड़े मुलतबी मुकदमों के फैसले की परवा किए बिना कहाँ के किस अजानी अदालत के सम्मन पर चुपचाप चल दिए तो कुँआपुर के अंदर-बाहर एक हलचल-सी मच गई। बड़े फरीक के अगुआ वेणी घोषाल चचा के मर जाने से चुपचाप चैन की साँस लेकर घर लौट आए और छिपे तौर पर गुटबंदी करने लगे कि कैसे चचा के श्राद्ध को बिगाड़ा जाय। दस साल से चचा-भतीजे की मुँह देखा-देखी बंद थी। जमाने से तारिणी का घर सूना पड़ा था। बेटे को उसके मामा के यहाँ भेज कर तारिणी अंदर नौकर-चाकर और बाहर मुकदमों से उलझे रहा करते थे। रमेश ने पिता के गुजर जाने का समाचार पाया और उनके अंतिम कार्य करने के लिए रुड़की कालेज से वह कल तीसरे पहर अपने घर आया।

श्राद्ध को केवल दो दिन रह गए थे। वृहस्पत को श्राद्ध। और-और गाँव से दो-एक करके बूढ़े पुरनिए आने लगे। लेकिन रमेश समझ गया था कि कुँआपुर का कोई क्यों नहीं आ रहा है और उसे यह भी समझ आ रहा था कि आखिर तक शायद कोई नहीं ही आए। आने को सिर्फ भैरव अचारज और उसके घर के लोग काम-काज में हाथ बँटा रहे थे। गाँव के ब्राह्मणों के चरणों की धूल की आशा न थी, फिर भी इंतजाम रमेश ने बड़े आदमी जैसा ही किया था। आज देर तक रमेश घर में काम-काज में मशगूल रहा। पता नहीं, किसलिए तो बाहर निकला कि देखा दो-एक पुरनिए बैठके में मौजूद हैं और बैठकर तंबाखू पी रहे हैं। सामने आकर विनीत भाव से कुछ कहे, इसके पहले ही पीछे की आहट से मुड़कर देखा, एक बहुत बूढ़े सज्जन चार-पाँच बच्चे-बच्चियों के साथ अंदर आए। कंधे पर मैली चादर, नाक पर मोटे काच का चश्मा—धागे से पीछे की ओर को बंधा, सफेद बाल, सफेद दाढ़ी—तंबाखू के धुएँ से ताँबे के रंग का। आगे आकर चश्मे के अंदर से उन्होंने जरा देर रमेश की शक्ल देखी और रो पड़े। रमेश ने पहचाना नहीं कि ये कौन हैं, परंतु नजदीक जाकर उसने उनका हाथ पकड़ा। वे टूटी आवाज में बोल उठे—बेटा, यह सपने में भी न सोच सका था कि तारिणी इस तरह से धोखा दे जायगा; लेकिन अपनी पैदाइश भी ऐसे

चटर्जी वंश में नहीं कि किसी के डर से मुंह से झूठी बात निकलेगी। आते समय मैं तुम्हारे वेणी घोषाल के मुंह पर कह आया कि रमेश श्राद्ध की जैसी तैयारी कर रहा है, ऐसा करना तो भाड़ में जाय, इस इलाके में किसी ने वैसा आंखों भी न देखा। जरा थम कर बोले—मेरे बारे में तुम से बहुत साले लोग बहुत तरह की शिकायत कर जाएँगे बेटे, लेकिन इतना जरूर जान रक्खो कि यह धर्मदास सिर्फ धर्म का ही दास है, और किसी का नहीं। इतना कहकर बूढ़े ने सत्यवादिता के सारे पौरुष को जब्त करके गोविंद गाँगुली के हाथ से हुक्का छीनकर दम लगाया और जोरों से खाँसने लगे।

धर्मदास ने बेशक अत्युक्ति नहीं की। जैसी तैयारी चल रही थी, वैसी इधर किसी ने नहीं की। कलकत्ते से हलवाई आए थे। आंगन के एक ओर उन्होंने कड़ाह चढ़ा रक्खा था--मुहल्ले के कुछ बच्चों की वहां भीड़ जमा थी। कंगलों को कपडा बांटा जायगा—चंडीमंडप के उधर वाले बरामदे पर अनुगत भैरव अचारज थान फाड़-फाड़ कर जमा कर रहा था—कुछ लोग वहां पंजा टेके बैठे-बैठे इस फिजूल खर्ची का अन्दाजा लगा कर रमेश की बेवकूफी पर उसे बुरा-भला कह रहे थे। लोग-बाग, रैयत-पाठक से घर भर गया था। लोग झगड़ रहे थे या कोई-कोई नाहक ही शोर मचा रहे थे। चारों तरफ शाहखर्ची के नज्जारे देख धर्मदास की खाँसी और बढ़ गई।

जवाब में रमेश न-न करते हुए जाने और क्या कहने जा रहा था, लेकिन हाथ हिलाकर उसे रोकते हुए धर्मदास धों-धों करके कितना क्या कह गए, खाँसी की वजह से उसका एक लफ्ज भी समझ में न आया।

गोविंद गांगुली सबसे पहले आए थे, लिहाजा जो कुछ धर्मदास ने कहा, यह कहने की सुविधा सबसे ज्यादा उन्हें ही थी, लेकिन वह जाती रही, यह सोचकर उनके मन में बड़ा भारी क्षोभ-सा हो रहा था। इस सुयोग को अब उन्होंने हाथ से न जाने दिया। धर्मदास को लक्ष्य करके बोल उठे—कल सुबह, समझा धरम भैया, आने को निकलकर भी आना न हो सका। वेणीं की बुलाहट, चचा, जरा तंबाखु पी जाओ। एक बार तो सोचा, रहे तंबाखू—फिर सोचा, जरा वेणी का इरादा टटोलता चलूँ। वेणी ने कहा क्या, जानते हो रमेश ? बोला चचा, तुम लोग तो रमेश के इन्तजामकार बन बैठे हो। मैं पूछता हूं, लोग-बाग खाने तो जाएँगे ? मैं ही क्यों छोड़ता। तुम बड़े हो, हो; अपना रमेश भी किसी से छोटा नहीं। तुम्हारे घर तो किसी को मुट्ठी भर चावल की उम्मीद नहीं। मैंने कहा, वेणी बाबू, रास्ता तो आखिर यही है। खड़े-खड़े जरा कंगलों की विदाई अपनी आँखों देख लो न। कल का लड़का है रमेश, लेकिन कलेजा इसे कहते हैं ! इतनी उमर हो गई अपनी, ऐसी तैयारी कभी नहीं देखी। और मैं कहता हूं धरम भैया, अपनी भी क्या जुर्रत !

जिनका काम है, वही ऊपर से कराए ले रहे हैं। तारिणी भैया तो शापभ्रष्ट दिक्पाल ही थे!

धर्मदास की खांसी किसी कदर रुक नहीं रही थी, वे खांसते ही जा रहे थे और उन्हीं के सामने गांगुली बाबू उस तरुण जमींदार को अच्छी-अच्छी बातें सुनाते चले जाने लगे, यह देख धर्मदास और कुछ अच्छा सुनाने के लिए आकुल-व्याकुल से हो उठे।

गांगुली कहने लगे, तुम तो मेरे विराने नहीं ही बेटे—एकांत अपने हो। तुम्हारी मां मेरी एक बारगी साक्षात् फुफेरी बहन की चचेरी बहन थी। राधानगर का बनर्जी परिवार—यह तारिणी भैया जानते थे। जभी जो भी काम हो, मामला-मुकदमा, गवाही—बस, बुलाओ गोविंद को!

धर्मदास जी जान से खांसना रोक कर खिजलाते हुए बोले—क्यों फिजूल की बकवास कर रहा है गोविंद? खुक-खुक-खुक – मैं कुछ आज का नहीं हूं—क्या नहीं जानता? उस साल गवाही की बात आई तो तूने कहा, मेरे जूता नहीं, खाली पांवों कैसे जाऊं? खुक-खुक—उसी दम ढ़ाई रुपए देकर तारिणी ने जूते खरीद दिए। और वही जूते पहन कर तू वेणी के हसबखाह गवाही दे आया! खक खक खक—

आँखें रँगाकर गोविंद बोले – दे आया?

नहीं?

झूठा कहीं का

झूठा तेरा बाप!

अपना टूटा छाता सम्हाल कर गोविंद उछल पड़े—साले!

धर्मदास ने अपनी लाठी उठाई और गरजते ही खाँसने लगे। रमेश जल्दी से दोनों के बीच आकर हक्का-बक्का रह गया। धर्मदास ने लाठी रख दी। खाँसते-खाँसते बैठ पड़े। बोले, रिश्ते में मैं इस साले का बड़ा भाई होता हूं न, जभी साले की अक्ल की बलिहारी देखो—

ओः साला मेरा बड़ा भाई होता है! कहकर गोविंद छाता समेट कर बैठ गए।

शहर के हलवाई कडाह छोड़कर ताकते रहे। जो जहाँ काम में जुटे थे, तमाशा देखने के लिए आ धमके; बच्चे खेल छोड़कर मजा देखने लगे और इन सब की निगाहों के सामने अचरज से अवाक् बना रमेश खड़ा रहा। उसके मुँह से एक शब्द न निकला। है क्या यही दोनों ही पुर्रानिए, भले आदमी – ब्राह्मण की संतान। ऐसे एक मामूली कारण से इतर की नाईं इस कदर, गाली-गलौज! बरामदे में कपडा सहेजते हुए भैरव सब देख रहा था, सुन रहा था। वह उठकर आया। रमेश से पूछा—चार सौ के लगभग तो हो गए कपड़े, और चाहिए?

रमेश से कुछ भी कहते न बना। उसका यह जड़ भाव देखकर भैरव हँसा। हलके ताने के स्वर में बोला, छिः गाँगुली बाबू, बाबू साहब देखकर दंग रह गए हैं! आप कुछ ख्याल मत करें बाबू, ऐसा हुआ ही करता है। जहां बड़ा काम होता है, वहां लाठी-सोंटा और खून-खराबी तक हो जाता है, बाद में फिर वही का वही। खैर, उठिए चटर्जी साहब, देखिए तो, और भी थान फाड़ूं?

धर्मदास कुछ बोले, इसके पहले ही गोविंद गांगुली उत्साह के साथ सिर हिलाते हुए खड़े होकर बोले--होता ही है! बहुत होता है, वरना विरद कार्य आखिर कहा क्यों गया है। शास्त्र में कहा है, लाख बात पूरे बिना शादी ही नहीं होती। उस साल याद है तुम्हें भैरव, यदुमुखर्जी की बेटा रमा की वृक्ष-प्रतिष्ठा के मौके पर सीधा के चलते राघव भटचारज और हारान चटर्जी में सिरफुड़ौअल हो गया? लेकिन मेरी सुनो भई भैरव, बाबू का यह काम बेकार हो रहा है। कंगलों को कपड़े बाँटना और गोबर में घी डालना एक है। उससे बेहतर था कि बाम्हनों को एक-एक जोड़ा और बच्चों को एक-एक दिया जाता। मेरी राय है, बाबू यही करें, क्या ख्याल है धरम भैया?

गर्दन हिलाते हुए धर्मदास बोले--गोविंद की सलाह बेजा नहीं है बेटे। उन कम्बख्तों को लाख दो, कोई नाम नहीं। आखिर इतर फिर कहते क्यों हैं। समझ गये बेटा!

रमेश अब तक चुप था। कपड़ा बाँटने की इस चर्चा से वह मर्माहत हुआ। अच्छी-बुरी दलीलों के नाते नहीं, बल्कि यह बात उसे चोट-सी लगी कि ये जिसे इतर और नीच कहते हैं, उन्हीं की हजारों आंखों के सामने अभी-अभी जो एक शर्मनाक वाकया कर बैठे, उसके लिए उन्हें जरा भी क्षोभ नहीं, नाम को भी शर्म नहीं। भैरव उत्तर के इंतजार में था, यह देखकर रमेश ने कहा,--और भी दो सौ कपड़े तैयार कर रक्खें।

इससे कम मे क्या होगा? भैरों भाई, चलो, मैं भी चलूं--अकेले कितना करोगे तुम? और फिर किसी की सम्मति की अपेक्षा किये बिना ही गोबिंद कपड़े की तरफ जाकर बैठ गए। रमेश अंदर जाने लगा, तो धर्मदास ने उसे एक ओर को ले जाकर कानों में बहुत कुछ कहा। रमेश सिर हिलाकर सहमति जताते हुए भीतर चला गया। कपड़ा सहेजते हुए कनखियों से गोविंद ने सब देखा। कहां है, बाबू कहां हैं?--कहते हुए एक दुबले-पतले से घुटी मूंछों वाले ब्राह्मण आए। इनके भी साथ दो-तीन बच्चे। उनमें सबसे बडी थी बच्ची। पहनावे में पूरी-मैली डोरिया साड़ी। बच्चों की कमर में एक-एक कमर धनी बाकी पूरे दिगंबर। सबने उस तरफ देखा।

गोविंद ने स्वागत किया, आओ दीनू भैया, बैठो। हम लोगों के बड़े भाग्य कि तुम्हारे चरणों की धूल पड़ी। बेचारा अकेले···खैर तुम लोग--

धर्मदास ने कटमटा कर गोबिद की तरफ देखा। उन्होंने बेखटके कहा,--तुम लोग तो यहाँ की छांह भी न छूओगे—और उनकी तरफ हुक्का बढ़ा दिया। दीनू महाचार्य बैठे। जले तम्बाकू मे दो-एक दम लगाकर बोले—मैं तो यहां था नहीं भाई, तुम्हारी भाभी को लाने के लिए उनके मैके गया था। है कहाँ रमेश ? सुना मैंने, तैयारी बड़े जोरों की है। आते समय उस बस्ती की हाट में खबर मिली, भर पेट खिला-पिला कर ऊपर से हर को सोलह-सोलह पूरियाँ और दो-दो गंडे मिठाई दी जायगी।

गोबिद ने फुसफुसा कर कहा, --हो सकता है, एक-एक कपडा भी। अच्छा, ये रमेश आए, मैं दीनू भैया से कह रहा था कि तुम लोगों के गुरुजनों के आशीर्वाद से तैयारी तो एक तरह से की जा रही है, मगर वेणी बुरी तरह पीछे पड़ा है। मेरे ही पास उसने दो-दो बार आदमी भेजा। खैर, मेरी छोड़ भी दो, मुझसे रमेश का नाड़ी का संबंध है; लेकिन ये दीनू भैया, धरम भैया, ये लोग ही क्या तुम्हें छोड़ सकेंगे भला ! दीनू भैया ने तो रास्ते ही मे सुना और दौड़े आए। अरे ए छठीचरण, तम्बाखू दे जा। जरा इधर तो आओ रमेश, एक बात कह लूँ ! एकांत में ले जाकर फुसफुसा कर बोला—अंदर शायद धरमदास की पत्नी आई है ? खबरदार ! यह हर्गिज मत करना। उनके हाथो भंडार की कुजी मत देना—घी, आटा, नमक, तेल—आधा ग़ायब हुआ जानो। तुम्हें फिक्र किस बात की। मैं तुम्हारी मामी को भेज दूगा। वह भंडार सम्हाल लेगी। एक तिनका बर्बाद नही होगा तुम्हारा।

रमेश ने गर्दन हिलाकर, जैसा आप चाहे, कहा और चुप हो गया। उसके अचरज का कोई ठिकाना न था। गोविंद ने यह अंदाज कैसे लगा लिया कि धर्मदास ने उसे चुपचाप भंडार का जिम्मा लेने के लिए अपनी स्त्री को भेज देने की बात कही थी ?

दोनों नंग-धड़ंग बच्चे दीनू के बदन से झूलते हुए बोल उठे—बाबू जी, मिठाई खाऊँगा।

दीनू ने एक बार रमेश और एक बार गोविंद की ओर देखकर कहा—मिठाई कहाँ से लाऊँ मैं ?

क्यों, वह वहाँ बन तो रही है, बच्चों ने हलवाई की तरफ इशारा किया।

हम भी मिठाई खाएंगे दादा जी,—नाक से रोते हुए कई बच्ची-बच्चे धर्मदास से आ लिपटे।

ठीक तो है--कहकर रमेश आगे आया—अचारज जी, तीसरे पहर लड़के

घर से निकले है, कुछ खाया नहीं है—अरे, क्या नाम है तुम्हारा ? वह थाली इधर ले आओ तो ।

हलवाई का थाली लेकर आना था कि बच्चे टूट पड़े । बाँट कर देने का भी मौका नहीं । बच्चों को खाते देख दीनानाथ की शुभ दृष्टि सजल और पैनी हो उठी—अरी ओ खेंदी, खा तो रही है, मिठाई बनी कैसी है ?

बहुत अच्छी—वह चिल्लाकर बोली । दीनू हँसकर बोले—तुम लोगों की पसंद भी क्या ? मिठाई होनी चाहिए । क्यों भई हलवाई, यह कड़ाही कैसे उतारी—क्या ख्याल है भाई गोबिन्द, अभी भी धूप है, है न ?

हलवाई ने बिना किसी ओर देखे कहा—बेशक ! अभी काफी समय है, संध्या-पूजा का—

अच्छा तो गोविंद को दो तो एक मिठाई, चख कर जरा देखे, कलकत्ते के कारीगर की सिफत ! उहूँ हूँ—मुझे नहीं । अच्छा, आधी-आधी से ज्यादा नही । अरे ऐ छठीचरण, जरा पानी तो ले आ, हाथ धो लूं—

रमेश ने आवाज देकर बता दिया । छठी, अदर से तीन-चार थालिया भी ले आओ ।

मालिक के हुक्म के मुताबिक तीन रकाबियाँ और ग्लास भी आ गए और देखते ही देखते उस बड़ी परात की सारी मिठाइयां मलेरिया के मारे इन तीन ब्राह्मणो के जलपान मे खत्म हो गई ।

अलबत कारीगर है ! क्यों धरम भैया ? कहते हुए दीनानाथ न रोकी हुई सांस छोड़ी । धर्मदास का तब तक खत्म नहीं हो पाया था और उनकी आवाज गरचे मुंह की मिठाइयों को ठेलकर बाहर नही निकल सकी, फिर भी हाव-भाव से पता चल गया कि इस बात से उनका मतभेद नहीं ।

बेशक कारीगर का हाथ है ।—सब से पीछे गोविंद ने कहा और वह हाथ धोने को जाने लगा । हलवाई ने विनयपूर्वक अनुरोध किया—ठाकुर, इतनी तकलीफ जब उठाई ही, तो जरा मिहिदाने को भी देख लें ।

मिहिदाना अच्छा ले आओ ।

मिहिदाने के लड्डू आये । इतनी मिठाइयाँ खा चुकने के बाद इस नई चीज के सदुपयोग को रमेश अवाक होकर देखता रहा । दीनानाथ बेटी की ओर हाथ बढ़ाते हुए बोले—खेदी ले, मिहिदाने के दो लड्डू पकड़ तो ?

मैं अब नहीं खा सकूंगी ।

सकेगी, सकेगी, । एक घूँट पानी पीकर गले को जरा भिगोले, मीठा से मुंह भर गया है , बस ! खाते न बने तो कपड़े की कोर में बाँध ले । कल सबेरे खाना ।

खूब खिलाया भैया। अमृत हो जैसे ! बढ़िया बनी है। तो मिठाई दो तरह की बनवाई ?

जबाब रमेश को नहीं देना पड़ा। हलवाई ने उत्साह के साथ कहा, जी नहीं, रसगुल्ले, खीरमोहन—

ऐं ! खीरमोहन यह तो नहीं देखा ?

अवाक् खड़े रमेश की ओर देखते हुए दीनानाथ बोले— हाँ, राधानगर के यहाँ अलबत खाया था। आज भी जैसे जबान पर लगा है ! कहने से यकीन नहीं आयेगा भैया, खीरमोहन मुझे बेहद पसन्द है।

रमेश ने जरा हँसकर गर्दन हिलाई। यकीन करना उसके लिए बहुत कठिन न लगा। राखाल जाने किस काम से बाहर जा रहा था। उसे बुलाकर रमेश ने कहा- राखाल, अन्दर भटचारज जी है, जा तो, उनसे कह दे, कुछ खीरमोहन ले आएं।

साँझ पार हो गई। फिर भी खीरमोहन के आसरे ये ब्राह्मण बैठे रहे। राखाल ने आकर बताया, भंडार आज अब नहीं खुलेगा।

रमेश मन ही मन खीझा। बोला—उनसे कहो, मैंने मंगवाया है। रमेश की झेंप को ताड़कर गोविन्द गांगुली ने आंखें मटकाकर कहा—देख लिया दीनू भैया भैरव की अक्ल देखो ? मां से मौसी को ही ज्यादा तकलीफ ! जभी तो मैं कहता हूँ—

वे क्या कहते है, यह सुने बिना ही राखाल बोल बैठा—भैरो बाबू क्या करें ? उस घर की मालकिन ने भंडार को बन्द किया है।

धर्मदास और गोविन्द दोनों चौंक उठे, कौन बड़ी बहू ?

रमेश ने साश्चर्य पूछा—बड़ी चाची आई है ?

जी हाँ, बड़े छोटे दोनों भंडार में उन्होंने ताला लगा दिया है।

अचारज और आनन्द से रमेश कुछ कहे बिना तेजी से अन्दर चला गया।

तीन

बड़ी चाची !

पुकार सुनकर विश्वेश्वरी भंडार से बहार निकल आई। वेणी की उम्र के हिसाब से उनकी माँ की आयु पचास से कम नहीं होनी चाहिए। लेकिन देखने में चालीस से ज्यादा नहीं लगती।

रमेश एक टक देखता रह गया। आज भी वही कच्चे सोने-सा रंग। एक दिन जिस रूप की इस इलाके मे शुहरत थी वह अनिंद्य सुन्दरता आज भी उनके बूढ़े हुए से शरीर को छोड़कर दूर नहीं जा पाई थी। सिर के बाल छोटे-छोटे छंटे, सामने की तरफ सिकुड़ी हुई-सी दो-एक लटे कपाल पर छिटकी पड़ी। ठोडी, गाल, होठ, कपाल—हर कुछ मानो किसी कुशल कलाकार की बडी साधना के परिणाम हों। सबसे गजब की थी उनकी आँखों की निगाह। कुछ देर उधर को ताको तो मानो सारा अन्तःकरण मोह से आच्छन्न हो जाता।

बड़ी चाची कभी रमेश और उसकी स्वर्गीय मा को बहुत प्यार करती थीं। जब दोनों बहू थी बच्चे नही हुए थे—साम-ननद के जुल्मो से बचकर दोनो छिपकर साथ-साथ आंसू बहाया करती थी—स्नेह की पहली गाँठ तभी पड़ी थी। उसके बाद बंटवारा, मामला-मुकदमा, जाने क्या-क्या आँधी पानी इन दो गिरस्तियो पर आया किए, अनबन की आँच से बंधन ढीला हुआ, लेकिन एक बारगी टूट नही गया। जमाने के बाद उसी छोटी बहू के भडार मे आकर उसी के हाथों सजाए हुए पुराने वर्तन-भाड़ो की ओर देखकर बड़ी चाची की आँखो से आसू बह रहे थे। रमेश की बुलाहट पर जब वह आँखे पोछ कर बाहर निकल आई, तो उनकी लाल भीगी आखे देखकर रमेश जरा देर के लिए अवाक् खड़ा रह गया। बड़ी चाची ने यह ताड़ लिया। जभी, अभी-अभी पितृ-हीन हुए रमेश की ओर ताकने पर उनके कलेजे के भीतर जैसा एक हाहाकार उठा, उसकी बू तक उन्होंने बाहर नही जाहिर होने दी; बल्कि मुस्काती हुई बोली—पहचाना रमेश ?

जवाब देने में रमेश के होंठ काँप उठे। माँ के गुजर जाने के बाद जब तक वह अपने मामा के यहाँ नही चला गया, इन्ही बड़ी चाची ने उसे अपनी छाती से लगाए रक्खा, अलग नहीं करना चाहती थीं। यह उसे याद आया और यह भी याद आया कि उस रोज जब वह इनके घर पर गया तो यह कहला कर उन्होंने मुलाकात तक न करना चाहा कि बड़ी चाची घर पर नही हैं। उसके बाद जब रमा के घर पर गया, तो वहाँ वेणी के सामने और पीछे भी उसकी मौसी की तीखी फटकार से उसने खूब समझ लिया था कि इस गाँव में उसे अपना कहने को कोई नहीं, रमेश की ओर एक नजर देखकर बोलीं—छिः बेटे, ऐसे समय सख्त होना चाहिए।

उनकी आवाज में कोमलता का नाम भी न था। रमेश ने खुद को सम्भाल लिया। वह समझ गया, जहाँ रूठने की कोई मर्यादा नहीं, वहाँ रूठने का भाव जाहिर हो जाने जैसी विड़ंबना संसार में बहुत थोडी है। बोला—सख्त मैं हो गया हूँ बड़ी चाची, और जो बन पड़ता, अकेले ही करता; तुम फिर क्यों आईं ?

वह हँसी। बोली, तूने मुझे बुला कर तो लाया नहीं कि तुझे इसकी कैफियत दूँ ? खैर, सुन ले। काम-काज से पहले अब भंडार से 'खाने-पीने चीज मैं निकालने न दूँगी। जाते समय तुझे कुँजी दे जाऊँगी और कल आकर फिर ले लूँगी। किसी दूसरे को हर्गिज मत देना अच्छा यह तो बता, उस दिन तेरे बड़े भैया से भेंट हुई थी ?

इस प्रश्न से रमेश दुविधा में पड़ा गया। वह ठीक-ठीक समझ नहीं सका कि उन्हें अपने बेटे के व्यवहार का पता है या नहीं। कुछ सोच कर बोला—उस समय तो वे घर मिले नहीं।

सवाल करते ही बड़ी चाची के चेहरे पर उद्वेग की छाया-सी आ पड़ी थी; रमेश ने साफ तौर से देखा कि इस जवाब से उनका वह भाव जाता-सा रहा और चेहरा खिल पड़ा। हँसती हुई स्नेह भरे अनुयोग के स्वर मे बोली, हाय रे नसीब ! यह बात है ? तो भेंट नही हुई तो क्या फिर से नही जाना चाहिए ? मुझे मालूम है, तुझसे वह खुश नहीं है, फिर भी तुझे तो अपना कर्तव्य करना चाहिए। जा, एक बार उसे अच्छी तरह से कह फिर से। बडा भाई ठहरा, उसके सामने नीचा होने में तुझे शर्म क्या, फिर यह मनुष्य का ऐसा समय है, जब किसी के भी हाथ-पाँव पकड़ कर मना-मनू लेना शर्म की बात नही। सोना मेरे, राजा बेटा, तू जा, अभी शायद वह घर पर ही है।

रमेश चुप रहा। इस जोरो की आग्रह की वजह भी उसकी समझ मे न आई और मन से संदेह भी न मिटा। विश्वेश्वरी उसके और करीब आ गई। धीमे से कहा—जो लोग बाहर बैठे है, मैं उन्हे तुझसे कही ज्यादा जानती हूँ। उनकी मत सुन। चल, मेरे साथ अपने बड़े भैया के पास चल।

रमेश ने सिर हिलाकर कहा—नही चाची, यह न होगा। और बाहर जो बैठे है, वे चाहे जो भी हों, वही मेरे सबसे अपने है।

रमेश कुछ और भी कहना चाह रहा था, लेकिन बड़ी चाची के चेहरे की तरफ देख कर बहुत ही अचरज के साथ चुप हो गया। उसे लगा, बड़ी चाची का चेहरा चारों तरफ फैली हुई सांझ से भी ज्यादा धुँधला हो उठा है। जरा देर में एक निःश्वास छोड़कर वह बोली—खैर, मै चलती हूँ। जब उसके पास तुम्हारा जाना हो ही नहीं सकता, तो उसकी चर्चा बेकार है। खैर, तू फिक्र मत करना। कुछ भी रुकने की नहीं। मैं फिर तड़के ही आऊँगी। विश्वेश्वरी ने अपनी दाई को साथ लिया और पिछवाड़े की खिड़की से बाहर निकल पड़ी। वह समझ गई कि इस बीच वेणी से रमेश की भेंट हो चुकी है और कुछ न कुछ बात भी हो चुकी है। कुछ देर तक रमेश उस राह की तरफ देखता रहा, जिधर से चाची गईं; फिर जब बाहर निकला तो गोविंद ने उतावला होकर पूछा—बड़ी बहू आई थीं, न ?

रमेश ने सिर हिलाकर कहा, हाँ।

मैंने सुना, भंडार को बंद करके कुँजी साथ ले गईं ?

रमेश ने उसी तरह सिर हिलाकर जबाब दिया। क्योंकि आखिर क्या सोचकर जाते समय वह कुँजी लेकर ही गईं।

गोविंद बोले--देख लिया धरम भैया, जो कहा, वही। रमेश, तुम ने इरादा समझा ?

रमेश मन ही मन बड़ा बिगड़ उठा। लेकिन अपनी वेबसी सोच-समझकर चुप रह गया। गरीब दीनू भट्टाचार्य अभी गए नही थे। क्योंकि उन्हे वैसी अक्ल न थी। जिसकी कृपा से बाल-बच्चों सहित भर पेट मिठाई खाने को मिली, उसे हृदय से आशीर्वाद दिए बिना, सबके सामने उसकी सात पीढ़ियों की स्तव-स्तुति किए बिना जाते नहीं बन रहा था। वह बेचारा निरीह भाव से बोल उठा,—यह इरादा समझना क्या मुश्किल है ? भंडार बन्द करके कुंजी ले गईं यानी भंडार और किसी के हाथो न रहे। आखिर सभी तो जानती है वे।

गोविंद खीझे हुए थे; उस अबोध की बात पर जल-से उठे और डपटते हुए बोल पड़े, समझते-बूझते हो नहीं, बीच में दखल क्यों दे बैठते हो ? तुम इन बातों को समझते क्या हो कि मतलब समझाने चले हो ?

डाट खाकर दीनू की निर्बोधता और बढ़ गई। वे भी गर्म होकर बोल उठे, इसमे समझना-बूझना क्या है ? सुना नहीं, बहू जी खुद आकर कुंजी ले गईं ? इस पर कोई क्या कहे ?

गोविंद आग हो गए। बोले—चलते भी नजर आओ भटचारज, जिसके लिए दौड़े आए थे, खानदान भर खा चुके, कुछ गाँठ में भी बांध लिया, अब क्यों ? खीर मोहन परसों खाना, आज अब नहीं हो सकेगा। पधारो, हमें बहुत काम है।

दीनू लज्जित और संकुचित हो उठे। रमेश उससे भी ज्यादा सकुचाया और नाराज हुआ। गोविंद कुछ और भी कहने जा रहे थे, लेकिन अचानक रमेश के शांत पर कठोर स्वर से रुक गए—आखिर आपको हो क्या गया गांगुली बाबू। नाहक ही जिसे-तिसे यों अपमानित क्यों कर रहे हैं ?

झिड़की से गोविंद पहले तो विस्मित हुए। लेकिन तुरन्त सूखी हँसी हँसकर बोले—अपमानित किसे किया भैया ? खैर, उसीसे पूछ देखो मैं सच कह रहा हूँ या नहीं ? वह डाल-डाल तो मैं पात-पात ! देख लिया न धरम भैया, दीना की हिमाकत देखी न ? अच्छा।

धर्मदास ने क्या देखा, पता नहीं; पर इस आदमी की बेहयाई और हिमाकत देख रमेश अवाक् रह गया। इतने में दीनू ने रमेश से कहा, हाँ बेटे, गोबिंद ठीक ही

ह रहे हैं। मैं बेहद गरीब हूँ, सभी इस बात को जानते हैं। इनकी तरह मुझे जगह-मीन, खेती-बारी कुछ भी नहीं हैं। इसी तरह माँग-जाँच कर, भीख-दान पर ही पना गुजारा चलता है। बच्चों को अच्छी चीजें खिलाने की जुर्रत तो है नहीं, लहाजा बड़ों के यहाँ के भोज-भात में ही उन्हे यह सब नसीब होता है। कुछ ख्याल ात करना बेटे, तारिणी भैया जिन्दा थे, तो हमें खिलाने में उन्हें बड़ी खुशी होती ी। मैं बताऊं, आज हमने जो जी भर कर खाया, ऊपर से यह देखकर वे खुश ही ए होंगे।

दीनू की आखे सहसा भर आई और सबके सामने ही आसू की दो बूँदे पाटप चू पड़ी। रमेश इधर पलट कर खड़ा हो गया। दीनू अपनी तार-तार चादर के कोने से आखे पोछते हुए बोले—सिर्फ मै ही नही बेटे, इधर जहां भी जो गरीब है, ारिणी भैया के आगे हाथ फैलाकर वे कभी निराश नही जौटे। मगर यह जानता ौन है, कहो ? उनके दाएँ हाथ के दान की खबर बाएँ हाथ तक को न होती ी ! खैर, तुम्हे और ज्यादा तंग न करूँगा। खेंदीं उठ बिटिया, घर चलें; कल वेरे आऊँगा। मै और क्या कहूं रमेश, अपने पिता जैसे बनो, दीर्घ जीवी होओ।

रमेश उसके साथ बढ़कर गीले स्वर मे बोला, भटचारज जी, इन दो-तीन दिनो तक मुझ पर कृपा रक्खें। कहने मे संकोच होता है, लेकिन हरिधन की मां के ैरों की धूल मेरे यहा पड़े, तो भाग्य मानू मै।

भट्टाचार्य ने जल्दी से अपने हाथों में रमेश के दोनो हाथ दबा कर रुआसे-से बोले, मैं बडा ही गरीब हूं बेटा, मुझे इस तरह से कहने से शर्म से मर जाता हूं।

बच्चों के साथ धीरे-धीरे बूढ़े चले गए। रमेश लौट आया। अपनी सख्त ात को सोचकर उसने गाँगुली बाबू से कुछ कहना चाहा कि वे बोले—यह तो मेरा अपना ही काम है रमेश, तुमने न भी बुलाया होता, तो भी मुझे स्वय आकर करना पड़ता। इसीलिए आया हूं ! धरम भैया और मैने तो तुम्हारी बुलाहट की अपेक्षा नही की।

धर्मदास तंबाखू पीकर खाँस रहे थे। लाठी के सहारे खड़े होकर खांसी की धमक से आंख-मुँह लाल-लाल किए हाथ घुमा कर बोले—मै बताऊँ रमेश, हम आखिर वेणी घोषाल नहीं है, हमारे जन्म का ठिकाना है।

उसकी इस भोंड़ी बात से रमेश चौंक उठा। मगर अब की गुस्सा नहीं किया। उसने थोड़े ही समय मे यह समझ लिया था कि शिक्षा और अभ्यास की गलती से ये बिना हिचके कैसी-कैसी बुरी बातें कह जाते है—इन्हे पता नहीं होता।

बड़ी चाची के स्नेह-भरे आग्रह और पीड़ित चेहरे की याद करके वह बड़े

भैया के पास जाने को तैयार हुआ। जब वह वेणी के चंडीमंडप के बाहर पहुँचा, तो रात के आठ बज चुके थे। अन्दर जैसे लड़ाई-सी हो रही थीं। सबसे जोर गला गोविंद गाँगुली का ही सुनाई पड़ रहा था। बाहर ही से डसे सुनाई पड़ा, गोबिंद बाजी बंद कर कह रहा था, दो दिन में इसकी लुटिया न गुड़प हो तो तुम मेरा नाम ही बदल देना वेणी बाबू! इसकी नवाबी का सुना न? तारिणी घोषाल फूटी पाई छोड़कर नहीं मरे, फिर इतना लाम-काफ क्यों? गांठ में कुछ हो, तो करो; न तो जायदाद गिरवी रखकर किसने कव बाप का श्राद्ध किया, मैंने तो नहीं सुना! मैं खूब बता सकता हूं, छोकरे ने नन्दी की गद्दी से कम से कम तीन हजार रुपए जरूर कर्ज लिए है।

वेणी उत्साहित होकर बोले—भेद का पता तो लगाना होगा चाचा।

गोविंद ने आवाज धीमी करके कहा—सब्र तो करो! जरा अच्छी तरह समाने तो दो—उसके बाद—कौन खड़ा हैं वहां। अरे, रमेश? हम लोगों के होते ही तुम इतनी रात को क्यों?

रमेश ने इसका जबाब नहीं दिया। आगे बढ़कर बोला—बड़े भैया, आपके पास आया था।

अकबका कर वेणी जवाब न दे सका। गोविंद ने छूटते ही कहा—क्यों नहीं, हजार बार आओगे। आखिर तुम्हारा ही तो घर है। फिर बड़े भाई बाप के समान। इसीलिए तो हम कह रहे थे कि तारिणी भैया से जो अनबन थी, उसे उन्हीं तक रहने दो वेणी—अब काहे को? तुम दोनों भाई एक हो जाओ, देख कर हम अपनी आंखें जुड़ाएं। है न हालदार मामा? अरे, खड़े क्यों? अरे कौन है? कंबल का आसन-वासन डाल दे! नः वेणी बाबू, तुम बड़े भाई हो, तुम्ही सब हो। तुम्हारे अलग रहने से नहीं चलने का। इसके सिवाय बड़ी बहू जब खुद गई—तो फिर।

वेणी चौंक उठा—मां गई थीं?

उसका यों चौंकना देखकर गोविंद मन ही मन खुश हुआ। लेकिन अपने इस भाव को उन्होंने बाहर प्रकट नही होने दिया। निहायत भलेमानस की तरह इस खबर की उन्होंने ताईद करते हुए कहा—सिर्फ गईं? भंडार का भार, काम-काज सब वही तो सम्हाल रही हैं। और बहू न सम्हाले तो सम्हाले कौन?

सभी चुप रहे। गोविंद ने एक दीर्घनिश्वास छोड़कर कहा, नः, बस्ती में बड़ी बहू जैसी कोई है भी? न ही क्यों? नहीं-नहीं वेणी, मुंह पर कहूं तो खुशामद होगी, मगर कोई कुछ कहे, गांव में कोई लक्ष्मी हैं, तो वह हैं, तुम्हारी मां। ऐसी मां सबके होती है? कहकर उन्होंने फिर से एक दीर्घनिश्वास छोड़ा और गम्भीर हो रहे। वेणी बड़ी देर तक चुप रहकर अस्फुट स्वर में बोले, अच्छा।

गोविंद दबोच बैठे, अच्छा नहीं वेणी बाबू, तुम्हें जाना होगा। सब करना होगा—सारा भार तुम्हारे ऊपर। खैर, ठीक है। आप सभी तो यहां इकट्ठे हैं, न्योता कैसे-कैसे होगा, इसकी एक सूची क्यों न बना डाली जाय ? क्या ख्याल है रमेश ? ठीक है या नहीं हालदार मामा ? धरम भैया, चुप क्यों लगा गए ? किसे कहना है, किसे छोड़ना है, सब जानते हो।

रमेश उठ खड़ा हुआ। सहज विनीत स्वर में बोला—बड़े भैया, एक बार दया करके चलते तो—

वेणी गंभीर होकर बोला, जब मां गई तो मेरा जाना न जाना—क्यों गोविंद काका ?

गोविंद के बोलने से पहले ही रमेश बोला, मैं आप से जबर्दस्ती नहीं करना चाहता, अगर असुविधा न हो तो एक बार देख-सुन आएंगे !

वेणी चुप रहे। गोविंद कुछ कहना चाह रहे थे कि रमेश उठ कर चला गया। इस पर गोविंद ने बाहर की ओर गर्दन बढ़ाकर देखा और फुसफुसा कर बोले, वेणी बाबू, कहने का लहजा देखा !

वेणी अनमने से सोच रहे थे कुछ। बोले नहीं।

चलते-चलते गोविंद की बातें याद करके रमेश का मन घृणा से भर उठा। वह आधी रात से लौट कर फिर वेणी के घर गया। चंडी-मंडप में उस समय घन-घोर तर्क चल रहा था। लेकिन वह सब सुनने की उसे इच्छा न हुई। वह सीधे घर के अंदर गया और आवाज दी—बड़ी चाची।

चाची कमरे के सामने अँधेरे बरामदे में चुपचाप बैठी थीं। इतनी रात को रमेश की आवाज पाकर चकित हुई। बोलीं—रमेश ? क्या हैं बेटे ?

रमेश करीब आया। चाची बोलीं—जरा रुक जा। मैं बत्ती लाने को कह दूं।

बत्ती की जरूरत नहीं चाची, तुम बैठी रहो। और वह अँधेरे में ही एक तरफ बैठ गया। चाची ने पूछा—इतनी रात को ?

रमेश बोला, न्योता तो अभी तक किया नहीं गया है। वही पूछने आया हूं।

मुसीबत में डाल दिया बेटे ! वे सब क्या बोले ? गोविंद गांगुली चटर्जी बाबू—

रमेश ने बाधा देकर कहा—पता नहीं चाची, ये क्या कहते हैं। जानना भी नहीं चाहता मैं। तुम जो कहोगी, वही होगा।

रमेश की बातों में ताप महसूस कर विश्वेश्वरी मन ही मन विस्मित हुईं।

जरा चुप रहकर बोलीं—लेकिन उस समय तो तुमने बताया कि वही तुम्हारे सबसे अपने हैं ! खैर, जो हो, मेरी औरत की बात से होना भी क्या ? इस गांव में—इसी में क्यों, सभी गांव में—यह उसके साथ नहीं खाता, वह इसके साथ नहीं बोलता—कोई मौका ऐसा आ पड़ता है, तो आफत की हद नहीं रह जाती। किसे छोड़े, किसे पकड़े—इससे कठिन और काम नहीं है गांव में।

रमेश को ज्यादा आश्चर्य न हुआ। इन कै दिनों में उसे बहुत समझ आ गई थी। फिर भी पूछा—ऐसा क्यों होता है चाची।

वह लम्बी दास्तान है बेटा। यहां रह गये तो खुद ही समझ जाओगे। किसी का तो वास्तव में कसूर है और कोई नाहक ही बदनाम है—उसके सिवाय मुकदमे है, झूठी गवाही देना—इसके लिए भी दलबन्दी। मैं कहीं दो दिन पहले, तुम्हारे यहां गई होती, तो तुम्हें इतनी बडी तैयारी नहीं करने देती हर्गिज। उस दिन क्या जो होगा, मै यही सोचती हूं। चाची ने एक लम्बी उसास ली। वह उसांस क्या थी, रमेश उसका असली मर्म नही समझ सका और यह भी नही ठीक कर पाया कि वास्तव मे किसी का कसूर क्या हैं या झूठी बदनामी ही क्या बला है—सो वह उत्तेजित होकर बोला—लेकिन इन बातों से मुझ से क्या वास्ता ? मैं तो एक तरह से परदेसी ही हूं, मेरी किसी से दुश्मनी नही। मेरा ख्याल है, मैं सबको ब्राह्मण-शूद्र—न्योता करूंगा, दलबंदी का ख्याल न करूंगा मैं। मगर तुम्हारे हुक्म के बिना तो ऐसा न कर सकूगा, तुम हुक्म दो।

चाची कुछ देर चुप रही। रह कर बोली—ऐसा हुक्म तो नहीं दे सकती रमेश। इससे बड़ा झमेला होगा। लेकिन मैं यह भी नही कहती कि तेरा कहना सही नहीं है बेटे। समाज ने जिसे दण्ड देकर अलग कर दिया है, उसे जबरन बुलाया भी नहीं जा सकता। समाज जैसा भी हो, मानना ही पड़ता है, वरना उसके भला-बुरा करने की क्षमता नहीं रहती। ऐसे से तो काम नहीं चल सकता।

सोचकर देखता, तो रमेश इसमें नाहीं कर सकता, ऐसी बात नहीं; लेकिन अभी-अभी बाहर इसी समाज के चोटी के लोगों की साजिश और नीच वृत्ति उसके कलेजे में आग की तरह जल रही थी—इसीलिए वह अचानक घृणा के साथ बोल उठा, इस गाँव के समाज के मानी धर्मदास, गोविंद— ये ही लोग तो ? ऐसे समाज को जरा भी क्षमता न हो, यहीं तो अच्छा है चाची !

बड़ी चाची ने रमेश की गर्मी महसूस की। तो भी शांत स्वर मे बोलीं—यही नहीं, तुम्हारे बड़े भैया वेणी भी समाज के अगुआ है।

रमेश चुप रह गया। चाची ने फिर कहा—इसी से मैं कहती हूँ, इनकी राय

लेकर काम करो। तुरन्त गाँव में आए हो, आते ही इनके खिलाफ जाना अच्छा न होगा।

विश्वेश्वरी ने कितनी दूर की सोच कर यह सलाह दी, गुस्से में रमेश ने यह सोच कर नहीं देखा। बोला, तुमने अभी-अभी तो कहा चाची कि बहुत से कारणों से यहाँ दलबन्दी हुई है। शायद व्यक्तिगत आक्रोश ही सबसे ज्यादा है। सो जब मैं झूठ-सच, किसी के दोष-अपबाद की बात ही नहीं जानता तो ऐसे में किसी को भी छोड़कर उसका अपमान करना मेरे लिए अन्याय होगा।

बड़ी चाची जरा हँस कर बोली, अरे पगले, मैं तेरी माँ के बराबर हूँ। मेरी बात न मानना भी तो तुम्हारे लिए अन्याय है।

करूं क्या चाची, मैं ने तै किया है, मैं सब को न्योतूंगा।

उसका ऐसा संकल्प देख बिश्वेश्वरी का चेहरा मुरझाया, शायद हो कि अंदर ही अंदर खीझी: बोलीं फिर तो मेरी आज्ञा के लिए आना तुम्हारा महज़ बहाना है।

चाची की खीझ को रमेश ताड़ गया पर बिचलित न हुआ। बोला, मैं जानता था चाची कि जो काम गलत नहीं है, उसके लिए तुम मुझे खुशी-खुशी आशीर्वाद दोगी। मेरा—

बीच ही में रोककर बिश्वेश्वरी ने कहा, लेकिन तुम्हें यह तो समझना चाहिए था कि मैं अपने बेटे के खिलाफ नहीं जा सकती ?

रमेश को चोट लगी। क्योंकि, मुँह से वह चाहे जो भी कहे, कल से उसका सारा अन्तःकरण कैसे तो बड़ी चाची से संतान का दावा कर रहा था; अभी उसने देखा, उस दावे के बहुत ऊपर उनके बेटे के दावे ने काफी जगय छेंक रक्खी है। वह जरा देर चुप रह कर उठ खड़ा हुआ। दबे अभिमान के स्वर में बोला—कल तक यही समझता था चाची ! इसीलिए मैंने तुमसे कहा था कि जो बनेगा, अकेले ही करूँगा तुम मत आना; तुम्हें बुलाने की हिम्मत भी न हुई थी।

चाची से उसका यह क्षुण्ण अभिमान छिपा न रहा। मगर उन्होंने जबाब न दिया अँधेरे में चुप बैठी रहीं। रमेश जब जाने लगा, तो बोला, जरा रुक जाओ बेटा, तुम्हारे भंडार की कुंजी ला दूं। वह कमरे में गई और कुंजी लाकर रमेश के पैरों के पास फेंक दी। रमेश कुछ देर सन्न-सा खड़ा रहा, उसके बाद एक लंबा निश्वास छोड़ते हुए कुंजी उठा कर चला गया। घंटे भर ही पहले उसे भरोसा हुआ था. अब डर किस बात का, बड़ी चाची हैं। लेकिन एक रात भी न गुजरी, उसे फिर उसांस भरकर कहना पड़ा, नः, मेरे कोई नहीं चाची ने भी मुझे छोड़ दिया !

चार

अभी-अभी श्राद्ध खत्म हुआ। आसन से उठकर रमेश आए हुए लोगों से परिचित होने की कोशिश कर रहा था अंदर भोजन के पत्तल डालने की तैयारी हो रही थी कि ऐसे में एक शोरगुल सुनकर रमेश अंदर पहुँचा। साथ-साथ और भी बहुत से लोग गए। रसोई के किवाड के एक ओर पचीस-छब्बीस साल की एक विधवा लड़की उधर को मुंह किए सिटपिटाई-सी खड़ी है और एक प्रौढा औरत उसे अगोरे आंखें लाल-पीली किए चिंगारियाँ-सी उगल रही है। झगड़ा प्राण हालदार से था। रमेश को देखते हो वह महिला जोर से पूछ बैठी—अच्छा बेटा तुम भी तो गाँव के एक जमीदार हो; मैं पूछती हूँ मारा कसूर क्या इस खेती ब्राह्मणी की बिटिया का ही है, चूंकि हमारे सिर पर कोई नहीं इसलिए जितनी बार जी में आए सजा दोगे ?

गोविंद पर नजर पडते ही बोली—ये रहे ! मुखर्जी-परिबार की वृक्ष प्रतिष्ठा के समय जुर्माने के नाम पर इन्होंने स्कूल के लिए हमसे दस रुपए नहीं लिए, गाँब की शीतला-पूजा के लिए दो जोड़े बकरे का दाम नहीं वसूला, फिर एक ही बात के लिए कब तक इस तरह गड़े मुर्दे उखाड़ना चाहते हैं ?

माजरा क्या है, रमेश कुछ भी न समझ सका। गोविंद गांगुली बैठे थे। फैसले के लिए बढ़े। एक बार रमेश की ओर और एक बार उस प्रौढा औरत की ओर देखकर बोले, खेंती मौसी जब मेरा नाम लिया तो सच्ची बात बता दू। यह गोविंद गांगुली मुंह देखी बात नहीं कर सकता, सारा देश जानता है। तुम्हारी लड़की का प्रायश्चित्त भी हो चुका है, सामाजिक जुर्माना भी किया है, मानता हूँ। मगर हमने यज्ञ में लकड़ी डालने की इजाजत तो नहीं दी है। मरने पर लाश में हम कंधा लगाएंगे, लेकिन—

खेंती चीख उठी, मरने पर अपनी ही बिटिया को कंधे पर ले जा कर जला आना भैया मेरी बेटी की प्रिक्र तुम्हें नही करनी। मैं पूछती हूँ तुम्हें अपनी आँखों का फूल नहीं दिखाई देता गोविंद ? तुम्हारी छोटी भौजी, भंडार में बैठी बीड़े लगा रही है, पारसाल डेढ महीने जाने कौन-सी काशी में रह कर वैसे पीली और सीक सी दुबली होकर लौटी थी, कहो तो ? बड़ों की बडी बातें जानती हूँ मैं। बारूद में चिनगी मत रक्खो, वरना सब हेकडी भुला दूगी। पेट में बच्चे हमने भी पाले हैं, खूब पहचान सकती हूँ। हमारी आँखों में धूल झोकने की कोशिश मत करो।

गोविंद पागल की तरह टूट पड़े—हरामजादी कहीं की--

मगर हरामजादी औरत जरा भी न डरी, बल्कि एक कदम आगे बढ़ कर

हाथ मुंह चमका कर बोली—मारेगा क्या तू ? इस बूढ़ी ब्राह्मणी को छेड़ोगे तो ठग की बुनाई में गाँव उजड जायगा कहे देती हूँ मेरी लड़की रसोई में गई तो थी नहीं दरबाजे पर जाते न जाते इस हालदर देवर ने खामखा ऐसा अपमान क्यों किया ? मैं पूछती हूँ उसकी समधिन तांती के साथ थी क्या नहीं ? मैं क्या आज की हूँ -- और बताऊँ कि इतने से ही काम चल जायगा ?

रमेश काठ का मारा-सा खड़ा रहा। भैरव ने खेंती का लगभग हाथ पकड़ कर विनती की—बहुत हो गया मौसी रहने भी दो। उठ, उठ सुकुमारी, मेरे साथ आ उस कमरे से बैठना। चल।

प्राण हालदार कंधे पर चादर लिए सीधे खड़े हो गए। बोले इन कसबियों को जब तक निकाल बाहर नहीं करोगे मैं यहाँ अन्न-जल नही ग्रहण करूगा। गोविंद ! कालीचरण काली अपने मामा को चाहते हो, तो चले आओ उठकर। वेणी बता रहा था मामा, मत जाना वहाँ। जांनता कि यहां ऐसी-ऐसी खानगियों के चोंचले हैं, तो क्या जात-जनम गँवाने के लिए यहाँ कदम भी रखता ! काली ! चलो।

मामा के बार-बार बुलाने के बावजूद कालीचरण गर्दन झुकाए बठा रहा। वह जूट का काम करता था। कोई चारेक साल पहले कलकत्ता निवासी उसका एक जाना-माना खरीदार मित्र उसकी छोटी विधबा बहन को भगा ले गया था। यह बात छिपी न थी। अचानक उसका ससुराल चल देना और बहाँ से तीर्थयात्रा में निकलना आदि के बहाने कुछ दिनों तक दबी भर थी। कहीं इतने लोगों के सामने यह इतिहास फिर से खुल न पड़े, इस डर से काली अपना सर न उठा सका। पर गोविंद के बदन को जलन बिलकुल नहीं मिटी थी। वह फिर खड़ा हुआ और ऊँची आवाज में बोला, कहने को चाहे जो जो कहे इस इलाके के समाजपति हैं वेणी धोषाल, प्राण हालदर और यदु मुखर्जी की बेटी। हम उन्हें तो नहीं छोड़ सकते। समाज के खिलाफ रमेश ने इन दो औरतों को अपने यहाँ क्यों बुलाया, जब तक इस बात का जवाब नहीं मिलता, हम सब यहाँ एक बून्द पानी तक नही लेने के।

देखते-देखने कंधे पर चादर लिए एक-एक कर पाँच-सात जने खड़े हो गए। गंवई गाँव के लोग; सामाजिक मामलों में कहाँ कौन-सी बात लाभ की है, यह इनकी अजानी नहीं।

आमंत्रित ब्राह्मण गण, जिसकी जो खुशी, कहने लगे। भैरव और दीनू रुआसे-से होकर कभी खेंती और उसकी बिटिया तो कभी गांगुली और हालदर के हाथ-पाँव जोड़ने लगे—क्रिया-कर्म, आयोजन, प्रबन्ध चौपट होने की नौबत आ गई। लेकिन

रमेश एक शब्द भी न बोल सका। एक तो भूख-प्यास से बुरा हाल, जिस पर ऐसी एक अप्रत्याशित घटना घट गई। वह काठ का मारा-सा टुकुर-टुकुर ताकता रहा।

रमेश !

एकाएक सब की चकित दृष्टि एक होकर विश्वेश्वरी के मुंह पर जा पड़ी। वह भंडार से निकल कर किवाड़ के सामने आ खड़ी हुई थीं। माथे पर कपड़ा था, लेकिन चेहरा खुला। रमेश ने देखा, बड़ी चाची खुद ही जाने कब आ पहुँचीं—उन्होंने उसे त्यागा नहीं। बाहर के लोगों ने देखा, यही विश्वेश्वरी है, घोषाल-परिवार की मालकिन !

गाँवों में शहर जैसी पर्दा की कड़ाई नहीं—तो भी विश्वेश्वरी बड़े घर की बहू होने के नाते या और जिस कारण से भी हो, काफी उम्र हो जाने के बावजूद मामूली तौर पर किसी के सामने नहीं होतीं। लिहाजा सभी बड़े हैरान रह गए। जिन्होंने उनके बारे मे सिर्फ सुना था, लेकिन पहले कभी आँखों नहीं देखा, वे उनकी गजब की आँखें देखकर अवाक् रह गए। शायद वह क्रोध के मारे ही निकल आई थीं। सबने उनकी तरफ जो एक साथ देखा, वह पाये के पास खिसक गईं। उनकी साफ और तीखी आवाज से रमेश की विह्वलता जाती रही। वह आगे आ गया। बड़ी चाची ने ओट से उसी प्रकार साफ और ऊँची आवाज में कहा, रमेश, गांगुली से कह दे, धमकाने से बाज आए ! और हालदर बाबू से कह दे, मैंने सब को आदर से बुलाया है, उन्हें सुकुमारी का अपमान नहीं करना चाहिए था। यहाँ यह चीख-पुकार. शोर-गुल, गाली-गलौज करने को मैं मना करती हूँ। जिनसे यह न बनें, कहीं और पधारें।

बड़ी बहू का सख्त आदेश सबने अपने कानों सुना। रमेश को खुद कुछ न कहना पड़ा, पड़ता तो वह नहीं कह सकता। इसका नतीजा क्या हुआ, खड़ा रह कर इसे वह देख भी न सका। सारी जिम्मेदारी बड़ी चाची को अपने ऊपर लेते देख किसी कदर अपना आँसू रोकते हुए वह जल्दी से एक कमरे में घुस पड़ा। वहाँ उसकी आँखों से बेताब आँसू ढुलक पड़े। आज दिन भर वह कामों में बुरी तरह फंसा रहा। कौन आया, न आया यह देखने की फुर्सत न रही। लेकिन और चाहे जो जाएँ, बड़ी चाची जा सकती हैं, इसका कयास तक न था उसे। जो लोग उठ कर खड़े हो गए थे, धीरे-धीरे बैठ गए। केवल गोविंद गांगुली और प्राण हालदर जड़-से खड़े रहे। भीड़ में से कौन तो उनके लिए बोल उठा, बैठ भी जाओ काका ! सोलह पूरियाँ, दो गंडा मिठाई भरपेट खिलाने के के बाद कौन तो देता है।

हालदर धीरे-धीरे वहाँ से निकल गए। मगर गजब, गोविंद सचमुच ही बैठ गए। हाँ, मुँह लेकिन लटकाए रहे और जब पंगत बैठा तो प्रबन्ध के बहाने लोगों के साथ न बैठे। जिन लोगों ने उसके इस व्यवहार को देखा, उन सबने यह समझ लिया

कि गोविंन आसानी से किसी को छुटकारा न देंगे। इसके बाद कोई झमेला नहीं हुआ। ब्राह्मणों ने जैसा खाया. आँखों देखे बिना उस पर यकीन नहीं किया जा सकता और एक-एक ने घर के एक-एक बक्चे के नाम पर जितना कुछ बाँधा, वह भी मामूली नहीं।

काम-काज हो गया। शाम के बाद रमेश घर के सामने एक अमरूद के पेड़ के नीचे अनमना-सा खड़ा था। जी उसका ठीक न था। देखा, दीनू भट्टाचार्य पूरी-मिठाई की गठरी के भार से झुकते हुए बच्चों के साथ चुपचाप बचकर निकले जा रहे हैं। सबसे पहले रमेश पर खेंदी की नजर पडी। दोषी की नाई सिटपिटा कर वह बोली बाबूजी, बाबू खड़े है—

सभी झिझक उठे। बच्ची की उस एक बात से ही रमेश को सारी कहानी समझ में आ गई। भागने की गुंजाइश होती तो वह खुद भाग खडा होता। लेकिन चूँकि गुंजाइश न थी, इसलिए आगे बढकर पूछा—खेंदी, यह सब किसके लिए ले जा रही है रे ?

इतनी-इतनी गठरी-पोटली की सफाई खेदी ठीक-ठीक नहीं दे पायेगी, इस आशंका से दीनू जरा हँसते हुए खुद ही बोले—टोले के गरीब-गुरबों के बच्चे हैं। ये जूठे-बूठे उन्हें नसीब हो जायँगे। खैर, जो हो, बडी बहू को सारा इलाका क्यों मालकिन मानता है, मेंने यह आज समझा।

रमेश ने इसका कोई जवाब न दिया। फाटक तक उनके साथ जाकर हठात् पूछ बैठा, अच्छा आप तो यहाँ का सब कुछ जानते हैं। इस गाँव में इतनी फूट क्यों हैं, यह तो बताइए ?

दीनू ने मुँह से एक अजीब-सी आवाज निकाल कर एक दो-बार गर्दन हिला करके कहा—अरे भैया, कुआँपुर में तो फिर भी गनीमत है। अभी खेंदी के नाना के यहाँ के दिनों तक मैं जो हाल देख आया कि पूछो मत ! बाह्मन-कायस्थ के बीस भी न होंगे घर गाँव में, मगर चार-चार दल है। दो बिलायती अमड़ा तोड़ लिया था, इस कसूर पर हरनाथ विश्वास ने अपने भानजे को जेल भिजवाकर ही दम लिया हर गाँव का यही हाल है बेटा—तिसपर मारे मुकदमों के सूराखों का अन्त नहीं। खेंदी जरा हरिधन का हाथ बदल दे बिटिया।

रमेश ने पूछा, तो इसका क्या कोई प्रतिकार नहीं ?

प्रतिकार कैसे हो, घोर कलिकाल जो है। एक लम्बा निश्वास छोड़कर भट्टाचार्य जी बोले मगर एक बात मैं कह सकता हूं। मांगने-जाँचने के लिए मैं बहुत से गाँवों में जाता हूं न – बहुत-से लोग दया करते हैं। मैंने यह खूब गौर किया है कि तुम नौजवानों में दया धर्म है—है नहीं कंबख्त इन वृद्धों में। जरा अपने शिकंजे

में आ जायँ, तो दूसरों की छाती पर सवार होकर उसकी जीभ निकाले बगैर नहीं छोड़ने के--कहकर दीनू ने इस अदा से जीभ निकालकर दिखलाई कि रमेश हँस पड़ा।

दीनू ने लेकिन हँसी में साथ नहीं दिया। बोले---हँसी की बात नहीं भैया, बिल्कुल सही कह रहा हूं। यों मैं खुद भी बूढ़ा हो आया—लेकिन—अरे, तुम तो अँधेरे में काफी दूर निकल आए!

आने दीजिये, आप कहिए।

कहूं भी क्या बेटे, गँवई गाँव का एक ही हाल। यह गोविन्द गांगुली, इस कंबख्त के पापों की बात जबान पर लाने से प्रायश्चित करना पड़े। खेंती ने कुछ गलत नहीं कहा, मगर सभी उससे डरते है। जाल बनाने में, झूठी गवाही देने में, मुकदमा बनाने में उसका सानी नहीं। वेणी बाबू उन्हीं में हैं --लिहाजा कोई चूं करने का साहस नहीं करता —बल्कि वही जिसको-तिसको जात से अलग किए चलता है।

रमेश ने देर तक और कुछ न पूछा, साथ-साथ चलता रहा। तुम मेरा कहा लिख रखो, बेचारी खेंती को छुटकारा नहीं। गोविन्द और हालदर, दो-दो ततैयों के खोंते को छेड़ना क्या आसान बात है! मगर जो भी हो, उस दहमारी की हिम्मत खूब है! हिम्मत हो भी क्यों नहीं? मुरमुरे बेचकर गुजारा करती है। घर-घर आना-जाना है; सब की सब कुछ जानती है। उससे छेड़खानी की तो वह मुँह दिखाने लायक नहीं रहने देगी। अनाचार है किस घर में नहीं? वेणी बाबू को भी—

रमेश ने जैसे डरकर कहा--उनकी रहने दीजिए—

दीनू झेंप गए। बोले –बेटे, मैं गरीब आदमी ठहरा। मुझे किसी की बात से क्या पड़ी। कोई अगर वेणी बाबू से चुगली लगा दे तो मेरे झोपड़े में आग—

रमेश ने टोका, क्या आपका घर और दूर है?

नहीं, नहीं, ज्यादा दूर नहीं—बाँध के पास ही अपना झोंपड़ा है। कभी फुर्सत हो तो—

जरूर, जरूर आऊँगा। रमेश लौटने को तैयार हुआ। बोला—कल तो फिर भेंट होगी--लेकिन इसके बाद भी कभी-कभी कृपा करते रहें। कहकर वह लौट पड़ा!

दीर्घजीवी होओ। अपने बाप जैसा बनो।

हृदय से आशीर्वाद देकर दीनू बच्चों के साथ चले गए।

पांच

बस्ती के एक मात्र मधुपाल की दूकान थी नदी को जाने की राह में, हाट के एक ओर। दस-बारह दिन हो गए। मगर वह अपने बाकी दस रुपये लेने न आया। सो क्या सोचकर तो रमेश एक दिन सबेरे उसकी दूकान मे गया। मधुपाल ने बड़े आदर के साथ छोटे बाबू को मोढ़े अर बैठाला और उसके वहाँ आने की वजह सुनकर बेतरह हैरान हो उठा। कर्जदार खुद इतनी दूर आकर कर्ज चुकाए, इतनी उम्र में मधुपाल ने अपनी आँखों तो यह नहीं ही देखा था, कानों भी नही सुना। बातों-बातों मे बहुत-सी बातें हुई। मधु ने कहा - दूकान क्या चलेगी बाबू ? दो आना रुपया इस तरह आयः पचास-साठ रुपये बाकी लग गए है। बस दे जाता हूं—मगर दो महीने में भी अदा होने की सूरत नहीं। अरे, बनर्जी बाबू ! कब पधारे पालागी।

बनर्जी बाबू के बाएँ हाथ में एक गड़ुआ, पाँवों की एड़ी और नाखूनों मे कीचड़, दायें हाथ में केले के पत्ते में मुड़ी थोड़ी सी नन्ही मछलियाँ। उन्होंने फक् से एक निश्वास फेंककर कहा— कल रात आया। पी, जरा तम्बाखू पी। कहकर उन्होंने गड़ुवा नीचे रक्खा पुड़िए की मछलियाँ फैलाकर बोले—जरा सरबी कुंजड़िन का मजा तो देख, खप्प से मेरा हाथ पकड लिया ? धीरे-धीरे क्या जमाना आ गया। मधु, यह एक पैसे की मछली ? बाह्मन को ठगकर कब तक खाती रहेगी री दईमारी सत्यानाश नहीं होगा ?

मधु ने अचरज से कहा—आपका हाथ पकड़ लिया ?

बिगड़ते हुए बनर्जी बाबू ने एक बार चारों तरफ निगाह दौड़ाई और उत्तेजित होकर कहा—सिर्फ ढाई पैसे उसके मेरे जिम्मे बाकी हैं तो क्या उसीके लिए हाट में उसने लोगों के सामने हाथ पकड़ लेगी ? किसने यह नहीं देखा, बता भला, ? मैदान से लौटा, नदी में गड़ुआ माँजा, हाथ पाँव धोए। सोचा, हाट से ही होता चलूं ! वह टोकरी लिए बैठी थी—और मुझसे कह क्या दिया, सब खत्म हो गई बाबा। भला मेरी आँखों में धूल झोंक सकती है तू ? मैंने टोकरी उधार कर देखी कि झट उसने कलाई थाम ली। पिछले ढ़ाई पैसे और आज का एक—यहीं साढ़े तीन पैसे लेकर मैं गाँव छोड़कर भाग जाऊँगा ? तू ही बता मधु ?

मधु ने हामी भरी—जी, ऐसा भी हो सकता है।

फिर बता भला, गाँव में समाज क्या रहा नहीं तो इस साले कुंजड़े का नाई, धोबी बन्द करा कर गांव से इसे उजाड़ा नहीं जा सकता।

अचानक रमेश को देखकर पूछा—ये बाबू कौन मधु ! मधु ने गर्व के साथ कहा, अपने छोटे बाबू के लड़के ! उस दिन दस रुपए बाकी रह गए थे, वही देने के लिए खुद आए है।

बनर्जी बाबू ने मछलियों की चर्चा को गोली मारी और आंखे फाड़कर बोले—अरे रमेश ! जीते रहो बेटे। मैंने आकर सुना जरूर कि श्राद्ध खूब किया। ऐसा भोज-भात इस इलाके मे कभी नहीं हुआ। मगर बड़ा दुख रहा इसका कि मैं न देख पाया। पाँच सालों की बातों में आकर कलकत्ते नौकरी करने गया। डोमड़े का हाल जानो। राम-राम ! वहाँ भला आदमी रह सकता है !

रमेश उस आदमी की ओर ताकता रह गया। लेकिन दुकान मे जितने लोग थे सबके सब उनके कलकत्ता-प्रबास की कहानी सुनने को उतावले हो उठे। चिलम भर कर मधु ने बनर्जी बाबू के हाथ में हुक्का थमाया। पूछा, तो ? कोई नौकरी-वौकरी लगी थी ?

क्यों न लगती ? कुछ कोदो देकर लिखा-पढ़ा है मगर लगने से क्या ? वहा रह कौन सकता है, बता ! जितना ही धुआँ, उतनी ही कीचड़। बाहर निकलो और गाड़ी घोड़ों से दब कर बिना मरे लौट आओ तो समझो कि बाप का बड़ा पुण्य था !

मधु कभी कलकत्ते गया नही। एक बार गवाही देने गया था, सो मेदिनीपुर देख आया था ! वह हैरान होकर बोला—कह क्या रहे हे आप। बनर्जी जरा हसकर बोले, अपने रमेश बाबू से पूछ देखना, झूठ कि सच है ! उहूं, खाना न नसीब हो, तो छाती पर हाथ धरकर मर जाऊँगा वह भी भला, परन्तु परदेश जाने का नाम भी न ले कोई मेरे पास। कहूं तो यकीन न आयेगा तुझे, वहाँ साग, चलता, अमड़ा तक भी खरीदकर खाना पड़ता है। खा सकेगा खरीद कर ? एक महीना न खा-खा कर दुबला चूहा बन गया मैं तो। रात दिन पेट छटपट, छाती मे जलन, प्राण अकबक—आखिर भागा तो चैन की साँस ली। राम कहो भैया, जुटेगा तो गांव मे एक ही जून खाकर रहूंगा, न जुटेगा तो बाल-बच्चों के साथ भीख मांगूंगा—ब्राह्मण के बच्चे के लिए इसमें शर्म की कोई बात नहीं; लेकिन माँ लक्ष्मी माथे पर रहे—परदेश जिसमे कोई न जाय !

उनका यह किस्सा सुनकर जब लोग भय से अवाक् हो रहे, तो बनर्जी उठे और मधु के तेल के मटके में चुल्लू डुबा कर तलहथी पर छटांक भर तेल रखकर कुछ नाक कान की सूराखों में डाल बाकी को बालों में थोप लिया और बोले—बेला हो गई, अब एक बारगी नहाकर ही लौटूँ। एक पैसे का नमक तो दे दे मधु, पैसा शाम को दे जाऊँगा।

शाम को ? मधु नाखुश-सा नमक देने के लिए दूकान में गया। बनर्जी ने गर्दन

बढ़ाकर देखा और अचरज तथा खीझ से कहा—आखिर तुम लोग हो क्या गए मधु, गाल पर चपत लगा कर पैसा वसूलता है, और उन्होंने लुचककर खुद एक मुट्ठी नमक ढोंगे में ऊपर से डाल कर ढोंगा उसके हाथ से ले लिया। हाथ में अपना गड़ुआ उठाया और रमेश से बोले—रास्ता तो एक ही है, चलो, गप करते-करते चलें।

चलिए। रमेश तैयार हो गया। मधु ने करुण स्वर मे कहा,—बनर्जी बाबू, आटे के पाँच आने पैसे—

बनर्जी बिगड़ उठे। अरे मधु, दोनों शाम तो चार आँखे होती रहेगी—तेरे क्या आँखों का चमड़ा तक नही, पाँच सालों के बहकाए कलकत्ता जाते-आते मेरे पाँच-पाँच रुपए गल गए और यही तुझे तकाजा का समय दीखा। किसी की जान जाय, किसी को स्वाद नही! देख लिया रमेश, इन लोगो का रवैया देखा!

मधु इत्ता-सा हो गया। धीमे से बोला—जी बहुत दिनों का—बहुत दिनो का है तो क्या हुआ, सभी लोग इस कदर पीछे पड़ जाओ तो गाँव मे टिकना मुश्किल। और एक प्रकार से बिगड़ कर ही बनर्जी वहाँ से गए।

लौट कर रमेश ने ज्योंही घर के अन्दर कदम रक्खा कि एक आदमी हड़बड़ मे हाथ का हुक्का रख कर पांवों के पास आकर उसे प्रणाम करके बोला—जी मैं हूं बनमाला पाडुई। आप लोगों के स्कूल का हेडमास्टर। दो दिन आकर लौट गया, भेंट न हो सकी। इसलिए—

रमेश ने आदर से उसे कुर्सी दी। लेकिन वह अदब के साथ खड़ा ही रहा। बोला—जी मैं तो आपका नौकर हूं।

उम्र में वह प्रवीण था और जो कुछ भी हो एक स्कूल का शिक्षक था। उसके इस झुके हुए भाव और हिचक से रमेश को अश्रद्धा हो आई। वह हर्गिज कुर्सी पर न बैठा खड़ा-खड़ा ही, जो कहना था, कहने लगा। इलाके भर मे यही एक छोटा-सा स्कूल मुखर्जी और घोषालों की चेष्टा से कायम हुआ था। कोई तीस-चालीस छात्र है। कोई-कोई दो-तीन कोस से भी आता है। कुछ सहायता सरकार से भी मिलती है, मगर अब स्कूल जैसे चल नहीं रहा है। रमेश को याद आया, बचपन में वह भी यहां कुछ दिनों तक पढ़ा था हेडमास्टर ने बताया, छप्पर की छौनी नहीं हो जाती तो अब की बरसात में कोई उस में बैठ नहीं सकेगा। लेकिन इसकी फ़िक्र बाद में करने से भी काम चलेगा, मौजूदा जो सबसे बड़ी मुसीबत है, वह यह कि तीन महीने से किसी शिक्षक को वेतन नहीं मिला है—लिहाजा घर का खाकर जंगली भैंसे खेदना अब किसी से नहीं चल रहा है।

स्कूल की बात से रमेश सजग हो गया। हेडमास्टर साहब को बैठक में ले

जाकर एक-एक करके सारी बातों की पूछताछ करने लगा। चार शिक्षक है और उनकी जी तोड़ कोशिश से औसत दो लड़के हरसाल मिडल पास कर रहे है। उन सब के नाम-धाम हेडमास्टर साहब मुखस्थ सुना गए। लड़को से जो फीस मिलती है, उससे नीचे के दो शिक्षकों का और सरकारी मदद से एक और का किसी तरह चल जाता है- एक को तनखा गाव और गाव के बाहर के चन्दे से जुटानी पड़ती है। यह चन्दा बटोरना भी शिक्षकों के ही जिम्मे है। पिछले तीन-चार महीनों से वे घर-घर गए, एक-एक घर मे सात- आठ बार दौड़ लगाने के बाद भी सात रुपए चार आने से ज्यादा नहीं अदा कर सके।

सुनकर रमेश दंग रह गया। पाच-छः गॉव के बीच एक स्कूल और उन सब गाँवों मे तीन मास तक चक्कर काटने के बाद सिर्फ सात रुपए चार आने मिले। रमेश ने पूछा—आपका वेतन कितना है ?

मुझे रसीद छब्बीस रुपए की देनी पड़ती है पर मिलता है तेरह रुपए पद्रह आने। रमेश को यह ठीक से समझ में नहीं आया—उसकी ओर वह ताकता रह गया। मास्टर ने समझा कर बताया जी, सरकारी हुक्म है, इसलिए छब्बीस रुपए की रसीद इन्सपेक्टर साहब को दिखानी पड़ती है। यह न करें तो सरकारी मदद मिलना बन्द हो जाय। इस बात को सभी जानते है। आप किसी छात्र मे पूछ देखे—मैं झूठ नहीं कह रहा हू।

वड़ी देर तक चुप रह कर रमेश ने पूछा—इससे छात्रों के सामने आप के सम्मान की हानि नहीं होती ?

मास्टर साहब शर्मिंदा हुए। बोले—करूँ भी क्या मैं ! वेणी बाबू इतने रुपए भी नहीं देना चाहते।

वही सब कुछ हैं शायद।

मास्टर ने जरा आगा-पीछा किया; किन्तु ना कहें तो कैसे। सो धीरे-धीरे कहा लेक्रेटरी वही है; परन्तु कभी एक पाई नहीं देते। यदु मुखर्जी की लड़की, बड़ी लक्ष्मी है, उनकी कृपा न रही होती तो स्कूल कब का उठ गया होता। इस साल छौनी छप्पर करा देने का वादा किया भी था, लेकिन एकाएक उन्होंने मदद क्यों बन्द कर दी कोई नहीं समझ पा रहा है।

रमेश ने उत्सुकता से रमा के बारे में और भी कुछ पूछताछ की और अन्त में कहा, उनका एक भाई वहीं पढ़ता है न ?

मास्टर बोला, यतीन ? हाँ हाँ, पढ़ता है।

रमेश ने कहा स्कूल को देर हो रही है। आप आज जाइए। मैं कल आपकी तरफ जाऊँगा।

जैसी आज्ञा। मास्टर ने रमेश को प्रणाम करके उसके चरणों की धूल ली और चला गया।

छः

विश्वेश्वरी की उस दिन वाली बात उसी दिन आस-पास के दस गाँवों मे फैल चुकी थी। वेणी खुद किसी के मुंह पर खरी-खोटी नही सुना सकता था, इसलिए वह रमा की मौसी को बुला लाया था। पुराने जमाने मे क्या तो किसी तक्षक ने दांत गडा कर एक बहूत बड़े पीपल को जला डाला था। यह मौसी उस दिन घर आकर जो जहर उगल गई; कि विश्वेश्वरी की देह रक्तमाँस की थी, काठ की न थी चाहे इसलिए या इसलिए कि यह वह पुराना जमाना नही - जलकर राख की देर मे नहीं बदली। सारे अपमान को विश्वेश्वरी चुपचाप पी गई; क्योंकि उनसे यह छिपा नहीं रहा कि यह किया कराया सब उनके बेटे का ही है। कही कोई जवाब दे और उस औरत के मुँह से उनके बेटे की बात निकल पड़े और यह रमेश के कानो पहुँचे—इस बेहद शर्मिदगी के डर से वह बुत बनी बैठी रही।

लेकिन गाँव में कुछ छिपा तो रह नही सकता। रमेश को खबर लगी। बड़ी चाची के लिए उसे शुरू से ही उत्सुकता थी और सुबहा भी था उसे कि इस पर झगड़ा-झंझट होगी। पर वेणी एक पराई औरत को बुलाकर अपनी मा का ऐसा अपमान कराएगा, यह बात उसे दुनिया के बाहर लगी। और तुरन्त उसके क्रोध की आग दिमाग मे भभक उठी। जी मे आया, दौड़कर जाए वहां और मुह में जो आवे वही वेणी को सुना दे; जो आदमी अपनी मा का ऐसा अपमान करा सकता है, उसे अपमानित करने मे सोच-विचार की कोई जरूरत ही नही। लेकिन तुरन्त ख्याल आया, ऐसा नहीं होना चाहिए; इससे बड़ी चाची का अपमान बढ़ने के बजाय घटेगा नहीं। उस दिन दीनू से और कल मास्टर साहब की जवानी सुनकर रमा के लिए उसे खासी श्रद्धा-सी हो आई थी। चारों ओर फैली जहालत और हजारों तरह की घृणित क्षुद्रता के बीच एक बड़ी चाची के हृदय को छोड़कर सारा गांव अँधेरे में डूब गया है, जब उसे यह निश्चित विश्वास-सा हो गया था, ऐसे में मुखर्जी-परिवार की ओर से जरा-सी जोत का आभास—वह आभास जितना भी तुच्छ और क्षुद्र क्यों न हों—उसके मन को बड़ा आनन्द दे गया था। लेकिन आज की इस घटना से फिर उसका मन उसके लिए घृणा और वितृष्णा से भर गया।

उसे इसमें जरा भी संदेह न रहा कि वेणी से मिलकर मौसी और बहन बेटी ने यह जुल्म ढाया है। लेकिन आखिर वह इन दो स्त्रियों के खिलाफ क्या करे और वेणी को ही कैसे इसकी सजा दे, कुछ सोच न पाया।

ऐसे में एक घटना घटी। मुखर्जी और घोषालों की कुछ जायदाद का अभी तक बटवारा न हुआ था। आचार्य के पिछवाड़े का पोखरा 'गढ़' भी दोनों की संपत्ति था। कभी यह पोखरा खासा बड़ा था। धीरे-धीरे भरता गया और अब एक गढ़ा सरीखा हो गया था। अच्छी मछलियां इसमें न डाली जाती थीं भी नहीं। कवै मुगरी जैसी कुछ मछलियां थीं, जो आप ही आप पैदा हो जाती हैं। भैरव हांफता हुआ आया। बाहर चंडीमंडप के पास गोपाल गुमाश्ता बही लिख रहा था। भैरव ने कहा—सरकार बाबू आपने आदमी नही भेजा ? मछलियां पकड़वाई जा रही हैं।

सरकार ने कान पर कलम को खोंस लिया। बोला—कौन पकड़वा रहा है ?

कौन फिर कौन ? वेणी बाबू का नौकर है, मुखर्जी का दरबान भी खड़ा है—देखा मैंने। आपका ही कोई नहीं है। किसी को भेज दीजिए जल्दी।

गोपाल ने खास कोई हड़बड़ी नहीं जाहिर की। कहा—अपने मालिक मछली-मास नही खाते।

भैरव बोले—खाएँ चाहे नही, मगर अपना हिस्सा तो लेना है।

गोपाल ने कहा—हम लोग चाहते हैं, बड़े बाबू होते तो वह भी यही चाहते लेकिन रमेश बाबू दूसरी किस्म के है। भैरव के चेहरे पर अचरज का भाव देखकर हँसते हुए जरा श्लेष करके वह बोला—यह तो मामूली कुछ मछलियां हैं अचारज जी ! उस रोज दोनों पट्टीदारों ने हटिया के पास वाला विशाल इमली का पेड़ काटकर बाँट लिया, हम लोगों को एक तिनका भी न दिया। मैने दौड़कर बाबू को बताया, उन्होंने किताब से एक बार नजर हटाकर देखा और फिर पढ़ने लगे। मैंने पूछा—तो क्या करूं ? रमेश बाबू को फिर किताब से सर उठाने की भी फुर्सत न मिली। मैंने जब बार-बार कहा, तो किताब से इधर मुखातिब हुए। जम्हाई लेकर बोले—लकड़ी ? इमली का और क्या पेड़ नहीं है ? जरा सुनिये उनकी बात ! मैंने कहा—है क्यों नहीं ? मगर अपना वाजिब हक क्यों छोड़ दें—कौन छोड़ता है ऐसे ? रमेश बाबू फिर अपनी किताब खोली—चार-पाँच मिनट चुप रहकर बोले—बात तो ठीक है। लेकिन तुच्छ लकड़ी के लिए झगड़ा तो नहीं किया जा सकता।

भैरव बड़ी हैरत में आकर बोले—कह क्या रहे हैं आप !

गोपाल सरकार हल्का हँसते हुए दो-एक बार गर्दन हिलाकर बोले—कहता ठीक ही हूं अचारज जी, ठीक ही कहता हूं। मैं उसी दिन से समझ गया कि छोटे पट्टीदार की लछमी क्यों तारिणी घोषाल के साथ ही गायब हो गई।

भैरव जरा देर चुप रहे, उसके बाद बोले—पोखरा मेरे ही घर के पीछे पड़ता है—मुझे बता तो देना ही है।

गोपाल बोला—ठीक तो है, एक बार कही देखिए आप। रात-दिन किताबों में डूबे रहने और पट्टीदारों से इतना डरने से जायदाद बच सकती है! यदु मुखर्जी की लड़की—एक औरत—वह भी सुनकर हँसते-हँसते लोट-पोट! उस दिन उसने गोविंद गांगुली के सामने मजाक भी किया, रमेश बाबू से कहो, कुछ माहवारी तै कर लें और जमींदारी मुझे सौप दे। इससे भी बड़ी शर्म की बात है कोई? कहकर दुःख और क्रोध से मुँह बिचका कर गोपाल अपने काम में लग गया।

घर मे कोई औरत नहीं। जहां चाहो, जाओ। भैरव अंदर गए। देखा, एक टूटी आरामकुर्सी पर रमेश पड़ा है। रमेश को उसके कर्त्तव्य के लिए जागरूक करने की नीयत से जायदाद के बचाव के बारे में छोटी-सी भूमिका के साथ चर्चा छोड़ते हो रमेश जैसे गोली लगे बाघ की तरह गरज उठा—रोज-रोज चालाकी! भजुआ।

उसकी इस अप्रत्याशित उग्रता से भैरव डर गए। वह सोच नहीं पाए कि आखिर यह चालाकी किसकी की। भजुआ रमेश का नौकर था, गोरखपुर का। बड़ा ही बलवान और विश्वासी। लाठी चलाने मे वह रमेश का ही चेला था। अपने रिवाज के ख्याल से खुद सीखकर रमेश ने इसे सिखाया था। भजुआ आया कि रमेश ने हुक्म दिया कि सारी मछलियां छीन लाओ। कोई रोके तो उसका झोंटा पकड़कर घसीटते हुए यहां लाओ और न ला सको, तो कम से कम उसके दांत तो तोड़कर ही लौटो।

भजुआ को मागी मुराद मिली। वह अपनी तेल पिलाई हुई लाठी के लिए अंदर गया। भैरव तो मारे डर के कांप उठे। बंगाल के तेल-पानी में पले थे बेचारे; चिल्ल-पों चीख-पुकार को नहीं डरते। लेकिन वह हट्टाकट्टा ठिगना भोजपुरी आदमी जो बिना कुछ बोले सिर्फ गर्दन हिलाकर चला गया, इससे खतरे की आशंका से उनका तालू तक सूख गया। उन्हें लगा, जो कुत्ता भौंकता नहीं, वह जरूर काट खाता है। भैरव वास्तव में शुभैषी थे, जभी खबर देने आए थे कि समय पर घटनास्थल में हो-हल्ला करके अगर कुछ वसूला जा सके। खुद भी मदद करने की बात सोचकर आए थे। लेकिन कहां, उनका कुछ भी न तो हुआ। गाली-गलौज की नौबत ही न आई। मालिक ने गर्जन भी थोड़ा ही किया तो नौकर होंठ तक हिलाए

बिना लाठी लाने को चल दिया। भैरव गरीब है, फौजदारी में हाथ बटाने की हिम्मत नहीं, इरादा भो न था उनका। जरा ही देर में भजुआ लम्बी-सी लाठी लिए निकला और उसे माथे से लगाकर रमेश को प्रणाम करते ही भैरव अचानक रो-से पड़े और रमेश के दोनों हाथ दबाते हुए बोले अरे मत जा रे भजुआ ! रमेश, बरुशो बेटे, मैं बड़ा गरीब हूं, घड़ी भर जीना मुहाल हो जायगा।

खीझकर रमेश ने हाथ छुड़ा लिया। उसके अचरज का कोई हद्दोहिसाब न रहा। भैरव रुआँसे-से होकर बोले—यह बात छिपी नहीं रहेगी भैया ! और फिर वेणी बाबू की आंख का कांटा बनकर जीना दूभर हो जायगा। मेरा घर-द्वार स्वाहा हो जायगा, साक्षात् ब्रह्मा-विष्णु भी आवे, तो भी खैर नहीं।

रमेश गर्दन झुकाए चुप बैठा रहा। हलचल से गोपाल सरकार बही-खाता छोड़कर आ खड़ा हुआ था। उसने धीरे से कहा—बात ठीक ही है बाबू।

रमेश ने इसका भी कोई जवाब न दिया। उसने इशारे से भजुआ को अपने काम पर जाने को कहा और खुद चुपचाप अंदर चला गया। इससे भैरव अचारज का बेहिसाब भय और कातरता उसके मन मे किस आफत की आँधी सी बहने लगी, इसे सिर्फ अंतर्यामी ने ही देखा।

सात

हाँ रे यतीन, खेल में मशगूल है, स्कूल नहीं जायगा।

आज-कल, दो दिनों का छुट्टी है· दीदी !

मौसी ने सुना, तो अपनी भोंड़ी शकल को और भी भद्दी बना कर कहा—इस मुँहजले स्कूल में महीने मे पंद्रह दिन छुट्टी ही होती है ! और तू है कि उसी के पीछे पैसे खरचती है. मै होती तो आग लगा देती उसमे। कहकर मौसी अपने काम मे चली गईं। जो लोग मौसी को सोलहों आने झूठ बोलने वाली कहकर निंदा किया करते थे, वे भूल किया करते थे। यों एकाध सच बात वह कह सकती थीं और जरूरत पडने पर करने में भी नही हिचकती थीं।

रमा ने अपने छोटे भाई को करीब खींचकर पूछा, छुट्टी काहे की यतीन ?

यतीन दीदी के गोद से सटकर बोला—हमारे स्कूल की छौनी हो रही है ! उसके बाद उसकी पुताई होगी—कितनी किताबें आई हैं, चार-पाँच मेज-कुर्सियां, एक

आलमारी, एक बहुत बड़ी घड़ी—एक दिन चलकर देख आओ न दीदी ! रमा ने हैरान होकर कहा—अच्छा !

सच कह रहा हूँ दीदी । रमेश बाबू आए हैं न, वही सारा कुछ किये दे रहे है । यतीन और भी जानें क्या कहने जा रहा था कि मौसी को उधर आते देख रमा झटपट उसे लेकर अपने कमरे में चली गई । दुलारते हुए उससे उसने रमेश बाबू के बारे में बहुत-सी बातें जान लीं । यह भी सुना कि रोज वे खुद दो-एक घंटे पढ़ा जाया करते है ! अचानक रमा ने पूछा—अच्छा यह तो बता, वे तुझको पहचानते हैं ?

गर्व से सिर हिलाकर वह बोला—हाँ—

तू उन्हें क्या कहकर पुकारता है ?

अबकी यतीन जरा मुश्किल में पड़ गया । क्योंकि इतनी नजदीकी का सौभाग्य और साहस उसे अभी तक नहीं हुआ है । उनके आते ही रौबीले हेडमास्टर साहब तक ऐसे सिटपिटा-से जाते है कि छात्रों के भय और विस्मय की सीमा नहीं रह जाती । पुकारना तो दूर की बात, हौसले से कोई उनकी तरफ नजर उठाकर देख भी नहीं सकता । लेकिन दीदी के सामने यह कबूल करना भी तो आसान नहीं ? मास्टरों को लड़कों ने छोटे बाबू कहते सुना था । सो उसने थोड़ा दिमाग लड़ाकर कहा—हम लोग उन्हे छोटे बाबू कहते है । परंतु उसके चेहरे के भाव से रमा को समझने में कठिनाई न हुई । उसने भाई को और भी कलेजे के पास खींचकर पूछा—यह छोटे बाबू क्या ! वे तो तुम्हारे भैया होते है । वेणी बाबू को जैसे बड़े भैया कहता है, इन्हें छोटे भैया नहीं कह सकता ?

बालक ने खुशी और अचरज से उतावला होकर कहा – मेरे भैया होते है ? सच कह रही हो दीदी ?

होते तो भैया ही हैं, कहकर रमा जरा हँसी । इसके बाद यतीन को पकड़ कर रखना असंभव हो उठा । अपने साथियों में यह बात वह अभी स्पष्ट कर दे, तो उसकी जान में जान आए । मगर स्कूल तो बन्द है ! दो दिन धीरज धरना ही पड़ेगा । लेकिन जो लडके आस ही पास रहते हैं, उन्हें बताए बिना कैसे रहे ! वह छटपटा कर बोला—अभी जाऊँ दीदी ?

इतनी देर हुए कहाँ जायगा ? रमा ने उसे रोक रक्खा । न जा पाने से यतीन जरा देर मुँह लटकाए चुप रहा, फिर पूछा—इतने दिनों तक ये कहाँ थे दीदी ?

रमा ने मीठे-मीठे कहा—अब तक वे विदेश में पढ़-लिख रहे थे । तू भी बड़ा होगा, तो तुझे भी इसी तरह बाहर रहना होगा । मुझे छोडकर रह सकेगा तू ? कह-कर रमा ने भाई को फिर से कलेजे में खींच लिया । बालक होते हुए भी उसने अनुभव किया कि दीदी की आवाज में कैसा तो एक परिवर्तन है । वह अवाक् उसकी

ओर देखने लगा। क्योंकि रमा यद्यपि अपने इस भाई को जान से ज्यादा चाहती थी, तो भी उसकी बातों में ऐसा आवेग और उच्छवास कभी प्रकट नहीं हुआ था।

यतीन ने पूछा—छोटे भैया का पढ़ना खत्म हो चुका दीदी ? रमा ने वैसे ही स्नेह-कोमल स्वर में कहा, हाँ भैया, उनकी सारी पढ़ाई हो चुकी।

यतीन ने फिर पूछा—तुमने कैसे जाना ?

जवाब में रमा ने एक निश्वास छोडकर सिर्फ सिर हिलाया। वास्तव में इसके बारे में वह या गाँव का कोई कुछ नहीं जानता था। उसका अनुमान ठीक ही होगा, ऐसा भी नहीं, लेकिन कैसे तो उसका निश्चित विश्वास था कि जो आदमी दूसरे के बच्चों की पढ़ाई के लिए इस थोडे ही अरसे में इस कदर जुट जा सकता है, निस्संदेह वह अपने आप मूर्ख नहीं है।

यतीन ने इस पर और जिद न की। क्योंकि इतने ही में उसके दिमाग में एक दूसरा सवाल आया और उसने पूछा—अच्छा दीदी, छोटे भैया अपने यहाँ क्यों नहीं आते ? बड़े भैया तो रोज ही आते है।

यह सवाल एक तीखी-पीडा-सा बिजली की गति से रमा के सर्वांग में दोड गया। फिर भी वह हँसकर बोली—तू उसे बुलाकर नही ला सकता ?

अभी ही जाऊँ ?—यतीन तुरत उठ खड़ा हुआ।

अरे, बड़ा पगला है तू तो—कहकर रमा ने पलक मारते भर में अपनी भय-व्याकुल बांहों से उसे जकड लिया। खबरदार यतीन, हर्गिज ऐसा काम मत करना, खबरदार। उसने उसे जी जान से अपनी छाती मे दबा लिया। उसकी धडकन का साफ-साफ अनुभव करके बालक होते हुए भी यतीन ने आश्चर्य से दीदी की ओर देखा। इसके पहले तो दीदी को उसने कभी ऐसा करते नहीं देखा, तिसपर छोटे बाबू को छोटे भैया जानकर जब उसके मन की गति पूरी तरह से दूसरी राह पर चली गई, तो फिर दीदी क्यों इतना डर रही है, यह यतीन किसी भी तरह से नहीं समझ सका। इतने मे मौसी की तीखी पुकार कानों में पहुँची और यतीन को झट छोड़कर रमा खड़ी हो गई। तुरत मौसी स्वयं दरवाजे पर आ पहुँचीं और बोलीं—मैंने समझा रमा घाट गई है नहाने। मैं पूछती हूँ, एकादशी है तो क्या सिर में तेल-पानी भी न पडेगा ? सूखकर मुँह मोंठ-सा जो हो गया !

रमा जबर्दस्ती जरा हँसकर बोली—मैं आती हूँ। आती हूँ, कब ? निकल कर देख तो सही, वेणी वगैरह मछली के बँटवारे के लिए आया है।

मछली की सुनते ही यतीन दौड पड़ा। मौसी की नजर बचाकर रमा ने एक बार अपने मुँह को पोंछ लिया और उनके पीछे-पीछे बाहर गई। बाहर प्रांगण में काफी शोरगुल। मछली भी कम न थीं, एक बड़ी-सी टोकरी भर गई थी। लगभग

बाँट लेने के लिए वेणी खुद आए हुए थे। टोले बच्चों की टोली भी वहीं आ जुटी थी—सब शोरगुल कर रहे थे।

खांसी की आवाज सुनाई पड़ी। और तुरत—कौन-सी मछली मिली वेणी! कहकर लाठी के सहारे बूढ़े धर्मदास आ पहुँचे।

कहाँ वैसी मिली मछली—वेणी ने मुँह बना लिया। मछुए से कहा—अबे देर काहे की कर रहा है, दो हिस्सा कर दे जल्दी से।

मछुआ हिस्सा लगाने लगा।

क्यों रमा, क्या हाल है? बहुत दिनों से इधर आ नहीं पाया। सोचा, बिटिया की खबर जरा पूछता चलूं।—गोविंद गांगुली कहते-कहते आ पहुँचे।

आइए—रमा होंठ दबा कर हँसी।

इतनी भीड़ किस बात की? कहते हुए गांगुली बढ़े और अचानक मानो ताज्जुब में पड गए—बस! अच्छा, बुरी तो नहीं मिलीं हैं। बड़े पोखरे में जाल डाला था क्या?

इन सवालों का जवाब फिजूल समझते हुए सब मछली के बटवारे पर ही जुटे रहे और थोडी ही देर में बखरा-बांट हो गया। अपने हिस्से की लगभग सारी मछलियाँ एक नौकर के माथे उठाकर वेणी ने भजुए को कनखी का इशारा किया और लौटने लगे; मुखर्जी-परिवार को उतनी मछली की जरूरत नहीं, इसलिए बाकी लोग रमा के हिस्से से कुछ-कुछ हथियाकर जाना चाह ही रहे थे कि इतने में सबने हैरान होकर देखा, रमेश का वह ठिगने कद का भोजपुरी नौकर अपने समान ऊँची लाठी लिए प्रांगण में आ खड़ा हुआ। उस कम्बख्त की शक्ल ही ऐसे दुश्मन जैसी थी कि हर की नजर उस पर पड़ ही जाती और नजर पडती कि याद रह जाती। गाँव के बूढ़े-बच्चे सभी उसे पहचान गए थे और यहाँ तक कि उसके बारे में अजीबो-गरीब किस्से भी फैलने लगे थे। उसने इतने लोगों में रमा को ही कैसे मांलकिन समझ लिया, वही जाने। दूर से लंबा सलाम बजाकर, मां-जी संबोधन करता हुआ नजदीक आकर खड़ा हुआ। उसकी शक्ल तो जैसी थी, थी, आवाज सचमुच ही बड़ी भयानक थी—भद्दी और मोटी। एक बार और सलाम करके उसने बताया कि मैं रमेश बाबू का नौकर हूं—मछलियों के तीन का एक हिस्सा लेने आया हूँ। रमा चाहे अचरज से हो या उसकी इस वाजिब मांग के खिलाफ कैफियत के अभाव में ही हो, अचानक उत्तर न दे सकी। उस आदमी ने तुरत पलटकर वेणी के नौकर से गंभीर स्वर में कहा—ऐ, जाओ मत।

नौकर डर के मारे चार कदम पाछे हट आया। आध-मिनट तक कहीं से चूँ तक

नहीं. तब वेणी ने हिम्मत बटोरी । वे जहाँ पर थे, वहीं से बोले---किस बात का हिस्सा ?

भजुआ ने सलाम करके अदब के साथ कहा--बाबूजी आप से नहीं कहा मैंने ।

मौसी ने दूर ही से बरामदे पर खड़ी होकर कहा - मारेगा क्या रे !

भजुआ एक पल देखता रहा और उसके बाद उसकी भयंकर हँसी से उसका घर भर गया । कुछ देर बाद हँसी रोककर कुछ लजाया-सा वह रमा से बोला—मां जी । उसकी बात और व्यवहार के अदब में अवज्ञा-सी छिपी थी मानो—यही सोचकर रमा मन ही मन खीझ उठी थी । बोली—तुझे चाहिए क्या ?

रमा की इस खीझ से भजुआ कुंठित-सा हो उठा । लिहाजा जहाँ तक बना, अपने कर्कश कंठ को मुलायम करके उसने अपनी विनती दुहराई । मगर अब हों तो क्या, मछली तो बँट चुकी थी । इतने लोगों के सामने रमा छोटी भी नहीं बन सकती थी । इसीलिए तीखे स्वर मे बोली –इसमे तेरे मालिक का कोई हिस्सा नही है । उनसे कह दे जाकर, जो बने सो करें ।

बहुत खूब मां जी ! —भजुआ ने एक लंबा सलाम ठोंका और हाथ से वेणी के नौकर को इशारा करके और कुछ भी न कहकर जाने लगा । उसके व्यवहार से सारे के सारे लोग हैरान रह गए, ऐसे समय अचानक मुड़कर उसने अपनी रुखाई के लिए रमा से क्षमा मांगते हुए टूटी-फूटी भाषा में कहा –मां जी, लोगों से सुनकर बाबूजी ने मुझे पोखरे से मछली छीन लाने के लिए भेजा था । बाबूजी या मैं, मछली हम कोई भी नहीं छूते , यह कहकर उसने अपनी चौडी छाती को ठोंककर कहा—बाबूजी के हुक्म से आज यह जान पोखरे पर ही जाती । लेकिन रामजी ने बचाया; बाबू जी का गुस्सा उतर गया । उन्होंने मुझे बुलाकर कहा --भजुआ, तू जाकर मां-जी से पूछ आ, उस पोखरे मे मेरा हिस्सा है या नहीं है;—उसने फिर लाठी समेत मां जी को हाथ जोड़कर नमस्कार किया; कहा—और कोई जो चाहे कहे, मुझे मालूम है भजुआ, मां जी की जबान से कोई झूठी बात नहीं निकल सकती—वह कभी पराई चीज को हाथ नहीं लगा सकतीं । भजुआ अदब के साथ बार-बार प्रणाम करके चला गया ।

उसके जाने ही औरत की सी आवाज मे वेणी ने लिहाडी ली-हूं इस तरह से तो हजरत अपनी जायदाद बचाएँगे ! सुन लो, तुम लोगों के सामने मैं प्रतिज्ञा करता हूं, आज से गढ़ के पोखरे के मितुहा-धोंधा में भी उसे हाथ न लगाने दूंगा मैं—समझ गई रमा—और खुशी से खिलकर हि-हि कर हँसने लगे ।

रमा के कानों तक लेकिन एक भी बात न पहुँची । मां जी की जबान से झूठी बात नहीं निकल सकती—भजुआ के ये शब्द उसके दोनों कानों में लाखों तालियों सी

झनझन करके मानो उसके माथे को चूर-चूर किए दे रहे थे। उसका गोरा मुखडा पल को लाल होकर ही ऐसा सफेद हो गया, गोया लोहू की एक बूंद भी न हो। महज इतना ही ख्याल उसे था कि उसकी यह शक्ल कोई देख न ले। इसीलिए घूंघट को जरा खींचकर वह वहाँ से भाग गई।

आठ

बडी चाची !

कौन, रमेश ? आ बेटे, अंदर आ। विश्वेश्वरी ने झटपट एक चटाई डाल दी। अंदर कदम रखते ही रमेश चौक पडा। क्योंकि चाची के पास जो औरत बैठी थी, उसका चेहरा न देख पाने के बावजूद वह समझ गया कि यह रमा है। उसके एक तीखी पीड़ा के साथ महसूस हुआ, ये लोग बीच मे मौसी को डालकर अपमान करने से भी नहीं चूकते और बेहया होकर अकेले पास आ बैठने में भी नहीं हिचकते। इधर रमेश के आकस्मिक आगमन से रमा को भी कम मुसीबत नहीं हुई। इसीलिए कि वह गांव लडकी है, इतना ही नहीं, रमेश से उसका नाता भी ऐसा है कि निरी अपरिचिता सी घूंघट काढ लेने मे भी शर्म आती है और बिना काढ़े भी चैन नहीं। इसके सिवाय उस दिन मछली के लिए एक वाकया गुजर गया। इसीलिए सब तरफ से जितना बचाया जा सके, वह आड में बैठी थी। रमेश ने फिर उधर नहीं देखा। घर में और भी कोई है, इसे बिल्कुल लापरवाही से टालकर वह चटाई पर बैठ गया। बोला—चाची !

चाची ने कहा—एकाएक ऐसी दोपहरी मे ?

रमेश बोला—दोपहरी के सिवाय तुम्हारे पास थोडी देर बैठ सकना जो नसीब नहीं होता। काम भी तो कम नहीं तुम्हें !

चाची ने उसकी बात का विरोध नहीं किया। बस, जरा हँसी। रमेश ने मुस्करा कर कहा आज से बहुत दिन पहले छुटपन में एक दिन बिदा मांगकर गया था। आज फिर आया हूं। यही शायद अंतिम विदाई है चाची !

उसके होठों पर हँसी के होते हुए भी आवाज में बोझिल हृदय का एक ऐसा अवसाद जाहिर हुआ कि दोनों की दोनों विस्मित-पीड़ा से चौंक उठीं।

बता साफ ! यह कैसी बात बेटे !—विश्वेश्वरी की आँखें छलछला आईं।

रमेश सिर्फ हँसा जरा।

स्नेह सने स्वर में विश्वेश्वरी ने पूछा—सेहत यहाँ अच्छी नहीं रहती, क्या बेटे ?

रमेश ने अपने लम्बे और मजबूत शरीर की ओर निगाह डालकर कहा—यह दाल-रोटी के देश का शरीर है चाची, यह भला इतनी जल्दी खराब होने का ! वह नहीं, शरीर ठीक ही है, लेकिन यहाँ मैं एक पल भी टिक नहीं पा रहा हूँ, दम घुट रहा है जैसे ।

सेहत ठीक है, यह सुनकर चाची निश्चिन्त हुई हँस कर पूछा—यही तेरी जन्मभूमि है । टिक क्यों नहीं पा रहा है आखिर ?

रमेश ने सिर हिलाकर कहा—वह मैं बताना नहीं चाहता । मेरा ख्याल है, तुम जरूर जानती हो ।

विश्वेश्वरी जरा देर चुप रहीं । फिर गंभीर होकर बोलीं—सब नहीं जानती हूँ, शायद कुछ तो जानती ही हूँ । जभी तो कहती हूँ, तेरे और कहीं जाने से तो नहीं चल सकता ।

रमेश बोला—क्यों न चलेगा ? यहाँ कोई तो मुझे नहीं चाहता । चाची बोलीं—नहीं चाहते हैं, इसलिए मैं तुझे कहीं न जाने दूँगी अभी-अभी दाल-रोटी पर पले शरीर की डींग हाँक रहा था, वह भाग खड़े होने के लिए है ?

रमेश चुप रहा । आज सारे गाँव के खिलाफ उसके जी में जो विद्रोह की आग सुलग उठी थी, उसका खास कारण था । गाँव की जो सड़क सीधे स्टेशन को गई है, आठ-दस साल पहले बारिश के पानी से वह एक जगह पर टूट गई थी । तब से लगातार वह टूटी जगह बडी और गहरी ही होती आई थी । प्रायः वहाँ पानी जमा रहता है, पार होने में सबको कठिनाई पड़ती । दूसरे समय कपड़े उठा कर पाँव संभाले लोग पार हो जाते, मगर बरसात में तकलीफ का ठिकाना न रहता । कभी उस में दो बाँस डाल देते, कभी ताड़ का तना—और उसी मदद से किसी तरह रपटते हुए हाथ-पाँव तुड़वा कर लोग पार होते । लेकिन इतनी मुसीबत के बावजूद उसकी मरम्मत की फिक्र किसी को न थी । मरम्मत के लिए रुपये-पैसे की जरूरत थी । रमेश ने इसके लिए चन्दा तहसीलने की आठ-दस दिन तक कोशिश की—लेकिन आठ-दस पैसे भी न इकट्ठा कर सका । यही नही, आज जब वह सुबह आ रहा था तो सुनारों की दूकान में यही चर्चा चलते सुन कर बाहर खड़े हो उसने कान लगाया, कोई हँसकर किसी से कह रहा था, फूठी पाई मत देना । देख नहीं रहा है, उसे अपनी ही ज्यादा गर्ज पड़ी है ! जूते पहन कर बे दाग चलना चाहिए न ! कोइ कुछ न दोगे तो वह खुद ही मरम्मत कराएगा, देख लेना । फिर अब तक तो वह था नहीं, तो क्या हम लोगों का स्टेशन जाना रुका पड़ा था ?

किसी और ने कहा—सब्र तो करो जरा ! चटर्जी बाबू बता रहे थे, उसी के मत्थे हाथ फेर कर शीतला थान भी बनवा लेंगे। खुशामद से दो बार बाबू-बाबू कहो कि बस।—तब से ये दो बातें उसे जैसे जला रही थीं।

चाचा ने दुखती नस ही छू दी। कहा, उस टूटी सड़क की मरम्मत की कोशिश कर रहा था, क्या हुआ उसका ?

रमेश खीझकर बोला—वह नहीं होने की चाची, नहीं होने की। कोई फूटी पाई देने का रवादार नही।

विश्वेश्वरी हँसकर बोलीं—लोग न देंगे तो क्या होगा नहीं ? अपने दादा के तो तूने बहुत रुपए पाए, ये थोड़े-से रुपए तो तू खुद भी लगा सकता है।

रमेश आग हो उठा। बोला—मैं क्यों दूँ ? मुझे भारी अफसोस हो रहा है कि बिना समझे-बूझे मैंने इनके स्कूल में बहुत रुपया लगा दिये है। इस गाँव में किसी के लिए कुछ नहीं करना चाहिए। रमा की तरफ कटाक्ष से एक बार देखकर बोला—इन्हें दान दो ये मूर्ख समझते है, भलाई करो तो खुदगर्जी समझते है; माफ करना भी महापाप है, सोचते है, डर से भाग खड़ा हुआ।

चाची जोरों से हँस पड़ी, लेकिन रमा की आँखें सुर्ख हो गईं चेहरा तमतमा उठा।

रमेश ने नाराज होकर कहा—आप हँस रही है ?

हँसूँ न तो क्या करूँ ?—उन्होने एक निश्वास छोड़कर कहा—बल्कि मैं तो कहती हूँ, तेरा ही यहाँ रहना सबसे जरूरी है। गुस्से में अपनी जन्मभूमि को छोड़कर भागना चाहता है, बता तो मुझे, तेरे गुस्से के लायक यहाँ है कौन ? जरा थम कर मानो अपने आप ही बोल उठी, अहा, ये लोग जो कितने दुःखी, कितने कमजोर है, इसका अगर तुझे पता हो, तो इन पर नाराज होने में तुझे खुद शर्म आए। भगवान ने जब दया करके तुझे भेजा ही है, तो तू इन्हीं लोगों मे रह।

लेकिन ये मुझे चाहते जो नहीं है चाची !

चाची बोलीं—इसी बात से तू समझ नहीं सकता कि ये लोग तेरे रूठने, नाराज होने के कितने अयोग्य हैं ! और यही नहीं, जिस गांव में चाहे जा, एक ही लेखा।

एकाएक रमा की ओर देखकर बोल उठीं— तुम तो उसी वक्त से सिर झुकाए बैठी हो बिटिया ! हाँ रे रमेश, तुम दोनों भाई-बहन में बोलचाल नहीं है ? न बिटिया, ऐसा न करो। उसके बाप से जो कुछ हुआ, वह देवर जी की मौत के साथ ही चुक गया। इसके लिए आपस। मनमुटाव रखने से तो न चलेगा।

रमा ने सिर झुकाकर ही कहा—मैं मनमुटाव नहीं रखना चाहती चाची ! रमेश भैया—

सहसा उसकी कोमल आवाज रमेश के गंम्भीर स्वर में दब गई। वह उठ खड़ा हुआ। बोला—तुम इस बीच में मत पडो चाची। उस रोज मुश्किल से तो इनकी मौसी से जान बची है तुम्हारी; आज कहीं फिर ये जाकर उन्हें भेज दें—तो कच्चा तुम्हें चबाकर ही वापस जायँगी वे।—और फिर कुछ सुनने-कहने का इंतजार बिना किए ही वह निकल पडा।

विश्वेश्वरी चीख उठीं---सुन जा रमेश, बात तो सुन जा।

रमेश ने दरवाजे के बाहर से ही कहा— न-न चाची, दंभ और हिमाकत से जो तुम तक को पैरों से रौंद सकते हैं, उनकी होकर तुम एक शब्द भी मत कहो—रमेश चाची के दूसरे अनुरोध के पहले ही वहाँ से चल दिया।

रमा विह्वल-सी कुछ देर विश्वेश्वरी का मुँह ताकती रही। फिर रो पड़ी—यह मेरे मत्थे कलंक क्यों चाची? मै क्या मौसी को सिखा देती हूं या कि उसके लिए मैं जिम्मेदार हूं?

उसका हाथ अपने हाथ में लेकर चाची ने स्नेह से कहा—सिखाती नहीं हो यह सही है। मगर उसके लिए बहुत हद तक जिम्मेवार तो तुम्हे होना ही पड़ेगा बेटी!

दूसरे हाथ से आंख पोंछती हुई दबे अभिमान से रमा ने तेजी के साथ इनकार किया-- जिम्मेवार क्यों? हर्गिज नहीं। मैं तो इसके बारे मे कतई जानती ही न थी चाची! फिर क्यों वे मुझे नाहक ही गुनहगार बताकर मेरा अपमान कर गए?

विश्वेश्वरी ने इस पर तर्क नहीं किया। धीरता से कहा—सब कोई तो अंदर की बात नहीं जानते बिटिया। मगर मैं बलपूर्वक कह सकती हूं कि तुम्हारा अपमान करने की उसे हर्गिज इच्छा नहीं। तुम्हें तो पता नहीं है, मगर मैंने गोपाल सरकार से सुना है कि तुम पर उसे कितनी श्रद्धा है, कितना विश्वास है; उस रोज इमली का पेड़ काटकर जब दोनों परिवारों ने बांट लिया, तो उसने किसी की एक न सुनी कि उसमें उसका हिस्सा था। हँसकर उसने कहा था---फिक्र की क्या पडी है, जब रमा है, तो अपना वाजिब हक मुझे जरूर मिलेगा। वह पराई चीज को कभी हजम नहीं करेगी। मैं ठीक नहीं जानती, इतने विरोध-विवाद के बावजूद तुम पर मगर उसका वही विश्वास न होता, तो उस दिन गढ के पोखरे का —

कहते-कहते बीच ही में विश्वेश्वरी रुक गईं, निर्निमेष आखों से कुछ देर रमा के झुके सूखे चेहरे को ओर देखकर बोलीं --तुम्हें आज एक बात बताऊँ, जगह-जायदाद को बचाने के की कीमत चाहे जितनी हो बिटिया, रमेश की जान की कीमत उससे कहीं ज्यादा है। किसी के बहकाए, किसी भी चीज के लोभ से उस पर चारों ओर से चोटें मारकर तुम लोग बर्बाद मत कर देना बेटी। मैं जोर गले से कहती हूं, इससे देश का जो नुकसान होगा, वह किसी भी चीज से पूरा न होगा।

रमा थिर बैठी रही, जवाब में एक शब्द भी न बोली। विश्वेश्वरी भी और कुछ न बोलीं। जरा देर में रमा उठी। धीमे से बोली—बेला जाती रही, आज अब चलूँ चाची—उसने प्रणाम करके चाची के पैरों की धूल ली और चली गई।

नौ

रमेश जितना ही बिगडकर क्यों न गया हो चाहे, घर जाते-जाते उसका सारा पारा पानी हो गया। वह बार-बार मन मे कहने लगा—यह सीधी सी बात न समझ कर जाने कितनी तकलीफ झेल रहा था। सच तो, गुस्सा आखिर किस पर करता हूं मै ? जो लोग इतने संकरे विचार के स्वार्थी है कि आँख खोल कर यह भी नही देख पाते कि वास्तविक कल्याण कहाँ है; शिक्षा की कमी से जो ऐसे अन्धे है कि पडोसी के बल को घटाना ही बलवान होने का सबसे अच्छा उपाय समझते हैं। जो अपनी भलाई करने पर संदेह से कंटकित हो उठते है, उनसे रंज मानने जैसा भ्रम तो कुछ हो नहीं सकता। उसे याद आया, सुदूर शहर मे बैठे किताबें पढ़ते हुए, कहानी सुनकर जाने कितनी बार यह सोचा है कि अपनी जाति को और कुछ चाहे न रहे, फिर भी सूने गाँवों में वह शान्ति और स्वच्छंदता आज भी है, जो इन भीड़ भरे शहरों में नहीं। थोड़े मे संतुष्ट गाँव के लोग सहानुभूति से पिघल पड़ते है, एक के दुःखों में दूसरा हिस्सा बटाता है, एक के दुख में दूसरा बेबुलाए आनन्द मना जाता है। सिर्फ उन्हीं जगहों में, उन्हीं दिलों में जाति का ऐश्वर्य अक्षय है। हाय-हाय कैसी भयानक भ्रांति ! ऐसा विरोध, दूसरे की उन्नति से ऐसी चिढ़ तो शहर मे भी नहीं ! नगर के जीवन-कोलाहल भरे पथ पर जब भी किसी पाप की निशानी उसे दिखाई दी, उसने उसी वक्त सोचा, जब अपनी जन्म-भूमि, उस छोटे-से गाँव में किसी तरह जा पहुँचूंगा, तो जीवन भर के लिए इन नज्जारों से पिण्ड छूट जायेगा। वहाँ सबसे बड़ी चीज जो है, वह धर्म है, और सामाजिक चरित्र भी आज तक क्या हुआ है, हे ईश्वर, कहां है वह चरित्र ? अपने इन पुराने एकान्त गांवों में कहां है वह जीवन धर्म के प्राण को ही जब तुमने खींच लिया है, तो उसकी लाश को क्यों डाल रक्खा है ? उसी बदरंग बिगड़ी हुई लाश को ही अभागा ग्राम-समाज यथार्थ धर्म समझ कर जकड़े हुए है और उसकी जहरीली बदबूदार फिसलन में रात-दिन नीचे ही गिरता चला जा रहा है। और सबसे मार्मिक व्यंग यह कि यह कह कर शहरों के प्रति उनकी अवज्ञा एवं अश्रद्धा का अन्त नहीं कि वहां जाति धर्म का नाम नहीं।

घर मे कदम रखते ही रमेश ने देखा, एक प्रौढ़ा स्त्री ग्यारह-बारह साल के एक लड़के को लिए स्टिपिटाई सी बैठी थी---उसे देख कर उठ खडी हुई। बिना कुछ जाने-सुने ही, सिर्फ उस लड़के का मुंह देखकर रमेश का प्राण मानो रो उठा। गोपाल सरकार चंडी मंडप के बरामदे पर बैठा लिखा रहा था, आकर बोला—यह लड़का दक्खिन टोले के द्वारिक ठाकुर का लड़का है। आपके पास कुछ भीख के लिए आया है।

भीख का नाम सुनकर रमेश जल उठा। बोला—मै क्या सिर्फ भीख ही देने के लिए गांव में आया हूं सरकार बाबू, गांव मे और क्या आदमी नहीं है ?

गोपाल सरकार जरा झेंप गया, जी बात तो ठीक है हुजूर ! मगर मालिक तो कभी किसी को निराश नहीं करते थे, जभी आड़े वक्त मे लोग इसी घर की ओर दौड पड़ते हैं।

उस लड़के की तरफ ताक कर उसने प्रौढा स्त्री से कहा—हा, कामिनी की मां इनकी भी तो कम गलती नही है। जीते जी प्रायश्चित नहीं करा दिया, अब जब लाश नहीं उठ रही है, तो रुपए के लिए मारे चल रहे है। घर मे क्या लोटा-कटोरा भी नही ?

कामिनी की माँ जात की सद्गोप थी, उस लड़के की पड़ोसिन। सिर हिला कर बोली यकीन न हो भैया तो चलकर देख लो। कुछ भी होता, तो बाप की लाश को छोड़ कर इसे लिए मै भीख को आती ? आंखों चाहे न देखा हो, सुना तो सब कुछ है ? पिछले छः महीनों से मैने अपना सर्वस इसीलिए गॅवा दिया। सोचा, घर के बगल में ब्राह्मण के लड़के-वाले भूखो मरेंगे ?

रमेश बहुत कुछ अनुमान लगा सका। गोपाल सरकार ने समझाते हुए कहा—इस लड़के का बाप द्वारिक चक्रवर्ती छः महीनों तक काल रोग का शिकार रहकर आज सुबह के वक्त चल बसा। चूंकि प्रायश्चित्त नही हो पाया, इसलिए उसकी लाश को कोई छूना नही चाह रहा है—अभी वह करना जरूरी है। कामिनी की माँ इस गरीब ब्राह्मण-परिवार के लिए छः महीनों मे अपना सब कुछ गंवा बैठी है। अब उसके भी कुछ नहीं। इसीलिए इस लड़के को लेकर आपकी शरण में आई है।

रमेश ने जरा देर चुप रहकर पूछा—दो तो बज गए प्रायः। यदि प्रायश्चित न हो तो लाश पड़ी ही रहेगी ?

सरकार ने हँसकर कहा—और उपाय क्या है ? अशास्तर काम तो हो नहीं सकता। मुहल्ले वालों को भी दोष कौन दे—जो हो, लाश पड़ी तो नहीं रहेगी,

जैसे भी होगा, काम इन्हें करना ही पड़ेगा। जभी तो भीख–अच्छा कामिनी की माँ और भी कहीं गई थी ?

उस लड़के ने मुट्ठी खोल कर एक चवन्नी और चार पैसे दिखलाए। कामिनी की मां ने कहा—यह चवन्नी मुखर्जी बाबू के यहाँ से मिली है और चार पैसे हालदर बाबू ने दिए है। लेकिन नौ सुक्की से तो कम में काम नहीं चलने का। बाबू अगर—

रमेश झट बोल उठा—तुम लोग घर जाओ, और कहीं जाने की जरूरत नहीं। मैं तुरन्त सारा इन्तजाम करके आदमी भेज रहा हूं। उन्हें वापस भेज कर दौड़ा। भरी आंखों से गोपाल सरकार को देखते हुए रमेश ने पूछा—ऐसे गरीब गाँव में और के घर है, मालूम है आपको ?

सरकार ने कहा—दो-तीन घर है, ज्यादा नहीं। मोटे अन्न-वस्त्र का इन्हें भी ठिकाना था बाबू, महज एक चालता गाछ के लिए मुकदमा लड़कर द्वारिक चक्रवर्त्ती और सनातन हाजरा—दोनों के दोनों पाँच साल पहले तबाह हो गए। आवाज अपनी धीमी करके बताया, नौबत यहाँ तक नहीं आती बाबू, अपने बडे बाबू और गोविंद गाँगुली ने उसका कर यह दुर्दशा की।

सरकार ने कहा—उसके बाद अपने बड़े बाबू के पास ही दोनों का गला तक गिरवी था। पिछले साल ब्याज और असल जोड़कर उन्होंने सब खरीद लिया। यह कामिनी की माँ, यासा* की लड़की है अलबत्। आड़े में ब्राह्मण के जैसी काम आई, ऐसा देखने को नही मिलता।

एक लम्बा निश्वास फेंककर रमेश चुप हो रहा। गोपाल सरकार को उस ने सारा इन्तजाम कर देने के लिए भेज दिया। मन ही मन बोला—तुम्हारा ही आदेश सिर-आँखों पर उठा लेता हूँ चाची। यहाँ पर आऊँ, वह भी भला, मगर इस अभागे गाँव को छोड़कर और कहीं नहीं जाना चाहता।

दस

तीनेक महीने के बाद एक सुबह को तारकेश्वर के जिस तालाब को दूध-तालाब कहते हैं, उसी की सीढ़ी पर रमेश को एक स्त्री से आमना-सामना हो गया।

---

*खेतिहर।

जरा देर हक्का-बक्का होकर यह इस अभद्रता से उसके खुले मुखड़े को देखता रह गया कि तुरन्त रास्ता छोड़कर हट जाने की सुध ही नही रही। उस लड़की की उम्र शायद बीस से ज्यादा न होगी। नहा कर ऊपर आ रही थी। उसने झटपट हाथ के भरे लोटे को उतार कर भीगे कपड़े के नीचे दोनों हाथ छाती पर रखकर सिर झुकाकर धीमे से बोली—आप यहाँ ?

रमेश के अचरज का इन्तहा न था; लेकिन उसकी विह्वलता जाती रही। एक किनारे खिसक कर पूछा—आप क्या मुझे पहचानती है ?

उसने कहा—पहचानती हूँ। आप कब तारकेश्वर आए ?

रमेश बोला—आज ही सवेरे। मेरे मामा के यहाँ से लोगो के आन की बात थी। लेकिन वे नही आए।

यहाँ है कहाँ ?

रमेश बोला—कही नही। मै यहाँ कभी नही आया। लेकिन आज का दिन किसी तरह कही इतजार करना ही होगा। जहाँ भी हो, कोई जगह ढूँढ लूँगा।

साथ मे नौकर है न ?

नहीं अकेला ही आया हूँ।

खैर जो हो, कहकर उसने जैसे ही सिर उठाया, दोनो की आँखे मिल गई। उसने नजर झुकाकर शायद मन मे जरा आगा-पीछा करके अंत मे कहा तो मेरे ही साथ चलिए; और लोटा उठा कर वह चलने को हुई।

रमेश बड़ी मुसीबत मे पड़ा। बोला—मै चल सकता हूं क्योकि इस मे अगर दोष होता, तो आप हर्गिज नही कहती। मै आप को पहचानता ही नहीं, ऐसी बात नहीं। लेकिन याद ही नही आ रहा है। अपना परिचय दीजिए।

तो आप मन्दिर के बाहर जरा इन्तजार कीजिए। इतने मे मैं पूजा कर लू जाते-जाते अपना परिचय दूंगी—कहकर वह मन्दिर मे चली गई। रमेश मुग्ध की नाईं देखता रहा। कैसी भीषण उद्दाम यौवन-श्री उसके गीले वस्त्र को फाड़कर फूट पड़ना चाह रही थी। उसका चेहरा, उसकी बनावट, उसका एक-एक कदम तक रमेश का चीन्हा-जाना था, लेकिन बहुत दिनों से बन्द स्मृति के दरवाजे ने हर्गिज उसकी राह न छोड़ी।

आधे घन्टे के बाद पूजा करके जब वह लौटी, तो रमेश को फिर से उसका चेहरा देखने को मिला। लेकिन अपरिचय की वैसी ही लंघ्य की दीवार के बाहर खड़ा रहा। रास्ते में चलते-चलते रमेश ने पूछा—आप के साथ में अपना कोई नहीं है ?

उसने कहा—नहीं। नौकरानी है वह डेरे पर काम कर रही है। मैं अक्सर यहाँ आया करती हूँ। सब जाना-सुना है।

लेकिन मुझे क्यों साथ ले जा रही है?

वह चुपचाप चलती रही। कुछ दूर चलकर बोली—नहीं तो आप को खाने-पीने का बड़ा कष्ट होता। मैं रमा हूं।

सामने बैठकर भोजन कराया। पान देकर उसे विश्राम के लिए अपने हाथों दरी बिछाकर रमा दूसरे कमरे में चली गई। उस दरी पर पड़े-पड़े आँख मूंदकर रमेश के जी में आया, उसका तेईस साल का जीवन एक ही बेला में मानों शुरू से अन्त तक एक बारगी बदल गया। छुटपन से ही उसके दिन बाहर दूसरे के आश्रम मे कटे। खाने मे भूख बुझाने के सिवाय और भी कुछ हो सकता है, यह वह नही जानता था। इसीलिए आज की इस अचिन्तनीय परिस्थिति मे उसका सम्पू हृदय विस्मय और माधुर्य मे एक बारगी डूब गया। रमा यहाँ खास कुछ उसके भोजन का प्रबन्ध नही कर सकी। लिहाजा मामूली चीजे ही उसे खिलानी पड़ी। इसकी उसे फिक्र थी कि कही उसका खाना न हो और बाद मे औरों के आगे निन्दा हो। हायरे पराये और हाय तुम्हारी निन्दा! खिला न सकने की चिन्ता जो उसकी कितनी अपनी है और वह उसके अन्तर को गहराई से अचानक जगकर उस के सब प्रकार के दुविधा-संकोच को बलपूर्वक छीन ले गई तथा उसे खाने की जगह में ढकेल कर पहुँचा दिया—इस बात को आज वह अपने से कैसे छिपा रक्खे! आज किसी लाज की बाधा उसे रोक नही सकी। भोजन की इस त्रुटि को पूर्ण करने के लिए। इसीलिए वह सामने आकर बैठी। भोजन करना खत्म हो गया, तो संतोष का जो निश्वास रमा के कलेजे से निकला वह रमेश से कितना ज्यादा था, इसे और कोई चाहे न जाने, जो सब कुछ जानते है, उनसे तो छिपा न रहा।

रमेश को दिन मे सोने की आदत न थी। उसके सामने की खिड़की से बाहर नई वर्षा के धुमैले काले मेघों से आकाश भर उठा था। अधमुँदी आँखों वह वही देख रहा था। उसके सगे-सम्बन्धियों की आने न आने की बात उसे याद ही न थी। अचानक रमा का कोमल स्वर उसके कानों में पहुँचा। वह दरवाजे से बाहर खड़ी कह रही थी, आज जब घर नहीं जाना है, तो यहीं रहिए।

रमेश झट उठ बैठा, बोला—लेकिन जिनका घर है, उन्हें तो अभी तक देख ही नहीं पाया। उनके कहे बिना कैसे रहूँ?

रमा वहीं से बोली—वे रहने को कह रहीं हैं। यह घर मेरा है।

रमेश ने आश्चर्य से पूछा—यहां घर क्यों?

रमा बोली—यह जगह मुझे बेहद पसंद है। अक्सर यहाँ आकर रहती हूं। अभी भीड़ नहीं है, पर कभी-कभी ऐसा होता है कि पैर रखने को जगह नहीं मिलती।

रमेश बोला—तो क्या हुआ, वैसे समय न आया करें।

रमा चुपचाप जरा हँसी। रमेश ने पूछा—तारकनाथ ठाकुर पर तुम्हें बड़ी भक्ति है, है न ?

रमा बोली—भक्ति वैसी हो कहाँ पाती है, परन्तु जब तक जिंदा हूं कोशिश तो करनी होगी न।

रमेश ने और कुछ नहीं पूछा। रमा वहीं चौखट से सट कर बैठ गई। दूसरी बात छेड़ दी। पूछा—रात को आप क्या खाते हैं ?

रमेश ने हँसकर कहा जो नसीब होता है, वही। खाने के लिए बैठने से पहले तक मुझे खाने की बात याद नही रहती। लिहाजा महाराज के किए पर ही संतुष्ट रहना पड़ता है।

रमा ने कहा—आखिर ऐसा वैराग्य क्यों ?

यह छिपा व्यंग्य है या मासूली-सा मजाक—रमेश ठीक समझ नहीं पाया। संक्षेप में कहा—नहीं। सिर्फ आलस।

लेकिन दूसरों के काम में तो आप मे आलस नहीं देखती।

रमेश बोला—उसका कारण है। दूसरों के नाम में आलस करने से भगवान के सामने कैफियत देनी पडती है। अपने भी काम में देनी पड़ती हो शायद, अगर उतनी जरूर नहीं।

रमा जरा देर चुप रहकर बोली—आप के पास रुपए है इसलिए आप दूसरों के काम मे ध्यान दे सकते है। लेकिन जिसे नहीं है ?

रमेश बोला—उनकी बात मैं नही जानता रमा। क्योंकि रुपए रहने का भी कोई परिमाण नहीं है और ध्यान देने की भी कोई नपी नपाई तौल नहीं। रुपए होने न होने का हिसाब वही जानते है, जिन्होंने इस उस काल का भार लिया है।

रमा जरा चुप रह कर बोली—लेकिन परकाल की चिंता की उम्र तो आपकी हुइ नही, आप तो मुझ से सिर्फ तीन साल के बडे हैं।

रमेश हंसकर बोला—इसका मतलब कि तुम्हारी तो वह उम्र और भी नही हुई। भगवान ऐसा ही करे, तुम दीर्घजीवी होओ; लेकिन अपने बारे में यह कभी नहीं सोचता कि आज ही मेरा अंतिम दिन नही है।

उसकी बातों में जो छिपी मार थी, वह शायद बेकार न गई। जरा देर स्थिर रहकर रमा एकाएक पूछ बैठी आपको मैंने संध्या-पूजा करने तो नहीं देखा। मंदिर में क्या है, क्या नहीं है, यह चाहे न देखे, लेकिन भोजन करते वक्त गुडंष करना भी भूल गए हैं ?

रमेश हँसकर बोला—भूला जरा नही । भूलूं भी तो कोई हर्ज नहीं मानता । मैं मगर यह चर्चा क्यों ?

रमा बोली—चूँकि आपको परकाल की बड़ी फिक्र है न, इसीलिए कहती हूँ ।

रमेश ने कोई जवाब नहीं दिया । कुछ क्षण दोनों चुप रहे । रमा धीरे-धीरे बोली—देखिए, मुझे दीर्घजीवी होने को कहना अभिशाप देना है । अपने हिन्दू-घर की विधवा के लिए कभी कोई दीर्घ जीवन की कामना नही करते । कहकर वह जरा चुप रही, फिर बोली -यह जरूर है कि मरने के लिए मै कदम बढ़ाए नहीं बैठी हूँ, लेकिन ज्यादा दिन जीने की सोच करके भी हमे डर लगता है । मगर आपके लिए तो यह बात लागू नही होती ! आपसे जबरन कुछ कहना मेरी प्रगल्भता होगी, लेकिन दुनियादारी में बैठकर जब पराए के लिए सिरदर्द मोल लेना बचपना-सा लगे तो मेरी बात याद करेंगे ।

जवाब मे रमेश ने सिर्फ एक निःश्वास फेका । थोड़ी देर मे रमा की तरह ही धीमे-धीमे बोला —मैं तुम्हारी बात को याद करके ही कहता हूँ, आज तो यह बात मेरे मन में नहीं आती । मैं तो तुम्हारा कोई हूँ नहीं रमा, बल्कि तुम्हारी राह का कांटा हूं । फिर भी पडोसी के नाते आज मैंने तुमसे जो जतन पाया, दुनियादार होकर जो लोग यह जतन अपने सगों मे रोज पाते है, मुझे तो लगता है, दूसरों के दुःख देखकर वे पागल-सरीखे दौड़ेंगे । अभी-अभी मैं सोच रहा था, मेरी सारी जिन्दगी को तुमने मानो एक बारगी बदल दिया । इस तरह से मुझे कभी किसी ने खाने को नही कहा, ऐसे कभी किसी ने नहीं खिलाया । खाने में इतना आनन्द है, यह आज मैंने तुमसे जाना रमा ।

सुन कर रमा का सर्वांग सिहर उठा, लेकिन तुरन्त स्थिर होकर वह बोली -यह भूल जाने में आपको ज्यादा देर नहीं लगेगी । और कभी याद भी आएगी, तो निहायत मामूली-सी लगेगी ।

रमेश चुप रहा ।

रमा बोली—घर जाकर निंदा न करेंगे, सही सौभाग्य अपना ।

रमेश ने फिर एक उसांस लेकर धीमे-धीमे कहा —नहीं-नहीं रमा, निंदा भी न करूँगा और बड़ाई भी न गाता फिरूँगा । मेरा आज का यह दिन निंदा-बड़ाई से परे है ।

रमा ने कोई जवाब न दिया । जरा देर फिर बैठी रही और उठकर अपने कमरे में चली गई । वहां सूने में उसकी आँखों से आंसू की बड़ी-बड़ी बूंदे टपाटप चू पड़ीं ।

ग्यारह

दो दिन लगातार पानी पड़ता रहा। आज तीसरे पहर दिन थोड़ा खुला। रमेश चंडी मंडप में गोपाल सरकार के पास बैठा हिसाब-पत्तर देख रहा था। अचानक लगभग बीस किसान आकर रो पड़े, छोटे बाबू, दया करके इस बार हमें बचा लीजिए। आप न बचाएँ तो बाल-बच्चों के साथ हमें राह का भिखारी बनना पड़ेगा।

रमेश ने अवाक् होकर पूछा—बात क्या है ?

किसानों ने कहा—सौ बीघे का पूरा चकला डूब गया, पानी निकाला न जाय तो फसल बर्बाद हो जायेगी। गाँव के एक घर को भी दाना नसीब न होगा।

बात रमेश की समझ में न आई। गोपाल सरकार ने लोगों से कुछ पूछा-पाछा और रमेश को समझा दिया। यही सौ बीघे का चकला इस गाँव का भरोसा है। सभी किसानों की कुछ न कुछ जमीन उसमें पड़ती है। इसके पूरब बड़ा-सा सरकारी बाँध है, पश्चिम और उत्तर में ऊँचाई पर गांव है, केवल दक्षिण का जो बांध है. वह है घोसाल और मुखर्जी का। इधर से पानी की निकासी तो हो सकती है, पर बाँध से सटा एक डाबर-सा है। साल मे दो-सौ का मछली बिक जाती हैं, इस नाते वेणी बाबू का उस पर कड़ा पहरा है। इन किसानों ने आज सुबह से वहाँ धरना दिया और लाचार रो-रोकर वहाँ से उठ आये।

रमेश ने ज्यादा सुनने का इन्तजार न किया, तेजी से निकल पड़ा। इस घर मे पहुँचा, तो साँझ हो रही थी। वेणी तकिये के सहारे तम्बाखू पी रहे थे, पास ही हालदर बाबू बैठे थे; शायद यही बात हो रही थी। रमेश ने वगैर किसी भूमिका के कहा—डाबर वाले बाँध को रहने से तो काम नहीं चलेगा, उसे काट देना है तुरत।

वेणी ने हालदर को हुक्का जमाते हुए कहा—कौन-सा बांध ?

रमेश तैश में तो आया ही था,कुढ़कर बोला—डाबर का बाँध और क्या है बड़े भैया ? काटा न गया तो गांव भर की फसल गल जायगी। उसे काटने का हुक्म दीजिए।

वेणी बोले, काटने से दो-तीन सौ रुपए की मछलियाँ निकल आयेंगी। इसका भी होश है? वह रुपया कौन देगा। किसान या तुम ?

रमेश ने गुस्से को सम्हालकर कहा, किसान बेचारे ग़रीब हैं, वे तो नहीं ही दे सकेंगे और मैं ही क्यों दूं, यह समझ नहीं पाता !

हालदर की ओर देखकर वेणी बोले—काका, इस तरह तो भाई मेरे जमींदारी चलाएंगे ! रमेश वे हरामजादे तो सवेरे से यहीं पड़े रो-पीट रहे थे। मुझे सब मालूम है।

तुम्हारे सदर में क्या दरवान नहीं है ? उसके पैरों में जूता नहीं है ? घर जाकर यही इन्तजाम करो; पानी आप ही निकल जायगा। कह कर वेणी हालदर से मिलकर हिः हिः करके अपनी रसिकता से आप ही हँसने लगे।

रमेश से अब बर्दाश्त नहीं हो रहा था तो भी जी-जान से अपने को जब्त करके वह नम्रता से बोला—जरा सोच देखिए बड़े भैया, हम तीन घरों के दो सौ रुपयों को बचाने में उन गरीबों का साल भर का अन्न उठ जायगा। जैसे भी हो, पाँच-सात हजार का नुकसान तो उन्हें हो ही गा।

वेणी ने हाथ को उलटकर कहा, होगा तो बला से। उनके पाँच हजार जांय या पचास हजार, अपने पूरे सदर को गोड़ डालो, तो दो पैसे भी नहीं निकलने के कि उन सालों के लिए दो-दो सौ रुपयों का खून करदूं ?

रमेश ने आखिरी कोशिश की—ये साल भर खाएँगे क्या ?

मानो बहुत हँसी की बात हो ! वेणी एक बार इस बाजू एक बार उस बाजू घूमकर, सिर हिलाकर, हँसकर, थू-थू कर अन्त में फिर होकर बोले—क्या खाएगा ? देखना, ये साले अपनी जमीन पर रुपए के लिए हमारे ही पास दौड़े आयेंगे। भाई, जरा दिमाग को ठंडा करके चलो। अपने पुरखे इसी तरह बढ़ा-जुगा कर यह जो एक-आध टुकड़ा जूठन छोड़ गए हैं, हमें भी इसी तरह खा-पीकर बचा-बचू कर अपने बाल-बच्चों के लिए रख जाना होगा। वे खायेंगे क्या ? उधार कर्जा लेकर खायेंगे। वरना इन सालों को आखिर नीच कौम क्यों कहते हैं ?

घृणा-लज्जा, क्रोध-क्षोभ से रमेश की आँख-मुंह उत्तप्त हो उठा, लेकिन अपने स्वर को शांत करके बोला— जब आपने कुछ भी न करने का तै ही कर लिया है, तो नाहक तर्क से कोई लाभ नहीं। मैं रमा के पास जाता हूं। वह राजी हो गई तो अकेले आपकी राय न होने से कुछ नहीं होता।

वेणी का चेहरा गंभीर हो उठा। बोला—ठीक है, जाकर देख लो, उसकी और मेरी राय अलग नहीं। वह इतनी भोली लड़की नहीं है भाई, उसे भुलाना इतना आसान नहीं। तुम तो बच्चे हो, उसने तुम्हारे बाप तक को नाकों चने चबवाया था। क्यों काका ?

काका की राय के लिए रमेश को उत्सुकता न थी और वेणी के इस अत्यन्त अपमानजनक प्रश्न का उत्तर देने की भी उसे प्रवृत्ति न हुई। वह चुपचाप बाहर हो गया।

आंगन के तुलसी-चौरे पर दीपक रखकर प्रणाम करके ज्यों ही माथा उठाया कि रमा अवाक रह गई। सामने रमेश खड़ा था। उसका घूंघट गले में लिपटा था। मानों उसने अभी रमेश को ही प्रणाम करके सिर उठाया ! क्रोध के आवेश और

उत्कंठा से रमेश को मौसी के पहले दिन की मनाही याद न थी; इसीलिए वह सीधे अन्दर आ गया था और रमा को इस हालत में देखकर चुपचाप इन्तजार कर रहा था। महीने भर के बाद दोनों की भेंट।

रमेश बोला—तुमने सुना ही होगा। मैं पानी निकाल देने के लिए तुम्हारी राय लेने आया हूं।

रमा का अचरज वाला भाव जाता रहा। बोली— यह कैसे होगा? फिर बड़े भैया की राय नहीं है।

नहीं है, जानता हूं। मगर उनकी अकेली राय से क्या आता-जाता है?

रमा ने कुछ सोच कर कहा—पानी निकाल देना ही वाजिब है, मगर मछली रोकने का कौन-सा उपाय करेंगे?

रमेश बोला—उतने पानी में रोक का कोई उपाय असम्भव है। इस साल उन रुपयों का नुकासन हमें उठाना ही पडेगा। नहीं तो गाँव मर जायेगा।

रमा चुप रही।

रमेश ने पूछा—तो तुमने इजाजत दे दी?

रमा हौले-हौले बोली— न, इतने रुपए का नुकसान मैं न उठा सकूंगी।

रमेश अचरज से काठ हो गया। रमा से इस उत्तर की उसने आशा ही न की थी। बल्कि कैसे तो उसे यह निश्चित धारणा हो गई थी कि उसके एकान्त आग्रह को रमा हर्गिज नहीं टाल सकेगी।

सिर उठाकर रमा ने शायद रमेश की हालत का अनुमान किया। बोली— इसके सिवा जायदाद मेरे भाई की है, मैं तो महज प्रभिभावक हूं।

रमेश बोला—नहीं, आधी तुम्हारी है।

रमा बोली— नाम को। पिता जी खूब समझते थे, सारी जायदाद यतीन की होगी; इसीलिए आधी मेरी नाम से लिख गए।

तो भी रमेश ने आरजू करके कहा—रमा आखिर कितने रुपए? इस इलाके में तुम लोगों की हालत सबसे अच्छी है। तुम्हारे लिए यह नुकसान कुछ भी नहीं, मैं विनती करता हूं, इसके लिए इतने लोगों को दानों की तकलीफ न दो। सच मानो, मैंने स्वप्न में भी नही सोचा कि तुम इतनी निर्दयी हो सकती हो।

रमा उसी कोमलता से बोली—अपना नुकसान न कर सकी, इसीलिए अगर निर्दयी हुई, तो वह सही। खैर, आपको यदि इतनी ही दया है, तो यह नुकसान खुद ही भर दें न।

इसमें व्यंग की कल्पना करके रमेश जल उठा। बोला—रमा, मनुष्य खरा है या नहीं, इसकी पहचान रुपये के संपर्क से ही होती है। यहाँ धोखा नहीं चल सकता,

इसीलिए यहीं मनुष्य का असली रूप जाहिर हो जाता है। तुम्हारा भी आज वही जाहिर हो गया। मैंने मगर तुम्हें ऐसा नहीं सोचा था। मैं सदा यही सोचता रहा, तुम इससे बहुत ऊँची हो, मगर नहीं। तुम्हें निर्दयी कहना भी ठीक नहीं। तुम नीच हो, निहायत छोटी।

असह्य विस्मय से आँखें फाड़कर रमा ने पूछा—क्या हूं मैं? रमेश बोला—तुम बड़ी हीन और नीच हो। तुमने भाँप लिया कि मैं कितना बेचैन हो उठा हूं, जभी तुमने क्षतिपूर्ति का दावा किया। बड़े भैया तक यह खुलकर नहीं कह सके; पुरुष होते हुए भी जो बात उनके मुंह में अटकी, स्त्री होने पर भी लेकिन तुम्हारे मुंह में न अटकी। मैं इससे भी ज्यादा नुकसान भर सकता हूं, पर आज एक बात कह रक्खूं, संसार में जितने भी पाप हैं, मनुष्य की दया पर जुल्म करना उन सबसे बड़ा है। आज तुमने वही करके मुझसे रुपये अदा करने की कोशिश की है।

रमा काठ की मारी-सी टुकुर-टुकुर ताकती रही, उसके मुंह से एक शब्द भी न निकला। रमेश ने वैसे ही शांत, वैसे ही दृढ़ कंठ से कहा—मेरी कमजोरी कहाँ पर है, यह तुमसे छिपी जरूर नहीं है, लेकिन उस जगह को उमेठ कर अब एक बूंद भी रस नहीं पा सकतीं। मैं क्या करूँगा, यह भी बता जाऊं। मैं जबर्दस्ती बाँध कटवा दूँगा—बने तो रोकने की कोशिश करो—कह कर रमेश चला जाने लगा, यह देख रमा ने आवाज दी। पलट कर रमेश उसके पास आ खड़ा हुआ। रमा बोली, मेरे यहाँ खड़े होकर मेरा जितना अपमान किया, मैंने एक का भी जवाब न दिया, मगर यह काम आप हर्गिज न करें।

रमेश ने पूछा—क्यों?

रमा बोली—इसलिए कि इतने अपमान के बाद भी मुझे आपसे विवाद करने की इच्छा नहीं होती।

उसका चेहरा कैसा अस्वाभाविक पीला पड़ गया था और होंठ काँप गए, साँझ के अंधेरे में भी रमेश यह देख पाया। लेकिन मनोविज्ञान की आलोचना का अवकाश और प्रवृत्ति उसे नहीं था; तुरन्त जवाब दिया, झगड़ने-लड़ने की रुचि अपनी भी नहीं, थोड़ा सोचो तो समझ जाओगी। लेकिन तुम्हारे सद्भाव की भी अब कोई कीमत मेरे लिए नहीं रही। खैर, वागवितंडा की जरूरत नहीं, मैं जाता हूं।

मौसी ऊपर ठाकुर-घर में थीं, इसलिए कुछ भी न जान पाईं। नीचे आईं तो देखा, रमा नौकरानी को साथ लेकर बाहर जा रही है। पूछा—कीचड़ पानी में साँझ के बाद कहाँ चली रमा?

जरा बड़े भैया के यहाँ जाऊँगी मौसी।

नौकरानी बोली—रास्ते में अब कीचड़ का नाम नहीं। छोटे बाबू ने रास्ते को

ऐसा बँधवा दिया है कि सिंदूर गिरे तो उठा लीजिए भगवान उन्हें लम्बी आयु दें, गरीब-गुरबों को साँपों से रिहाई मिली ।

रात के शायद ग्यारह बज रहे होंगे । वेणी के चंडी मण्डप से बहुत लोगों की दबी आवाज आ रही थी । आसमान से बादल हट गए थे और त्रयोदशी की धुंधली चाँदनी बरामदे के ऊपर पड़ रही थी । वहीं खूंटे के सहारे एक खूंखारसा प्रौढ़ मुसलमान आँख बन्द किए बैठा था । तमाम चेहरे पर कच्चा लहू जम गया था—कपड़ा लहू से लाल, मगर वह चुप था । वेणी दबी आवाज में अनुनय कर रहे थे, मेरी बात मान अकबर, थाना चल । उसे सात साल के लिए भेज न दूँ, तो मैं घोषाल खानदान का लडका ही नहीं । पीछे मुड़ कर बोला—रमा, तुम कह देखो न, चुप क्यों हो ?

लेकिन रमा बुत बनी रही ।

अकबर अली । अब आँख खोल कर सीधे बैठा । बोला—शाबाश ! अलबत् माँ का दूध पिया था छोटे बाबू ने ! क्या लाठी सम्भाली !

वेणी बेताब और नाराज होकर बोले—यही तो कहने को कह रहा हूं ! तू किसकी लाठी से जख्मी हुआ, उस छोकरे की या उसके उस भोजपुरी नौकर की ?

अकबर के होठों पर हल्की हँसी खिंच आई । बोला—उस भोजपुरी की लाठी से ? वह छोकरा भला लाठी को क्या जानता है बडे बाबू ? क्यों रे गौहर, तेरे पहले ही बार से वह बैठ गया था, न ?

अकबर के दो लड़के करीब ही सिकुड़े-से बैठे थे । चोट से वे भी अछूते न थे । गौहर ने सिर्फ सिर हिलाकर हामी भरी, बोला—कुछ नहीं । अकबर बोला—मेरे हाथ की मार खा जाता तो बच्चू टें बोल जाता । गौहर की ही लाठी से वह 'बाघ' करके बैठ गया !

रमा करीब आकर खड़ी हुई थी । अकबर उसके शिवपुर की प्रजा था पिछले दिनों लाठी के बल पर बहुत जायदाद दखल करदी थी । इसलिए आज शाम को क्रोध और अभिमान से पागल-सी होकर उसने बाँध पर पहरा देने के लिए उसे बुलबा भेजा था । और वह देखना चाहती थी कि अकेले उस भोजपुरी नौकर के भरोसे रमेश कैसे क्या करता है । लेकिन रमेश खुद ही इतना बड़ा लठैत है, रमा ने स्वप्न में भी न सोचा था ।

अकबर ने रमा की ओर देखते हुए कहा—जब वह कम्बख्त थौस गया, तो दीदी जी, छोटे बाबू खुद उसकी लाठी लेकर बाँध रोक कर खड़े हो गए—हम तीनों बाप बेटे उन्हें हिला न सके । अँधेरे में उनकी आँखें बाघ जैसी जलने लगीं । बोले—अकबर, तू बुड्ढा है, हट जा । हट जा बाँध काटा न जायगा तो गाँव भर के लोग मर जायेंगे , इसलिए बाँध काटना ही पड़ेगा । तुझे भी तो गाँव में खेत-पथार है, सोच देख, वह बर्बाद हो जाय तो तुझे कैसा लगे ?

मैंने सलाम करके कहा—अल्ला कसम छोटे बाबू, आप जरा हट जाओ, आपके पीछे कपड़े में मुंह छिपाए जो कई लोग फावड़े चला रहे हैं दनादन उनका सर जुदा कर दूँ मैं !

वेणी से गुस्सा सम्भालते न बना। बीच ही में चीखकर बोला—बेईमान कहीं के, उसे सलाम बजा कर यहाँ चलाकी बता रहा है—

उन तीनों बाप-बेटों ने एक ही साथ हाथ उठा लिया। अकबर ने रुखी आवाज में कहा—खबरदार बड़े बाबू, बेईमान मत कहो। हम मुसलमान के बच्चे हैं, सब सह सकते हैं - यह नहीं।

उसने कपाल से थोड़ा लहू पोंछकर, रमा से कहा--बेईमान किसे कहते हैं दीदी ? घर बैठे बेईमान बता रहे हो बडे बाबू, आँखों देखते तो समझते कि छोटे बाबू क्या हैं।

वेणी ने मुंह बिदका कर कहा—छोटे बाबू क्या है ! यही बात थाने जाकर बता न ! कहना, मैं बाँध जोग रहा रहा था, छोटे बाबू ने धावा बोल दिया, मारा।

जीभ काटकर अकबर बोला—तौबा-तौबा ! दिन को रात करने को कहते हो बड़े बाबू !

वेणी बोला—चाहे और ही कुछ कहना। आज अपना जख्म ही दिखा आ। कल वारन्ट जारी करा कर उसे हाजत में डलवा दूँगा। रमा, तुम इसे ठीक से समझाओ न। ऐसा मौका फिर न मिलेगा।

रमा बोली नहीं। उसने सिर्फ एक बार अकबर की तरफ देखा। अकबर ने सिर हिलाकर कहा--नहीं दीदा, मुझसे यह न बनेगा।

वेणी ने डपटकर कहा—क्यों नहीं बनेगा ?

अब की अकबर ने भी जोर गले से कहा—कहते क्या हो बड़े बाबू, मेरे हया नहीं ? मुझे पाँच-पाँच गाँवों के लोग सरदार नहीं कहते ? दादी जी, आपका हुक्म हो, तो जेल काट सकता हूं, मगर किस मुंह से फरियादी बनूँगा ?

रमा ने एक बार धीमे से कहा—नहीं कर सकोगे अकबर ?

अकबर ने झोंक से सिर हिलाते हुए कहा—नहीं दीदी, और सब कर सकता हूं, सदर में जाकर अपना जख्म नहीं दिखा सकता। उठ रे गौहर, घर चलें। हम नालिश नहीं कर सकते --वे जाने को तैयार होने लगे।

वेणी क्रुद्ध निराशा से उनकी ओर देखकर, आँखों से आग बरसाते हुए, मन ही मन भद्दी गालियाँ देने लगे और रमा की इस निश्चेष्ट चुप्पी का मतलब न समझ पाकर भूस की आग में सुलगने लगे। हर आरजू, विनती, झिड़की, क्रोध को ठुकरा कर जब अकबरअली अपने बेटों के साथ चला गया, तो रमा की छाती फोड़कर

एक लम्बा निश्वास निकला, बे वजह उसकी आखें आँसुओं में डूब गईं और आज के इतने बड़े अपमान तथा हार के बावजूद क्यों तो बार-बार उसे ऐसा लगने लगा कि उसके कलेजे पर से एक वजनी पत्थर उतर गया; इसका कोई कारण ही वह नहीं समझ पाई। घर लौटी। तमाम रात उसे नींद नहीं आई, तारकेश्वर में वह जो उसने रमेश को सामने बैठकर खिलाया था, वही दृश्य आँखों में तैरता रहा। और जितना ही उसे यह लगने लगा कि इस सुकुमार सुन्दर शरीर में इतनी माया, इतना तेज किस तरह से स्वच्छंद हो शांत थे, उतना ही आँखों के आँसू से उसका मुखमंडल भीगने लगा।

बारह

छुटपन में कभी रमेश ने रमा को प्यार किया था इसमें कोई शक नहीं कि वह प्यार बचपना था, लेकिन वह कैसा गाढ़ा था, यह उसने उस दिन तारकेश्वर में पहली बार महसूस किया और सबसे ज्यादा इसे उस दिन समझा, जिस दिन रमा से सारा नाता चुका कर शाम को वह लौट आया था। उसके बाद, रात के उस खौफनाक वाक्या के बाद, रमेश के लिए रमा की दिशा ही सूनी मरु-भूमि-सी धू-धू करती थी। मगर रमेश को इसका कयास तक न था कि यह उसके सोने-जगने, यहाँ तक कि मनन-अध्ययन तक को ऐसा विस्वाद कर देगा। इससे गृह-विच्छेद तथा अनात्मीयता से जब उसके प्राण पल को गाँव मे टिकना नहीं चाह रहे थे, तो नीचे की घटना से वह फिर एक बार तन कर बैठ गया।

नहर के पार का पीरपुर गाँव उन्हीं लोगों की जमीदारी थी। वहाँ मुसलमानों की आबादी ही ज्यादा थी। एक दिन वहाँ के लोग टोली बनाकर रमेश के पास गए। उन सबने शिकायत की कि गरचे वे उन्हीं की रियाया है, फिर भी मुसलमान होने के नाते उनके बच्चों का स्कूल मैं दाखला नहीं होने दिया जाता। उन्होंने कई बार कोशिश की, कामयाबी नहीं मिली। मास्टर लोग उनके बच्चों को हर्गिज नहीं लेते। रमेश को अचरज हुआ, क्रोध भी। बोला—ऐसा जुल्म तो सुना नहीं कभी। अपने बच्चों को तुम लोग ले जाओ, मैं खुद रह कर उन्हें भर्त्ती करा दूँगा।

उन्होंने बताया—हम रैयत तो है, मगर मालगुजारी देकर जमीन जोतते हैं। लिहाजा हिन्दू जैसे जमींदार की हमें परवा नहीं, पर इसके लिए झगड़ने से भी क्या लाभ ? क्योंकि झगड़ा ही होगा, वास्तव का लाभ न होगा। बल्कि हमारा इरादा है

कि हम अपना ही एक छोटा-मोटा स्कूल खोल लें, छोटे बाबू कुछ मदद कर दें, तो बहुत है। झगड़ा टंटा से रमेश खुद भी बहुत ऊब चुका था। सो इस बात को तूल न देकर उनकी राय को संगत मानकर उसने हामी भरी और तब से नया स्कूल खोलने में ही जुट गया। इतना ही नहीं कि इन लोगों के संसर्ग में आकर उसे राहत मिली, बल्कि एक साल में उसकी जितनी शक्ति चुक गई थी, वह धीरे-धीरे भरने लगा। उसने गौर किया, कुआंपुर के हिन्दू पड़ोसियों के समान ये लोग बात-बात में विवाद नहीं करते; और करते भी हैं तो हर बात के लिए मुकदमा करने के लिए सदर को नहीं दौड़ा करते। बल्कि खुशी या नाखुशी से अगुओं के फैसले को ही मानने की कोशिश करते हैं। खास करके आड़े वक्त में एक दूसरे की मदद के लिए रमेश ने भद्र या अभद्र किसी भी हिन्दू को इस तरह से कंधा मिलाते नहीं देखा।

एक तो जाति भेद पर रमेश को कभी भी आस्था नहीं रही, तिस पर अगल-बगल के इन दो गाँवों की तुलना करके उसकी अश्रद्धा सौ गुनी बढ़ गई। उसने समझा, हिन्दुओं की आपसी फूट का कारण यह धर्म और सामाजिक विषमता ही है। धर्म के नाते सभी मुसलमान एक हैं, लिहाजा उनके जैसा एकता का दृढ़ बन्धन हिन्दुओं में नहीं है, हो भी नहीं सकता। और जब जाति भेद को मिटाने का कोई उपाय नहीं, बल्कि इसका जिक्र करना भी गाँव मे असंभव है, तो आपसी लड़ाई-झगड़े को मेटकर प्रेम और भाईचारा कायम करने की कोशिश बेकार है। सो उसे इस बात के लिए पछतावा हुआ कि नाहक ही वह इतने वर्षों तक गाँव के लिए मरता-खपता रहा। उसे यह दृढ़ धारणा हुई कि इन के दिन ऐसे ही खाँव-खाँव में कटे हैं और ऐसे ही दिन काटने के लिए ये मजबूर हैं। कभी भी किसी भी तरह से इनका भला नहीं हो सकता। लेकिन बात पक्की तो कर ही लेनी चाहिए !

नाना कारणों से बहुत दिनों से बड़ी चाची से उसकी मुलाकात नहीं हो पाई थी। उस दंगे के बाद से बहुत कुछ जानकर ही वह उस तरफ नहीं गया। आज सुबह वह उनके घर के दरवाजे पर जा खडा हुआ। चाची की समझ-बूझ और अनुभवों पर उसे ऐसा विश्वास था कि चाची खुद भी इसे न जानती थीं। रमेश ने जरा अचरज से देखा, इतने तडके ही नहाकर चाची धुँधली रोशनी मे आखों में चश्मा लगाए जमीन पर बैठी कोई किताब पढ़ रही है। चाची भी कुछ कम हैरान न हुईं। उन्होंने किताब बन्द कर दी। आदर से बुलाकर उसे अन्दर बिठाया और मुँह की तरफ ताकते हुए पूछा—इतना सवेरे ?

रमेश बोला बहुत दिनों से तुमसे मिल नहीं पाया था चाची। मैं पीरपुर में एक स्कूल खोल रहा हूँ।

विश्वेश्वरी बोलीं—सुना है मैंने। लेकिन अपने स्कूल में अब पढ़ाने क्यों नहीं जाता, बता तो ?

वही कहने आया हूँ चाची। इनकी भलाई की कोशिश बिल्कुल बेकार है। जो किसी का भला नहीं देख सकते, अभिमान-अहंकार जिन्हें इतना ज्यादा है, उनके लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक करने में कोई लाभ नहीं, बल्कि बीच में अपना ही दुश्मन बढ़ जाता है। बेहतर है कि जिनके कल्याण की कोशिश से वास्तव में कल्याण होगा, मैं उन्हीं के लिए कोशिश करूँगा।

चाची ने कहा—यह तो कोई नई बात नहीं बेटे ! संसार में जिस किसी ने भी उपकार करने का भार उठाया है, सदा से उसके दुश्मन बढ़ते रहे हैं। मगर इसके डर से जो पीछे हट जाते है, तू भी अगर उन्हीं की जमात में शामिल होगा, तब तो काम नहीं चलेगा बेटे ! यह भारी बोझा भगवान ने तुझी को ढोने के लिए दिया है, तुझे ही ढोते फिरना पड़ेगा। लेकिन हाँ रे रमेश, तू क्या तो उनके हाथ का पानी पीता है ?

रमेश ने हँसकर कहा—देख लो चाची, बात इस बीच तुम्हारे कान तक आ पहुँची। पिया अभी तक नहीं है, मगर पीने में कोई दोष तो नहीं देख पाता मैं। मैं तुम लोगों के जाति-भेद को नहीं मानता।

चाची ने ताज्जुब में आकर पूछा—कहता क्या है रमेश ? यह क्या कुछ झूठ है या कि जाति-भेद है नहीं कि तू न मानेगा ?

रमेश बोला—ठीक यही बात आज मैं तुमसे पूछने आया था चाची। जाति-भेद है, यह मानता हूँ, मगर इसे अच्छा नहीं मानता।

क्यों ?

रमेश एकाएक जोश में आ गया—क्यों, यह क्या तुम्हें बताना पड़ेगा ? इसीसे इतना भेदभाव है, झगड़ा-झंझट है, यह बात क्या तुम्हें नहीं मालूम है ? समाज में जिन्हें छोटी जात का बनाकर रक्खा गया है, वह हिंसा करेगा, छोटे न रहने के लिए बगावत करेगा, इससे मुक्त होना चाहेगा, तह तो बड़ी स्वाभाविक बात है। हिन्दू लोग संग्रह करना नहीं जानते, नहीं चाहते, ये सिर्फ अपचय करना जानते हैं। अपने को और अपनी जाति को बचाने तथा बढ़ाने का जो सांसारिक नियम है, हम उसे नहीं कबूल करते, इसलिए दिन-दिन हमारा ह्रास हो रहा है। जन-गणना का जो नियम है, उसके नतीजे को तुम पढ़ देखतीं तो डर जातीं चाची तुम्हें हाथों-हाथ इसका नतीजा देखने को मिल जाता कि मनुष्य को छोटा बना कर अपमानित करने क्या अन्जाम होता है ! तुम्हें पता चलता कि किस तरह धीरे-धीरे हिन्दुओं की संख्या घटती जा रही है और मुसलमानों की बढ़ती जा रही है। फिर भी तो इन्हें होश नहीं आता!

विश्वेश्वरी ने हँसकर कहा—तेरी इतनी बात सुन कर भी तो मुझे होश नहीं

आ रहा है रमेश ! तुम्हारे जो आदमी यह जन-गणना करते हैं, वे अगर गिनकर यह बताते कि इतने लोगों ने छोटी जात के होने का नाते ही जान गँवाई है, तो शायद मुझे होश आता। हिन्दु तादाद में घट रहे हैं, मानती हूँ मैं, मगर इसका कारण है। वह भी समाज की त्रुटि है, मगर छोटों का जात गँवाना उसका कारण नहीं। कोई हिन्दू कभी इसलिए जात नहीं दे बैठता कि वह छोटा है।

रमेश ने संदिग्ध स्वर में कहा—पंडित लोग तो यही बताते है चाची !

चाची बोलीं—अनुमान के खिलाफ तो तर्क नहीं चल सकता बेटे ! कोई अगर यह बताना कि फलाँ गाँव के इतने छोटी कौम के लोगों ने इसी वजह से इस साल अपनी जात दी, तब शायद पंडितों की बात पर कान दे पाती। लेकिन मैं खूब जानती हूँ कि यह खबर कोई नहीं दे सकता।

रमेश ने फिर भी दलील दी—लेकिन जो छोटी कौम के है, वे बड़ों से कुढ़ेंगे, यह तो मुझे ठीक ही जँचता है चाची।

रमेश के इस तीखे जोश पर विश्वेश्वरी फिर हँसी। बोली—यह ठीक नही बेटा, जरा भी ठीक नहीं। यह तुम्हारा शहर नही। गाँव में छोटी जात का है या बड़ी जात का, इस पर किसी को भी इतना-सा सर दर्द नही। छोटा भाई जैसे छोटा होने के नाते बड़े भाई से हिंसा नही करता, दो-एक साल बाद में पैदा होने का जैसे उसे कोई ग़म-गिला नहीं, गाँव-घर में ठीक यही होता है। यहाँ किसी को इस बात का दुःख नहीं कि वह कायस्थ या ब्राह्मण क्यों नहीं हुआ, कोई किसी के समान होने की जरा भी कोशिश नहीं करता। बड़े भाई को दण्डवत करने मे लाज से छोटे भाई की जैसे हेठी नही होती, वैसे ही ब्राह्मण के पैरों की धूल लेने मे कायस्थ जरा भी कुठित नहीं होता। असल में यह जाति-भेद हिंसा का कारण ही नहीं है बेटा ! कम-से-कम जो गाँव हमारे मेरुदंड है, उन गाँवों में तो नहीं।

रमेश ने ताज्जुब में आकर पूछा—फिर ऐसा होता क्यों है चाची ? उस गाँव में तो उतने घर मुसलमानों के हैं, उनमें तो लेकिन ऐसी अनबन नहीं है। आड़े वक्त में कोई दूसरे को इस बुरी तरह धर नहीं दबाता। उस रोज की बात है, अर्थाभाव से द्वारिक ठाकुर का प्रायश्चित नहीं हो पाया, इसलिए कोई उसकी लाश को छूने तक नहीं पाया, तुम्हें तो मालूम है।

विश्वेश्वरी बोलीं—मालूम है, सब मालूम है। मगर इसका कारण जाति-भेद नहीं। कारण यह है कि मुसलमानों में अभी भी वास्तव में धर्म नाम की चीज है, हम लोगों में वह नहीं है। जिसे सही मानों में धर्म कहते हैं, गँवई गाँव से वह एक बारगी लुप्त हो गया है। रह गया है सिर्फ आचार-विचार का कुछ बुरा संस्कार और उसी से होती है निरर्थक दलबंदी।

हताश से उसांस भरकर रमेश ने कहा—इसके प्रतिकार का क्या कोई उपाय ही नही चाची ?

विश्वेश्वरी बोली—है जरूर बेटे ! प्रतिकार है सिर्फ ज्ञान मे--तू ने जिस राह पर कदम बढ़ाया है, उसी राह में। जभी तो मैं तुझ से कहती हूँ, अपनी जन्मभूमि को छोड़कर हर्गिज मत जा।

जवाब मे रमेश कुछ कहने जा रहा था कि विश्वेश्वरी ने बाधा देकर कहा--तू कहेगा, मुसलमानो मे भी तो बेहद जहालत है। लेकिन उनके सजीव धर्म ने ही उन्हें सभी तरफ से बचाए रक्खा है। एक बात बता दूं, पीरपुर में खोज-पूछ करो, तो पता चलेगा कि जाफर नाम के एक बड़े आदमी को उन लोगों ने अजात कर रक्खा है। इसलिए कि वह अपनी विधवा सौतेली माँ की परवरिश नहीं करता। लेकिन हमारे गोविद गांगुली ने उस दिन अपनी विधवा भौजी को पीटते-पीटते अध-मरी कर छोड़ा, लेकिन समाज मे उसे सजा मिलने की बात तो दूर, वह खुद ही समाज का एक अगुआ बना बैठा है। हम लोगों मे यह अपराध व्यक्तिगत पाप-पुण्य माने जाते है, इनको सजा भगवान चाहें तो देंगे या कि नहीं देंगे, समाज इसकी परवा ही नहीं करता।

यह नया तथ्य सुनकर एक ओर तो रमेश जैसा अवाक् हुआ, दूसरी ओर उसका मन इसी को निश्चित सत्य मानने मे दुविधा करने लगा। इसे समझकर ही मानों विश्वेश्वरी ने कहा—कल को भी उपाय समझकर गलती मत करना बेटा ! जिसके लिए तेरे मन से सदेह जाना नही चाहता, उस जात का छोटे-बड़े के लिए मार-पीट करना उन्नति का एक लक्षण है, कारण नही। यह सबसे पहले हुए बिना नही चलने का, यह सोचकर अगर इसी से छेड़-छाड़ करेगा, तो इधर-उधर—दोनों तरफ बर्बाद हो जायगा। यह सच है या नही, अगर इसकी जाँच करने को जी चाहे, तो शहर के आस-पास के दो-एक गाँवों को घूम-फिरकर देख आ फिर अपने इस कुआपुर से मिलाकर देखना, खुद समझ जायगा।

कलकत्ते से बहुत ही पास के दो-एक गाँवो की जानकारी रमेश को थी। मन में मोटा-मोटी उसी की शक्ल को याद कर लेने की चेष्टा करते ही सहसा उसकी आँखों पर से मानों एक काला परदा उठ गया और बड़े अदब तथा आश्चर्य से विश्वेश्वरी की ओर देखता रह गया। उन्होंने लेकिन इसका जरा भी ख्याल नहीं किया और अपनी बातों के उसी सिलसिले मे कहने लगीं—इसीलिए तो मैं तुम से बार-बार कह रही हूँ बेटे कि अपनी जन्मभूमि को छोड़कर मत जा। जो लोग तेरी तरह बाहर रहकर बड़े हो सके हैं, तेरी ही तरह अगर वे गाँवों को लौट आते, इससे सारा नाता तोड़कर चले न जाते, तो गाँवों की यह बात नहीं हो पाती। फिर लोग गोविंद गांगुली को माथे पर चढ़ाकर तुझे दूर नहीं हटा सकते।

रमेश को रमा की याद आई। इसलिए वह मान करने जैसे स्वर में बोला—दूर हट जाने में अब मुझे भी दुःख नहीं है चाची।

विश्वेश्वरी इस स्वर को तो समझ गईं, पर इसका कारण नहीं समझ सकीं। बोलीं नहीं रमेश, ऐसा हर्गिज न करना। जब यहाँ आया है, काम शुरू किया है, तो बीच ही में छोड़ देने से जन्मभूमि तुझे माफ नहीं करेगी।

क्यों भला चाची, जन्मभूमि मेरे अकेले की तो नहीं ?

चाची उदीप्त हो उठीं। कहा— अकेले की बेटे, केवल तेरी ही माँ है। देख नहीं रहा है, माँ ने जबान खोलकर बेटे से कभी कुछ नहीं माँगा। इसीलिए इतने लोगों के होते किसी के कानों में उसका रोना नहीं पहुँचा, मगर तूने आते ही सुन लिया।

रमेश ने और तर्क नही किया। वह कुछ देर स्थिर भाव से बैठा रहा, फिर चुपचाप गहरी श्रद्धा से विश्वेश्वरी के चरणों की धूल माथे पर लेकर धीरे-धीरे वहाँ से निकल आया।

भक्ति, करुणा और कर्त्तव्य की गाढ़ी निष्ठा से अपना हृदय भरकर रमेश घर लौट आया। अभी-अभी सूरज उगा था। अपने कमरे के पूरब की खुली खिड़की के सामने खड़े हो वह स्तब्ध होकर आसमान की ओर देख रहा था। अचानक बच्चे की पुकार से चौंककर उसने उधर देखा। देखा, रमा का छोटा भाई यतीन दरवाजे के पास खडा होकर लाज से रंगे चेहरे से पुकार रहा है, छोटे भैया।

रमेश ने जाकर उसका हाथ पकड़कर अंदर लाकर पूछा—किसे पुकार रहे हो यतीन ?

आपको।

मुझे ? मुझे छोटे भैया कहने को तुम्हे किसने बता दिया ?

दीदी ने।

दीदी ! उन्होंने क्या कुछ कहने को भेजा है ?

यतीन ने सिर हिलाकर कहा—कुछ नहीं। दीदी ने कहा—मुझे साथ लेकर अपने छोटे भैया के यहाँ चल। वह, वहाँ खड़ी हैं—कहकर उसने दरवाजे की ओर दिखा दिया।

हैरान-परेशान होकर रमेश ने जाकर देखा, रमा एक खंभे की आड़ में खड़ी है। खिसक कर उसने विनय के साथ कहा—आज अपनी यह कैसी खुशकिस्मती ! मगर मुझे न बुलवा कर खुद क्यों तकलीफ उठाई ? आओ, अंदर आओ।

रमा ने जरा आगा-पीछा किया और फिर रमेश का हाथ पकड़कर रमेश के पीछे-पीछे चलकर कमरे के चौखट के पास जाकर बैठ गई। बोली—आज एक भीख

मांगने के लिए आपके ही घर आई हूँ—कहिए, देंगे ? कहकर वह रमेश की ओर एकटक देखती रह गई। उस निगाह से रमेश के परिपूर्ण हृदय की सप्तस्वरा अचानक उन्माद-शब्द से बज उठी और एक बारगी टूटकर झर पड़ी। कुछ ही पहले उसके मन में जो सारे संकल्प, आशा और आकांक्षा अनोखी दीप्ति से नाचते फिर रहे थे—सभी बुझकर अँधेरा हो गया। फिर भी पूछा – क्या चाहिए, कहो ?

उसकी अस्वाभाविक शुष्कता रमा की नजर से छिपी न रही। उसने उस पर उसी तरह से निगाह रखकर कहा—पहले बचन दीजिए।

रमेश जरा चुप रहकर सिर हिलाते हुए बोला—ऐसा नहीं कर सकता। तुमसे कुछ पूछे विना वचन देने की मेरी शक्ति को तुमने अपने ही हाथों से तोड़ दिया है रमा !

रमा ने अचरज से कहा— मैने !

रमेश बोला—तुम्हारे सिवा यह क्षमता किसी मे न थी। रमा, आज तुम्हे एक सच बात कहूँ। जी मे आए यकीन करना, न तो न सही। लेकिन वह चीज मरकर बिल्कुल खत्म न हो गई होती, तो शायद तुमसे कभी कही नही सकता, कहकर जरा चुप रहा और फिर बोला—आज शायद दोनों मे से किसी भी तरफ के हानि-लाभ की जरा भी संभावना नही, जभी आज बता रहा हूँ, उस दिन तक तुम्हारे लिए मेरा कुछ भी अदेय नही था। लेकिन क्यों, जानती हो ?

रमा ने सिर हिलाकर जताया, नही। परंतु उसका समूचा अतःकरण जाने कैसी एक शर्मनाक आशंका से कटकित हो उठा।

रमेश बोला—मगर सुनकर नाराज न होना, लजाना भी मत। समझना, पुरानी कोई कहानी सुन रही हो। बस।

रमा ने जी-जान से बाधा देना चाहा, लेकिन उसका सिर ऐसा झुक गया कि वह उसे सीधा उठा न सकी। रमेश ने वैसे ही शांत, मृदु और निर्लिप्त स्वर में कहा—तुम्हें मैं प्यार करता था रमा। आज मुझे लगता है, ऐसा प्यार शायद कभी किसा ने नहीं किया है। छुटपन में मां की जबानी सुनता था, हम दोनों की शादी होगी। लेकिन जब सारी उम्मीदें टूट गई, तो मुझे आज भी याद आता है, मैं रोया था।

बातें गरम पिघले सीसे सी रमा के दोनों कानों में पैठकर जला मारने लगीं और एक निरी अजानी अनुभूति की असह्य तीखी पीड़ा उसके कलेजे के ओर से छोर तक को टुकड़े-टुकड़े किए देने लगी। लेकिन मना करने का कोई चारा न देख बिल्कुल निरुपाय पत्थर की मूरत-सी बैठी रमा रमेश की जहरीली-मीठी बातों को एक-एक करके सुनती गई।

रमेश कहने लगा—तुम सोच रही हो, तुम्हें यह सब कहानी सुनाना अन्याय है। मेरे भी मन में यह संदेह था, इसीलिए तारकेश्वर में अपने एक दिन के जतन से

जब तुमने मेरे जीवन की धारा को बदल दिया था, तब भी मैं चुप ही था। मगर वह चुप रहना मेरे लिए सहज नहीं था।

रमा से और किसी भी तरह से सहा न गया। बोली—तो फिर आज ही मुझे अपने घर में अपमानित क्यों कर रहे है ?

रमेश बोला - अपमानित ! बिल्कुल नहीं। इसमे मान-अपमान की कोई बात ही नहीं। यह जिनकी बात है, तुम वह रमा भी नही थी और वह रमेश भी मैं अब नहीं। खैर जो हो, सुनो। उस दिन जाने क्यों, मुझे पक्का विश्वास हुआ था कि तुम जी चाहे सो कहो, जी चाहे सो करो, मगर मेरा अमगल तुम हर्गिज नही सह सकोगी। शायद मैंने यह सोचा था, वह जो कभी छुटपन मे मुझे प्यार करती थी, आज भी उसे एकबार भी भूल नही सकी हो। इसीलिए सोचा था, तुम्हे कुछ जताए वगैर तुम्हारी छाया में अपने जीवन का काम धीरे-धीरे करता जाऊंगा। उसके बाद उस रात जब अकबर से यह सुना कि तुम खुद—अरे, बाहर शोरगुल कैसा ?

बाबू—

गोपाल सरकार की डरी और घबराई आवाज से बाहर निकलते ही सरकार ने कहा—बाबू, पुलिस ने भजुआ को गिरफ्तार कर लिया।

क्यों ?

डर से गोपाल के होंठ काप रहे थे। उसने किसी तरह से कहा—परसों राधानगर मे जो डकैती हुई, वह क्या तो उस मे था।

रमेश ने कमरे की ओर देखकर कहा—अब एक घड़ी भी न रुको रमा, पिछले दरवाजे से निकल जाओ, ये खानातलाशी से बाज न आएंगे।

रमा नीला पड़ा चेहरा लिए खड़ी हो गई। कहा—तुम्हे तो कोई खतरा नही ?

रमेश बोला—कह नही सकता। बात कहाँ तक पहुँची है। क्या पता ?

रमा के होंठ एक बार काँप गए, उसे याद आ गया अपना पुलिस के सामने शिकायत करना—और वह अचानक रो पड़ी। बोली—मै नही जाऊँगी।

रमेश एक क्षण अचरज से अवाक् रहकर बोला—छिः—यहाँ नहीं रहते रमा, जल्दी चल दो—कहकर और कुछ बिना सुने यतीन का हाथ पकड़कर जबर्दस्ती उसने दोनों भाई-बहन को पिछले दरवाजे से बाहर करके दरवाजे को बंद कर लिया।

*

तेरह

दो महीने हो गए, डकैती के कुछ मुजरिमों के साथ भजुआ हाजत में बंद था। खाना-तलाशी मे उस दिन रमेश के यहाँ संदेहजनक कोई चीज नहीं पाई गई और भैरव अचारज ने गवाही दी कि उस रात को भजुआ उनके साथ उनकी बेटी के लिए लड़का देखने गया था, फिर भी जमानत पर उसे छोड़ा नहीं गया।

वेणी ने आकर कहा—रमा, बड़ी-बड़ी चालें सोचकर तब काम करना होता है बहन, नहीं तो क्या दुश्मन को मजबूर किया जा सकता है। तुमने अगर थाने में पहले से यह लिखाया नहीं होता कि उस दिन मालिक के हुक्म से लाठी लिए मछली छीनने के लिए भजुआ घर आ धमका था, तो क्या उसे पैंतरे में हम पा सकते थे? इसी तरह रमेश के नाम भी कुछ बढ़ा-चढ़ाकर लिखा दिया होता—उस समय तो मेरी बात पर तुम लोगों ने कान ही न दिया।

रमा ऐसी फीकी पड़ गई कि वेणी बोल उठे—न-न, तुम्हे गवाही देने को नहीं जाना पड़ेगा। और पड़ा ही तो क्या है। जमींदारी चलाना हो तो किसी बात में पीछे हटने से नही चल सकता।

रमा ने कुछ नहीं कहा।

वेणी कहने लगे—लेकिन उसे तो सहज ही कायदे मे नही लाया जा सकता। लेकिन उसने भी इस बार मामूली चाल नही चली। यह एक नया स्कूल जो खोला है, इससे हमे काफी कष्ट उठाना होगा। यों ही तो मुसलमान प्रजा हमें जमीदार नही मानना चाहती, तिस पर अगर पढ़ना-लिखना सीख लें तो जमीदारी रहना न रहना समान होगा, यह मै अभी से कहे देता हूँ।

जमींदारी के अच्छे-बुरे के बारे मे रमा बराबर वेणी की राय से ही चलती; इसमे दोनों में कोई मतभेद तक नहीं होता। आज पहली बार रमा ने तर्क किया। बोली—रमेश भैया का अपना भी तो कुछ कम नुकसान नहीं।

वेणी को खुद भी इसके बारे में खटका था। उन्होंने सोच-विचारकर जो तै किया था, वही कहा—बात तो यों है रमा कि इसमें अपने नुकसान की सोचने का सवाल ही नहीं हम दोनों को सबक मिल जाय कि खुश। देख नहीं रही हो, जब से आया है, किस कदर रुपए छींट रहा है? चारों तरफ छोटे लोगों में छोटे बाबू-छोटे बाबू का शोर-सा मच गया है। गोया आदमी एक वही है, हम दोनों कुछ भी नहीं। लेकिन यह ज्यादा दिन नहीं चलने का। यह तुमने जो उसे पुलिस की निगाहों पर

चढ़ा दिया है बहन, इसी में उसे अंत तक टें बोल जाना पड़ेगा, कहे देता हूँ। यह कहकर मन में जरा अचंभा होकर ही वेणी ने देखा, यह समाचार सुनाकर उससे जिस उमंग और जोश की उम्मीद की गई थी, वह बिलकुल न पाई गई। बल्कि ऐसा लगा कि वह एक बारगी विवर्ण-सी हो उठी। पूछा, क्या रमेश को यह मालूम हो गया कि ऐसा मैंने लिखा दिया था ?

वेणी ने कहा—ठीक-ठीक पता नहीं। मगर मालूम होगा उन्हें। भजुआ के मुकदमे के दौरान में सभी बातें आयेंगी।

रमा ने फिर कुछ न कहा—चुप होकर अदर ही अंदर मानो वह एक बहुत बड़े आघात को सम्हालने लगी। रमेश को इस आफत मे डालने मे वही अगुआ है, यह बात रमेश से छिपी न रहेगी। कुछ देर चुप रहकर उसने पूछा—आजकल उनका नाम सब की जुबान पर है, क्यों वेणी भैया ?

वेणी बोले —सिर्फ अपने ही गाँव में नहीं, सुना, उसकी देखा-देखी और भी पाँच-छः गाँवों मे स्कूल खोलने, रास्ते बनाने की तैयारियां चल रही है ! आजकल सभी छोटी कौम के लोग कहने लगे है, साहबों के यहाँ हर गाँव मे एक-दो स्कूल है, इसीलिए उन लोगों की इतनी तरक्की है। रमेश ने ऐलान कर रक्खा है कि जहाँ भी नया स्कूल होगा, वहीं वह दो सौ रुपए देगा। अपने दादा की जो रकम उसके हाथ लगी है, वह सारी की सारी वह इसी काम में लगाएगा। मुसलमान तो उसे कोई पीर-पैगम्बर समझ बैठे है।

रमा के हृदय में एक बात बिजली-सी चमक फैलाती हुई खेल गई, काश मेरा नाम भी उसके साथ-साथ रहता। मगर एक पल को। दूसरे ही क्षण उसका हृदय दुगने अँधेरा से भर गया।

वेणी कहने लगे —लेकिन मै भी सहज मे छोड़ने वाला नहीं। वह मेरी प्रजाओं को इस तरह बिगाड़ता रहेगा और जमींदार होकर हम चुपचाप आँख खोलकर देखते रहेंगे, यह कोई स्वप्न में भी न सोचे। इस साले भैरव अचारज ने भजुआ की तरफ से गवाही दी, मैं देखता हूँ, वह अपनी बेटी का ब्याह कैसे करता है ! एक और मन-सूबा है, देखूं, गोविंद काका क्या कहते हैं। इलाके में डकैतियाँ तो चल ही रही है। नौकर को जेल में ठूँस पाया तो मालिक को ठूँसने में भी कठिनाई न होगी। तुमने पहले ही दिन कहा था न कि शत्रुता करने में ये भी कुछ उठा न रक्खेंगे—वह बात इतनी सत्य होगी, मैं सोच भी न सका था।

रमा कुछ भी न बोली। अपनी प्रतिज्ञा और भविष्यवाणी। अक्षर-अक्षर सच निकलने के बावजूद जिस स्त्री का चेहरा अंहकार से दमक नहीं उठता, बल्कि गहरी कालिमा से आच्छन्न हो जाता है, यह उसकी कौन-सी अवस्था है,

यह समझने का माद्दा वेणी में नहीं। न हो लेकिन चीज इतनी साफ थी कि किसी की भी नजर से नहीं बच सकती, वेणी के भी न बची। मन ही मन वह जरा हैरान हुए और रसोई मे जाकर मौसी से दो-चार बातें करके घर जाने लगे कि हाथ के इशारे से उन्हें बुलाकर रमा ने धीमे से पूछा—रमेश भैया कहीं जेल ही गए तो यह हम लोगों के लिए बहुत बडे कंलक की बात न होगी ?

वेणी और भी ताजुब मे पडकर बोले—क्यों ?

रमा ने कहा—आखिर वे अपने हैं, हम ही अगर न बचाएँ तो सारे लोग तो हमें ही छि-छि कहेंगे।

वेणी बोले—जैसा करेगा, वैसा भरेगा, अपना क्या ?

रमा उसी तरह बोली—लेकिन वे तो सचमुच ही चोरी-डकैती नहीं करते फिरते, बल्कि औरों की भलाई के लिए ही अपना सर्वस्व दे रहे हैं, यह बात तो किसी से छिपी न रहेगी।

वेणी हि-हि करके हँसते हुए बोले—तुझे हुआ क्या है, सो तो बता ?

इस आदमी के साथ-साथ रमा ने मन मे एक बार रमेश का मुखड़ा याद कर लिया और फिर वह सिर उठा ही न सकी। बोली—गांव के लोग डर से मुह पर चाहे न बोलो—पीठ पीछे तो जरूर कहेंगे। तुम कहोगे, ओट मे लोग राजा की मां को भी डायन कहते है; मगर भगवान तो है ! बेगुनाह को झूठमूठ में सजा दिलाने से वे तो माफ नहीं करेंगे।

वेणी ने नकली क्षोभ दिखाकर कहा—हाय रे मेरा नसीब !, वह छोकरा भला ठाकुर-देवता भी मानता है ? शीतलाथान गिरा जा रहा है मरम्मत के लिए मैंने उसके पास आदमी भेजा कि साफ कह बैठा—जिन्होंने तुम लोगों को भेजा है, उन्हीं से कहो जाकर; फिजूल खर्च करने के लिए मेरे पास पैसे नहीं ? सुन लो भला ! यह उसके लिए फिजूलखर्ची है ? और काम का खर्च क्या है कि मुसलमानों के लिए स्कूल खुलवाना ! और फिर ब्राह्मण का लड़का है, संध्या-आह्निक कुछ मे वास्ता नही। सुना मैंने, मुसलमानों के हाथ का पानी तक पीता है। दो पन्ना अंग्रेजी पढ ली— अब क्या उसके जात-जन्म का कुछ है बहन—कुछ भी नही। आखिर उसकी सजा गई कहां, सब धरी है। एक दिन सभी देखेंगे।

रमा सवाल-जबाब न करके चुप जरूर रह गई, परन्तु रमेश के अनाचार और ठाकुर देवता के प्रति अश्रद्धा की सोचकर फिर उसका मन रमेश की ओर से विमुख हो उठा। वेणा आप ही आप बड़बड़ाते हूए चले गए। रमा बड़ी देर तक एक जैसी खडी रही फिर अपने कमरे में जाकर फर्श पर धप्प से बैठ पड़ी। उस दिन एकादशी थी। आज खाने का झमेला नहीं यह सोचकर मानो उसे राहत मिली।

चौदह

बरसात बीत गई। आसन्न पूजा का आनंद और मलेरिया का खौफ बंगाल की पल्ली-माता की धूप-हवा और आकाश में उझक झांकने लगा। रमेश भी बुखार का शिकार हुआ। पिछले साल इस दईमारे के हमले को उसने टाल दिया था, अबकी लेकिन टालते न बन पड़ा। तीन दिन बुखार में पड़े रहने के बाद आज सुबह काफी कुनैन निगलकर खिड़की से बाहर पीले-पीले से आसमान की तरफ देखते हुए यह सोच रहा था कि गाँव वालों को इन बेकार के गड्ढों और जंगलों के खिलाफ सजग करना संभव है या नहीं। तीन दिन तक ज्वर झेलने के बाद उसने समझ लिया था कि कुछ न कुछ करना ही होगा। मनुष्य होकर वह अगर हाथ पर हाथ धरा बैठा रहे और हर साल महीनों लोगों को रोग का शिकार होने दिया करे तो ईश्वर उसे क्षमा नहीं करेंगे। कई दिन पहले इसके बारे में बातचीत के सिलसिले में उसने समझा था कि इसकी बुराई के बारे में लोग बिल्कुल अनजान है, सो नहीं; लेकिन औरों के गड्ढे भरना, जंगल काटकर साफ करना—अपना खाकर जंगल की भैंसें खेदना कोई नहीं चाहता। जिनके अपने गड्ढे-जंगल थे, वे यही कहते कि ये उसके किए नहीं बाप-दादे के वक्त से ही है। लिहाजा जिसे गर्ज हो, वह साफ-सुथरा कर-करालें, कोई एतराज नहीं है—लेकिन खुद पैसे और मिहनत खर्चने को वे तैयार नहीं। खोज-पूछ से रमेश को पता चला था था कि आस-पास ऐसे बहुतेरे गांव हैं, जहां एक तो मलेरिया से उजड़ रहा है और दूसरे पर उसका प्रकोप नहीं के ही बराबर है। वह सोच रहा था, जरा स्वस्थ होले तो ऐसे किसी गांव में जाकर वह जाँच-पड़ताल करके फिर यह स्थिर करेगा कि क्या करना चाहिए। क्योंकि उसे इस बात का निश्चित विश्वास था कि जहां मलेरिया नहीं होता, वैसे गांवों में पानी के निकास की जरूर कोई स्वाभाविक व्यवस्था है, जो यों किसी के नजर नहीं आती, लेकिन आंखों में उँगली गड़ाकर दिखाने से लोग देख सकेंगे। कम से कम पीरपुर की उसकी भक्त प्रजा तो जरूर ही आखें खोलेगी। अपनी इंजीनियरिंग की शिक्षा को इतने दिनों के बाद ऐसे एक महत कार्य में लगाने का सुअवसर हाथ आयेगा, यह सोचकर मन ही मन वह खिल पड़ा।

छोटे बाबू !

रोती आवाज में किसी की पुकार सुनकर रमेश ने अचंभे से मुड़कर देखा, फर्श पर औंधे पड़े भैरव अचारज और की नाइ फफक-फफक कर रो रहे हैं। उनकी सात-

आठ साल की एक लड़की साथ आई थी; रोने में वह भी बाप का साथ दे रही थी, सो रुलाई की आवाज से घर भर उठा। देखते ही देखते घर में जो जहाँ थे, दरवाजे के पास आकर जमा हो गए। रमेश कैसा तो हक्का-बक्का सा हो गया। इसका कौन मर गया, क्या गजब हुआ—किससे पूछे, कैसे उनका रोना रुके, कुछ मानो सोच नहीं सका। काम छोड़-छाड़कर गोपाल आ पहुँचा था। उसने आकर भैरव का एक हाथ पकडकर खींचा कि वे खड़े हो गए और अपनी बाहों में गोपाल को लपेट कर जोरों से चीख उठे। यह आदमी महज मामूली-से कारण पर ही औरत की नाईं रो पड़ता है. यह सोचकर रमेश जब अधीर होता जा रहा था, तब गोपाल के बहुत-बहुत दिलासा देने पर आखिर आँख पोंछकर भैरव कुछ आश्वस्त होकर बैठे और इस महा शोक का कारण बताने को तैयार हुआ। सब सुनकर रमेश ठगा-सा रह गया। वह सोच भी नहीं सका कि इतना बड़ा जुल्म कभी कहीं संघटित हुआ है। माजरा यों था, भैरव की गवाही से भजुआ की रिहाई हो गई। उसे पुलिस की निगाह से बाहर करने के ख्याल से रमेश ने उसे उसके घर भेज दिया था। मुजरिम को तो छुटकारा मिल गया, लेकिन गवाह फंदे में पड गया। जाने कैसे तो हवा मे भैरव को इस बात की बू मिली। वह सदर गए और खोज-पूछ से जाना कि पाँच-छः दिन पहले वेणी के चचिया सुसर राधानगर के सनत् मुखर्जी ने भैरव पर मूल-ब्याज समेत ग्यारह सौ छब्बीस रुपये सात आने की डिग्री कराई और उसका घर द्वारा कुर्क कराके नीलाम करा लिया। डिग्री एकतरफा नही। जैसे आता है, बाजाब्ता सम्मन हुआ, जाने किसने भैरव की सही बनाकर उसे लिया और तारीख पर अदालत में हाजिर होकर अपने को भैरव बनाते हुए सब कुछ कबूल कर लिया। कर्ज झूठा, मुलजिम झूठा, फरियादी झूठा, इस सर्वव्यापी झूठ का सहारा लेकर एक बलवान कमजोर को सारी संपत्ति हड़पकर उसे राह का भिखमंगा बना छोडने को तैयार है और सरकार के यहाँ इसके प्रतिकार का उपाय कुछ आसान नहीं। कानूनन कर्ज के सारे रुपये अदालत में जमा किए बिना खिलाफ में चूँ तक करने की गुंजाइश नहीं। सर ही फोड़ डालो चाहे कोई सुननेवाला नहीं। मगर गरीब भैरव को इतने रुपये मिलें कहाँ कि जमा करके इस भारी जुल्म के खिलाफ न्याय की प्रार्थना करके अपने आपको बचा पाए! लिहाजा राज का कानून, अदालत, जज मजिस्ट्रेट सबके होते हुए भी गरीब फरियादी को मुँह सीकर मरना पडेगा। यह सारी साजिश वेणी और गोविंद गांगुली की है, इसमे किसी को जरा भी सन्देह नहीं और इस जालसाजी से भैरव के नसीब में जितनी भी दुर्गति चाहे हो, गाँव के सारे लोग चुपचाप बोलते फिरेंगे, पर एक भी आदमी सिर उठाकर खुलेआम इसका विरोध नहीं करेगा, क्योंकि वह किसी के सात में भी नहीं रहते, पाँच में भी नहीं। दूसरों की बात के लिए बात करना वे पसन्द ही नहीं करते। जो भी हो, रमेश आज निस्सन्देह समझ गया कि गाँव की

गरीब प्रजा पर बेखटके जुल्म ढाने की हिम्मत इन्हें कहाँ से आती है और कैसे देश के कानून को ही ये कसाई की छुरी के काम लाते हैं। फलस्वरूप एक ओर अर्थबल और कूटबुद्धि उन्हें जिस प्रकार राजा के शासन से छुटकारा दिलाती है, दूसरी ओर उसी प्रकार भरा समाज भी उनके दुष्कृत्यों के लिए सजा नहीं देता। इसीलिए हजारों अन्याय करते हुए भी ये सत्यधर्म विहीनग्रामीण-समाज के सिर पर पाँव रखकर यों निष्कंटक और मनमाना वास कर सकते हैं।

आज उसे चाची की बातें रह-रहकर याद आने लगीं। उस दिन उन्होंने मार्मिक हँसी-हँसते हुए जो कहा था, रमेश, भाड़ में जायँ तुम्हारे जाति-विचार के भले-बुरे, झगड़े-झमेले; बेटा, सिर्फ जोत जला दे, जोत जगा दे सिर्फ ! गाँव-गाँव के लोग अन्धेरे से अन्धे हो गए। एक बार उनके आंख खोलकर ताकने की तरकीब कर दे बेटा ! फिर वे ही आप ही देख पाएँगे कि कौन-सा काला है, कौन-सा उजला। उन्होंने यह भी कहा था, जब तू आ ही गया बेटा, तो लौटकर मत जा। तेरे जैसों के मुँह फेरे रहने से ही पल्ली-जननी की ऐसी दुर्दशा है ! ठीक ही तो ! मैं चला गया होता तो इसके प्रतिकार का कोई उपाय ही नहीं होता।

रमेश ने उसाँस भरकर कहा—हायरे, यही अपने गर्व का धन है—शुद्ध, शान्त और न्यायनिष्ट ग्रामीण समाज ! कभी इसमें जान था तो दुष्टों का दमन करते हुए आश्रित नर-नारी को जीवन-यात्रा में निर्विघ्न ले चलने की भी शक्ति इसे थी।

लेकिन आज यह मर चुका है; तो भी अंधे ग्रामवासी इस विकृत भारी शव को त्याग न करके झूठी ममता से रात-दिन ढोते हुए ऐसे क्लांत, अवसन्न और निर्जीव होते जा रहे हैं—लेकिन आँख खोलकर देखते हर्गिज नहीं। जो चीज आत्तों को बचाने के बजाय मुसीबत में ही डालती है, उसी को समाज़ समझने का महापाप उन्हें हर पल रसातल को ही खींचे लिए जा रहा है।

रमेश कुछ देर और स्थिर-सा बैठा रहा। अचानक धक्का-सा खाकर उठ बैठा और तुरन्त उतनी रकम का एक चेक लेकर गोपाल सरकार को देते हुए कहा, आप सब कुछ भली तरह समझ-बूझकर रुपये जमा कर देंगे और जैसे भी हो अपील का सारा इन्तजाम करके आएँगे। ताकि उन्हें ऐसा जुल्म करने का साहस फिर कभी न हो।

चेक लेकर गोपाल और भैरव दोनों कुछ देर मानो विह्वल की नाईं देखते रहे। रमेश ने फिर से जब अपना मंतव्य समझाया और यह समझ में आया कि हकीकत में वह मजाक नहीं कर रहा है तो एकाएक दौड़कर पागल सरीखा रमेश के दोनों पाँव पकड़कर, रो-पीटकर, चीखते हुए आशीर्वाद देकर भैरव ने ऐसा कुछ

किया कि कहीं रमेश से कोई कमजोर आदमी होता, तो अपने आपको भैरव से छुड़ा सकना एक मुसीबत होती । गाँव में बात को फैलते देर न लगी । सब समझ गए कि इस बार गोविन्द और वेणी का सहज ही पिंड नहीं छूटने का । सभी आपस मे कहा-सुनी करने लगे कि अपने चिर शत्रु को मुट्ठी में लाने के लिए ही छोटे बाबू ने इतने रुपये का खून किया है । लेकिन बात की कल्पना किसी के लिए सम्भव भी न थी कि कमजोर भैरव के बदले इस भारी दुष्कृति का बोझा भगवान से उसी के कंधे पर रख दिया, जो उसे ढो सकेगा ।

इसके बाद महीना भर बीता । मलेरिया के खिलाफ मन ही मन जिहाद बोलकर रमेश अपने औजार-पाती लेकर एक महीना इस उमंग से तमाम नाप-जोख करता फिरा कि यह वह कतई भूल गया था कि कल ही भैरव के मुकदमे की तारीख है । आज शाम के पहले शहनाई की आवाज से अचानक उसे याद आ गया । नौकर से यह खबर पाकर दंग रह गया कि आज भैरव के नाती का अन्न-प्राशन है । मगर उसे तो कुछ भी मालूम नहीं । पता चला, भैरव ने प्रबंध बुरा नहीं किया है । गांव भर को न्योता दिया था, लेकिन घर का कोई भी यह नहीं बता सका कि रमेश को न्योता दे गया या नहीं । यही नहीं, उसे यह भी ख्याल हो आया कि सर पर एक इतने बडे मुकदमे के होते हुए भी इन बीस-पच्चीस दिनों के भीतर वह एकबार मुलाकात करने तक नहीं आया ! बात क्या है ? मगर आते-आते भी यह बात उसके मन में न आई कि इतने लोगों में वह रमेश को ही छोड सकता है । सो अपनी इस अनोखी आशंका मे आप ही लज्जित होकर वह उसी वक्त कंधे पर चादर रखकर सीधे भैरव के घर को चल पड़ा । बाहर ही देखा, घेरे के पास कुछ कुत्ते जूठे पत्तल के लिए झगड़ रहे हैं और कुछ ही दूर पर शहनाई वाले आग जलाकर तंबाखू पी रहे है और बाजे को सेंक रहे हैं । अंदर जाकर देखा, एक सैकडों छेद वाला शामियाना आँगन मे टँगा है और सारे गांव का एकमात्र संबल मिट्टी के तेल की पाँच-छः पुरानी बत्तियाँ मुखर्जी और घोषाल परिवार से लाकर जलाई गई हैं । बत्तियों ने नाम की रोशनी और बेहिसाब धुएँ उगलकर सारी जगह को बदबू मे भर रक्खा था । खिलाना खत्म हो चुका था—ज्यादा लोग नहीं बच रहे थे । मुहल्ले के पुरनिए जाने-जाने को थे और धर्मदास हरिहर राय को और जरा देर रुक जाने को जिद कर रहे थे । गोविंद गांगुली थोडा खिसकर किसी खेतिहर के बेटे से एकांत में बात कर रहे थे । ऐसे वक्त एक दुःस्वप्न जैसा रमेश एक बारगी प्रांगण के बीच में आ खडा हुआ । उससे देखते ही इन लोगों का चेहरा स्याह पड गया और शत्रुपक्ष के इन दो आदमियों को वहाँ इस तरह से शामिल होते देख रमेश का चेहरा भी चमक नहीं उठा । स्वागत करके उसे बिठाने को कोई आगे नहीं आया । यहाँ तक कि किसी ने बात तक न पूछी ।

भैरव खुद वहाँ नहीं था। जरा देर में जाने किस काम से तो—मैं बताऊँ गोविंद भैया —कहता हुआ वह बाहर आया और अँगना में मानो भूत देखा, तुरंत दौड़कर भीतर चला गया। रमेश जब सूखा-सा मुँह लेकर बाहर निकला तो प्रचंड विस्मय से उसका मन पंगु हो गया था। पीछे से आवाज आई—बेटे रमेश !

मुड़कर देखा, तेजी से दीनू चले आ रहे है। पास जाकर उन्होंने कहा—चलो, घर चलो बेटे।

रमेश ने जरा हँसने की कोशिश की।

चलते-चलते दीनू बोले—तुमने उसका जो उपकार किया है, वह उसके मां-बाप भी नहीं करते। यह सबको मालूम है, मगर कोई उपाय तो नहीं। हम सब के बाल-बच्चे है; इसीलिए तुम्हें यदि न्योता करते—समझ गए बेटे, भैरव को भी दोष नहीं दिया जा सकता -तुम लोग शहर के नए नौजवान हो —जात-पांत को मानना नहीं चाहते —इसीलिए, समझ गए न बेटा, दो दिन के बाद, उसकी छोटी लड़की भी कोई बारह साल की हो गई, पार तो करना होगा उसे ? अपने समाज का सभी कुछ तो जानते हो तुम—समझे न- - -

रमेश ने अधीर होकर कहा- -जी समझ गया।

रमेश के घर के दरवाजे पर खड़े हो दीनू ने खुश होकर कहा—क्यों नही, आखिर तुम नासमझ तो हो नहीं उस बेचारे ब्राह्मण को भी क्या दोष दूं—हम बूढ़ों को परलोक की चिंता --

जी हाँ, यह तो ठीक है। कहकर रमेश जल्दी से भीतर चला गया। गांव वालों ने उसे अलग कर दिया है, यह समझना बाकी न रहा। घर आकर अपमान और क्रोध से उसकी आंखों मे जलन होने लगी। उसे यही बात सबसे ज्यादा चुभी कि भैरव ने वेणी और गोविंद को ही सम्मान के साथ बुलाया और सब कुछ सुनकर भी गांव वालों ने भैरव के इस व्यवहार को न केवल माफ किया, बल्कि उसने समाज के लिए रमेश को जो बुलाया नहीं, इस काम को प्रशंसा की निगाह से देखते हैं वे।

हे भगवान् ! वह एक चौकी पर बैठ गया और दीर्घनिश्वास छोड़कर बोला—इस कृतघ्न जाति के ऐसे महापाप का प्रायश्चित्त कैसे होगा ! ऐसे निष्ठुर अपमान को तुम्ही क्या क्षमा कर पाओगे ?

पन्द्रह

रमेश के दिमाग में इस तरह की आशंका आई ही न थी, ऐसा नहीं। फिर भी अगले दिन शाम के बाद जब गोपाल सरकार ने शहर से लौट कर बताया कि भैरव अचारज ने वास्तव में उसी के लोढ़े से उसके दाँत तोड़े हैं यानी वह तारीख पर हाजिर नहीं हुआ। मुकदमा एकतरफा होकर खारिज हो गया। उसके जमा किए हुए रुपए वेणी वगैरह को मिल गए, तो सुनकर क्रोध की एक जलती हुई लपट रमेश के एड़ी-चोटी दौड गई। उनके फरेब और साजिश को दबाने की नीयत से रमेश ने भैरव की ओर से जाली कर्ज के जो रुपए जमा कर दिए थे, उसीसे अपना सिर बचाकर महापापी भैरव ने फिर वेणी से ही सांठ-गांठ कर ली। उसकी यह नीचता कल के अपमान को भी पार करके रमेश के दिमाग में जल उठी। रमेश जैसे था, वैसे ही सीधे बाहर निकल पड़ा। अपने को जब्त करने का ख्याल भी न हुआ उसे। मालिक की जलती हुई आँखें देखकर डरते हुए गोपाल ने पूछा—आप क्या कहीं जा रहे हैं ?

अभी आया—कहकर रमेश तेजी से चला गया। भैरव के घर के अहाते में पहुँच कर देखा, वहाँ कोई नहीं है। अन्दर गया। भैरव की स्त्री हाथ में दिया लिए तुलसी चौरे की तरफ जा रही थीं, एकाएक रमेश को देखकर सिटपिटा गईं। रमेश कभी वहाँ आता नहीं, आज क्यों आया है, यह सोचते ही उसका कलेजा मुँह को आने लगा।

रमेश ने उन्हीं से पूछा— अचारज जी कहाँ हैं ?

अस्फुट स्वर में उन्होंने जो जवाब दिया, समझ मे नहीं आया। यह लेकिन पता चला कि वह घर पर नहीं हैं। रमेश के बदन पर कुरता तक न था। साँझ के धुँधलके में उसकी शक्ल भी ठीक से दिखाई नहीं पड़ रही थी इतने में बच्चे को गोद लिए भैरव की बड़ी लड़की बाहर निकली और इस अजाने आदमी को देखकर माँ से पूछा—कौन है माँ ?

माँ परिचय न दे सकी। रमेश भी कुछ न बोला।

लक्ष्मी डर से चिल्ला उठी, बाबूजी, कौन तो अँगना मे आकर खड़ा है, कुछ बताता नहीं।

कौन है रे ? चीखते हुए भैरब बाहर आए और काठ के मारे से रह गए। संध्या की धुँधली छाया में भी उस लम्बे तने शरीर को वे साफ न पहचान सके।

रमेश ने तीखे स्वर में कहा—इधर आइए, और खुद ही लपक कर उसने वज्र मूठ से उनकी कलाई पकड़ ली। कहा - ऐसा काम क्यों किया आपने ?

भैरव रो पड़ा, इसने मेरी जान ली रे लक्ष्मी वेणी बाबू को जरा खबर कर दे।

घर भर के बच्चे, औरतें, जोरों से चीख उठे और लमहे मे सांझ की नीरवता को चीरते हुए बहुतों की रुलाई की आवाज से सारा गांव त्रस्त हो उठा।

रमेश ने उन्हें जोरों का एक झटका दिया। कहा—चुप ! कहिए, ऐसा काम क्यों किया ?

भैरव ने उत्तर देने की कोशिश ही न की और एक ही ढंग से गला फाडकर चीखता तथा अपने को छुडाने के लिए खींचा-तानी करता रहा।

देखते ही देखते मुहल्ले के औरत-मर्द से घर भर गया। तमाशा देखने को बहुत से लोग अन्दर आने के लिए धक्का-मुक्की करने लगे। मगर क्रोध से पागल रमेश ने इस पर कोई ध्यान ही न दिया। कुतूहल भरी सैकडों नजरों के सामने वह एकसां भैरव को थामे झक-झोरता रहा। एक तो रमेश की ताकत के बारे में प्रवाद-सा फैला था, तिस पर उसकी आँखों को देखकर उतने लोगों मे से किसी को भी हिम्मत न पडी कि अभागे भैरव को उसकी पकड से छुड़ाए। गोविद अन्दर आए और भीड में धँस गए। वेणी झांककर ही खिसक रहे थे कि उन्हे देखकर भैरव रो पड़े—बड़े बाबू, बडे बाबू—

बडे बाबू ने लेकिन सुना भी नही, पलक मारते जाने कहाँ गायब हो गए थे।

अचानक खचाखच भीड में थोड़ी फाँक हुई और दूसरे ही क्षण तेजी से आकर रमा ने रमेश का हाथ पकड लिया। बोली - हो गया, अब छोड़ दो।

रमेश ने लहकती आँखों उसे देखकर कहा—क्यों ?

रमा ने दाँतों से दाँतों को दबाते हुए अस्फुट क्रुद्ध स्वर में कहा—इतने लोगों के सामने तुम्हें शर्म नहीं आती, लेकिन मैं तो लाज के मारे मरी जाती हूँ।

रमेश ने आँगन की भीड़ की ओर देखा और तुरत भैरव का हाथ छोड़ दिया।

रमा ने धीमे से कहा—घर जाओ।

रमेश ने कुछ भी न कहा। चलता गया। एकाएक छू-मन्तर हो गया मानो। लेकिन उसके चले जाने पर रमा के प्रति उसकी ऐसी फरमावरदारी देख सब एक-दूसरे का मुँह देखने लगे और आडंबर से शुरू हुई चीज का ऐसा अन्त हो जाना मानो लोगों को जचा नहीं।

लोग-बाग चले गए। गोविंद गांगुली अब प्रकट हुए। एक अँगुली उठाकर

मुंह को जरूरत से ज्यादा गंभीर करके बोले—यह घर आकर जो अधमरा बना गया इसका क्या होगा; सो सोचो अब ।

छाती में दोनों घुटने सटाकर भैरव बैठे-बैठे हाँफ रहे थे । निरुपाप से उन्होंने वेणी की ओर देखा । रमा भी अभी गई नहीं थी । वेणी का मतलब भाँप कर झटपट बोल उठीं, मगर इधर का भी तो कुछ कम कसूर नहीं है भैया ?

फिर ऐसा हुआ भी क्या कि ऐसी हलचल हो ?

वेणी बेहद चकित हो बोले—कहती क्या हो रमा ?

भैरव की बडी लडकी तब तक भी एक खंबे के सहारे खडी रो रही थी । वह रौंदी गई साँपिन सी फुफकार उठी तुम तो उसकी तरफ जरूर बोलोगी रमा दीदी । कोई तुम्हारे बाप को घर घुसकर पीट जाता तो क्या करतीं, कहो ?

उसकी गरज से पहले तो रमा चौंकी । अपने पिता को बचा देने के लिए वह एहसान-मन्द नही खैर, यह तो हुआ; लेकिन उसके तीखेपन मे से श्लेष की ऐसी एक झांक रमा को छू गई कि वह तुरत जल उठी । लेकिन अपने को जब्त करके वह बोली-- मेरे और तुम्हारे बाप में बड़ा फर्क है लक्ष्मी इसकी तुलना तुम मत करो । मैंने लेकिन किसी की तरफदारी में कुछ नहीं कहा है, भले के लिए ही कहा है ।

लक्ष्मी गांव की ही बिटिया थी, झगडने में अपटु न थी । वह लपककर बोली—अच्छा ! उसकी तरफ से कहते तुम्हें शर्म नही आती ? बडे की बेटी हो, जभी डर से कोई कहता नहीं, वरना सुना किसी ने नहीं है ? तुम हो कि मुँह दिखा सकती हो, और कोई होती तो फाँसी लगाती ।

वेणी ने लक्ष्मी को डाँटकर कहा – तू रुक भी तो सही । इन बातों की क्या पड़ी है ?

लक्ष्मी बोली—पडी क्यों नहीं ? जिसके लिए बाबूजी को इतनी तकलीफ हुई, उसके लिए ये क्यों मफाई दें ? बाबूजी मेरे मर गए होते तो ?

रमा जरा देर के लिए स्तंभित हो गई थी केवल । वेणी के बनावटी क्रोध की आवाज ने फिर उसे सुलगा दिया । उसने लक्ष्मी की ओर देखते हुए कहा—लक्ष्मी उस जैसे के हाथ से मरना भाग्य की बात है; आज मर जाते तो तुम्हारे पिता स्वर्ग जाते ।

लक्ष्मी भी जल उठी,—ओ, जभी तुम मरी हो रमा दीदी ?

रमा ने जवाब नहीं दिया । उसकी ओर से मुँह फेरकर उसने वेणी से पूछा लेकिन बात क्या है, तुम्हीं बताओ बड़े भैया ? कहकर वह एकटक देखती रही । उसकी निगाह मानो अँधेरे को चीरकर वेणी के कलेजे के भीतर तक देखने लगी ।

वेणी ने क्षुब्ध होकर कहा—कैसे कहूं बहन। लोग कितना कुछ कहते हैं। उन पर कान देने से तो नहीं चलता।

लोग क्या कहते है ?

वेणी ने लापरवाही दिखाते हुए कहा — कहते है तो क्या हुआ, लोगों की बात से फोले तो नहीं पड़ते बदन में; कहें।

उसकी कपट सहानुभूति को रमा समझ गई। एक क्षण चुप रहकर बोली—तुम्हारे बदन पर शायद किसी बात मे फोले नही पडते, पर सभी के बदन पर तो गैंड़े का चमडा नही है ! लोगों से यह बात लेकिन कहलवा कौन रहा है ? तुम ?

मैं ?

अन्दर के बेताब गुस्से को सम्हाल कर रमा बोली---तुम्हारे सिवाय और कोई नही। संसार में कोई बुरा काम ही नहीं, जो तुम से छूटा हो चोरी, फरेब जालसाजी, घर फूंकना सब हो चुका है, यही क्या बाकी रह जाय ?

वेणी हत-बुद्धि-से कुछ बोल न सके।

रमा ने कहा— औरतों के लिए इससे बडा सर्वनाश नही है, यह समझने की क्षमता तुम्हें नही है। मगर मैं पूछती हूं, यह कलंक फैलाकर तुम्हें लाभ क्या है ?

वेणी डरकर बोला मुझे क्या लाभ होगा ! कोई तुम्हें अगर सुबह को रमेश के यहाँ से निकलते देखे —मैं क्या करूँ ?

रमा ने इस पर ध्यान नही दिया। बोली—इतने लोगो के सामने मै और कुछ नहीं कहना चाहती। मगर तुम यह मत सोचो बड़े भैया कि मै तुम्हारे मन की ताड़ नहीं सकी हूं। मगर याद रखना, मैं मरूं, तो तुम्हे भी जिन्दा नहीं छोड़ जाऊँगी।

भैरव की स्त्री अब तक कहीं चुपचाप खड़ी थी; पास आकर धीरे से रमा का एक हाथ पकडा और घूघट के अन्दर से मीठे से कहा—पागल हुई हो बिटिया, तुम्हें यहाँ कौन नही जानता ? अपनी बेटी से बोली, लक्ष्मी औरत होकर एक औरत के नाम यह कलंक मत लगा, धर्म इसे बर्दाश्त नही करेगा। आज इन्होंने अपना जो उपकार किया है, इन्सान की बच्ची होती, तो समझती---और खीचकर वह रमा को अन्दर लिवा गई स्वामी के प्रति उनके ऐसे श्लेष और निष्पक्ष सत्यवादिता से सारे लोग कुंठित होकर वहाँ से खिसक गए।

इस घटना का कार्य-कारण जितना भी बड़ा और जो भी हो, अपने भद्दे असंयम से रमेश का शिक्षित और भला अन्तः-करण दो दिन तक ऐसा सकुचा गया कि वह घर से बाहर भी न निकल सका। मगर इतने लोगों की मौजूदगी में स्वेच्छा

से रमा उसकी शर्म का हिस्सा बँटाने आई थी, उसकी लाज की काली बदली पर दिगंतलुप्त क्षीण बिजली की रेखा-सी यह बात पल-पल मानो सुन्दरता मधुरिमा की चमकती लकीर खीच-खीच जाती थी। इसीलिए ग्लानि में भी उसे तृप्ति का आनन्द था। सुख-दुख की यह वेदना लिए जब वह और कुछ दिनों तक घर के सूनेपन में अज्ञातवास का निश्चय कर रहा था, तब दूसरे एक जने के माथे लज्जा और अपमान का पहाड़ टूटा पड़ रहा है, यह उसने ख्वाब मे भी न सोचा।

लेकिन छिपे रहने का मौका उसे न मिला। तीसरे पहर पीरपुर के लोग अपनी पंचायत की बैठक मे उसे शामिल होने के लिए बुलाने आए। रमेश खुद ही कुछ दिन पहले इस बैठक को तै कर आया था। उसीके हिसाब से लोगों ने बैठक बुलाई और उसीका इंतजार कर रहे थे, यह खबर पाकर उसे जाने के लिए तैयार होना पड़ा। क्यों, सो बताते हैं।

छान-बीन से रमेश ने देखा था कि हर गाँव मे किसानों मे ज्यादातर गरीब ही है। बहुतों की अपनी एक तिल भी जमीन नही, लगान देकर दूसरों की जगह मे रहते और दूसरो के खेतों मे मजदूरी करके पेट पालते है। दो दिन मजूरी न कर पाएं या बीमार-सीमार हो जायँ तो बाल-बच्चो समेत फाके की नौबत। खोज-पडताल से मालूम हुआ कि उन सबका पहले अपना कुछ न कुछ था, कर्ज से ही उनका ऐसा हाल हुआ है। कर्ज की सूरत भी अजीब। महाजन जमीन बधक लेकर रुपए देते और ब्याज की दर इतनी ज्यादा कि सामाजिक क्रिया-कर्म के नाते या अति वृष्टि-सूखा के चलते जो किसान कर्ज लेने को मजबूर होता, वह फिर कभी सम्हल नही सकता। और हर साल जाकर उसे फिर उसी महाजन के दरवाजे हाथ फैलाना पड़ता। इस बात में क्या हिंदू, क्या मुसलमान, सबका एक ही हाल। क्योंकि, महाजन प्रायः हिंदू ही थे। शहर मे रहते समय किताबों में रमेश ने जो कुछ पढ़ा था, यहाँ वही आँखों देखकर शुरू मे तो वह अभिभूत हो पड़ा। उसके काफी रुपए बैंक मे पड़े थे। उन रुपयों को निकालकर तथा कुछ और रुपए जुटाकर वह इन अभागो को महाजनो के जबड़े से बचाने के पीछे पड़ गया। लेकिन इस दशा में कुछ आगे बढते ही ठोकर खाकर उसने समझा कि इन गरीबों को उसने जितना बेचारा और दया का पात्र समझा था, दरअसल हर समय वह बात लागू नहीं होती। ये गरीब बेचारे और कम बुद्धि के तो हैं मगर शैतानी मनसूबे में कम नहीं। कर्ज लेकर हजम कर जाने की नीयत इनमें खूब है। बहुत बातों में न तो ये सीधे हैं न साधु। झूठ बोलने में कभी नहीं झिझकते और धोखा देना खूब जानते है। पड़ोसी की बहू-बेटियों की रूप-चर्चा का शौक भी कुछ कम नहीं इन्हें। मर्दों का व्याह होना कठिन गो कि हर उम्र की विधवा से समाज लदा है। लिहाजा नैतिक स्थिति भी बड़ी गंदी। समाज बेशक है

और उसकी कड़ाई भी खूब है, पर पुलिस से चोर का जो नाता है, समाज से इन लोगों ने वही नाता बना रक्खा है। सब कुछ के बावजूद ये इतने दुखी, इतने दुर्बल, ऐसे फटे हाल हैं कि इन पर बिगड़कर चुप रह जाना भी मुश्किल। विद्रोही और विपथगामी बेटे के लिए जो मनोभाव बाप का होता है, रमेश का हृदय ठीक वैसा ही हो रहा था; इसीलिए आज उसने पीरपुर के स्कूल में पंचायत बुलवाई थी। जरा देर हुई, साँझ का धुंधलका जाता रहा और दशमी की चाँदनी से खिड़की से बाहर का आंतर भर गया। इसी तरफ देखकर जाते-जाते भी रमेश देर कर रहा था। ऐसे समय रमा आकर उसके दरवाजे के पास खड़ी हुई। वहाँ पर रोशनी नहीं थी, सो रमेश ने समझा, कोई नौकरानी है। पूछा—क्या चाहिए ?

आप क्या बाहर जा रहे है ?

रमेश चौंक उठा—अरे, रमा ! ऐसे समय।

जिस वजह से उसे साँझ की शरण लेनी पडी थी, वह कहना फिजूल था, लेकिन जिस काम के लिए आई थी, उसकी बात लबी थी। मगर शुरू कैसे करे, कुछ समझ न पाई, इसलिए चुप रह गई। रमेश भी कुछ बोल नही सका। कुछ देर चुप रहकर रमा ने पूछा—आप की तबीयत अब कैसी है ?

अच्छी नहीं ! रोज ही रात को बुखार आता है।

तो कुछ दिनों के लिए बाहर से क्यों नही हो आते ?

रमेश हँसकर बोला—हो तो आऊँ, मगर जाऊँ कैसे ?

उसकी हंसी से रमा खीझी। बोली—आप तो यही कहेगे कि बेहद काम पड़ा है, मगर ऐसा कौनसा काम है जो अपनी तदुरुस्ती से भी बड़ा है ?

रमेश पहले की तरह हँसते हुए बोला—अपना शरीर नाचीज है, यह मैं नही कहता। लेकिन ऐसा भी काम है, जो शरीर से बहुत बड़ा है—मगर वह तो तुम समझोगी नहीं।

रमा ने सिर हिलाकर कहा—समझना भी नही चाहती मै। लेकिन आपको कही जाना ही पड़ेगा। आप सरकार साहब से कह जायँ, मैं उनका काम-काज देखूंगी।

रमेश हैरत मै आकर बोला—तुम मेरा काम-काज देखोगी ? लेकिन—

लेकिन क्या ?

लेकिन यही कि मैं क्या तुम्हारा विश्वास कर सकूंगा ?

रमा ने तुरत बिना झिझके कहा—इतर न कर सकेगा, आप लेकिन करेंगे।

उसकी इस दृढ़ता और अभावनीय उक्ति से रमेश दंग रह गया। जरा देर चुप रहकर बोला—अच्छा, सोच देखूं।

रमा ने सिर हिलाकर कहा - उँहूँ सोचने का समय नहीं है, आज ही आपको कहीं और जाना होगा। न जाने से—कहते-कहते ही उसने साफ अनुभव किया कि रमेश विचलित हो उठा है। क्योंकि, अचानक ऐसे भाग न जाने से क्या मुसीबत आ सकती है, यह अंदाज करना कठिन नही। रमेश ने ठीक ही अनुभव किया; मगर अपने को जबत करके बोला-- खैर, चला ही जाऊँ तो इससे तुम्हें क्या लाभ होगा ? मुझे मुसीबत में डालने की तुमने खुद भी तो कुछ कम कोशिश नही की कि दूसरी एक विपदा से आगाह करने आई हो। वे वारदाते इतनी पुरानी नही पड़ गई कि तुम्हें याद न हो। इससे बल्कि खोलकर बताओ कि मेरे जाने से तुम्हे क्या सुविधा होगी, तो शायद मै जाने को तैयार भी हो जाऊँ-- और यह कहकर उसने जिस जवाब के लिए रमा की ओर ताका, वह न मिला।

रमा के हृदय में कितना बड़ा मान जो उमड़ आया, यह भी न जाना जा सका। और रमेश के इस कठोर व्यंग मे उसका चेहरा कैसा बदरग हो उठा, अँधेरे मे यह भी नहीं दिखाई पड़ा। जरा देर स्थिर रहकर रमा ने अपने को सम्हाल लिया। बोली—खैर, खोलकर ही कहती हूं, आप के जाने मे मुझे लाभ कुछ भी नहीं, मगर न जाने से नुकसान बहुत है। मुझे गवाही देनी होगी।

रमेश ने रूखा होकर कहा—यह बात ? और गवाही न दो तो ?

रमा जरा सहम कर बोली—न दूँ तो बाद में मेरी महामाया पूजा मे कोई नहीं आएगा, यतीन के जनेऊ मे मेरे यहा कोई नही खाएगा, मेरा पूजा-व्रत—ऐसी दुर्घटना की संभावना से ही रमा सिहर उठी।

रमेश और कुछ न भी सुनता तो हर्ज न था। मगर उससे रहा नहीं गया। बोला—उसके बाद ?

रमा अकुलाकर बोल उठी—उसके भी बाद ? तुम जाओ, मै निहोरा करती हूँ रमेश भैया, तुम जाओ, मुझे चारों तरफ से बर्बाद मत करो। यहाँ से चले जाओ तुम।

कुछ देर तक दोनो मौन हो रहे। इससे पहले जहाँ भी जिस अवस्था में भी रमा को देखकर रमेश के कलेजे का लहू चंचल हो उठता था। मन-ही-मन लाखों उपाय करके, हजारों तरह से मन को झिड़क करके भी वह शांत नहीं कर पाता था। हृदय के इस मौन विरोध से उसे दुःख होता, लज्जा आती, तेज हो उठता, मगर लाख किए उसे वश में नहीं ला पाता। खास कर आज इस समय अपने घर एकाएक रमा को अकेली देख कल की बात याद आते ही उसके हृदय की चंचलता उद्दाम हो उठी। रमा की अंतिम बात से उसका वही हृदय आज इतने दिनों के बाद

शांत हुआ। रमा की भय-व्याकुल निर्बलता से अखंड स्वार्थपरता का चेहरा ऐसा स्पष्ट हो उठा कि आज उसके अंधे हृदय की भी आंखें खुल गईं।

एक गहरा निश्वास छोड़कर रमेश ने कहा—अच्छा, वही होगा। लेकिन आज तो अब समय नहीं। क्योंकि मेरे भागने का कारण तुम्हारे लिए जितना बड़ा चाहे हो, आज की रात मेरे लिए उससे भी कठिन है। अपनी दासी को आवाज दो, मुझे तुरंत बाहर जाना है।

रमा ने आहिस्ते से कहा—आज क्या किसी भांति जाना न होगा?

नहीं। तुम्हारी दासी कहाँ गई?

मेरे साथ कोई नहीं आई है।

रमेश ताज्जुब में पड़ गया, कहती क्या हो! यहाँ तुम अकेली किस साहस से आई? दासी तक को साथ नहीं लाया!

रमा वैसे ही मृदु स्वर में बोली—लाने से भी क्या होता? वह भी मुझे तुम्हारे हाथों से न बचा पाती!

बचा न सके, लोगों की बदनामी से तो बचा पाती। रात कम नहीं हुई रानी!

बहुत दिनों का विसरा हुआ वही नाम! रमा ने अचानक कहना चाहा, बदनामी को बाकी कुछ नहीं है रमेश भैया, पर अपने को जब्त करके बोली उससे भी कुछ लाभ नहीं होता भैया। रात अँधेरी नहीं है, मैं मजे में चली जाऊंगी और कुछ भी कहने का इंतजार न करके ही वह चली गई।

सोलह

हर साल रमा बड़ी धूमधाम से दुर्गापूजा किया करती थी और पहली ही पूजा के दिन बस्ती के सभी किसान मजूरों को जी भर कर खिलाया करती थी। प्रसाद के लिए ऐसी ठेलमठेल रहती कि एक-एक पहर रात तक चुक्कड़-पत्तल जूठे-कूठे से घर में पाँव धरने की जगह नहीं रहती। न केवल हिन्दू वरन् पीरपुर की प्रजाएँ भी बाज न आतीं। खुद अस्वस्थ होते हुए भी उसने अब की भी कोई कोर-कसर न रक्खी। चंडीमंडप में प्रतिमा बैठी, पूजा का साज-सरंजाम। नीचे उत्सव का प्रांगण। सप्तमी पूजा समय पर हो गई। दोपहर हुई और धीरे-धीरे ढल चली। लेकिन मुखर्जी परिवार का उतना बड़ा अँगना गिने-चुने कई भले लोगों के सिवा

खाली पड़ा था। आसमान में सप्तमी का खंड-चंद्र स्पष्ट होने लगा, व्यंजन पड़े-पड़े बदरंग होने लगे, मगर एक भी किसान प्रसाद के लिए नहीं पहुँचा।

इस् ! ये कंबख्त नीच लोग इतना-इतना अनाज बर्बाद किए दे रहे है ? ऐसी हेकड़ी ! हाथ में हुक्का लिए वेणी कभी बाहर और कभी भीतर जा-आकर डाट-डपट करने लगे—सालों को सबक सिखाऊँगा—छप्पर नुचवा डालूंगा—यों करूँगा, वों करूँगा आदि-इत्यादि। गोविंद, धर्मदास, हालदर आदि बार-बार चक्कर काट कर यह सुराग लगाते रहे कि यह कारस्तानी है किसकी ! हिंदू-मुसलमान, सब एक राय, यह भी तो बड़ा आश्चर्य। इधर अंदर मौसी तो जल-भुन कर एक ! वह भी एक गजब ही कहिए। लेकिन इतने बड़े हंगामें में एक चुप थी—वह स्वयं रमा। उसने किसी के खिलाफ एक शब्द नहीं कहा, किसी को दोष नहीं दिया, कोई शिकवा-शिकायत भी उसकी जबान से न निकली। यह वही रमा है ? इसमें जरा भी शक नहीं कि वह बेतरह दुखी थी। परंतु इसे वह कबूल नहीं करती, हँसकर टाल जाती। रोग रूप नष्ट करता है, मगर वह बात रहे। मान न था वह, वह गुस्सा नहीं, वह जिद नहीं। मलिन आँखें मानो कष्ट और करुणा से भरी थी। थोड़ा गौर करने से लगता, दो गीले आवरणों के नीचे आँसू का समुद्र दबा पड़ा था—छूटे कहीं तो तमाम दुनिया को डुबा दे ! चंडीमंडप के भीतरी दरवाजे से रमा मूर्ति के पास जा खड़ी हुई। उस पर नजर पड़ते ही शुभैषियों ने जोर-जोर से छोटे लोगों के सात-पुश्तो का भद्दी गालियों से उद्धार करना शुरू कर दिया। सुनकर रमा चुपचाप जरा हँसी। डंठल से तोड़ लेने पर फूल जैसे हँसता है, वैसे ही। उसमें राग-द्वेष, आशा-निराशा, भला-बुरा, कुछ भी प्रकट न हुआ। वह हंसी सार्थक या निरर्थक थी। यह कौन कहे !

वेणी बिगड़कर बोले—"उंहूं, यह हसने की बात नहीं, बड़ी बुरी बात है, खतरनाक। पता चल जाय कि इसकी जड़ कौन है—दोनों हाथों के नाखूनों को सटा कर कहा—तो यों चीर डालूँगा उसे।

रमा अन्दर ही अन्दर सिहर उठी। वेणी कहने लगे—अबे हरामजादे इतना नहीं समझ पाता कि जिसके भरोसे तू उछल रहा है, वह रमेश खुद जेल में कोल्हू ठेल रहा है ! तो तू सब किस खेत की मूली है।

रमा कुछ न बोली। जिस काम के लिए आइ थी, करके वह चुपचाप लौट गई।

डेढ़ महीने हो गए, घर घुसकर भैरव को छुरा मारने के जुर्म में रमेश जेल में सजा काट रहा था। सबूत पक्ष को ज्यादा कष्ट नही करना पड़ा—नए हाकिम को केस तो पहले ही मालूम हो गया था कि मुलजिम के लिए ऐसा अपराध संभव और स्वाभाविक है। यहाँ तक कि उन्हें इसका भी शुबहा था कि वह डकैतियों में

भी तो शामिल नहीं। थाने की बही से उसे बड़ी मदद मिली। उसमें दर्ज था कि मुजरिम ने इस तरह का और भी कसूर किया है और बहुत से संदेह-जनक मामलों से इसका लगाव है। सो वह यह राय जाहिर करने से भी बाज न आए कि आइन्दे जिसमें पुलिस की उस पर खास निगरानी रहे। ज्यादा गवाह-सबूत की जरूरत नहीं पड़ी। सेकिन रमा को गवाही देनी पड़ी थी। उसने कहा था, रमेश अचारज के घर मारने गया था, इतना वह जानती है। लेकिन छुरे का वार किया था या नहीं, नहीं जानती; उसके हाथ मे छुरा था या या नहीं, यह भी याद नहीं आता।

मगर यही क्या सत्य था। जिले की अदालत मे हलफ उठाकर रमा यह सत्य बता आई, लेकिन जिस अदालत मे हलफ उठाने की प्रथा नहीं, वहाँ वह क्या जबाब देगी। इससे ज्यादा निस्संदेह तो वह यह जानती थी कि रमेश ने छुरा नहीं मारा, उसके हाथ मे छुरे की कौन कहे, एक तिनका तक न था। उस अदालत मे तो ऐसा सवाल भी कोई नहीं पूछेगा कि उसे याद है या नही। लेकिन यहा की अदालत में सच बताने का जो उसे उपाय ही नही था। वेणी आदि के हथपकड़े ग्रामीण समाज ने सत्य तो चाहा नहीं। लिहाजा सत्य के बदले उसे मिथ्या कलंक की गाढ़ी स्याही चेहरे पर पोतकर अलग खड़ा होना पड़ेगा—बहुतों को ऐसा करना पड़ा है—यह वह खूब समझती थी। इसके सिवा इतनी बड़ी सजा की बात उसने सपने मे भी न सोची थी। उसका ख्याल था, बहुत तो सौ-दो सौ रुपए का जुर्माना होगा। बल्कि उसके बार-बार चेताने के बावजूद रमेश जब भागने को तैयार नहीं हुआ, तो नाराज होकर उसने मन ही मन कामना भी की थी कि इसे हो जुर्माना। सबक तो मिल जाय। मगर वह सबक ऐसा होगा, रमेश के बीमार पीले चहरे को देखकर भी हाकिम को रहम न आएगा और वह पूरे छः साल के लिए सख्त कैद की सजा सुना देगा। यह नही सोचा था उसने। उस समय रमा नजर उठाकर रमेश की ओर ताक नहीं सकी थी। दूसरे से उसने सुना था कि रमेश एकटक उसीको देख रहा था और किसी भी हालत में उसने उससे जिरह नहीं कराने दिया। सजा सुनाई जा चुकने पर गोपाल सरकार की विनती पर सर हिलाकर वह बोला—नहीं! हाकिम ने मुझे आजीवन कारावास की सजा सुनाई होती, तो भी मैं अपील करके छूटना नहीं चाहता। जेल शायद इससे अच्छा है।

ठीक ही तो है। उसके सदा के फरमावरदार भैरव अचारज ने जब उसपर नालिश करके उसका एहसान चुकाया। और कटघरे में खड़ी होकर रमा को याद नहीं आया कि उसके हाथ में छुरा था या नहीं, तो फिर अपील से छुटने की क्या जरूरत। उसका यह अजेय मान एक बड़ी चट्टान-सी रमाके कलेजे पर सवार हो गई—उसे हटा

कर कहीं रखने की जगह उसे नहीं मिलती। उफ् वह वजन ! उसने झूठ नहीं कहा, यह सफाई उसके अन्तर्यामी ने तो सुनी नहीं। झूठ बेशक नहीं कहा, मगर सत्य को प्रकट नहीं किया। सत्य को छिपाने का कसूर इतना बडा है और वह इस तरह से उसको जला डालेगा। काश उसे जरा भी मालूम होता पहले। उसे रह-रहकर यही याद आने लगा कि भैरव के जिस अपराध से रमेश आपे से बाहर हो गया था, कितना बड़ा था वह ! लेकिन उसकी एक बात पर बिना चूँ भी किए उसे छोडकर चला गया था। उसकी बात को यों सिर-आँखों उठाकर कब किसने उसको इस प्रकार से सम्मानित किया था। घर मे पड़ी-पड़ी इन दिनों जैसे उसे एक सच्चाई स्पष्ट दिखाई देने लगी थी। जिस समाज के भय से उसने एक इतना बडा निन्दनीय कार्य किया, वह समाज कहाँ है ? वेणी जैसे कुछ समाज पतियों के स्वार्थ और हिंसा के बाहर भी कही उसका अस्तित्व है ? गोविंद की विधवा भयइ की बात कौन नहीं जानता ? वेणी से उसके सम्बन्ध की बात गाँव मे किसीसे छिपी न थी। परन्तु समाज मे वह निष्कलंक है और वही वेणी समाज-पति है। उसीकी सामाजिक जंजीरों को सर्वांग मे जकड़े रहना ही चरम सार्थकता है। यही हिन्दूआनी है। और भैरव, इतने अनर्थों का मूल ? रमा अपने को विचार कर अब उस पर भी क्रोध न कर सकी। उसकी लड़की बारह साल की हो गई, जल्द ब्याह नही कर पाए तो जात से अलग कर दिया जायेगा। इसीकी आशंका भर से तो प्रत्येक हिन्दू के हाथ-पैर पेट मे घुस जाते हैं। इतनी दुविधाओं के होते भी जब वह समाज के भय से छुटकारा न पा सका तो बेचारा भैरव क्या करे। वेणी के खिलाफ जाना उसके लिए कितना घातक है, इसे वह किसी भी तरह स्वीकार नहीं कर सकती।

बूढ़ा सनातन हाजरा घर के सामने से जा रहा था। उस पर नजर पड़ते ही गोविंद ने आरजू-मिन्नत की। अन्त तक एक तरह से जबर्दस्ती आकर उसे वेणी के सामने हाजिर किया। वेणी ने गर्म होकर कहा---इतना गरूर कब से हुआ रे सनातन ? तुम लोगों के कंधे पर क्या दूसरा सर उगा है ?

सनातन बोला—दो सर किसकी गर्दन पर होता है बड़े बाबू ? आप लोगों के नही होता है, तो हम गरीबों के।

क्या कहा ! क्रोध से चीखकर वेणी सुन्न घसीट गए। कभी जब इसी सनातन का सर्वस वेणी के पास गिरवी था, तो यह दोनों शाम आकर वेणी के तलवे चाटता था—आज उसीके मुँह से ऐसी बात !

गोविन्द ने शह दिया---हम लोग तुम्हारे कलेजे की चौड़ाई देख रहे है। देवी के प्रसाद के लिए भी कोई नहीं आया आखिर क्या, बता तो ?

बूढ़ा जरा हँसकर बोला—कलेजे की चौड़ाई ! करना था, सो तो आप कर चुके हमारा। खैर। लेकिन देवी का प्रसाद हो चाहे जो हो, अब कोई कैवर्त कभी ब्राह्मन के यहाँ पत्तल नहीं डालेगा, इतना पाप धरती माता सह कैसे रही है, हम लोग सिर्फ यही चर्चा करते हैं। इतना कहकर रमा की तरफ देखकर एक लम्बा निश्वास छोड़ते हुए बोला—जरा होशियार ही रहना दीदी जी। पीरपुर के मुसलमान छोरे बावले हो रहे हैं। छोटे बाबू के लौटने पर क्या बीतेगी। यह एक मां दुर्गा ही जानती हैं। इस बीच वे तीन-चार बार बड़े बाबू के घर के आस-पास मँडरा गए है। सामने मिले नही, यही खैर कहिए—उसने वेणी की ओर देखा। एक पल में वेणी का क्रोधित चेहरा डर के मारे फीका पड गया।

सनातन कहने लगा—देवी के सामने झूठ नहीं कहूँगा बड़े बाबू, सम्हलकर रहिए, रात-विरात को निकलिए मत, कब कहाँ ताक में रहेंगे लोग, पता नहीं !

वेणी क्या कहना चाह रहे थे, मुँह से बात न फुटी लेकिन। उनके जैसा डरपोक शायद संसार में दूसरा नही।

अब रमा बोली। स्नेह सने स्वर में पूछा—सनातन, छोटे बाबू के लिए ही तुम लोग इतने बिगड़े हो ?

सनातन ने एक बार प्रतिमा की ओर देखकर कहा—झूठ कहकर नर्क मे क्यों जाना दीदी जी, यही सच है ! सबसे ज्यादा गुस्सा मुसलमानों को है। छोटे बाबू को वे पैगम्बर-सा मानते है। इसका सबूत देख लीजिए—जाफर अली, उसके हाथ से किसी को एक बूँद पानी नहीं मिल सकता, उसने जिस दिन छोटे बाबू जेल गए, स्कूल के लिए एक हजार रुपया दिया। यह भी सुना कि मस्जिद में उनके नाम से नमाज भी पढी जाती है।

रमा का सूखा चेहरा अव्यक्त आनन्द से दमक उठा। वह चुपचाप चमकती निष्पलक आँखों से सनामन की ओर देखती रही। वेणी ने अचानक सनातन का हाथ लिया, कहा—तुझे यह बात दारोगा के सामने कहनी पड़ेगी ! जो चाहेगा, वही दूँगा तुझे, दो बीघा जमीन छुड़ा लेना चाहे, तो वही होगी, देवी के सामने शपथ खाकर कहता हूँ सनातन, ब्राह्मण का कहा मान।

सनातन कुछ क्षण चकित-सा वेणी की ओर ताक-कर बोला—गिने-गुथे कै दिन तो और जीना है बड़े बाबू ! लालच में पड़कर ऐसा करूँ तो मरने पर लाश उठाने की तो दूर रहे, पाँव से कोई छूएगा तक नहीं। वह समय लद गया बड़े बाबू, लद गया। छोटे बाबू ने पलट डाला सब।

गोविंद बोला—यानी ब्राह्मण की बात न मानेगा ?

सनातन ने सिर हिलाकर कहा—नहीं। कहने से आप नाराज होंगे गांगुली

बाबू, उस दिन पीरपुर के स्कूल में छोटे बाबू ने कहा—गले में कुछ धागे झुला लेने से ही कोई ब्राह्मण नहीं होता। मैं कुछ आज का तो नहीं हूं बाबू, सब जानता हूँ। तुम जो कुछ किए फिरते हो, यह भला ब्राह्मण का काम है! तुम्हीं से पूछता हूं दीदी जी, तुम्हीं कहो।

रमा ने सिर झुका लिया। उत्साहित होकर दिल का गुबार निकालते हुए सनातन बोला—खास कर इन छोकरों की जमानत। छोटे बाबू के जेल चले जाने के बाद से दोनों गाँव के छोकरे शाम के बाद जाफरअली के यहाँ जमते है। वे तो साफ शब्दों में तमाम कहते फिरते है, जमींदार तो असल में छोटे बाबू हैं। बाकी तो चोर-डकैत हैं। और लगान देकर रहना, किसी से डरना कैसा! ब्राह्मण की तरह रहो तो ब्राह्मण, नहीं तो जो मैं सो तुम।

वेणी भय से सिमटकर बोला—अच्छा, यह तो बता सनातन, उनका सारा गुस्सा मुझी पर क्यों?

सनातन बोला—माफ करें बडे बाबू, सारे अनर्थो की जड़ आप ही है, यह जानना किसीको बाकी नहीं।

वेणी चुप बैठे रहे। सनातन जैसे छोटे आदमी से ऐसी बात सुनकर भी वे नाराज न हुए, क्योंकि नाराज होने जैसी हालत उनके मन की भी नहीं। उनका दिल धडक रहा था।

गोविंद बोला—तो यों कहो कि जाफर के ही यहाँ सबका अड्डा है? वहाँ करते क्या हैं भला वे?

उनकी तरफ देखकर सनातन ने जाने क्यों सोचा। अन्त में बोला—लेकिन भला चाहते है तो वैसी नीयत मत रक्खें। वे हिन्दू-मुसलमान भाई-भाई हो गए है—एक मन, एक प्राण। छोटे बाबू को सजा हो जाने के बाद से सब बारूद बने बैठे हैं, उसमें चिनगी लगाने की चेष्टा मत कीजिए।

सनातन चला गया। बड़ी देर तक बात करने की किसीकी इच्छा ही नहीं हुई। रमा उठकर जाने लगी, तो वेणी बोल उठे, सुन लिया न रमा?

रमा बोली नहीं, जरा मुसकुराई। उस मुस्काहट से वेणी जल उठे। बोल पड़े इस साले भैरव के चलते ही सब हुआ। और तुम नहीं पहुँच गई होतीं, उसे छुड़ा नहीं दिया होता तो यह सब कुछ नहीं होता। तुम्हें क्यों हँसी न आए भला, औरत ठहरी, बाहर निकलना तो नहीं पड़ता, हम लोगों का क्या होगा, सो बताओ। सच ही कभी मेरा सिर फोड़ दे? औरतों के साथ काम करने जाओ तो यही हाल होता है—कहकर भय, क्रोध और जलन से कैसी तो शक्ल बनाकर वेणी बैठे रह गए।

रमा ठगी-सी रह गई। वेणी को वह पहचानती बेशक थी, लेकिन ऐसे निर्लज्ज

अभियोग की उनसे उम्मीद न थी उसे। उसने कोई जवाब नहीं दिया। कुछ देर खड़ी रही और चली गई। वेणी ने आवाज देकर पाँच-छः लोगों को बटोरा और दो लालटनें लिए वहाँ से सावधान दृष्टि से देखते हुए गया।

सत्रह

कमरे में आकर रुलाई भरे स्वर में विश्वेश्वरी ने पूछा—आज कैसी तबीयत है बिटिया।

रमा ने जरा मुस्कुराकर कहा—आज ठीक है चाची। विश्वेश्वरी उसके सिरहाने जा बैठीं और चुपचाप उसके माथे पर, मुंह पर हाथ फेरने लगीं। तीन महीने से रमा खाट पर पड़ी थी। खांसी और मलेरिया के जहर से जर्जर। गाँव का बूढ़ा कविराज नाहक ही चिकित्सा में मर-खप रहा था। उसे क्या पता कि किस चीज के लगातार हमले से उसकी स्नायु-शिरायें जलकर खाक हुई जा रही थीं। केवल विश्वेश्वरी के मन में संदेह की एक छाया धीरे-धीरे गाढ़ी होती आ रही थी। रमा को वह अपनी बच्ची सी स्नेह करता थी, इसमें कहीं दगा न था, इसीलिए वह गाढ़ा स्नेह ही रमा के बारे में उनकी सत्य-दृष्टि को असामान्प रूप से तीखी किए दे रहा था। और लोग जब गलत समझकर, गलत उम्मीद से गलत व्यवस्था करने लगे, तो उनकी छाती फटने लगी। वह गौर कर रही थीं कि रमा की आँखें गढ़े में धँस गई हैं, पर निगाह बड़ी तीखी है। मानों बड़ी दूर की किसी वस्तु को बहुत करीब देखने की एकांत इच्छा से नजर इतनी पैनी हो गई है। उन्होंने धीमे से आवाज दी, रमा ?

क्या है चाची ?

मैं तो तेरी माँ जैसी हूं।

रमा ने टोककर कहा—माँ जैसी क्यों; तुम तो मेरी माँ हो चाची !

विश्वेश्वरी ने झुककर उसके ललाट को चूमकर कहा—तो मुझे तू सच-सच बता बिटिया, तुझे हुआ क्या है ?

बीमार हूँ चाची !

विश्वेश्वरी ने देखा—उसका वैसा पीला चेहरा मानो लमहे के लिए लाल हो उठा।

उन्होंने स्नेह से एक बार उसके बालों को सहलाकर कहा—यह तो चमड़े की आँखों से ही देख रही हूं, बेटी ! जो इन आँखों नहीं देखा जा सकता, मगर ऐसा कुछ

है, तो उसे अपनी माँ से मत छिपा रमा ! छिपाने से तो बीमारी अच्छी न होगी बेटी ?

खिड़की से बाहर सुबह की धूप अभी तीखी नहीं हुई थी और मन्द हवा में सर्दी-सी थी। रमा उसी तरफ को देखती हुई चुप रही। थोड़ी देर में पूछा—बड़े भैया कैसे है ?

विश्वेश्वरी ने कहा—अच्छा है। माथे का जख्म ठीक होने में अभी समय लगेगा, लेकिन पाँच-छः दिनों में अस्पताल से घर आ जायगा।

रमा के चेहरे पर पीड़ा की झलक का अनुभव करके बोलीं, इसका दुःख न करो, इसीकी जरूरत थी उसे। इससे उसका भला ही होगा। और रमा के मुखड़े पर आश्चर्य का आभास पाकर कहा—सोच रही हो, माँ होकर बेटे की इतनी बड़ी दुर्घटना पर ऐसी बात कैसे कह रही हूं। लेकिन तुमसे सच कह रही हूँ बेटी, इससे मुझे पीड़ा ज्यादा हुई कि खुशी, मै कह नहीं सकती। क्योंकि मैं जानती हूं, जो अधर्म से नहीं डरते, लाज का भय नहीं है, उन्हें यदि उतना ही ज्यादा भय प्राण का न हो तो दुनिया तहस-नहस हो जाय। इसीलिए मुझे बारबार यही लगता है कि तेली का यह लडका वेणी का जो उपकार कर गया, दुनिया में कोई अपना सगा वह उपकार नहीं कर पाता। कोयले को धोकर उसका रंग नही बदला जा सकता है बेटी, उसे आग में जलाना पडता है।

रमा ने पूछा – घर में क्या उस समय कोई न था ?

विश्वेश्वरी ने कहा—था क्यों नहीं, सभी कोई थे। लेकिन वह योंही तो न मार बैठा। जेल जाने को तैं करके ही वह तेल बेचने आया था। उसे खुद जरा भी गुस्सा न था, इसलिए उसकी बँहगी की मार से जब वेणी बेहोश हो गया, तो वह चुप खडा रह गया आगे वार नहीं किया। इसके सिवा वह कह गया कि इस पर भी अगर वेणी न सम्हले तो मैं खुद लौटूँ न लौटूँ, यही उनकी आखिरी मार नहीं है।

रमा धीरे-धीरे बोली – इसका मतलब कि और भी आदमी पीछे पड़े है; लेकिन अपने यहाँ के छोटे लोगों में इतनी हिम्मत थी तो नहीं चाची ! कहाँ से आई ?

विश्वेश्वरी मृदु हंसकर बोलीं—यह क्या तुझे नहीं मालूम है कि इनके कलेजे को कौन ऐसे पुष्ट कर गया है ? आग जलकर योंही नहीं बुझ जाती रमा ! जबर्दस्ती उसे बुझा भी दो तो वह आस-पास की चीजों को छिपा देती है। मेरा वह लौटे और दीर्घजीवी होकर जी चाहे जहाँ जाय, मैं वेणी की बात याद करके कभी उसांस न लूंगी। लेकिन कहने के बावजूद विश्वेश्वरी एक निश्वास दबा गईं, रमा ने यह ताड़ लिया। इसीलिए उनकी हथेली को अपने कलेजे पर खींचकर वह थिर हो रहीं। अपने का जरा सम्हाल लेकर विश्वेश्वरी बोलीं—इकलौती संतान क्या होती है बेटी !

यह माँ ही जानती है। बेहोश वेणी को धर-पकडकर पालकी से जब लोग अस्पताल ले गए, उस समय मुझ पर क्या गुजरा, मैं समझा न सकूँगी। मगर तो भी मै किसी को अभिशाप या दोष नहीं दे सकती। आखिर यह तो मै भूल नही सकती कि इक-लौता बेटा होने से धर्म का शासन मां का मुँह तो नही देख सकता।

रमा ने कुछ सोचा, फिर कहा—मैं तुमसे तर्क तो नही करूँगी चाची! लेकिन अगर यही बात है, तो रमेश भैया किस पाप से यह दुःख उठा रहे है। हम लोगों ने जिस तरह से उन्हें जेल में ठूँस दिया, वह किसी से छिपा नहीं है।

चाची ने कहा—वह बात नहीं बेटी। ऐसा नही है जभी वेणी आज अस्पताल में पड़ा है। और तुम्हारी—कहकर वह सहसा थम गई। जो बात उनकी जबान पर आ गई थी, उसे जबर्दस्ती अन्दर ढकेलकर बोलीं—एक बात बताऊँ, कोई भी काम कभी यों ही शून्य मे नहीं खो जाता। उसकी शक्ति कही न कहीं जाकर काम करती ही है। लेकिन काम करती कैसे है, चूँकि हर समय यह बात पकड मे नही आती, इसीलिए आज तक इस मसले का हल न हो सका कि एक के पाप का प्रायश्चित दूसरे को क्यों करना पड़ता है। लेकिन इसमे तो संदेह ही नही कि करना पड़ता है।

अपने आचरण को याद करके रमा ने छिपकर निश्वास फेंका। विश्वेश्वरी कहने लगीं—इससे मेरी भी आँखें खुली है रमा कि भला करने की सोचने से भी भला नही होता। शुरू में बहुत सी छोटी-बड़ी सीढियाँ पार करने का भी धीरज होना चाहिए। एक दिन हताश होकर रमेश मुझसे कहने आया था, चाची, बाज आया मैं इनका भला करने से; मैं जहां से आया, वहीं चला जाता हूं। मैंने उसे रोका। कहा, नही बेटा, काम शुरू किया है, तो छोडकर मत भाग। वह भी तो मेरी बात कभी टाल नहीं सकता। इसीलिए जिस दिन मैंने उसकी सजा की बात सुनी, मुझे लगा, मानो मैंने ही धर-पकडकर उसे यह सजा दी है। लेकिन उसके बाद ही जब लोग वेणी को अस्पताल ले गए तो मैने समझा, न, उसके भी जेल जाने की जरूरत थी। फिर यह जानती भी तो न थी मैं कि बाहर से आकर भलाई करने की बिडंबना ऐसी होती है, वह काम इतना कठिन है। मैंने यह तो कभी नही सोचा कि पहले लोगों से घुलना-मिलना होता है; भले में, बुरे मे एक न हो सके तो हर्गिज भलाई नहीं की जा सकती! वह आरंभ में ही अपनी शिक्षा, अपना संस्कार, और बहुत बड़ा प्राण लेकर इतने ऊंचे खड़ा हुआ कि आखिर तक कोई वहाँ तक पहुँच ही नहीं सका। परन्तु यह तो मुझे सूझा नहीं बिल्कुल! मैंने उसे जाने भी न दिया और रख भी न सकी।

रमा क्या तो कहते-कहते पी गई। विश्वेश्वरी इसे समझ गई। बोलीं—मैं उसका अफसोस नहीं करती। मगर सुनकर तू नाराज न होना, इस बार उतारकर

तुम लोगों ने सबसे मिला जो दिया, इससे तुम्हें चाहे जितना बड़ा पाप हो, वह लेकिन आकर सत्य के दर्शन पाएगा, यह बात मैं जोर देकर कहे जाती हूं।

रमा बात को समझ ही न सकी। कहा—मगर इससे वे क्यों उतरने लगे चाची ? हमारे अन्याय के चलते कष्ट चाहे उन्हें जितना बड़ा भोगना पड़े, लेकिन हमारे बुरे काम हमें ही नर्क में ले जाएंगे, उन्हें स्पर्श क्यों करें ?

विश्वेश्वरी फीका हँसकर बोलीं—बेशक स्पर्श करेंगे बेटी ! वरना पाप फिर भयंकर होता कैसे है ? उपकार के बदले उपकार कोई न भी करे, बल्कि उलटे बुराई करे तो भी क्या आता-जाता है, यदि दाता को कृतघ्नता पर उतार नहीं लाता ! तू तो कह रही है बिटिया, पर मेरा यह कुआंपुर रमेश को क्या अब वैसा पा सकेगा। उसके लौटने पर साफ देख पाओगी कि जिस हाथ से वह दान करता फिरता था, भैरव ने उसके उस दाएं हाथ को मरोड़ कर तोड़ दिया है।

उसके बाद जरा थम गईं। फिर आप ही आप बोली—लेकिन कौन कह सकता है ? शायद ठीक ही हुआ हो। उसके मजबूत हाथ के बेहिसाब दान को ग्रहण करने को जब शक्ति बस्ती को न थी तब वह टूटा हाथ ही शायद उनके लिए मौजूं हो—कहकर चाची ने एक गहरा निश्वास फेंका।

उनकी हथेली को कुछ क्षण हिला-डुलाकर रमा ने धीरे-धीरे बड़े करुण स्वर में कहा—अच्छा चाची, झूठी गवाही देकर निर्दोष को दंड दिलाने की क्या सजा है ?

विश्वेश्वरी ने खिड़की से बाहर देखती हुई रमा के बिखरे रूखे बालों पर अंगुली फेरते हुए अचानक देखा, उसकी निमीलित आँखों की कोर से आँसू टपक रहे हैं। स्नेह से उसे पोंछते हुए बोली—लेकिन इसमें तुम्हारा तो हाथ नहीं था बेटी। एक औरत को इतने बड़े कलंक का डर दिखलाकर जिनका पुरुषों ने तुम पर ऐसा जुल्म किया है, सजा सब उनके लिए है। तुम्हें तो उसका कुछ भी न ढ़ोना पड़ेगा !—उन्होंने फिर से उसकी आँखें पोंछ दी। उनका जरा-सा भरोसा पाकर रमा का रुँधा आँसू साबन की धारा-सा बरस पड़ा। थोड़ा थमकर बोलीं—लेकिन वे सब तो उनके दुश्मन हैं। वे कहते हैं, दुश्मन को जैसे भी हो, मिटाने में कोई गुनाह नहीं। लेकिन अपनी तो यह कैफियत नहीं है चाची !

आखिर है क्यों नहीं बेटी ?—इतना कहकर नजर नीचे करते ही उनकी आँखों में मानो बिजली खेल गई। जो संशय मुँह छिपाए उनके मन में अब तक नाहक ही घूमा करता था, उसने यकायक मानो अपना नकाब उतार फेंका और आमने-सामने खड़ा हो गया। उसे आज चीन्हकर जरा देर के लिए वेदना और विस्मय से विश्वेश्वरी स्तंभित हो गईं। रमा के अंतर की पीड़ा अब उनसे छिपी न रही।

रमा आंखें बन्द किए थी ; विश्वेश्वरी के चेहरे के भाव को वह देख न सकी । कहा—चाची !

चाची चौंकी ! हलके से उसके सिर को झटका देकर उन्होंने जवाब दिया ।

रमा बोली—एक बात आज तुम्हारे सामने मैं कबूल करूँगी चाची ! पीरपुर मे जाकर अलीं के यहाँ जुटकर शाम को छोकरे रमेश भैया के कहे मुताबिक भली बातों पर ही विचार-विमर्श किया करते थे—उन्हें बदमाश बताकर पुलिस से पकड़वा देने का मनसूबा गांठा जा रहा था—मैंने आदमी भेजकर उन्हें होशियार कर दिया था । क्योंकि पुलिस के लिए तो यही मांगी मुराद है । पा जाता उन्हें मुट्ठी में, फिर खैर कहाँ ?

विश्वेश्वरी सुनकर सिहर उठी, अच्छा ! वेणी नाहक ही बस्ती में पुलिस के जुल्म को न्योतना चाह रहा था ।

रमा ने कहा—मैं समझती हूं, बड़े भैया को यह सजा उसीके चलते मिली । मुझे तुम माफ कर सकोगी चाची !

विश्वेश्वरी ने झुककर रमा के ललाट को चूमा । बोली—तेरी माँ होकर भी मैं अगर यह माफ न कर सकूं, तो कौन करेगा ? मैं आशीर्वाद देती हूं, भगवान तुम्हें इसका पुरस्कार दें ।

हाथ से आँख पोछते हुए रमा ने कहा— एक ही सतोष मुझे है चाची कि लौटकर वे देखेंगे कि उनकी जमीन तैयार है । उन्होंने जो चाहा था, उनके यहाँ के किसान-मजूर नीद से जग गए है—सबने उनको पहचाना है, प्यार किया है । इस प्यार की खुशी में वे क्या मेरे अपराध को भूल नही सकेंगे चाची ?

विश्वेश्वरी कुछ बोल न पाई । उनकी आख से सिर्फ आसू की एक बूंद लुढ़ककर रमा के कपाल पर पड़ी । उसके बाद बडी देर तक दोनों स्तब्ध हो रहे ।

रमा ने पुकारा—चाची !

विश्वेश्वरी बोली—क्यों बिटिया ?

रमा ने कहा—सिर्फ एक विषय में हम दूर नही गए । तुमको हम दोनों ने ही प्यार किया था ।

विश्वेश्वरी ने झुककर फिर उसके मस्तक को चूमा ।

रमा बोली—इसी जोर से मैं तुमसे एक दावा कर जाऊंगी चाची । मैं अगर न जी सकूं और फिर भी वे मुझे क्षमा न कर सकें, तो मेरी ओर से उनसे सिर्फ इतना कहना चाची कि उन्होंने मुझे जितना बुरा समझा, उतनी बुरी मैं थी नहीं । और उनको मैंने जितनी तकलीफ पहुँचाई, उससे कहीं ज्यादा तकलीफ मैंने खुद उठाई—तुम्हारी बात का वे अविश्वास न कर सकेंगे ।

विश्वेश्वरी औंधी पडकर उसे छाती से चिपकाते हुए रो पड़ीं। बोलीं—चल बेटी, हम लोग किसी तीरथ में जाकर रहें। जहाँ वेणी न हो, रमेश न हो, नजर उठाते ही मंदिर का शिखर दिखाई पड़े—वहीं चलें। मैं सब समझ गई हूं रमा। अगर तेरे जाने का दिन करीब आ गया है, तो यह जरूर कलेजे में लिए जल-झुलस कर जाना तो न बनेगा। हम ब्राह्मण की बेटी है, वहां जाने के समय हमें उसीके अनुरूप होकर जाना चाहिए।

रमा बड़ी देर तक चुपचाप पडी रही और एक उच्छ्वसित दीर्घ श्वास लेती हुई सिर्फ यह बोली, मैं भी उसी तरह जाना चाहती हूं चाची !

अट्ठारह

जेल की चहारदीवारी के बाहर उसके सारे दुःखों को सार्थक करने का ईश्वर ने ऐसा आयोजन कर रक्खा था, शायद उन्मत्त विकार में भी ऐसी आशा करना रमेश के लिए संभव न था। छः महीने का सश्रम कारावास भोग चुकने के बाद जेल से बाहर कदम रखते ही देखा, गजब हो गया ! माथे में चादर लपेटे स्वयं वेणी घोषाल सबसे आगे खड़े है। उनके पीछे दोनों स्कूल के हेडमास्टर-मास्टर और छात्रों की टोली तथा कुछ हिंदू-मुसलमान रैयत। वेणी ने झपटकर उसे गले लगाया और रुआँसे-से होकर बोले—रमेश, भाई मेरे, नाड़ी का आकर्षण क्या होता है, यह मैंने अब समझा। यदु मुखर्जी की बेटी हरामजादा अचारज को मुट्ठी करके ऐसा गजब ढाएगी, हया-शर्म का गला घोंटकर झूठी गवाही देकर इतना दुःख देगी, जानते हुए भी उस समय मैंने यह नहीं जानना चाहा था; उसकी सजा भगवान ने मुझे भली-भांति ही दी। बल्कि तू जेल के अंदर मजे में रहा रमेश, मैं तो ये छः महीने भूस की आग में जलता-घुलता रहा।

रमेश क्या करे, क्या कहे, कुछ समझ न पाकर टुकुर-टुकुर ताकता रहा। हेडमास्टर पाडुइ ने लंबे पडकर उसके चरणों की धूल माथे लगाई। उसके बाद पीछे के लोग आये-जाये। किसी ने आशीर्वाद दिया, किसी ने प्रणाम तो किसी ने सलाम किया। इसके करने-कराने की बाढ़ से राह गमगमा उठी। वेणी की रुलाई अब रोके न रुकी। अश्रु गद्‌गद् स्वर में बोले—बड़े भाई से नाराजगी न रक्खो भैया, चलो, घर चलो। रोते-रोते मां आँखें खो देने को तुली बैठी हैं।

घोड़ा-गाड़ी खड़ी थी; रमेश बिना कुछ बोले उस पर सवार हो गया। उसके

सामने बैठकर वेणी ने माथे का फेंटा खोल दिया। जख्म सूख गया था, लेकिन निशान साफ दिखाई दे रहा था। वेणी ने एक लंबा निश्वास छोड दाएँ हाथ को उलटकर कहा -दोष किसे दूं, अपने ही किए का फल-- अपने ही पाप का दंड। मगर वह सुनकर होगा भी क्या ? और चेहरे पर गहरी वेदना का भाव झलकाकर चुप हो गए। उनकी इस सरल स्वीकारोक्ति से रमेश का जी गल गया। उसने सोचा कुछ न कुछ हुआ जरूर है। इसीलिए उसने सुनने की जिद न की। लेकिन जिस वजह से वेणी ने यह भूमिका बांधी, वह बात ही गायब हुआ चाहती है, यह देखकर वह अंदर ही अंदर छटपटाने लगे। दो-एक मिनट चुपचाप निकले। उन्होंने फिर एक निश्वास से रमेश का ध्यान खीचते हुए धीरे से कहा- भई, अपनी जन्म से ही एक बुरी आदत है, मुँह मे कुछ और मन मे कुछ, यह मुझसे नही होता। मन की लोगों से छिपा नही पाता। इसके लिए जाने कितना भुगतना पड़ता है, फिर भी तो मुझे होश नही होता।

रमेश चुपचाप सुन रहा है, वह देखकर वेणी ने आवाज को और भी धीमी तथा गंभीर करके कहना शुरू किया, मुझसे इतनी ही ग़लती हुई कि मन की तकलीफ को दबा न पाकर रोते-रोते कह बैठा, रमा, आखिर हमने तुम्हारा ऐसा क्या बिगाडा था कि तुमने हम लोगों का ऐसा सर्वनाश किया ! मा ने जहाँ सुना कि उसे जेल की सजा हुई, तो वे तो जान दे बैठेंगी ! हम भाई-भाई जायदाद के लिए झगड़ते हैं या जो भी करते है, मगर है तो आखिर वह हमारा भाई ! तूने एक ही चोट से मेरे भाई को मार डाला ! मां को मार डाला ! खैर, बेगुनाह के भगवान मालिक है।—उन्होंने गाडी के बाहर आसमान की ओर देखते हुए मानों फिर नालिश की।

रमेश ने गरचे इस अभियोग में साथ नहीं दिया, लेकिन मन से सुनने लगा। वेणी जरा थमकर बोले—रमेश, रमा की उस भयंकर मूर्ति की याद करके अभी भी जी कापने लगता है; दात पीस कर बोला—क्या रमेश के पिताने मेरे पिताजी को जेल में नही ठूसना चाहा था ? बनता तो छोड़ता कही ? एक औरत का इतना दंभ मुझसे सहा नही गया ! मैंने भी बिगड़ कर सुना दिया, खैर, उसे आने दो, फिर जो होना होगा, होगा।

अब तक रमेश वेणी की बातों को मन मे ठीक से ग्रहण नही कर पा रहा था। कब रमेश के पिता ने रमा के पिता को जेल दिलाने की कोशिश की थी, वह नहीं जानता था। लेकिन पहले ही दिन गांव में आकर उसने रमा की मौसी से यह बात सुनी थी, उसे याद आया। इसलिए बाद की बात जानने को वह उत्सुक हो उठा।

वेणी यह भांप गये। बोले—खून की तो उसे आदत है न। याद नहीं है, अकबर लठैत को उसने भेजा था ? लेकिन तुम्हारे आगे तो चली नही, बल्कि उल्टे

तुमने ही सबक सिखा दिया था ! लेकिन मुझे देखते हो न ? दुबला-पतला आदमी—कहकर कुछ सोचा और उस तेली के बेटे का गढ़ा हुआ ब्योरा अँधेरे मन से बाहर निकाल कर अपनी भाषा मे धीरे-धीरे सुना गए।

रमेश ने दम रोककर पूछा—फिर ?

वेणी ने मलिन मुख से जरा हँसकर कहा—उसके बाद क्या कुछ याद है भाई ! कौन किस तरह मुझे अस्पताल ले गया था, वहां क्या हुआ, किसने देखा—मैं कुछ भी नहीं जानता। दस दिन के बाद होश हुआ तो देखा, अस्पताल मे पडा हूं। माँ के ही पुण्य से इस बार जान बच गई—ऐसी मां क्या और है रमेश !

रमेश एक शब्द भी न बोल सका। काठ की मूरत-सा सरू होकर बैठा रहा। केवल उसकी दसों अँगुलिताँ जुटकर मुट्ठी बडी सख्त हो गई। उसके दिमाग में क्रोध और घृणा की जो आग जल उठी उसका अंदाजा लगाना भी किसी के लिए संभव न रहा। वेणी कितना बुरा है, यह उसे मालूम था। कोई काम नही, जो वह नही कर सकता, यह भी उसका अजाना न था। लेकिन दुनिया मे कोई भी आदमी इस तरह बेझिझक इतना झूठ कह सकता है, यह कल्पना करने की अभिज्ञता उमे न न थी। इसीलिए उसने रमा के सभी कसूर को सच्चा मान लिया।

उसके लौट आने से बस्ती भर में धूम मच गई। रोज सुबह, दोपहर, शाम को इतने-इतने लोग आने लगे, इतनी बातें होने लगी, अपनापन की ऐसी भरमार हुई कि जेल की जो ग्लानि उसके मन मे रह गई थी, वह देखते ही देखते काफूर हो गई। इसमे कोई शक नहीं कि उसकी गैर मौजूदगी मे गाव में एक बहुत बड़ा सामाजिक स्रोत बह गया; लेकिन इन्हीं कुछ महीनो मे इतना बडा परिवर्तन कैसे संभव हुआ, यह सोचते हुए उसकी आँखो से आंसू बह निकला; वेणी के विरोध से जो शक्ति कदम-कदम पर बाधा पाकर काम नहीं कर पाती थी लेकिन संचित हो रही थी, वही अब उसकी अनुकूलता से दूने वेग से वह चली है। वेणी को उसने आज और भी जरा अच्छी तरह पहचाना। इस आदमी को इतना बुरा जानने के बाद भी गांव के लोग इसके इतने हुक्म के बंदे है, इस बात को आज की तरह पहले कभी नही देख पाया था वह। इसीके विरोध से पिंड छूटा, यह सोचकर रमेश ने चैन की सांस ली। यही नहीं, रमेश पर ऐसा जुल्म हुआ, इसके लिए गांव के सब लोग दुखी हैं, एक-एक करके सभी यह बात बता गए। सब की सहानुभूति पाकर और वेणी को अपनी तरफ आया देख आनंद और उत्साह से उसका हृदय खिल पड़ा। छः महीने पहले उसे जिन कामों को अधूरा छोड़ जाना पड़ा था, उनके लिए फिर से लग पड़ने का संकल्प करके रमेश ने भी इस हँसी-खुशी में अपने को डुबा दिया, और छोटे-बड़े सब के घर जा-जाकर खोज-खबर लेते हुए दिन बिताने लगा। सिर्फ एक विषय से

उसने अपने आपको बिल्कुल अलग रख रक्खा था, वह विषय था रमा का। राह में सुना था कि वह पीड़ित है, लेकिन वह पीड़ा अभी कहाँ पहुँची है, यह जानने की कोशिश नहीं की। उसकी यही धारणा थी कि उससे अपना सारा संबंध उसने सदा के लिए चुका लिया है। यहां आने के बाद इससे-उससे उसने सुना था कि अकेली रमा ही उसके सारे दुःखों का कारण है। सो यहां पर वेणी ने झूठ नहीं कहा, इसमें उसे शुबहा न रहा। चार-पांच दिन के बाद वेणी ने आकर रमेश को पकड़ा। पीरपुर के एक बड़े से हिस्से के लिए रमा से उनका बहुत दिनों से बखेड़ा चल रहा था। इस मौके से उसे हथिया लेने की सूझी।

ऊपर से वेणी चाहे जो कहें, अदर से वे रमा से डरते थे। अभी वह बीमार है, मामला-मुकदमा लड़ नहीं सकेगी, फिर मुसलमान रैयत रमेश की बात टाल नही सकेंगे। बाद में जो चाहे सो हो, फिलहाल बेदखल करने का ऐसा मौका फिर नहीं मिलेगा, यह सोचकर वेणी अड़ गए। रमेश को अचरज हुआ। इसके इनकार करते ही वेणी ने बहुत तरह की दलीलें देकर अंत मे कहा—होगा क्यों नही ? दांव में पाकर उसने तुम्हे छोडा कब है कि तुम उसकी बीमारी की फिक्र कर रहे हो ? और जब उसने तुमको जेल भेजा था, तब तुम्हारी ही तबीयत क्या कम खराब थी भाई !

बात सही थी। रमेश इनकार न कर सका। फिर भी जाने क्यों उसका मन रमा के खिलाफ जाने का न हुआ—वेणी ने लाख उभाड़ा, तो भी रमा की असहाय बीमार हालत की बात सोचकर उसकी सारी विरोधी-शक्ति कतरे-सी हो गई। इसका स्पष्ट कारण वह खुद भी समझ न सका। रमेश चुप रहा। काम बनता हो, तो वेणी धीरज रखना जानते है। वह उस समय ज्यादा तंग न करके चले गये।

इस बार एक और बात ने रमेश का ध्यान बडा आकृष्ट किया था। वह पहले से भी जानता था कि विश्वेश्वरी को संसार पर आशक्ति नही है, लेकिन इस बार उसे लगा कि उनकी वह अनिच्छा मानो वितृष्णा में बदल गई है। जेल से छूटकर वेणी के साथ जिस दिन वह उनके यहां गया था, विश्वेश्वरी ने खुशी जाहिर की थी, गीले स्वर में आशीर्वाद दिया था फिर भी जाने उसमें क्या तो था कि रमेश को पीड़ा ही हुई थी। आज बातों-बातों में उसने अचानक सुना कि विश्वेश्वरी काशी-वास का संकल्प करके जा रही हैं, अब नहीं लौटेंगी, तो वह चौंक उठा। उसे कुछ भी तो मालूम नहीं ! नाना कारणो से पांच-छः दिन से उनसे भेंट नहीं हुई; पर जिस दिन भेंट हुई थी, उस दिन भी तो उन्होंने कोई जिक्र नहीं किया ! गरचे उसे यह मालूम था कि वह अपनी या पराई आलोचना कभी पसंद नहीं करतीं, तथापि आज के इस संवाद के पास उस दिन की स्मृति को रखकर आंखो से देखते ही उसे इस एकांत वैराग्य का कारण दिख गया। यह क्या है, उनकी अनुपस्थिति कैसी कमी

है—यह सोचते ही उसकी दोनों आँखें भर आई। जरा भी देर न करके वह उनके यहां जा पहुँचा। नौ-दस बज रहे थे। अदर दाखिल होते ही नौकरानी ने खबर दी, वह मुखर्जी-परिवार मे गई है।

रमेश ने अचरज से पूछा—ऐसे समय !

नौकरानी यह बडी पुरानी थी। हल्का हँसकर बोली—जी, माँ जी का समय-असमय क्या ! तिसपर आज उनके यहा छोटे बाबू का जनेऊ है।

यतीन का जनेऊ !

रमेश ने और भी चकित होकर कहा—लेकिन यह बात तो किसी को नही मालूम है ?

नौकरानी ने कहा—उन लोगो ने किसी से कहा नही है कहने पर भी तो कोई खाने नही जाता। रमा दीदी को तो लोगों ने जात से बाहर कर दिया है, न !

रमेश के आश्चर्य की सीमा न रही। एक क्षण चुप रहकर कारण पूछते ही नौकरानी ने लाज मे गर्दन घुमाकर कहा—मुझे नही मालूम छोटे बाबू, रमा दीदी की क्या-क्या तो निदा फैली है न बुरी-बुरी—हम गरीब-दुखिया है, हमे वह सब नही मालूम। कहते-कहते वह वहा से खिसक पडी।

कुछ देर चुपचाप खडा रहकर रमेश घर लौटा। बिना पूछे ही वह समझ गया कि यह वेणी के क्रोध का बदला है। लेकिन क्रोध किस बात का, किस प्रति-हिंसा से उसने किस खास ढग से रमा की बुरी निदा को बहाया है, यह सब ठीक-ठाक सोच सकना उसके लिए संभव भी न था।

उन्नीस

उस दिन तीसरे पहर एक अचिंतनीय घटना घटी। कैलास नाई और शेख मोतीलाल अदालत न जाकर गवाह सादी के साथ रमेश की शरण मे आ पहुँचे। रमेश ने अकृत्रिम विस्मय से पूछा—मेरा फैसला तुम लोग मानोगे क्यों भला !

वादी-प्रतिवादी दोनों ही ने कहा—आखिर क्यो न मानेंगे बाबू, हाकिम से आपकी विचार बुद्धि ही क्या कम है ? और हाकिम भी तो आप जैसे भले लोग ही हुआ करते हैं ! कल को आप सरकारी काम लें और हाकिम होकर विचार कर दें तो वह फैसला तो सिर नवाकर कबूल करना ही पड़ेगा। उस समय तो यह कहने से काम नहीं चलेगा कि इसे न मानूंगा।

सुनकर रमेश की छाती गर्व और आनंद से फूल उठी। कैलास बोला—आपको हम अपनी बात समझाकर कह सकेंगे; अदालत में तो यह गुजाइश नहीं होगी। फिर गाठ की रकम से वकील की जेब भरे बिना कुछ होने-हवाने का नहीं। यहां फूटी पाई का खर्च नहीं, वकील की खुशामद नही करनी, दौड़-धूप से जान नहीं देनी पड़ेगी। नः, आप जो हुक्म देंगे, भला हो, बुरा हो हम उसीको मानकर आपके चरणों की धूल माथे उठाकर घर चल देंगे। भगवान् ने सुमति दी, जभी हम दोनो अदालत से लौटकर आपकी शरण मे आए।

दोनों मे एक छोटे-से नाले के लिए झगडा था। कागज-पत्तर थोड़ा-बहुत जो था, रमेश को देकर कल आने को कहकर जब वे चले गए, तो रमेश स्थिर होकर बैठा रहा। यह उसकी कल्पना मे परे की बात थी। दूर भविष्य के लिए भी उसने कभी ऐसी आशा को दिल में जगह न दी थी। उसके फैसले को वे बाद में मानें या न माने लेकिन अदालत मे बाहर मामले के निवटारे की सोच वे लौटकर यहां आए, इसी बात से रमेश के हृदय में आनंद का सोता बहा दिया। बात गोकि कुछ भी न थी, दो गांववासियों का निहायत मामूली-सा झगडा, लेकिन इसी महज मामूली बात से उसके हृदय मे अनंत संभावना का आकाश-कुसुम खिल पड़ने लगा। अपनी इस अभागिन जन्मभूमि के लिए भविष्य में क्या नहीं कर सकता, इसका कोई हिसाब-किताब, कूल-किनारा न रहा। बाहर वासती चाँदनी मे आकाश नहा रहा था, उसे देखकर उसे रमा की याद आई। और दिन होता, तो याद आते ही उसका बदन जल-सा उठता। मगर आज जलन की बात तो दूर, एक तिल उत्ताप तक महसूस न किया। मन में जरा हँसकर रमा को लक्ष्य करके बोला—तुम्हारे जरिए भगवान् मुझे ऐसा सार्थक बना देंगे, तुम्हारा जहर मेरे भाग्य से ऐसा अमृत हो उठेगा, तुम अगर यह जानती रमा, तो मुझे तुम हर्गिज जेल भिजवाना नहीं चाहती।—कौन ?

जी, मै राधा हूँ छोटे बाबू। रमा दीदी ने बड़े जरूरी काम से आपको बुलाया है।

भेंट करने को रमा ने बुलवा पठाया है ! रमेश अवाक, हो गया। आज फिर कौन-से नष्ट-बुद्धि देवता उससे सब अजीब-अजीब कौतुक कर रहे है !

दासी ने कहा—दया करके अगर एक बार—

हैं कहां वे ?

घर में लेटी हुई हैं। जरा रुककर फिर कहा, कल तो फिर मौका न मिलेगा—इसीसे अभी ही अगर—

अच्छा, चलो।— कहकर रमेश उठ खड़ा हुआ।

उसे बुलाने के लिए दासी को भेजने के बाद से ही रमा विछावन पर सजग सी पड़ी थी। दासी ने जैसा बताया, कमरे में घुसकर एक कुर्सी खींचकर बैठते ही

रमा ने मानो सहज मन के जोर से ही अपने को खींचकर रमेश के चरणों के पास ला रखा। घर के एक कोने में एक दीया टिमटिमा रहा था। उसीकी धीमी रोशनी में रमेश रमा को जितना भर देख सका, उससे उसकी शारीरिक अवस्था का कुछ नहीं जान सका। अभी-अभी आते समय उसने मन ही मन जो संकल्प किया था, रमा के सामने बैठते ही सब गोलमाल हो गया। जरा देर चुप रहकर उसने पूछा—अब कैसी हो रानी।

रमा उसके पाँवों से जरा खिसक कर बैठती हुई बोली—आप मुझे रमा ही कहा करें।

रमेश की पीठ पर जैसे किसी ने चाबुक मारा। तुरत ही सख्त होकर उसने कहा—खैर, वही सही। मैंने सुना था, तुम बीमार हो। अब कैसी हो, यही पूछ रहा था। वरना नाम चाहे जो हो, उसीसे पुकारने की अपनी इच्छा भी नहीं, जरूरत भी न पड़ेगी।

रमा सब समझ गई। थोड़ा चुप रहकर धीरे-धीरे बोली—अब मैं अच्छी हूँ।

उसके बाद कहा—मैंने बुलवा भेजा है, इससे आप बहुत चकित हुए होंगे। लेकिन—

बीच ही में रमेश तीखे स्वर में बोल उठा—नहीं, चकित नहीं हुआ। तुम्हारी किसी भी बात से चकित होने का दिन मेरा कट गया। मगर बुलवा क्यों भेजा ?

इस बात ने रमा के जी पर कितनी चोट पहुँचाई, रमेश यह न जान सका। वह सिर झुकाए कुछ देर तक चुप बैठी रही, फिर कहा—रमेश भैया, आज दो काम से कष्ट दिया है। तुम्हारे पास मैंने कितने अपराध किए हैं, वह तो मैं जानती हूँ। फिर भी मुझे यह विश्वास था कि तुम आओगे और मेरे अंतिम दो अनुरोधों को भी अस्वीकार न करोगे।

आंसू के भार से उसका गला भर्रा गया। यह इतना साफ था कि रमेश जान गया और उसका पुराना स्नेह आलोड़ित हो उठा। इतने आघात-प्रतिघात के बाद भी वह स्नेह मर नहीं गया था, केवल निर्जीव अचेत-सा पड़ा था, उसका अनुभव करके आज वह खुद भी ताज्जुब में पड़ गया। कुछ क्षण चुप रहकर बोला—क्या है तुम्हारा अनुरोध ?

चौंकी हुई-सी रमा ने सिर उठाया और तुरत झुका लिया। बोली—जिस जायदाद पर बड़े भैया तुम्हारी मदद से दखल करना चाहते हैं, वह मेरी अपनी है यानी पंद्रह आना मेरा हिस्सा है, एक आना तुम लोगों का। वही मैं तुम्हें दे जाना चाहती हूँ।

रमेश फिर गर्म हो उठा। बोला—डरो मत, चोरी करने में मैंने पहले भा

कभी किसी की मदद नहीं की, आज भी न करूँगा। और दान अगर करना ही चाहती हो, तो और-और लोग है, मैं दान नहीं लेता।

पहले ऐसा होता तो रमा तुरत कह बैठती, मुखर्जी का दान लेने मे घोषालो का अपमान नहीं होता। आज लेकिन यह बात उसके मुँह से नहीं निकली। वह विनीत भाव से बोली--मुझे मालूम है रमेश भैया, तुम चोरी में मदद नहीं दोगे। और लोगे भी तो तुम अपने लिए नहीं लोगे, यह भी मैं जानती हूँ। मगर बात यह तो नहीं। कसूर की सजा होती है। मैंने जितने कसूर किए हैं, इसे उसीके जुर्माने मे लो न!

रमेश कुछ देर चुप रहा। बोला—और दूसरा अनुरोध?

रमा बोली—अपने यतीन को मै तुम्हारे हाथों सौप जाती हूँ। उसे अपनी तरह आदमी बनाना। जिसमे बड़ा होकर वह तुम्हारे ही समान स्वार्थ का त्याग कर सके।

रमेश के मन की सारी कठोरता पिघल पड़ी। आचल से आख पोंछकर रमा ने कहा—अपनी आखों यह देख जाने का मौका नहीं मिलेगा; मगर मै खूब जानती हूँ कि यतीन के शरीर मे पुरखों का खून है। त्याग की शक्ति उसकी अस्थि-मज्जा मे मिली है--सिखाने से हो सकता है, कभी वह तुम्हारे जैसा सिर उठाकर खड़ा हो सके।

रमेश ने तुरत इसका कोई जबाब नही दिया—झरोखे से बाहर चादनी से नहाए रात को देखता रहा। उसका हृदय ऐसी एक पीड़ा से भरता आ रहा था, जिससे उसकी कभी की पहचान न थी। वह बड़ी देर तक चुप रहा मुँह फेरकर फिर कहा—देखो, मुझे अब इन बातों मे न घसीटो। बड़े-बड़े दुःखों के बाद मैं रोशनी की हलकी-सी लौ जगा पाया हूँ, इसीसे मुझे डर लगता है, कहीं बुझ न जाय।

रमा ने कहा—अब डर नही रमेश भैया, तुम्हारी रोशनी अब नहीं बुझेगी। चाची कह रही थीं, तुम दूर से आकर बड़ी ऊंचाई पर से काम कर रहे थे, इसीलिए राह में इतनी रुकावटें आईं। हमने अपनी दुर्गति के भार से तुम्हें नीचे उतारकर ठीक जगह पर ही प्रतिष्ठित कर दिया है। तुम हम लोगों के बीच में आकर खड़े हुए हो, इसीलिए डर लग रहा है, आगे होते तो यह आशंका तुम्हारे मन में भी जगह नही पाती। पहले तुम ग्रामीण समाज के प्रतीक थे, अब तुम उसीके एक आदमी हो। इसीलिए तुम्हारी यह रोशनी मलिन न होगी—वह दिन-दिन उज्ज्वल ही होगी।

अचानक चाची का नाम आने से रमेश उदीप्त हो उठा, बोला—अच्छा, तुम ठीक जानती हो रमा, मेरे दीप की यह शिखा अब बुझेगी नहीं?

रमा ने दृढ़ता से कहा—ठीक जानती हूँ। यह उन चाची का कहा है, जो सब जानती है। यह तुम्हारा ही काम है। मेरे यतीन को अपना कर, मेरे सारे कसूर माफ करके मुझे आशीर्बाद दो रमेश भैया कि मैं निश्चित होकर जा सकूँ।

बज्रगर्भ मेघ की तरह रमेश की छाती रह-रहकर कौंध-कौंध उठने लगी। लेकिन वह सिर नीचा किए चुप बैठा रहा। मेरी एक बात और रखनी होगी। कहो, रक्खोगे ?

रमेश ने धीमे से कहा—कौन-सी बात ?

रमा बोली—मेरी बात पर बड़े भैया से तुम कभी मत झगड़ना।

रमेश ने समझा नही। पूछा—इसका मतलब ?

रमा बोली—मतलब कि अगर कभी सुनने में आए, तो उस दिन सिर्फ यही समझना कि मैं किस तरह सब चुपचाप सहती गई, किसी की बात का प्रतिवाद नही किया। एक दिन जब असह्य हो उठा, तो चाची ने आकर कहा—बेटी, झूठ को मथ-कर जगाने से उसकी परमायु बढ जाती है। अपनी असहिष्णुता से उसकी आयु बढ़ाने जैसा पाप कम ही है। उनके इस उपदेश को मानकर मैं सभी दु.ख-दुर्भाग्य को झेल गई - तुम भी इसे कभी मत भूलना रमेश भैया।

रमेश चुपचाप उसका मुँह ताकता रहा। रमा जरा रुककर बोली—और मुझे क्षमा नही कर पा रहे हो, इसके लिए दुःख मत करना। मै जानती हूँ, आज जो कठिन लग रहा है. कभी वही सहज हो जायगा। उस दिन तुम मेरे सारे अपराध आसानी से माफ कर सकोगे, यह जानकर मेरे मन मे कोई क्लेश नही है। कल मै जा रही हूँ।

कल ! रमेश ने अचरज से पूछा—कहाँ जाओगी कल ?

चाची जहां ले जायेंगी, मैं वही जाऊँगी।

रमेश ने कहा सुनता हूँ, वे तो लौटेंगी नही।

रमा ने धीरे-धीरे कहा—मै भी नही। मैं भी तुम्हारे चरणों से विदा हो रही हूं।

यह कहकर उसने झुककर माटी से माथा लगाया। रमेश कुछ क्षण सोचता रहा और लंबा निश्वास छोडकर उठते हुए बोला—अच्छा, जाओ। लेकिन विदा ले क्यों रही हो, यह भी क्या नही जान पाऊँगा ?

रमा चुप रही। रमेश फिर बोला—क्यों जो अपनी सारी बात छिपाए चल दीं, तुम्हीं जानो। किन्तु मैं भी तन-मन से भगवान् से प्रार्थना करता हूँ, जिसमे हृदय से क्षमा कर सकूँ। तुम्हें क्षमा न कर पाने की मुझे क्या पीड़ा है, यह केवल मेरा अन्तर्यामी ही जानता है।

रमा की आंखों से झर-झर आँसू झरने लगे। लेकिन उस बहुत ही हलके प्रकाश में रमेश उसे देख न सका। रमा ने चुपचाप दूर से फिर एक बार उसको प्रणाम किया। रमेश बाहर चला गया। रास्ते में चलते-चलते उसे लगा, उसका भविष्य, उसके काम-काज का सारा उत्साह मानों पल में चांदनी-सा ही अस्पष्ट छायामय हो उठा।

दूसरे दिन रमेश जब इस घर में पहुँचा तो विश्वेश्वरी यात्रा करने सवार हो चुकी थीं। रमेश दरवाजे के पास मुंह ले जाकर रुँधे स्वर मे कसूर मे हमें इतनी जल्दी छोड़ चलीं चाची ?

दायां हाथ बढ़ाकर रमेश के माथे पर रखकर विश्वेश्वरी ने कहूं तो अन्त नहीं होने को बेटा ! रहने दो। उसके बाद बोलीं — तो वेणी मेरे मुंह में आग देगा। ऐसा हो तो मुझे मुक्ति नहीं तो जलते बीता ; कहीं परकाल भी ऐसे ही जल-जलकर मरूँ, इस रही हूँ रमेश !

जैसे सिर पर गाज गिरी हो, रमेश स्तब्ध हो रहा। इस एक वह चाची के कलेजे में पलती मां की पीड़ा को जैसा देख सका, ऐसा पाया था। कुछ समय चुप खड़ा रहकर बोला—रमा क्यों जा रही

विश्वेश्वरी ने मानो एक प्रबल वाष्पोच्छ्वास को जब्त कर लिया आवाज को धीमा करके कहा —संसार में उसके लिए जगह जो नही है वे उसे भगवान् के चरणों में लिए जा रही हूँ। वहां जाकर भी वह जिा नही जानती। लेकिन अगर जी सकी तो जीवन भर इसी समस्या के प्रार्थना करूँगी कि क्यों ईश्वर ने उसे इतना रूप, इतना गुण, इतना बड़ा संसार में भेजा और भेजा तो फिर बिना कसूर के माथे पर इतना बडा एक ब उसे संसार से बाहर फेंक दिया ! यह उनका ही कोई अर्थ-पूर्ण मंगल अभि या अपने समाज के ख्याल का खेल ! रमेश, उस जैसी दुखिया दुनिया में शायद दूर नहीं। कहते-कहते उनकी आवाज टूट पडी। इतनी व्याकुलता दिखाते उन्हें कभी किस ने नहीं देखा।

रमेश स्तब्ध होकर बैठा रह गया। थोडा ठहर कर विश्वेश्वरी बोलीं—लेकिन तुम पर मेरा एक आदेश रहा रमेश, तुम उसे कभी भूल मत समझना। जाते समय मैं किसीके खिलाफ कोई नालिश नहीं कर जाना चाहती, केवल मेरी इस बात को तुम भूलकर भी अविश्वास मत करना कि उससे ज्यादा तुम्हारा मंगल चाहने वाली कोई नहीं है।

रमेश कहने जा रहा था, लेकिन चाची—

टोक कर चाची ने कहा—कोई लेकिन नहीं रमेश। तुमने जो भी सुना है, सब झूठा है; जो जाना है, सब भूल है। लेकिन् इस अभियोग का जिसमें यही पर अन्त हो। तुम्हारा काम सभी अन्याय, सभी हिंसा-द्वेष को तुच्छ करते हुए सदा ऐसा ही प्रबल होकर बढ़ता जाय, यही आखिरी अनुरोध रहा उसका। इसीलिए वह मुँह [illegible] सब सहती गई है। वह जान देने को आमादा हो गई रमेश, पर बोली नहीं।

रात रमा ने जो कहा—दो-एक बातें याद करके एक बेताब रुलाई होठों तक उमड़ आई। झट अपना सिर झुकाकर उसने जी-जान से कह देना चाची, वही होगा—और हाथ बढ़ाकर किसी प्रकार उनके कर वह वहाँ से लपक कर निकल गया।

———



एक

महिम का परम मित्र था सुरेश। एक साथ एफ. ए. पास करने के बाद सुरेश जाकर मेडिकल कालेज में दाखिल हुआ; लेकिन महिम अपने पुराने सिटी कालेज में ही रह गया।

सुरेश ने रूठे-हुए-सा कहा--महिम, मैं बार-बार कह रहा हूं, बी. ए. एम. ए. पास करने से कोई लाभ न होगा। अभी भी समय है तुम्हें भी मेडिकल कालेज में भर्ती हो जाना चाहिए।

महिम ने हँसते हुए कहा—हो तो जाना चाहिए; लेकिन खर्च के बारे में भी तो सोचना चाहिए।

खर्च भी ऐसा क्या है कि तुम नही दे सकते? फिर तुम्हारी छात्रवृत्ति भी तो है।

महिम हंसकर चुप रह गया।

सुरेश ने अधीर होकर कहा—नहीं-नहीं, हँसी नहीं महिम और देर करने से न चलेगा, मैं कहे देता हूं, तुम्हें इसी बीच नाम लिखाना पडेगा। खर्च-वर्च की बाद में देखी जायगी।

महिम ने कहा—अच्छा।

सुरेश बोला—भई, तुम्हारा कौन-सा अच्छा ठीक है, कौन-सा नहीं, मै तो आज तक भी यह समझ नहीं पाया। मगर रास्ते में अभी तुमसे वायदा नही करा पाया, इसलिए कि मुझे कालेज को देर हो रही है। मगर कल-परसों तक जो भी चाहे इसका कोई किनारा करके ही रहूँगा मैं। कल सवेरे डेरे पर रहना, मैं आऊँगा। कह कर सुरेश तेजी से कालेज की तरफ चला गया।

कोई पंद्रह दिन बीत गए। कहाँ तो महिम और कहां उसका मेडिकल कालेज का दाखिला! एक दिन दोपहर को बडी दौड-धूप के बाद सुरेश एक गए-बीते-से छात्रावास मे पहुँचा। सीधे ऊपर चला गया। देखा, एक सीम-से अँधेरे कमरे में फटी चटाइयां डाले छः-सात लड़के खाने बैठे है। अचानक अपने दोस्त पर नजर पड़ते ही महिम ने कहा--अचानक डेरा बदलना पडा, सो तुम्हें खबर न दे पाया; पता कैसे लगाया?

सुरेश ने उसकी इस बात का जवाब नही दिया। वह धप्प से चौखट पर बैठ गया और एकटक उन सबके भोजन की तरफ देखता रहा। बड़ा ही मोटा चावल,

पानी-सी पतली जानें काहे की तो दाल, साग की डंठलों के साथ कंदे की तरकारी और उसी के पास भुने कोहड़े के दो-एक टुकड़े। दही नहीं, दूध नहीं, किसी तरह की मिठाई नहीं; किसी के पत्तल पर एक टुकड़ा मछली तक नहीं।

सबके साथ महिम खुशी-खुशी, बड़ी ही तृप्ति के साथ यही भोजन करने लगा। लेकिन देख-देख कर सुरेश की दोनों आंखें गीली हो आईं। मुंह फेर कर किसी कदर उसने अपने आंसू पोंछे और उठ खड़ा हुआ। महज मामूली-सी बात पर सुरेश की आंखों में आंसू आ जाते।

भोजन कर चुकने के बाद जब महिम ने उसे ले जाकर अपने साधारण-से बिस्तर पर बिठाया, तो रुंधे-स्वर में सुरेश बोला--बार-बार तुम्हारी ज्यादती बर्दाश्त नहीं होती महिम।

सुरेश ने कहा—मतलब कि ऐसा भद्दा मकान भी शहर में हो सकता है, इतना बुरा भोजन भी कोई आदमी कर सकता है, अगर आंखों नहीं देखता, तो यकीन नहीं कर सकता। खैर, जो भी हो, इस जगह की तुम्हें खोज ही कैसे मिली और तुम्हारा वह साबिक डेरा--जितना भी बुरा क्यों न हो चाहे, इससे तुलना ही नहीं हो सक्ती--उसे ही तुमने क्यों छोड़ दिया ?

मित्र के स्नेह ने मित्र के जी पर चोट पहुँचाई। महिम अपनी उस निर्विकार गंभीरता को कायम नही रख सका। आर्द्र स्वर में बोला—सुरेश, तुमने मेरा गांव वाला घर देखा ही नही, वरना समझ जाते कि यहां मुझे जरा भी तकलीफ नहीं हो सकती। रही भोजन की बात, सो भले घर के और-और लड़के जो भोजन मजे में खा सकते हैं, उसे मैं ही क्यों न खा सकूंगा ?

सुरेश तैश में आ गया, इसमें क्यों की बात ही नहीं। दुनिया में भली-बुरी चीजें बेशक हैं। भली भली ही लगती है और बुरी बुरी लगेगी, इसमें क्या शुबहा ? मैं सिर्फ यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हें इतनी तकलीफ उठाने की पड़ी क्या है ?

महिम चुपचाप हंसता रहा धीरे-धीरे, बोला नहीं।

सुरेश बोला—तुम्हारी जरूरत तुम्हारी रहे, मुझे जानने की जरूरत नहीं। लेकिन मेरी जरूरत है तुम्हें यहां से बचा ले चलना। मैं यदि तुम्हें यहां छोड़कर जाऊं तो मुझे नींद नही आएगी, खाना नही रुचेगा। मैं तुम्हारा सारा सरो-सामान अपने घर ले चलूंगा। यहां के नौकर से कहो—एक गाड़ी बुला दे। इतना कहकर सुरेश ने जबर्दस्ती महिम को उठाया और खुद उसका बिछौना समेटने लगा।

महिम ने रोक-थाम में उछल-कूद न की। शांत-गंभीर स्वर में बोला-पागलपन मत करो सुरेश।

नजर उठाकर सुरेश ने कहा—पागलपन कैसा ? तुम नहीं जाओगे ?

नहीं ।

क्यों नही जाओगे ? मैं क्या तुम्हारा कोई नही ? मेरे घर जाने से क्या तुम्हारा अपमान होगा ?

नही ?

फिर ?

महिम ने कहा—सुरेश, तुम मेरे मित्र हो । ऐसा मित्र मेरा और कोई नहीं । दुनिया में कितनों को है, यह भी नहीं जानता । इतने दिनों के बाद देह के जरा-से आराम के लिए मैं ऐसी चीज खो बैठूं, तुम क्या मुझे इतना बड़ा नादान समझते हो ?

सुरेश बोला—मिताई तुम्हारी अकेले की तो नहीं महिम । उसमें मेरा भी तो एक हिस्सा है । यदि वह खो जाय तो कितना बड़ा नुकसान होगा, यह समझने का शहूर मुझ में नहीं—मैं क्या इतना बेवकूफ हूँ ? फिर इतना सतर्क-सावधान, इतना हिसाब-किताब रखकर न चलने से अगर वह नही रह सकती, तो जाय क्यों न महिम ! ऐसी क्या उसकी कीमत कि उसके लिए अपने आराम की उपेक्षा करनी होगी ?

महिम ने हँसकर कहा—नहीं अब हार गया । लेकिन एक बात तैशुदा समझो सुरेश, तुम्हारा ख्याल है, मैं शौकिया यहां दुःख झेलने आया हूं, यह सही नहीं है ।

सुरेश बोला—न सही । मैं कारण भी नहीं जानना चाहता—लेकिन अगर तुम्हारी नीयत रुपया बचाने की है, तो मेरे घर चलकर रहो न—इसमें तो तुम्हारा इरादा मट्टी न होगा ।

महिम ने गर्दन हिलाकर संक्षेप में कहा—अभी छोड़ो सुरेश ! सच ही अगर तकलीफ होगी, तो तुम्हें बताऊँगा ।

सुरेश को मालूम था कि महिम को उसके संकल्प से डिगाना असंभव है । उसने जिद नहीं की और एक प्रकार से नाराज होकर ही चला गया । लेकिन दोस्त के रहने-खाने का यह हाल देखकर उसके जी में सुई चुभती रही ।

सुरेश धनी का लड़का था और महिम को वह अकपट प्यार करता था । उसकी दिली खाहिश थी, किसी तरह वह दास्त के किसी काम आए । लेकिन कभी भी वह महिम को मदद लेने को राजी न कर सका, आज भी न कर सका ।

दो

पांचेक साल बाद दोनों में बातें हो रही थीं।

तुम पर मुझे कितनी श्रद्धा थी, मैं कह नहीं सकता महिम।

कहने को तुम्हें मैं तंग तो कर नहीं रहा हूँ सुरेश।

वह श्रद्धा अब शायद न रहने की।

न रहे तो मैं सजा दूँगा, ऐसी धमकी तो नही दी है कभी।

तुम्हारा बड़ा से बड़ा दुश्मन भी तुम पर कपट का इलजाम नही लगा सकता।

दुश्मन नहीं लगा सकता, इसलिए मित्र भी नहीं लगा सके, दर्शन-शास्त्र का ऐसा अनुशासन तो नही।

तौबा कहो, आखिर को एक ब्राह्म लड़की के पाले पड़ गए ? है क्या उसे ? सूखी लकड़ी-सा चेहरा, किताबें रटते-रटते बदन में एक बूँद खून का नाम नही। ठेल दो तो डर है, आधी देह अलग हो रहे—आवाज तक ऐसी चीं-चीं की सुनने से नफरत हो आती है।

बेशक हो आती है।

सुनो महिम, मजाक अपने देहाती लोगों से करो, जिन्होंने आंखों कभी ब्राह्म की लड़की देखी नही। जो यह सुनकर दंग रह जाते हैं कि लड़की होकर अंग्रेजी में पता लिख सकती है—जिनके जाने से वे बाअदब दूर खड़े हो जाते हैं। अचरज से अवाक् अपने उन गांव वालों को करो जाकर, जो देव-देवी समझ कर इनके आगे सिर नवाते हैं। मगर हम लोगों का घर तो गांव में नहीं, हमारी आँखों में तो इस आसानी से धूल नहीं झोंका जा सकता।

मैं तुम से शपथ खाकर कहता हूँ सुरेश, तुम्हारे शहर वालों को ठगने का अपना कोई इरादा नही। मैं उन्हें लेकर अपने गांव में ही रहूँगा। इसमें तो तुम्हें कोई एतराज नही ?

सुरेश रंज होकर बोल उठा—नही है ? सौ, हजार, लाख, करोडों एतराज है। सारी दुनिया के पूज्य हिन्दू की संतान होकर तुम क्या तो एक औरत के मोह में जात गँवाओगे ? मोह ! एक बार उनके जूते-मौजे उतारकर अपनी गृहलक्ष्मियों की पुशाक पहना कर देखो तो सही, मोह जाता रहता है या नहीं ! है क्या उसे ? कर क्या सकती है वह ? खैर, सिलाई-बुनाई की ही तुम्हें जरूरत है, तो कलकत्ते में दर्जियों की क्या कमी ? किसी खत पर पता लिखाने के लिए तो तुम्हें ब्राह्म लड़की

की शरण नही लेनी है। वक्त-बेवक्त वह क्या कूट-पीसकर तुम्हें दो मुट्ठी खिला भी सकेगी ? बीमार होने पर सेवा करेगी ? इसकी शिक्षा मिली है उन्हें ? ईश्वर न करें, मगर ऐसे आड़े वक्त वह तुम्हे छोड़ कर चली न आए तो सुरेश के बदले जी चाहे जिस नाम से मुझे पुकारना, दुःख न मानूँगा।

महिम चुप रहा। सुरेश फिर कहने लगा, महिम, तुम तो जानते हो कि मंगल के सिवा मै तुम्हारा अमंगल नही चाह सकता। भूल कर भी नही। मैंने बहुतेरी ब्राह्म महिलाएँ देखी है ! दो-एक अच्छी भी नहीं देखी, ऐसी बात नही। लेकिन अपने हिन्दू घर की महिलाओं से उनकी तुलना ही नही हो सकती। ब्याह करने का ही जी हो आया था, तो मुझसे कहा क्यो नही ? खैर हुआ सो हुआ, अब तुम्हे वहा जाने की जरूरत नही। मैं वचन देता हूं कि महीने भर के अन्दर तुम्हे ऐसी लड़की ढूँढ़ दूँगा कि जीवन में कभी दुःख उठाना ही न होगा; अगर ऐसा न कर सकूँ तो जी चाहे सो करना - इसीके पैरो सिर पीटना, मैं कुछ न बोलूँगा। मगर एक महीना धीरज रखकर अपनी अब तक की मिताई की मर्यादा तुम्हे रखनी ही होगी। कहो, रक्खोगे ?

महिम पहले-सा ही मौन रहा। हां-ना कुछ न बोला—लेकिन दोस्त के भले के लिए दोस्त किस कदर बेचैन हो उठा है, यह पूरी तरह समझ सका।

सुरेश बोला जरा सोच तो देखो सही, तुमने जब ब्राह्म मन्दिर मे जाना-आना शुरू किया था, तो मैंने मना नही किया था तुम्हे ? इतने बड़े कलकत्ता शहर मे तुम्हारे लिए कोई हिन्दू-मन्दिर था ही नही कि इस कपट की जरूरत हुई ? मैंने तभी समझा था कि ऐसे मे किसी न किसी विडवना मे जरूर जकड़ जाओगे।

अबकी महिम जरा हँसकर बोला—सो समझा होगा, लेकिन मैंने तो ऐसा नही समझा था कि मेरे जाने में कोई कपट था। लेकिन एक बात पूछूँ, तुम तो भगवान तक को नही मानते फिर हिन्दुओं के देवी-देवता को मानोगे। मैं ब्राह्म-मन्दिर में जाऊँ या हिन्दू-मन्दिर मे, इससे तुम्हारा क्या आता-जाता है !

रमेश ने जोश मे कहा—जो नही है, मैं उसे नहीं मानता। भगवान् नहीं है। देवी-देवता झूठी बात है। लेकिन जो है, उससे तो इन्कार नही करता। समाज को मैं श्रद्धा करता हूँ, आदमी की पूजा करता हूँ। मैं जानता हूँ कि मनुष्य की सेवा ही मानव-जन्म की चरम सार्थकता है। हिन्दू परिवार में पैदा हुआ हूँ तो हिन्दू-समाज की रक्षा करना ही अपना काम है। मैं मरते दम तक तुम्हे ब्राह्म-घर मे विवाह करके उसकी जमात बढ़ाने नहीं दूँगा। तुमने क्या वचन दिया है कि केदार मुखर्जी की बेटी से ब्याह करोगे ?

नहीं। जिसे वचन देना कहते हैं, वह अभी नहीं दिया है। नहीं दिया है न ! ठीक है। तो फिर चुपचाप बैठे रहो। मैं इसी महीने में तुम्हारा विवाह कराऊँगा।

मैं ब्याह करने के लिए पागल हो गया हूँ, यह किसने कहा—तुमसे ? तुम भी चुप बैठो जाकर, और कहीं ब्याह करना मेरे लिए असंभव है।

क्यों. असंभव क्यों ? किया क्या है ! उससे प्रेम कर बैठे हो ?

इसमें अचरज क्या है ! मगर इस भद्र महिला के बारे में सम्मान के साथ बात बोलो सुरेश।

सम्मान के साथ बोलना मुझे आता है। सिखाना नहीं पड़ेगा। मैं पूछ सकता हूँ कि उन भद्र महिला की उम्र क्या होगी ?

नहीं जानता।

नहीं जानते ? बीस, पच्चीस, तीस, चालीस, या और भी ज्यादा—कुछ नही जानते ?

नहीं।

तुमसे छोटी है या बड़ी, शायद यह भी नही जानते ?

नही।

जब उन्होंने तुमको फंदे में फँसाया है तो नन्ही-नादान तो नही है, ऐसा सोचना असंगत न होगा। क्या ख्याल है ?

नहीं। तुम्हारे लिए कोई असंगत नही। लेकिन मुझे कुछ काम है सुरेश, मैं ज ा बाहर जाना चाहता हूं।

सुरेश ने कहा—ठीक तो है, मुझे भी कोई काम नहीं है महिम, चलो, तुम्हारे साथ जरा घूम आएं।

दोनों मित्र निकल पड़े। कुछ देर चुपचाप चलते रहने के बाद सुरेश ने धीरे-धीरे कहा—आज इच्छा करके ही मैंने तुम्हे बाधा दी, शायद यह समझाकर कहने की जरूरत नही ?

महिम ने कहा—नही।

सुरेश ने वैसे ही मृदु स्वर मे कहा—आखिर वाधा क्यों दी ?

महिम हँसा। बोला—पहली बात अगर बिना समझाए ही समझ सका तो आशा है, इसे भी समझाना न होगा।

उसका एक हाथ सुरेश के हाथ में था। सुरेश ने गीले मन से उसे जरा दबाकर कहा—नही महिम, तुम्हें समझाना नहीं चाहता। संसार में और सब मुझे गलत समझ सकते हैं, तुम मुझे गलत नहीं समझोगे। फिर भी आज मैं तुम्हारे मुंह पर सुना देना चाहता हूँ कि मैने तुम्हें जितना प्यार किया है, तुमने मुझे उसका आधा भी नही

किया। तुम परवाह चाहे न करो, पर मैं तुम्हारी जरा-सी तकलीफ भी कभी सह नहीं सकता। बचपन में इसी पर हमारी कितनी लड़ाई हुई है, सोच देखो। इतने दिनों के बाद जिसके लिए तुम मुझे भी छोड़ रहे हो महिम, अगर निश्चित जानता कि उन्हें पाकर जीवन में सुखी होगे, तो सारा दुःख मैं हँसकर सह लेता, कभी एक शब्द नहीं कहता।

महिम बोला—उनको पाकर सुखी शायद न हो सकूँ, मगर तुम्हें छोड़ दूँगा, यह कैसे जाना ?

तुम छोड़ो न छोड़ो, मैं तुम्हें छोड़ दूँगा।

लेकिन क्यों ? मैं तुम्हारा ब्राह्म मित्र भी तो हो सकता था ?

नहीं। हर्गिज नहीं। ब्राह्म को मैं फूटी आँखों भी नहीं देख सकता। मेरा एक भी ब्राह्म दोस्त नहीं।

उन्हें देख क्यों नहीं सकते ?

बहुत-से कारण हैं इसके। एक यह कि जो हमारे समाज को बुरा बताकर छोड़ गये, उन्हें अच्छा मानकर मैं हर्गिज पास नहीं खीच सकता। तुम्हें तो पता है, अपने समाज के लिए मुझे कितनी ममता है। उस समाज को जो देश के, विदेश के सबके सामने बुरा साबित करना चाहता है, उसकी अच्छाई उसीकी रहे, वह मेरा शत्रु है।

महिम मन ही मन असहिष्णु होता जा रहा था; अच्छा तो अब क्या करने को कहते हो तुम ?

सुरेश बोला—वही तो शुरू से लगातार कह रहा हूँ।

खैर, एक बार फिर कहो।

जैसे भी हो, इस युवती का मोह तुम्हें छोड़ना ही पड़ेगा—कमसे कम एक महीना तुम उससे मिल नहीं पाओगे।

मगर उससे भी न छूटे तो ? यदि मोह से भी बड़ा कुछ हो ?

सुरेश ने जरा देर सोचकर कहा –वह सब मैं नहीं समझता महिम। मैं समझता हूँ कि मैं तुम्हे प्यार करता हूँ और उससे भी ज्यादा प्यार करता हूँ अपने समाज को। हां: एकबार सोच देखो. छुटपन में चेचक हुआ तुम्हें, वह बात और नाव डूब जाने से हम मुंगेर में गंगा में डूब रहे थे ! भूली बात की याद दिलाई, इसके लिए मुझे माफ करना महिम। मुझे और कुछ नहीं कहना, मैं चला। और अचानक वह पीछे मुड़कर तेजी से चला गया।

*

तीन

सुरेश के बदन मे एक ओर जितनी ही ज्यादा ताकत थी, दूसरी ओर उतना ही कोमल था उसका मन, उतना ही स्नेहशील। जाने-अजाने किसी के भी दुःख-कष्ट की बात सुनकर उसे रोना आता। छुटपन में वह एक मच्छड़-मक्खी तक को नही मार सकता था। जैनियों की देखा-देखी कितनी ही बार जेब में चीनी-सूजी लिए स्कूल से गैरहाजिर हो पेड़ों तले घूम-घूम कर चीटियों को खिलाया करता था। मछली-मांस खाना उसने कितनी बार छोड़ा और पकड़ा इसका हिसाब नही। जिसे चाहता, उसके लिए कैसे क्या करे, सोच नही पाता। स्कूल में अपने दर्जे में महिम सबसे अच्छा लड़का था। लेकिन उसके बदन पर फटे-चिटे कपडे, पैरों का जूता फटा-पुराना, दुबला शरीर, सूखा चेहरा—यही सब देख-सुनकर सुरेश पहले उसकी ओर आकृष्ट हुआ था। और, थोड़े ही दिनों में दोनों का यह आकर्षण बाढ़ के पानी की तरह इतना बढ़ उठा कि विद्यालय भर के लड़कों की चर्चा का विषय बन बैठा। महिम को छात्रवृत्ति मिली थी और उन्हीं चार रुपयों के भरोसे वह कलकत्ते आया तथा गांव के एक मोदी का दूकान में रहकर स्कूल में दाखिल हुआ। तभी से सुरेश ने दोस्त को अपने घर लाने की हर कोशिश की, मगर उसे हर्गिज राजी न करा सका। वहीं रहकर कभी भूखा, कभी अधपेटा रहकर महिम ने एंट्रेंस पास किया। बाद की घटना पहले बताई जा चुकी है।

उस दिन से हफ्ता भर महिम से भेंट न हो सकने के कारण सुरेश उसके डेरे पर गया। किसी त्योहार के कारण आज स्कूल-कॉलेज बन्द थे। वहां जाने पर पता चला, महिम सुबह ही जो निकला है, सो अभी तक नही लौटा। सुरेश को संदेह नहीं रहा कि वह छुट्टी का दिन बिताने के लिए पटलडागा के केदार मुखर्जी के यहाँ ही गया है।

जो बेहया दोस्त आशैशव मिताई की सारी मर्यादा को एक मामूली औरत के मोह से विसर्जन देकर सात दिन भी धीरज नही रख सका—दौड़ा गया, पलक मारते उसके खिलाफ विद्वेष की आग अचानक आग लग जाने सी उसके जी में जल उठी। उसने जरा देर विचार भी न किया, गाड़ी पर बैठ गया और कोचवान को सीधे पटलडांगा चलने को कहा—मन ही मन कहने लगा, अरे बेहया, अरे अहसान-फरामोश ! अपना जो प्राण इस औरत को सौप कर तू धन्य हो गया है, तेरा वह

प्राण रहता कहाँ ? अपने प्राण की कतई परवा न करके जिसने तेरे उस प्राण को दो-दो बार बचाया , उसका क्या जरा भी सम्मान नही रखना था ?

केदार मुखर्जी के घरवाली गली सुरेश को मालूम थी, थोड़ी-सी पूछ-ताछ के बाद ही गाड़ी ठीक जगह पर पहुँच गई। उतरकर सुरेश ने बैरे से पूछा और सीधे ऊपर के बैठके में जा पहुँचा। फर्श पर बिछाई गई तकिए के सहारे लेटे हुए एक बूढ़े-से सज्जन अखबार पढ़ रहे थे। उन्होंने उसकी तरफ ताका। नमस्कार करके सुरेश ने अपना परिचय दिया। मेरा नाम सुरेश बंधोपाध्याय है। मैं महिम के बचपन का साथी हूँ।

बूढ़े ने नमस्ते किया। चश्मे को मोड़कर रखते हुए बोले—बैठिए। सुरेश बैठ गया। बोला—महिम के डेरे पर गया तो पता चला, वह यहीं है, सो सोचा, इसी बहाने आपसे भी परिचित हो लूँ।

बूढ़े ने कहा—मेरा परम सौभाग्य - आप पधारे। लेकिन महिम दस-बारह दिनों से इधर नही आए। आज सुबह हम लोग सोच रहे थे, जानें किस हालत में हैं वे ?

सुरेश मन ही मन जरा चकित होकर बोला—लेकिन उनके डेरे पर तो बताया—

बूढ़े ने कहा—और कही गए हों शायद। खैर, अच्छे है सुनकर राहत मिली।

आते-आते राह में सुरेश ने जो सब उद्धत संकल्प किया था, बूढ़े के सामने आकर उन्हें ठीक न रख सका। उनके शांत मुखड़े की धीर-मृदु बातों ने उसके मन की आंच को शीतल कर दिया। फिर भी वह अपने कर्त्तव्य को भी न भूला। अपने मन ही मन यह कहकर वह अपने को उत्तेजित करने लगा कि ये जितने भी भले क्यों न हों, हैं तो ब्राह्म ही ! लिहाजा इनका सारा शिष्टाचार ही बनावटी है। ये अबोधों को इसी तरह से फुसलाकर अपना उल्लू सीधा किया करते हैं। सो इन शिकारियों के सामने हथियार डालकर काम को भुलाने से नहीं चल सकता—जैसे भी हो, इनके जबड़े से दोस्त को निकालना ही पड़ेगा। उसने काम की बात शुरू की। बोला--महिम मेरा बचपन का साथी है। ऐसा-दूसरा दोस्त नहीं मेरा। अगर इजाजत दें तो उसके बारे में आपसे दो-एक बात करूँ।

बूढ़े ने हँसकर कहा—बखूबी। मैंने उनसे आपका नाम सुना है।

सुरेश ने पूछा—महिम से आपकी लड़की की शादी तै पा गई ?

उन्होंने कहा—तै ही समझिए।

सुरेश ने कहा—लेकिन महिम तो ब्राह्म समाजी नहीं है, फिर भी ब्याह करेंगे आप ?

बूढ़े चुप हो रहे। सुरेश ने कहा—खैर, यह बात अभी छोड़िए। परन्तु उसकी अवस्था कैसी है, बीवी-बच्चों के गुजर-बसर की जुर्रत है या नहीं, गांव में विरोधी हिन्दू-समाज के बीच कच्चे घर मे आपकी लड़की रह सकेगी या नहीं और कहीं न रह सके तो महिम क्या करेगा, यह सब सोच देखा है आपने ?

बूढ़े केदार मुखर्जी उठ बैठे। बोले—नहीं तो। मैंने तो यह सब सुना नही। महिम ने कभी तो यह सब नहीं कहा ?

सुरेश बोला—लेकिन मैंने यह सब सोचा है, महिम से कहा—है और वही अप्रिय प्रसंग उठाने के लिए मैं आपके पास आया हूँ आज। अपनी लड़की की आप सोचें, अगर मेरे परम मित्र जो ऐसी एक जिम्मेदारी कंधे पर उठाकर बेहद बोझ से सदा अधमुए से रहेंगे, यह तो मैं हर्गिज न होने दूँगा।

केदार बाबू का चेहरा फख हो नया। बोले—आप कह क्या कर रहे है सुरेश बाबू ?

पिताजी ?—सत्रह-अट्ठाहर साल की एक लड़की अचानक कमरे में आकर पिता के पास किसी अजाने युवक को बैठा देख ठक् रह गई।

कौन ? अचला ? आओ बिटिया, बैठो। शर्म कैसी, ये अपने महिम के गहरे मित्र हैं।

वह लड़की आगे बढ़ आई। हाथ उठाकर सुरेश को नमस्ते किया। सुरेश ने देखा, चमकता सांवला रंग, छरहरा वदन। गाल, ठोड़ी, कपाल—सारे मुख की बनावट ही बहुत अच्छी और सुकुमार। आंखों की निगाह में जरा स्थिर बुद्धि की आभा। नमस्ते करके वह करीब ही बैठ गई। उसको देखकर सुरेश मुग्ध हो गया। उसके पिता बोले—महिम के बारे में सुना तुमने ? हम सोच रहे थे, वह आ क्यों नहीं रहा है ? सुन लो ! परम बन्धु है उसके, जभी तो ये आए, नहीं तो क्या होता, कहो तो ? किसे पता था कि वह ऐसा विश्वासघाती है, इतना बड़ा मक्कार। गांव में उसको महज एक फूस का घर है। वह तुम्हें खिलाएगा क्या, उसे तो खुद ही खाना-कपड़ा का ठिकाना नही। ओः कितना खतरनाक ! ऐसे आदमी के मन में भी इतना जहर था !

सुनकर अचला का चेहरा पीला पड़ गया, लेकिन किसने तो सुरेश के मुँह पर भी कालिख पोत दी। वह उस लड़की की ओर अवाक् देखता हुआ काठ के पुतले-सा बैठा रह गया।

चार

सुरेश को लगा, उसका निष्ठुर सत्य अचला के कलेजे में गहरा बिंध गया। लेकिन पिता ने उसका ख्याल तक न किया। बल्कि बेटी को ही इशारा करके कहने लगे, सुरेश बाबू, आप सच्चे मित्र का कर्त्तव्य करने आए है, हम जिससे भ्रम में भी इस पर अविश्वास न करें। यह कठोर है, अप्रिय हो, पर सच्चा प्रेम यही है। मां जब बीमार बच्चे को खाना नहीं देती, तो वह क्या उसे बेरहमी नहीं लगती ? लेकिन फिर तो उसे वह काम करना ही पडता है ! सच कह रहा हूँ सुरेश बाबू ! महिम हमारे ऊपर ऐसा जुल्म कर सकते हैं, यह हमने स्वप्न में भी न सोचा था। दो साल पहले उनके बात-व्यवहार से मुग्ध होकर मैंने खुद ही घर बुलाकर अचला से उनका परिचय कराया, उसका यही बदला ! उफ्, इतनी बडी प्रवंचना अपने जीवन में मैंने नहीं देखी ! अन्दर के आवेग से खड़े होकर केदार बाबू कमरे में पायचारी करने लगे। सुरेश और अचला सिर झुकाए चुप बैठे रहे। केदार बाबू सहसा ठिठककर बोल उठे, नही बिटिया, यह नहीं होने का। हर्गिज नहीं। सुरेश बाबू, आप जैसे सबके ऊपर कर्त्तव्य को ही रखकर मित्र का काम करने आए है, वैसे मैं भी कर्त्तव्य को ही सामने रखकर पिता का काम करूँगा। अचला से महिम का सम्बन्ध जितना आगे बढ़ गया है, ऐसे में बिना सबूत के अगर उसके लिए घर का दरवाजा बन्द करदें, तो ठीक नहीं होगा। इसीलिए एक बार सबूत चाहिए। आप यह न सोचें सुरेश बाबू कि आपकी बात पर यकीन नहीं किया, लेकिन यह भी अपना कर्त्तव्य है। क्यों बिटिया ! सबूत लेना ठीक है या नहीं ?

दोनों ही चुप बैठे रहे, उचित-अनुचित, कोई राय किसी ने जाहिर नहीं की। जरा देर रुककर ही केदार बाबू बोले, लेकिन सबूत का भार आप पर ही रहा सुरेश बाबू। महिम की माली हालत की बात तो दूर रही, उसका घर किस गांव में है, हम यही नहीं जानते।

बैरे ने खबर दी, नीचे विकास बाबू खड़े है।

सुनकर केदार बाबू सूख-से गए। बोले, आज तो उनके आने की बात न थी। अच्छा कहो, उनसे मैं आ रहा हूँ। पलटकर बोले—मुझे पांचेक मिनट के लिए माफ करना होगा सुरेश बाबू, मैं इस आदमी को रुखसत कर आऊँ। जब आ गया है, तो मिले बिना तो जायगा नहीं बिटिया अचला, सुरेश बाबू को अपना परम हितैही

समझना। जो जानना चाहो, इनसे जान लो। मैं अभी आया। कहकर वे नीचे उतर गए।

एक दूसरे को देखकर दोनों ने सिर झुका लिया। जरा देर चुप रहकर सुरेश ने धीरे-धीरे कहा—मैं महिम का छुटपन का साथी हूँ लेकिन उसके व्यवहार से आप लोगों के सामने मेरा सिर नीचा हो गया है।

अचला ने धीमे से कहा—इसके लिए आप को लज्जित होने का कोई कारण नहीं।

सुरेश बोला—कहती क्या हैं आप! उसकी इस मक्कारी से; ऐसे पाखंड व्यवहार से दोस्त के नाते मैं शर्मिंदा न होऊँ तो कौन हो, कहिए। लेकिन तभी तो मुझे सोचना चाहिए था कि जब उसने मुझी से शुरू से आखिर तक छिपाया, तब इसके अन्दर जरूर कोई गड़बड़ है।

अचला ने कहा—असल में हम ब्राह्म समाजी है। आप इस समाज के किसी से कोई संपर्क नहीं रखना चाहते, शायद इसीलिए उन्होंने आप से जिक्र न किया हो।

बात सुरेश को अच्छी न लगी। अचला उसीके सामने महिम का दोष काटना चाहेगी, यह उसने नहीं सोचा था। सूखे कंठ से पूछा—यह बात आपने महिम से सुनी होगी शायद।

अचला ने सिर हिलाकर कहा—जी हां, उन्होंने ही कहा था।

सुरेश ने कहा—देखता हूँ, मेरे दोष को कहना वह भूला नहीं।

अचला जरा फीका हँसकर बोली—यह दोष की क्या बात है? हर आदमी की प्रवृत्ति एक नहीं होती। जो लोग आप लोगों से नाता तोड़कर चले गए है, वे अगर आपको अच्छे न लगें तो इसमें मैं कोई दोष नहीं मानती।

यह बात सुरेश के मन लायक थी, और, कहीं और सुनकर वह शायद उछल उठता, लेकिन इस मितभाषिणी ब्राह्म युवती के मुह से ब्रह्मसमाज पर अपनी वितृष्णा की बात सुनकर आज उसमें जरा भी आनंद का उदय नहीं हुआ। वास्तव में इस दलबंदी की मीमांसा सुनने के लिए उसने बात कही भी न थी। बल्कि जवाब में उसने यह सुनना चाहा था कि महिम से उसने उसके सद्गुण का और विवरण सुना है या नहीं; अचला शायद उसकी इस गोपन अभिलाषा को ताड़ नहीं सकी, इसीलिए सवाल का सीधा जवाब देकर ही वह चुप हो गई।

सुरेश कुढ़कर बोला—आप लोगों से मुझे सामाजिक चिढ़ है या नही, यह चर्चा महिम करे, लेकिन उसपर मुझे जरा भी विद्वेष नहीं है, यह आप मुझसे सुनकर भी अविश्वास न करें। फिर भी शायद मैं उसकी दुनियादारी की बात करने यहां नहीं आता, अगर उस दिन वह मुझसे सच्ची बात नहीं छिपाता।

सुरेश के मुँह पर स्थिर दृष्टि रखकर अचला ने कहा—लेकिन झूठ तो वे नहीं बोलते।

अबकी सुरेश सचमुच ही अचरज से हत-बुद्धि हो गया। एक औरत के मुँह से ऐसा शांत लेकिन दृढ़ प्रतिवाद भी निकल सकता है, जरा देर वह सोच ही न सका। लेकिन जरा ही देर के लिए। जीवन में उसने संयम नहीं सीखा। सो दूसरे ही क्षण रूखे स्वर में बोल उठा—मुझे माफ करें, वह मेरा बाल्य-बंधु है। आपसे मैं उसे कुछ कम नहीं जानता। अपने को यहां फँसाकर साफ इनकार करने को मैं सत्य-वादिता नहीं कह सकता।

अचला ने वैसे ही शांत स्वर में कहा—उन्होंने तो अपने को यहां आवद्ध नहीं किया।

सुरेश ने कहा—आपके पिताजी ने तो यही कहा। इसके सिवा अपनी गई-बीती हालत को आप लोगों से छिपाने को भी सत्यप्रियता नहीं कह सकते। बाल-बच्चों के भरण-पोषण की असमर्थता औरों से न सही, आपसे तो खोलकर कहना चाहिए था।

अचला चुप रही। सुरेश कहने लगा—आप जो उसकी भूल को ढकने की इतनी कोशिश कर रही हैं, आप ही बताएं भला, सारी बातें पहले मालूम हो जातीं तो उसे इतनी तरह आप दे सकतीं ?

अचला चुप ही रही। उससे कोई जवाब न पाकर सुरेश और भी जोश में आकर कहने लगा—उसने मेरे सामने साफ़ क़बूल किया कि कलकत्ते में आपको रखने की न तो उसे जुर्रत है, न इरादा। अपने उस छोटे से गांव में बिल्कुल विरोधी हिंदू-समाज में एक कच्चे घर में आपको ले जाकर रक्खेगा, यह बात क्या उसे आपसे बता नहीं देनी चाहिए थी ? इतना दुःख उठाने को आप तैयार हैं या नहीं, यह पूछना भी क्या उसने जरूरी नहीं समझा ?—उसने आंखें उठाईं। देखा, अचला चिंतित-सी सिर झुकाए बैठी है। जवाब न मिलने पर भी सुरेश समझ गया कि उसकी बात ने काम दिया है। बोला—देखिए, आपसे इस समय मैं सच ही कहूँगा। आज मैं सिर्फ अपने मित्र को बचाने का ही संकल्प लेकर आया था—वह किसी आफत में न पड़े, यही अपना उद्देश्य था। लेकिन यहां आकर देखता हूँ कि उसके बजाय आपको बचाना ही मेरा कहीं बड़ा कर्त्तव्य है। क्योंकि उसकी मुसीबत हैं मोल ली हुई, मगर आप अँधेरे में कूद रही हैं। अभी-अभी जब आपके पिताजी सबूत की जिम्मेदारी मुझी पर सौंप रहे थे, तो जी में आया था कि यह भार मैं न लूंगा। परंतु अब देखता हूं कि यह भार मुझे लेना ही पड़ेगा, नहीं तो अन्याय होगा।

अचला बोली—लेकिन सुनकर वे क्या दुःखी न होंगे ?

सुरेश बोला—मगर उपाय नहीं है। जिसने पाखंड की नाई आपसे इतनी बड़ी प्रवंचना की है, मित्र होते हुए भी उसकी फिक्र करने की मैं जरूरत नहीं समझता। मगर मुसीबत तो यह है कि मैं उसके गाँव का नाम भी नहीं जानता। किसी तरकीब से अगर वह जान पाई आज, तो सुबह ही वहाँ जाऊँगा और सारे सबूत आपके पिताजी को देकर मित्र के पाप का प्रायश्चित करूँगा।

अचला ने कहा—लेकिन इतनी तकलीफ आप क्यों उठाएँ? पिताजी से कहिए, अपने किसी विश्वासी आदमी को भेजकर सब पता कर लें। चौबीस परगने का राजपुर ग्राम कौन ज्यादा दूर है?

सुरेश ने अचरज से कहा—राजपुर! गांव का नाम तो आप जानती हैं, देख रहा हूँ! और भी कुछ मालूम है?

अचला ने सहज भाव से कहा—आपने जो कुछ कहा, मैं भी उतना ही जानती हूँ। राजपुर के उत्तर टोले में मिट्टी का एक घर है। अंदर तीनेक कमरे, बाहर चंडीमंडपा उसीमे गांव की पाठशाला बैठती है।

सुरेश ने पूछा—उसकी सांसारिक अवस्था?

अचला बोली—उसके बारे मे भी आपने जो कहा, वही। नाम को जायदाद है। किसी तरह दुःख कष्ट से रोटी भर चल जाती है।

सुरेश ने कहा—तब तो आप सब जानती है, देखता हूँ।

अचला बोली—इतना ही जानती हूँ, एक दिन इतना ही उनसे पूछा था। और आप तो जानते हैं, वे कभी झूठ नहीं कहते।

सारा चेहरा स्याह करके सुरेश बोला—जब सारा कुछ मालूम ही है, फिर तो आप लोगों को सचेत करने के लिए मेरा आना बड़ा वैसा हुआ। देख रहा हूँ, उसने आपको धोखा नहीं देना चाहा।

अचला ने कहा—मुझे कुछ-कुछ मालूम है, मगर आप तो मुझे बताने को आए नहीं हैं; जिन्हें बताने आए हैं, वे अभी तक कुछ भी नहीं जानते। आप कहें तो मैं जितना भर जानती हूँ, पिताजी को बता दूं?

सुरेश ने उदास होकर कहा—आपकी मर्जी। लेकिन मुझे महिम की सब कुछ बताकर उससे माफी मांगनी होगी। तब मुझे कहीं चैन मिलेगी।

अचला ने पूछा—इसकी भी कोई जरूरत है क्या?

सुरेश फिर उत्तेजित हो उठा। बोला—जरूरत नहीं है? अनजाने उस पर जो झूठी तोहमत मैंने लगाई है, यह मेरा कितना बड़ा अपराध है, यह क्या आपने नहीं समझा? उसे मक्कार, झूठा—कुछ भी कहना न छोड़ा—ये बातें उसके आगे कबूल किए बिना त्राण कैसे मिलेगा?

अचला जरा देर चुप रहकर धीरे-धीरे बोली...बल्कि मेरा कहा मानिए, इसकी कोई जरूरत नहीं सुरेश बाबू ! मन ही मन माफी मांगने के बजाय ज़ाहिर में माफी मांगना ही बड़ी चीज है, यह मैं नहीं मानती। सुनते ही जब उन्हें पीड़ा पहुँचेगी तो बताने से क्या लाभ ? मैं बल्कि पिताजी को भी मना कर दूंगी कि वे आपकी बात उन्हें न बतायें।

सुरेश ने कहा—अच्छा ! कुछ देर चुपचाप अचला की ओर देखते रहकर बोला—मैं एक बात बराबर गौर करता आ रहा हूँ कि आपकी कोशिश यही है कि महिम को किसी भी वजह से चोट न पहुँचे। खैर, वही सही। मैं उससे कुछ भी न कहूँगा। उसके बारे में आज मेरे मन में जितनी बातें आईं, वह भी नहीं कहना चाहता, पर एक बात आपसे कहे बिना मैं हर्गिज नहीं जा सकता।

अचला ने स्निग्ध दृष्टि से देखकर कहा—ठीक है, कहिए।

सुरश बोला—उससे माफी न मांग पाया, पर आपसे मांग रहा हूँ। मुझे माफ करें। कहकर उसने हाथ जोड़ लिए।

छिः छिः यह क्या कर रहे हैं आप ! कहकर अचला ने उसके हाथ पकड़ लिए और झट उन्हें छोड़कर कहा—यह कैसा अन्याय, कहिए तो ! कहते-कहते उसका चेहरा शर्म से तमतमा उठा।

सुरेश के सारे बदन के रोएँ खड़े हो आए। इस अनोखे स्पर्श, सलज्ज मुख की अमूठी लाल आभा ने लमहे में उसे एक बारगी बेबस बना दिया। वह नजर झुकाए कुछ क्षण स्तब्ध होकर उसे देखते रहकर धीरे-धीरे बोला—नहीं, मैंने कोई अन्याय नहीं किया। बल्कि अपने हजारों अन्यायों में अगर कोई वाजिब काम हुआ है, तो वह यही है। आप क्षमा कर दें तो मेरे मन का सारा क्षोभ धुल जायगा।

अचला कातर होकर बोली—आप ऐसी बात हर्गिज न कहें। जिन्हें आपने दो-दो बार मौत के मुंह से निकाला है—

यह भी सुना है आपने ?

सुना है। आपसे बड़ा हितैषी उनका है कौन ?

नहीं शायद आपके सिवा और कोई नहीं। और इसी पर से हम दोनों—

अचला के चेहरे पर फिर तनिक ललाई दौड़ गई। वह बोली—हां, बंधु हुए। आपने इन्हें मौत के करीब से खींच लाया है। इसीलिए उनके लिए आपकी किसी भी बात को मैं अन्याय नहीं सोच सकती। आप मन में कोई क्षोभ, कोई लज्जा न रक्खें। क्षमा शब्द के उच्चारण से अगर आपको संतोष हो तो मैं वह कहने को भी तैयार थी, बशर्ते कि मेरी जबान पर वह अटकता नहीं।

खैर, जरूरत नहीं ! सुरेश उठ खड़ा हुआ—आपके पिताजी से भेंट नहीं हुई, वे शायद समझ गए। हो सकता है, महिम के साथ कभी आ जाऊँ। नमस्ते !

अचला ने हलका हँसकर कहा—नमस्ते ! लेकिन उनके साथ ही आना होगा, इसके तो कोई मानी नहीं।

सच कह रही हैं ?

सच !

अपनी खुशकिस्मती। कहकर सुरेश ने फिर एक बार नमस्कार किया और चला गया।

पांच

बाहर जाने पर मानो नशे में हो, उसका देह-मन डगमगाने लगा। तेज धूप उस समय निस्तेज होती जा रही थी; उसने गाड़ी लौटा दी और पाव-पयादे ही चल पड़ा। ख्वाहिश यह कि कलकत्ते की भीड़ भरी हलचल वाली सड़कों पर अपने को एक बारगी मग्न करके स्थिति पर जरा विचार कर ले।

अचला की शक्ल-सूरत, बनावट, भाषा, व्यवहार, शुरू से अंत तक बार-बार याद आने लगे और उसे अपने आपको बडा छोटा लगने लगा।

उस मुखड़े में सौंदर्य की अलौकिकता नहीं थी; बातों में, व्यवहार में, ज्ञान और विद्या-बुद्धि का कोई वैसा अनोखापन भी कहीं नहीं छलका, फिर भी कैसे तो उसे ऐसा महसूस होने लगा कि अभी-अभी वह एक ऐसी विस्मयकारी वस्तु देखकर आया है, जैसी कि आज तक कभी कहीं नहीं नजर आई। चलते-चलते वह घड़ी-घड़ी अपने आपसे पूछने लगा, यह अचरज क्यों ? किस बात ने उसे आज इस कदर अभिभूत कर दिया ?

उस युवती में कोई ऐसी चीज उसने देखी, जिससे अपने आपको लीन सोचते हुए भी उसका हृदय एक अनजानी सार्थकता से भर गया। उस युवती का वास्तविक कोई परिचय अभी तक उसे नसीब नहीं हुआ, परन्तु वह बड़ी है, बहुत ऊँची, उसे लाभ करना किसी भी पुरुष के लिए दुर्भाग्य नहीं—यह संशय एक बार भी उसके मन में क्यों नहीं उठता ? सोचते-सोचते उसकी विचार-धारा एक बार ठीक जगह पर चोट कर बैठी। उसे लगा, शिक्षा, ज्ञान, उम्र सभी बातों में उससे छोटी होने के बावजूद महज कुछ क्षणों की बातचीत में उस युवती ने जो उसे इस प्रकार से

पराजित कर दिया, वह सिर्फ अपने असाधारण संयम के बल से। इसीलिए वह इतनी शांत होते हुए भी इतनी दृढ़ थी, इतना सब जानते हुए भी ऐसी मौन। महिम के बारे में जब वह प्रगल्भ की नाईं बकता ही चला जा रहा था, तब वह सिर झुकाए चुप थी, सहती गई थी—जरा देर के लिए भी चंचल होकर, तर्क और झगड़ा करके उसने अपने को छोटा नहीं बनाया। हर समय उसने अपने को जब्त किया, छिपाया जो कि कोई भी बात उससे छिपी न थी। महिम को वह कितना प्यार करती है, यह जताया जरूर नहीं, लेकिन उसकी अटूट श्रद्धा किसी प्रकार भी टूटी नहीं, यह बात उसने किस आसानी और संक्षेप से बता दी।

यह विद्या महिम से ही उसने सीखी है और अच्छी तरह से सीखी है, यह बात वह खुद से बहुत बार कहने लगा तथा उसमें छुटपन से ही संयम की कमी थी, इसलिए दूसरे किसी में उसकी इतनी अधिकता देख उसका शिक्षित भला अंतःकरण खुद ही उस गौरवमयी के चरणों में झुक कर अपने को धन्य समझने लगा।

अनेक रास्ते-गलियों का चक्कर काटकर सुरेश सांझ के बाद घर लौटा। बैठक में कदम रखते ही अवाक् होकर देखा, आँख पर हथेली रक्खे महिम एक कॉच पर पडा है। वह उठ बैठा। बोला—आओ भाई!

अरे! कहकर सुरेश धीरे-धीरे एक कुर्सी लेकर पास बैठ गया।

महिम गाहे-बगाहे ही आता। सो जब आता, सुरेश का स्वागत जरा बढ़-चढ़ कर होता। आज लेकिन उसकी बात ही न सुनी। महिम ने हैरान होकर कहा—डेरे पर पहुँचा तो मालूम हुआ कि तुम गए थे। सो सोचा—

कृपा करके एक बार दर्शन दे आऊँ! क्यों? कितने दिनों के बाद आए हो, सोच सकते हो?

महिम ने हँसकर कहा—जरूर। करूँ क्या, फुर्सत नहीं मिली। और गौर किया, गैस की रोशनी में सुरेश का चेहरा बड़ा सूखा-सा और कठिन लग रहा है। सो उसे प्रसन्न करने के ख्याल से स्निग्ध स्वर में फिर बोला, तुम्हारा बिगड़ना वाजिब है, यह मैं हजार बार स्वीकार करता हूँ। मगर यकीन मानो, सच ही समय नहीं मिलता; आजकल जरा पढाई का भी दबाव बढ़ गया है और सुबह शाम कुछ ट्यूशन—

ट्यूशन भी शुरू हो गया है?

इस बात का जवाब महिम टाल गया। बोला, मेरी तलाश में गये थे, खास कोई काम था क्या?

सुरेश ने कहा—हूं! आज तुम नहीं आए होते तो कल सवेरे मुझे फिर जाना पड़ता।

कारण जानने के लिए महिम उत्सुक हो रहा। बड़ी देर तक उसके पैरों के

जूतों की ओर ताकते रहकर उसके बाद सुरेश बोला—इस बीच तुम शायद केदार बाबू के यहां नहीं गए हो ?

महिम ने कहा—नहीं ।

क्यों नही गए, मेरी वजह से न ? अच्छा, उस वचन से मैं तुम्हें बरी किए देता हूं । मनमाना वहाँ जा सकते हो ।

महिम हँसा । नहीं जाऊँगा, ऐसी प्रतिज्ञा की थी, यह तो याद नहीं आता ।

सुरेश ने कहा—न हो तो ठीक ही है, फिर भी मेरी ओर से कोई बाधा हो, तो वह मैं उठा लेता हूं ।

यह अनुग्रह है या निग्रह सुरेश ?

तुम्हें क्या लगता है महिम ?

सदा जो लगता है, वही ।

सुरेश बोला—यानी मेरा ख्याल ! है न ? खैर, जी चाहे सो सोच सकते हो, मुझे कोई एतराज नही । फकत वह रोक मैंने हटाली, जो मैंने लगाई थी ।

इसका कारण पूछ सकता हूँ ?

ख्याल का कोई कारण भी होता है कि तुम्हारे पूछने से ही मुझे बताना पड़ेगा !

महिम जरा देर चुप रहकर बोला—लेकिन सुरेश, तुम्हारे ख्याल के चलते ही सारी दुनिया को रोक लग जायगी और उठ जायगी, ऐसा हो तो शायद अच्छा ही हो; मगर वास्तव में ऐसा होता नही । जहां तुम्हें कोई बाधा नहीं, वहां मुझे बाधा हो सकती है ।

यानी ?

यानी उस रोज तुमने ब्राह्म-महिलाओं के बारे में जो-जो कहा—मैंने उन पर सोच देखा । खैर, तुमने कहा था कि एक महीने में मेरे लिए लड़की ठीक कर दोगे, उसका क्या हुआ ?

सुरेश ने नजर उठाकर देखा. गंभीरता की आड़ लेकर महिम मजाक उड़ा रहा है । उसने भी गंभीर होकर कहा—मैंने सोचकर देखा, यह ब्याह की दलाली अपना पेशा नहीं । उसके बाद हँसकर बोला—मगर मजाक छोड़ो । अब तक तुमने मेरी इज्जत रक्खी, इसके लिए हजार धन्यवाद । लेकिन आज मेरा हुक्म मिल गया, तो कल सुबह ही एक बार वहां जा रहे हो न ?

नहीं, कल सबेरे मैं घर जा रहा हूँ ।

लौटोगे कब ?

दस-पंद्रह दिन लग सकते हैं, महीना भर भी हो सकता है ।

महीना भर ! नही-नहीं, यह न होगा ।—अचानक उसका हाथ खींचकर अपने

हाथ में लेते हुए बोला, न-न, मुझे और दोषी मत करो महिम, कल सबेरे ही तुम वहां जाओ। वे शायद तुम्हारी राह देख रही हैं। कहते-कहते उसका स्वर कांप गया।

महिम के आश्चर्य का हद्दोहिसाब न रहा। सुरेश का हठात् ऐसा आवेग-कंपित स्वर, ऐसा जबर्दस्त अनुरोध और खासकर एक ब्राह्म महिला के लिए यह आदर! वह विह्वल हो उठा। कुछ देर एकटक अपने दोस्त की ओर देखते रहकर बोला,—कौन मेरी राह देख रही है सुरेश? केदार बाबू की लड़की?

सुरेश ने अपने को सम्हालकर कहा—देख भी तो सकती है?

महिम फिर कुछ देर तक सुरेश की ओर देखता रहा। इस बीच बे बुलाए ब्राह्मपरिवार में जाकर वह परिचित भी हो आ सकता है, यह भावना उसके मन मे उग ही नही सकी। थोड़ा देर मौन रहकर वह बोला—भई, मैं हार मानता हूँ। तुम्हारा आज का यह व्यवहार मेरी समझ से परे है। ब्राह्म लडकी राह देख रही है, तुम्हारे मुँह से ऐसी बात का मतलब समझना मेरे लिए असंभव है।

सुरेश बोला—ठीक है, यह बात कभी बताऊंगा। अभी यह कहो, कल एक वार जा रहे हो वहां?

नहीं। कल गैरमुमकिन है। मुझे सुबह की ही गाडी से जाना है।

कुछ मिनटों के लिए भी नहीं?

नही, वह भी नही। मगर तुम्हें हुआ क्या है, यह तो बताओ?

वह फिर कभी बताऊंगा—आज नही। अच्छा, मैं जाकर तुम्हारी खबर दे आऊं?

महिम और भी हैरान हो गया। बोला—दे आ सकते हो, लेकिन इसकी कोई जरूरत तो नही।

सुरेश बोला—न हो जरूरत—जरूरत ही सब कुछ नही है। परिचय देने से वे मुझे पहचानेंगे?

एक बार तो जरूर पहचानेंगी।

सुरेश ने कहा—वही काफी है। तुम्हारा मित्र हूँ मैं, यह कहने से पहचान लेंगी तो?

महिम ने कहा—हां।

सुरेश ने अब जरा हँसने की कोशिश करके कहा—पहचानेंगी एक घोर ब्राह्मविद्वेषी बंधु के नाते, न?

महिम ने कहा—लेकिन यही तो तुम्हारा प्रधान गर्व है सुरेश?

सुरेश बोला—बेशक। कहकर कुछ काल चुपचाप माटी की तरफ ताकता

रहा। अचानक उठ खड़ा हुआ। बोला—आज मुझे बेहद नींद लग रही है महिम। मैं चला सोने। और वह अनमना-सा धीरे-धीरे चला गया।

छः

मन ही मन सुरेश निःसंशय सोच रहा था कि बात को महिम चाहे जैसे टाल जाय, पर वह उसीके अनुरोध के कारण अचला से भेंट करने को नहीं जा रहा था। प्यार चाहे वह जितना ही करता हो, मगर अभी तक एक ब्राह्म लड़की के आगे अपने बाल्य-बंधु को छोटा नहीं दिखा सकता—ऐसी बात कल भी सुना होता तो गर्व से उसकी छाती दस हाथ फूल उठती। सूने बिछौने पर शाज लेकिन इस बात ने उसे जरा भी आनंद न दिया। उसे केवल यही लगने लगा, किसी न किसी दिन गप-शप, हँसी-मंजाक में अजीब-सी होकर यह बात अचला के कानों पहुंचेगी। उस दिन सुख की गोदी में बैठी वह अपने पति के इस निकम्मे मित्र की विफल ईर्ष्या का कोई मतलब ही ढूंढ़ कर नहीं पाएगी, लेकिन मजाक में भी वह मित-भाषिणी कभी कोई सवाल उससे न पूछ सकेगी। शायद मन ही मन हँसकर कहेगी, मिताई के अत्यंत अभिमान से इस आदमी ने नाहक ही कितना परिश्रम किया! झूठी कुढ़न और जलन से कितना जलता रहा!

रात उसे अच्छी नींद नहीं आई। जितनी बार नींद खुली, उतनी बार ये कड़वी चिंताएँ धिक्कारती हुई कह गईं—दूसरे के लिए ऐसे सिर दर्द का रोग तुम्हारा कब छूटेगा सुरेश?

सुबह उठकर वह उस दिन के किसी काम में चित्त न लगा सका और दिन चढ़ते न चढ़ते गाड़ी से केदार बाबू के यहां जा पहुंचा। बैरा ने बताया, बाबू अली-पुर कचहरी गए हैं, लौटने में तीन-चार घंटे की भी देर हो सकती है। सुरेश लौटने को हुआ। पूछा—दोनों ही निकल गए हैं?

बैरा समझ न सका। बोला—यह तो मैं नहीं जानता बाबू!

सुरेश मुश्किल में पड़ गया। मकान मालिक की गैर मौजूदगी में उनकी जवान लड़की के बारे में पूछना-पाछना ब्राह्म परिवारों में शिष्टता के विरुद्ध है या नहीं, वह स्थिर न कर सका, लेकिन उसे जरूरत उस लड़की से ही थी। बोला—तुम्हारे मालिक को लौटने में इतनी देर नहीं भी तो हो सकती है? मैं घंटा-आध घंटा इंतजार ही कर लेता।

बैरे ने सुरेश को ले जाकर बैठके में बिठाया। कहा—दीदी जी हैं, उन्हें खबर दूँ ?- कहकर वह जवाब के लिए ताकता रहा। उसने कल ही देखा था कि अचला इस भले आदमी के सामने होती है। मन की तीव्र उत्सुकता को जी-जान से दबाते हुए सुरेश ने कहा—उन्हें खबर दोगे ? अच्छा दो, न हो तो तब तक उन्हीं से दो-एक बातें की जायें।

बैरा चला गया और तुरन्त बगल के दरवाजे का पर्दा हटाकर अचला कमरे में आई। सुरेश उठ खड़ा हुआ। बोला—महिम तो घर चला गया। मैंने बारहां कहा एक बार आपसे मिल ले, लेकिन नही आया। ऐसा ही कुछ—

अचला का चेहरा पल के लिए सफेद हो गया। मगर नमस्ते करके वह पास ही एक कुर्सी पर बैठ गई और धीमे से कहा—जाना शायद बहुत जरूरी होगा, घर में किसी की तबियत तो नही खराब हुई ?

नमस्कार करते देख अप्रतिभ होकर सुरेश ने प्रतिनमस्कार किया। और अपनी उत्तेजना से अचला की शांत-गंभीर बातों को तौलकर बेहद शर्मिन्दा हुआ। अपनी आवाज को भरसक संयत और स्वाभाविक करके बोला- जरूरत जो भी हो चाहे, वह ऐसी भयानक भी क्या हो सकती है कि दो मिनट के लिए भी आकर आपसे कह नहीं जा सकता ? फिर जब यह ठिकाना न हो कि कब लौटेगा—आप ही कहें, घर में ही उसेका कौन है, जिसकी बीमारी में उसे इस तरह से जाना पड़े ? मैं तो मर जाने पर भी इस तरह से नही जा सकता।

अचला के होठों पर एक लजीली स्निग्ध हँसी खेल गई। बोली—चूँकि आपकी अभी कोई हुई नही है, इसलिए आपने ऐसा कहा। होती तो आप भी इसी तरह उपेक्षा करके चल देते, यह मैं जोर देकर कह सकती हूँ।

कुर्सी पर जोरों की एक थाप जमाकर सुरेश ने कहा—हर्गिज नही। आप मुझे पहचानती नहीं, जभी ऐसा कहा, पहचानती, तो नही कह सकतीं।

अचला बोली—ठीक तो है, अब से पहचान सकूँगी और कोई होंगी तो जान भी सकूँगी। क्या ख्याल है ?

सुरेश बोला—अलबत्। हजार बार। इसके सिवाय महिम जैसे मित्र से मैं अपनी कोई बात छिपा भी नही सकता, छिपाना ठीक भी नहीं समझता; कहकर हठात् उत्तेजित हो बोल उठा—आप कहती है, होंगी तो जानेंगी, मगर मैं कहता हूं आपको बिना बताए, आपकी राय बिना लिए यह हो ही या नहीं; क्योंकि आपको महिम से अलग करके देखने की मुझ में अब मजाल नहीं; आज हमारे लिए आप दोनों अभिन्न हैं।

अचला ने सलज्ज मुखड़ा हिलाकर कहा—अच्छा तब देखा जायगा, लेकिन वह शुभ दिन आने तक मैं आपके मित्र को दोषी नहीं ठहरा सकती सुरेश बाबू !

सुरेश अचानक गंभीर होकर बोला—यह आपकी मर्जी। पर मुझे जांचने का शुभ दिन इस जन्म में आएगा या नही, सन्देह है। खैर, छोड़िए उसे। आज सुबह ही आपके यहाँ क्यों हाजिर हुआ, मालूम है ? कल रात मैं सो न सका - न आता तो आज भी न सो पाता, यह समझता था। मैंने बहुत अपराध किए हैं--आज एक-एक आपके सामने स्वीकार कर जाऊँगा, इसलिए मैं आया हूं।

सुरेश की जबर्दस्त खिलाफत अचला से छिपी न थी। इसीलिए शंकित-सी हो वह चुप देखती रही। सुरेश कहने लगा—कल शाम के बाद घर लौटकर देखता हूँ कि महिम बैठा है। हां, आप जरूर जानती है कि मैं ब्राह्मों को फूटी निगाहों यानी ब्राह्म-समाज को वैसा अच्छा नही समझता।

अचला ने हिलाकर कहा—हां जानती हूँ।

सुरेश कहने लगा, क्यों न जानेंगी। परन्तु यह भी न भूलें कि तब मैं आपको पहचानता न था। इसीलिए मैंने महिम से आग्रह किया कि कम से कम एक महीना वह यहां न आए। जानती है क्यों ?

अचला ने फिर सिर हिलाकर कहा-- नहीं। मगर शायद आपने यह सोचा था कि पुरुषों को भूलने के लिए एक महीना काफी है। उससे ज्यादा लगना वाजिब नहीं।

सुरेश ने विनीत भाव से इस चोट को ग्रहण कर लिया। कहा, मै सदा का अबोध हूँ। शायद हो कि मन में ऐसा ही कुछ सोचा हो। इसके सिवा एक खौफनाक साजिश आपके खिलाफ मेरी थी। मैंने शपथ ली थी कि एक महीने के अन्दर कही लड़की ठीक करके मैं महिम का ब्याह करा दूँगा। जैसे भी हो, उसे इससे रोकना है। मेरा मित्र होकर वह एक स्त्री के मोह से समाज को छोड़कर चला जाय, जिसमे यह न हो सके।

रुकी सांस छोड़कर अचला ने कहा—फिर ?

उसके फीके मुखड़े की ओर देखकर सुरेश जरा मुसकुराया, कहा--उसके बाद डरने की बात नही। मैंने वह पाप-इच्छा छोड़ दी है, आज आपके सामने यह कबूल करता हूँ। कल रात मैंने आपसे भेंट कर जाने के लिए उससे बड़ा अनुरोध किया। एक दिन मेरा अनुरोध उसने माना था, कल नहीं माना-- आपसे मिले बिना ही वह कलकत्ते से चला गया।

अचला ने पूछा—जाने का कोई कारण बताया था ?

सुरेश बोला—नहीं। काम है—बस यही।

अचला और एक निश्वास छोड़कर मानो आप अपने से कहने लगी, जरूरत और जरूरत ! सदा से उनसे यही सुनती आई हूँ—जरूरत ही सदा उनका सर्वस्व है।

सुरेश ने कहा —खत डालकर भी तो आपको बता सकता था। अचला ने सिर हिलाकर कहा - नहीं। खत वे नहीं लिखते।

सुरेश ने कुछ देर चुप रहकर नजर उठाकर ताका। बोला—कभी यह भी नहीं बताता कि कौन-सी जरूरत है। उसका सुख-दुःख भला-बुरा, सब मानो उसका अकेले का है। स्वार्थी ! कभी किसी को हिस्सा न लेने दिया। इसके लिए छुटपन से वह हमें कितना सताता आया है, इसका ठीकाना नहीं। बेरहम ! लगातार उपवास कर-करके वह मेरे खाने-पहनने को विषाक्त करता रहा है। मगर कभी उसने मेरी खातिर भी मेरे हाथ से कुछ न लिया कभी। मुझे डर है, जिस संगदिल से मुझे कभी सुख नहीं मिला, उसके साथ आप ही क्या सुखी हो सकेंगी ? देखते ही देखते उसकी दोनों आंखे आंसुओं से झकमका उठीं। झटपट पोंछ कर जबर्दस्ती जरा हँसत हुए बोला—मेरा बाहर देखने में बड़ा सख्त है, लेकिन अन्दर उतना ही दुर्बल महिम इसका ठीक उलटा है, पर तो भी हम दोनों जैसी मिताई दुनिया में शायद बहुत कम होगी।

नजर झुकाए अचला ने धीमे से कहा—मुझे मालूम है सुरेश बाबू और यह भी जानती हूँ कि वह मिताई आज भी वैसे ही बनी है।

बचपन की सारी पुरानी स्मृतिया सुरेश के कलेजे मे आलोड़ित हो उठी। आंसू-रुँधे स्वर से बोला—जब मालूम ही है तो आज मुझे यह भीख दें कि अनजान में आप लोगों से जो दुश्मनी मैंने की, वह अपराध अब मेरे कलेजे मे न बिंधे।

उसकी आवाज आवेग से फिर रुंध गई और इस अकुलाहट से अचला का हृदय भी मानो डोल उठने लगा। उमड़ते हुए आंसू को छिपाने के लिए मुह फेरते ही उसने देखा, पिता जी द्वार पर आकर खड़े हुए।

सुरेश को देखकर केदार बाबू ने खुश होकर कहा—अरे, सुरेश बाबू !

सुरेश ने खड़े होकर नमस्ते किया।

उन्होंने खड़े-खड़े ही पूछा—महिम की क्या खबर है ? उसका तो पता ही नही।

सुरेश ने कहा—वह बड़े जरूरी काम से सुबह की गाड़ी से घर चला गया। मैं यही कहने आ गया।

केदार बाबू ने हैरत में आकर कहा—घर चला गया ! और अचानक जले-भुने से कहने लगे, वह घर जाए और रहे, हमें कोई मतलब नहीं। मगर तुम बेटे समय मिले तो घर के लड़के जैसा आया करो। मुझे बड़ी खुशी होगी, मगर तुम्हारा

वह मक्कार मित्र रत्न जिसमें अब कभी अपना मुह न दिखाए। भेंट हो तो कह देना, उसे हया चाहे न हो, कम से कम अपमान का डर जिसमें रहे।

सुरेश गर्दन झुकाए बैठा रहा। उसके मन के भाव का अनुमान करने की कोशिश करते हुए बोले—नहीं-नहीं, इसमें तुम्हें शर्म महसूस करने की कोई वजह नहीं। बल्कि कर्त्तव्य करने का गौरव है। तुम समझ नहीं पा रहे हो कि तुमने किस बड़ी मुसीबत से हमें बचाया है और हम किस हद तक तुम्हारे कृतज्ञ है।

लड़की की ओर देखकर बोले—मै कल से ही हैरान हूँ अचला कि उसने सुरेश जैसे लड़के से कैसे दोस्ती की थी और वह दोस्ती उसने कायम कैसे रक्खी थी। थोड़ा रुककर बोले—जो यह कर सकता है, वह हम जैसे दो निरीह जीवों को भुला सकता है, यह बड़ी बात नही---मानता हूँ मै ; मगर यह भी गजब ही है कि वह कैसा आदमी है, क्या है मेरे जैसे प्रवीण आदमी ने भी कभी इसकी खोज-पूछ की जरूरत महसूस न की।

सुरेश बोला नहीं। वह सिर उठाकर केदार बाबू की तरफ ताक भी न सका।

जरा देर इंतजार करके अपनी पुशाक की ओर देलकर केदार बादू ने कहा—मुझे बहुत-सी बातें पूछनी है बेटे, तुम जरा बैठो। मै कपड़े बदल आऊं। कहकर वे जाने लगे कि सुरेश ने कहा—मुझे देर हो चुकी है। आज मैं चलूँ, फिर कफी आऊँगा। वह व्यस्त होकर उठ खड़ा हुआ और किसी तरह नमस्कार करके निकल पड़ा।

लेकिन दूसरे ही दिन वह वहां दिखाई पड़ा और उसके दूसरे दिन भी ठीक उसी समय उसकी गाड़ी की आवाज नीचे आकर थमी।

लेकिन उसके बाद वाले भी दिन जब उसकी गाड़ी की आवाज सुनाई पड़ी, तो वेला हो चुकी थी। नहाने-खाने के लिए पिता को तकाजा करके अचला उठना चाह रही थी—मगर वे उठ न सके। सुरेश को बिठाकर वे गप करने लगे।

सुरेश यह गौर कर रहा था, इसलिए मुख्तसर दो-एक बात करके ही वह उठने लगा। इतने मे उसके सिर के रूखे-सूखे बालो को देखकर केदार बाबू अचानक परेशान हो उठे। बोले—तुम्हारा तो नहाना-खाना भी नही हुआ है बेटे।

सुरेश ने हँसकर कहा—जी मेरा नहाना-खाना जरा देर से ही होता है।

केदार बाबू ने उसे सुना ही नही मानो, बोल उठे और पल ही में एक बारगी व्यस्त हो उठे—ऐं, नहाना खाना नहीं हुआ नः, अब एक मिनट भी देर न करो। यहीं नहाकर जो बने, खा लो। बिटिया, जरा जल्दी करो, बारह बज गए। और, बैरा आदि के नाम चीख-पुकार करते हुए वे निकल गए।

अचला अब तक स्थिर खड़ी थी। अब भी उसमें किसी तरह की चंचलता

नहीं दीखी। पिता के चले जाने के बाद धीरे से पूछा—आप हमारे यहां कुछ खा सकेंगे ?

सुरेश ने सिर उठाकर अचला की ओर देखते रहने के बाद कहा—आपकी क्या राय है ?

आप तो कभी ब्राह्म के यहां खाते नही।

नहीं, नहीं खाता। मगर आप लाएँगी, तो खालूंगा। जरा ठहरकर बोला, शायद आप सोच रही है, मैं मजाक कर रहा हूँ। मगर नही। आप देंगी तो मैं सच को ही खाऊँगा। कहकर वह देखने लगा।

अचला ने मुंह झुकाकर अपनी हँसी छिपाई। बोली—मैंने सच ही सोचा था कि आप मजाक कर रहे हैं। कल तक जिनके घर जाने में भी आपकी घृणा का अंत नहीं था, आज ही उन्हीं में से एक के हाथ का छुआ खाने की प्रवृत्ति आपको कैसे होगी, मैं तो सोच ही नही पाती। सुरेश बाबू !

सुरेश ने मलिन मुख और दुखे स्वर में कहा—आखिर इतनी देर के बाद आप ने यही निष्कर्ष निकाला कि आपके हाथ का खाने में मुझे घृणा होगी !

अचला ने कहा -लेकिन यही सोचना तो स्वाभाविक है सुरेश बाबू ! आप जैसे एक उच्च शिक्षित सज्जन की सदा की बँधी सामाजिक धारणा एकाएक एक ही दिन में अकारण ही बह जायगी, यही सोचना क्या सहज है ?

सुरेश ने कहा—नही, वह सहज नही। मगर अकारण बह नहीं हैं—यही कैसे सोच रही हैं ? कारण हो भी सकता है —कहकर वह इस तरह से देखता रह गया कि उत्तर देने मे अचला बिल्कुल हैरान रह गई। उसकी बात से उसे चोट लगी है, यह तो उसकी शक्ल देखकर ही वह समझ गई थी और एक तरह का हिंसक आनन्द भी उठा रही थी। लेकिन वह पीड़ा अचानक उसके चेहरे को एक बार ही राख-सा रूखा कर दे सकती है -यह उसने सोचा भी नही था, इच्छा भी न की थी। इसीलिए खुद भी पीड़ित होकर जबर्दस्ती जरा हँसकर बोली—सोच देखिए, आप जैसे कठोर-प्रतिज्ञ आदमी भी—।

सुरेश बोला, हाँ, बह जाता हैं। उसका स्वर काँपने लगा। बोला, आपने एक दिन की बात कही—मगर पता है आपको एक दिन के भूकम्प में आधी दुनिया पाताल में डूब जा सकती है ? एक दिन कम नहीं होता। कहकर वह फिर एकटक देखता रहा। अचला डर गई। सुरेश के चेहरे पर कैसी एक सूखी पांडुरता—कपाल की दोनों नसें लहू से फूली, आंखें दम-दम कर रहीं है—जैसे वह झपट्टा मारकर किसी चीज को पकड़ना चाहता हो।

एक तो गर्मी, तिस पर इतनी देर तक नहाना खाना नही हुआ—पिछली

रात बिल्कुल नींद नही आई -उसके पाव के नीचे की जमीन तक अकस्मात् मानो हिल उठी । सुर्ख आंखों को फाड़कर वह बोला—ब्राह्मों से घृणा करता हूँ या नही, यह जवाब ब्राह्मों को दूंगा । लेकिन आप मेरे आगे उनसे बहुत ऊपर है—

उसकी उन्माद भंगिमा से अचला डर के मारे काठ हो गई । किसी तरह इस प्रसंग को दबा देने की नीयत से वह डरी-सी कहने गई—कंबख्त बैरा —

लेकिन वह अस्फुट धीमी आवाज सुरेश की रोष भरी ऊँची आवाज मे दब गई । वह वैसे ही तीव्र स्वर मे कहने लगा—महज दो दिनों का परिचय ! बेशक ! मगर जानती हैं, दिन, घंटा, मिनट में महिम को मापा जा सकता है, सुरेश को नहीं, वह स्थान काल से परे है । भूमिकम्प देखा है ? जो पृथ्वी को ग्रास करता है—

व्याध से डरी हुई हिरनी-सी अचला पलक मारते उठ खड़ी हुई और बोली—आपके नहाने का बन्दोवस्त—कहकर कदम बढ़ाते ही सुरेश ने सहसा आगे झुककर अचला का हाथ खींच लिया । वह उत्तेजित और आकस्मिक खिचाव सह लेना औरत के बस का नही । वह सुरेश के बदन पर औंधी आ गिरी । भय और विस्मय को पार कर उसके आर्त्तकंठ की 'बाप रे !' आवाज कांपते होंठों से निकलते न निकलते सुरेश उसके दोनों हाथों को अपनी छाती मे खीचकर पुकार उठा---अचला !

अचला आँखें उठाए मूर्छित मंत्र मुग्ध की भांति देखती रही और सुरेश भी जरा देर के लिए कुछ न बोल सका -- सिर्फ उसके बेहद जलते होठों से कैसी तो एक तीखी जलन छिटकती रही ।

कुछ क्षण इसी तरह से रहकर सुरेश ने फिर एक बार अचला के दोनों हाथो को छाती मे दबा उच्छ्वासत होकर कहा, अचला-- एक बार इस भूकम्प की भयानक धड़कन को अपने हाथों से अनुभव करके देखो—देखो, कैसा भीषण ताडव इस कलेजे के अंदर हो रहा है । यह दुनिया के किसी भूकम्प से छोटा है ? कह सकती हो, संसार की कौन जात, कौन धर्म, कौन-सा मत है जो इस विप्लव मे पड़कर भी रसातल में न डूब जायगा ।

छोड़ दीजिए, पिता जी आ रहे है -- कहकर जबर्दस्ती अपने को छुडाकर वह अपनी कुर्सी पर जाकर शात होकर बैठी कि केदार बाबू अंदर होकर परेशान-से बोले---देर हो गई थोडी---और यह कंबख्त बैरा जो रह-रह कर कहां गायब हो जाता है, पता नहीं । बेटी अचला -अरे यह क्या, तबीयत खराब है ? मुँह सूखकर एक-बारगी जैसे—

किसी तरह जरा हँसने की कोशिश करके बोली, तबीयत क्यों खराब होगी ?

फिर भी सर दर्द ? जैसी गर्मी पड़ी है -

नही-नही मै ठीक हूँ । मुझे कुछ नही हुआ है ।

केदार बाबू निश्चित होकर बोले--गनीमत है। चेहरा देखकर मैं डर गया था। तो तुम जरा देखो तो बिटिया, अगर—

ठीक तो है, मैं मिंटों में सब ठीक कर लेती हूँ। मैं सुरेश बाबू से वही तो कह रही थी कि हमारे यहां नहाने-खाने में इन्हें एतराज तो नहीं।

केदार बाबू ने अचरज से पूछा—एतराज क्यों होगा ? नही, नहीं, मैं तो तुम से कही चुका सुरेश, एक दिन में मैंने तुम्हें घर के लड़के-सा समझ लिया है। घर तुम्हारा है। बेटी की ओर देखकर नाज के साथ बोले—ऐसा न होता बेटी तो भगवान इन्हें हमारे ब्राह्म को भेजते ही क्यों ? लेकिन अब देर करना ठीक न होगा बेटे, मेरे साथ आओ, तुम्हें नहान घर दिखा दूँ।

लेकिन केदार बाबू के आते ही सुरेश ने जो सर झुका लिया था, सो सीधा न कर सका।

अचला ने कहा—तग करने मे क्या लाभ बाबू जी। हो सकता है, हम ब्राह्मो के यहा खाने मे उन्हे झिझक हो। फिर अरुचि मे खाने पर तबीयत खराब हो सकती है।

केदार बाबू मायूस हो गए। सुरेश बडे आदमी का लडका ठहरा—आजाद। घर की गाडी पर चलना। उसे खिला-पिला कर जैसे भी हो, अपना बनाना ही है; अचानक उसके झुके मुखड़े के एक ओर नजर पड़ते ही केदार बाबू अचरज से चौंक उठे—ऐं ! यह क्या सुरेश ! चेहरा स्याह हो गया है। उठो-उठो, सिर धोने में अब जरा भी देर न करो। और वे हाथ पकडकर जबर्दस्ती उसे लिवा गए।

सात

खा-पी चुकने के बाद केदार बाबू ने धूप मे सुरेश को हर्गिज नही जाने दिया। आराम के नाम पर तमाम दोपहर उसे एक कमरे मे कैद रक्खा। वह आंखे बन्द किए एक कौच पर पड़ा रहा, पर किसी भी तरह सो नही सका। बाहर आसमान मे दोपहर का सूरज जलने लगा, अन्दर आत्म-संयम की ग्लानि उससे भी ज्यादा तेज सुरेश की छाती मे जलने लगी। इस तरह सारी दोपहरी बाहर-भीतर से जल-झुलस कर अधमरा-सा हो उसने उठकर खिड़की खोली, तो बेला झुक आई थी। केदार बाबू प्रसन्न मन से अन्दर आकर निश्वास छोड़ते हुए बोले –आः, गर्मी देख रहे हो

सुरेश। अपनी इतनी उम्र में मैंने कलकत्ते में ऐसी गर्मी कभी नहीं देखी। नींद-वींद आई ?

सुरेश ने कहा—नहीं, दिन को मुझे नींद नहीं आती।

केदार बाबू ने छूटते ही कहा—और सोना ठीक भी नही। सेहत को बड़ा ही नुकसान होता है। मैंने फिर भी तीन-चार बार उठ-उठकर देखा कि पंखावाला खींच भी रहा है या नहीं। ये कंबख्त ऐसे शैतान होते है कि इधर तुम्हारी आँख लगी और उधर उन्होंने भी झपकी ली। खैर, कुछ आराम तो मिला न ? मैं खूब समझ रहा था कि इस धूप में निकलोगे तो जिन्दा न रहोगे।

सुरेश चुप रहा। केदार बाबू ने एक-एक करके कमरे की खिड़कियां खोल दीं, कुर्सी को करीब खींचते हुए बोले— मैं क्या सोच रहा हूँ सुरेश झाँप तोप की जरूरत नहीं। सारी बातें खोलकर महिम को साफ-साफ एक खत लिख दूं। तुम क्या कहते हो।

यह सवाल सुरेश की पीठ पर चाबुक-सा लगा। वह ऐसा चौंक उठा कि देखकर केदार बाबू बोले—कठोर कर्त्तव्य कैसे करना होता है, यह तो इतने दिनों के बाद तुमने ही हमें बताया; अब पीछे लौटने से तो नहीं चल सकता बेटे।

यह तो ठीक है। सुरेश कुछ देर मौन रहकर बोला—लेकिन इस पर आपको अपनी लड़की की भी राय ले लेनी चाहिए।

केदार बाबू जरा हंसकर बोले—हां सो तो चाहिए।

वे क्या साफ-साफ लिख देने को ही कहती हैं ?

केदार बाबू ने इसका सीधा जवाब न देकर कहा, हाँ करीब-करीब वही कहिए ऐसे मामलों में आमने-सामने सवाल-जवाब करना सबके लिए कष्टकर होता है। लेकिन वह तो सयानी है, बदस्तूर पढ़ी-लिखी है, इन बातों पर पहले ही साफ-साफ सोच नहीं लेने से यह पागलपन कहाँ जा सकता है, वह समझती है। सोचता हूँ, आज रात यह काम कर ही लूंगा।

सुरेश ने फीका हँसकर कहा, इतनी जल्दी क्या ? थोड़ा सोच लेना भी जरूरी है।

केदार बाबू ने कहा—इसमे सोचने की कहाँ गुंजाइश है ? उसके हाथों अपनी लड़की को सौंप न सकूंगा, यह तै है -फिर इस घिनौने व्यापार का जितना जल्दी अंत हो, उतना ही कल्याण।

सुरेश ने पूछा मेरा जिक्र करना भी जरूरी है।

केदार बाबू ने हँसकर कहा—बुड्ढा हो गया, सोचते हो, इतनी भी अक्ल नहीं, तुम्हारा नाम कोई कभी न लेगा।

सुरेश ने जैसे चैन की साँस ली, पर बोला नहीं, चुप रहा। यह साँस केदार बाबू की निगाह से न बच सकी। इस बीच सुरेश के और कुछ आचरण को गौर कर के मन में एक निश्चित अनुमान कर लिया था। उसके झूठ-सच की कसौटी के लिए उन्होंने अँधेरे में एक ढेला फेंका। बोले, तुमने एक तो हम लोगों का बड़ा उपकार किया बेटे, मगर उससे भी बड़े उपकार की तुमसे हमें उम्मीद है। हम ब्राह्म हैं जरूर पर वैसे ब्राह्म नही। और मेरी बिटिया तो मन-ही-मन अपनी माँ, जैसी हिन्दू ही रह गई है। वह हमारी ब्राह्मपना बिल्कुल पसन्द नहीं करती।

सुरेश ने अचरज से आंखे उठाकर देखा! उसकी इस मौन उत्सुकता को खास तौर से देखकर केदार बाबू कहने लगे —जभी मैं बिटिया को सदा कुमारी नहीं रख सकता। इस विषय में, मैं तुम लोगों जैसा हिन्दू मतावलंबी हूँ। सो एक रिश्ता जिस प्रकार तुम्हारे चलते टूटा, उसी प्रकार एक दूसरा रिश्ता तुम्हे जोड़ देना होगा बेटे।

सुरेश ने कहा —ठीक है। मैं जी-जान से कोशिश करूँगा।

उसके चहरे के भाव को पढते-पढ़ते केदार बाबू ने संदिग्ध स्वर में कहा— मैं समझ रहा हूं, समाज में इसके लिए काफी हलचल होगी। लेकिन जितनी जल्दी हो सके, अचला की शादी करके इस हलचल को दबा देना है। लेकिन एक मस्त-सी बात है सुरेश! इतना कहकर उन्होंने दरवाजे की तरफ देखा और करीब खिसक कर अपनी आवाज धीमी करके बोले —सख्त बात यह है कि रूप-गुण में लडका ठीक भी हो तो हिन्दू समाज की तरह उसे पकड़ कर ला दूँ, यह नहीं। वह सदा से जिस शिक्षा-संस्कार में पली है कि उसकी राय के बिना कुछ हो सकना मुश्किल है और मत वह दे नहीं सकती। जबतक कि दोनों में ऐसा कुछ— समझ गए न सुरेश?

बातों में सुरेश कुछ अनमना-सा हो गया था। प्रेम के इस इशारे ने मानो फिर नए सिरे से आघात पहुँचा कर उसे अचेतन कर दिया। दोपहर में अपने उस उछृंखल प्रेम-निवेदन भद्दे आचरण की याद करके बेहद शर्म से उसका मुखड़ा लाल होने के बजाय काला पड गया। और सुबह का जो अखबार पांवों के पास नीचे पड़ा था, उसे उठाकर वह विज्ञापन वाला पृष्ठ देखने लगा।

केदार बाबू ने यह हरकत देखी और इस आकस्मिक भाव-परिवर्तन का बिल्कुल उल्टा मतलब लगाकर मन ही मन बहुत खुश हुए। अच्छा मौका देखकर खासी शह लगा दी एक। कहा—मैं यह एक अजीब बात शुरू से देखता आया हूं सुरेश की पता नहीं क्यों, किसी को जीवन भर के लिए पास पाकर भी उसपर रत्ती भर विश्वास नहीं होता, और किसी को महज दो घन्टे के लिए भी करीब पाकर

लगता है, इसके हाथों अपनी जान तक सौंपी जा सकती है। लगता है, सिर्फ दो घन्टे की नहीं, जन्म-जन्म की जान-पहचान है। जैसे तुम ! कितनी देर का परिचय है तुम से ?

ठीक उसी समय अचला वहां आई। सुरेश ने लमहे के लिए नजर उठाई और फिर अखबार मे ध्यान दिया।

बाबू जी, आप इस समय चाय पियेंगे या को को ?

मैं कोको ही लूंगा बेटी।

सुरेश बाबू आप तो चाय लेंगे न ?

आँखे अखबार पर ही गड़ाए रखकर सुरेश ने धीमे से कहा—मुझे चाय ही दीजिये।

आपके प्याले मे चीनी कम तो नही लगेगी ?

नही, जितनी आमतौर मे सब को लगती है, उतनी ही।

अचला चली गई। केदार बाबू ने बातो के टूटे छोर को जोड़कर कहा—यही समझो न सुरेश, अपनी इस बिटिया के लिए ही इस बुढ़ापे मे मुझे मुसीबत में पड़ना पड़ा। यह बात तो तुम से छिपा नही सका। वरना अपनी आफत-मुसीबत की कहानी भी कोई किसी के कानों तक जाने देता है ? जो मुझसे कभी न बना इतने हित-मित्रों के होते वह बात सिर्फ तुम्ही को कहते क्यों हिचक नहीं हो रही है ? क्या समझते हो कि इसका कोई गूढ़ कारण नही है ?

सुरेश ने अचरज से नजर उठाई और देखता रहा। केदार बाबू कहने लगे—यह ईश्वर का निर्देश है—मेरी क्या मजाल कि छिपाऊँ। मानना ही पडेगा। कहकर उन्होंने कुर्सी पर एक चपत जमाई।

लेकिन उनकी इस लम्बी भूमिका के बाद भी बेटी के लिए उनकी आफत-मुसीबत किस हद को पहुँची, सुरेश इसका अन्दाजा न कर सका। इसके बाद केदार बाबू विस्तार से वर्णन करने लगे कि कैसे उनके आर्डर सप्लाई का उतना बड़ा कारोबार महज धोखा और कृतघ्नता की आग में जलकर राख हो गया। फिर भी अडिग धीरज से वे खड़े रहे तथा खर्च कर्ज बढ़ते जाने पर भी बेटी को पढ़ाने-लिखाने के खर्च में कभी कटौती नहीं की। वे कहने लगे—कुछ डिग्री जारी के डर से मेरा खान-पान जहरीला हो गया और खुदरा महाजनों के तकाजों के मारे जीना मुहाल, तो भी मैंने मुँह खोलकर किसीसे कुछ न कहा, क्योंकि यही कलकत्ते में ही अपने ऐसे -ऐसे बहुत से दोस्त पड़े हैं जो बात की बात में ये बकाया चुका दे सकते हैं।

जरा देर थमकर जाने क्या तो सोचा और कह उठे—मगर तुम्हें जो बताया

इसमें मुझे जरा भी सकुचाहट न हुई। यह क्या ईश्वर का स्पष्ट आदेश नही है ? कहते हुए उन्होंने दोनों हाथ कपाल से लगाकर प्रणाम किया।

सुरेश को भगवान् पर विश्वास न था। उसने बूढ़े के इस उच्छ्वास में साथ नहीं दिया, बल्कि उसका मन कैसा तो छोटा हो गया। धीर होकर पूछा—कितना कर्ज है आप को ?

केदार बाबू ने कहा—कर्ज ? मेरा कारोबार चलता होता तो यह भी कोई कर्ज था ! बहुत तो तीन-चार हजार। वे और भी कुछ कहने जा रहे थे कि बैरा के साथ चाय और खुद से जलपान का सरंजाम लिए अचला आई।

गरम कोको का एक घूंट लेकर खुशी की एक अव्यक्त-सी आवाज करते हुए आले की मेज पर रखते हुए बोल उठे। अपने ऊपर भगवान की यह अनोखी कृपा मैं शुरू से देखता आया हूं कि वे मुझको कभी बेइज्जती मे नही पडने देते। अब मैंने यह समझा कि कहूं-कहूं करते हुए भी महिम से में यह कह क्यों नहीं पाता था—मानो वे बार-बार मेरी जवान को दबा दिया करते थे।

सुरेश ने प्याले पर नजर रखकर कहा —आप को ये रुपए कब चाहिए ? केदार बाबू ने फिर कोको का प्याला मेज पर रखते हुए कहा—जरूरत दरअसल मुझे नहीं सुरेश। तुम लोगों को है। और वे जरा ऊँची किस्म की हंसी हँसे। इस पहेली को समझ नहीं पाकर सुरेश ने मुँह उठाकर देखा, देखा कि अचला जिज्ञासु-सी अपने पिता की ओर ताक रही है। उन्होंने एक बार बेटी को, एक बार सुरेश को देखकर कहा—इसका मतलब समझना कुछ कठिन तो नहीं। आखिर इस घर को मैं अपने साथ तो ले नहीं जाऊँगा। यह अगर गया, तो तुम्हारा ही जायगा और रहा तो तुम्हीं दोनों का रहेगा। कहकर वे धीरे-धीरे हँसने लगे।

उन दोनों की आंखें मिल गईं और पल मे दोनों ने लाली दौड़ आए मुँह को झुका लिया।

कोको के दो प्याले खत्म कर लेने के बाद केदार बाबू को एक जरूरी चिट्ठी लिखने की याद हो आई। वे तुरन्त खड़े हो गए। बोले—आज तुम्हें खाने को बड़ी तकलीफ हो गई सुरेश, कल दोपहर को यहां खाना। इस तरह न्योता देकर पच्छिम की तरफ का दरवाजा खोल कर वे अपने कमरे में चले गए

खुले दरवाजे में डूबते हुए सूरज की लाल आभा सुरेश के चेहरे पर आकर पड़ी। गर्दन फेरकर उसने देखा, अचला एकटक उसको देख रही है—उसने भी नजर झुका ला। घड़ी की टकटकी के सिवाय सारा कमरा सन्नाटा।

आठ

घर के मौन को मोडते हुए सुरेश ने कहा—एकाएक एक अजीब हरकत कर बैठा।

अचला कुछ बोली नहीं।

सुरेश ने फिर कहा—मैं आपको जरूर एक राक्षस-सा लग रहा हूँ। लगता है, अकेले बैठने की हिम्मत नहीं हो रही है आपको। हैं न ? और वह खींच-खींच कर हँसने लगा। अचला ने अब भी सिर नहीं उठाया। लेकिन कही उठाती तो देख पाती कि सुरेश की वह कोशिश करके हँसी गई विफल हँसी उसके अपने ही मुखड़े को बार-बार अपमानित करके शर्म से विकृत बना रही है।

सारे कमरे में फिर सन्नाटा छा गया और दीवाल घड़ी की टिकटिक ही स्तब्धता को मापती रही। कुछ देर में यह कठोर नीरवता जब असह्य हो उठी तो अपनी सारी देह को ऋजु और कड़ी करके सुरेश ने कहा—देखिए जो वारदात हो गई, उसके बाद अब आंखों की शर्म की गुंजाइश नहीं। वेला जाती रही, अब मैं जाऊँगा। पर जाने से पहले दो-एक बातों का जवाब सुन जाना चाहता हूं। दगी आप ?

अचला ने सिर उठाया। आंखें उसकी पीड़ा से भरी। बोली—कहिए।

सुरेश कुछ क्षण स्थिर रहकर बोला आपके पिताजी का कर्ज चुका देने के लिए कल-परसों कभी आऊँगा। लेकिन जरूरी नहीं कि आपसे भेंट हो। मैं यह जानना चाहता हूँ कि हम दोनों के बारे में उनका इरादा क्या है, यह आप जानती हैं ?

अचला बोली—वे साफ मुझ से कुछ नहीं बताते।

सुरेश बोला – मुझसे भी नहीं। फिर भी मुझे यकीन है, मुझ को—मगर आप शायद राजी न होंगी ?

अचला ने कहा—नहीं।

कभी नहीं ?

अचला ने नजर झुकाकर कहा—नहीं।

लेकिन महिम की उम्मीद न रहे, तो ?

अचला ने अविचलित स्वर से कहा—इसकी उम्मीद तो नहीं ही है।

सुरेश ने पूछा—शायद तो भी नहीं ?

अचला ने मुंह नही उठाया, लेकिन वैसे ही शांत और दृढ कंठ से कहा—नहीं, तो भी नहीं।

सुरेश कोच पर लुढ़क गया और निश्वास छोड कर बोला—खैर, इस ओर तो साफ हो गया। जान में जान आई। कहकर कुछ देर चुप रहा और फिर सीधा बैठकर बोला– लेकिन मैं इस मुश्किल की सोच रहा हूं कि फिर आपके पिता जी का कर्ज कैसे चुकेगा ?

अचला ने डरते हुए से जरा सिर उठाकर बडे ही संकोच के साथ कहा—अब तो आप दे नही सकेंगे ?

नहीं दे सकूंवा ? क्यों ? सवाल करके सुरेश तीखी व्याकुल दृष्टि से देखता रहा। उत्तर का कुछ देर इन्तजार करके हंसा। लेकिन अबकी उसकी हंसी में खुशी न हो, बनावट भी न थी। बोला––देखिए, परिचय की घडी से ही मेरे जो रवैये रहे, उन्हें भद्र तो नहीं कहा जा सकता, यह मैं भी जानता हूँ, मगर मैं उतना गिरा हुआ भी नहीं हूँ। आपके पिताजी को मैंने रुपए घूस में नही देना चाहा था, मुसीबत में मदद के रूप में ही देना चाहा था। लिहाजा देना आपकी राय पर निर्भर नहीं करता। वह निर्भय करता है उनके लेने पर ! अब वे रुपए लेंगे कैसे, मैं यही सोच रहा हूँ ! बल्कि आइए, इस पर हम जरा राय-विचार कर लें।

अचला ने कहा—कहिए।

सुरेश ने कहा—दैवकृपा से बहुत-बहुत रुपए का मालिक हूँ मैं। और रुपए-पैसे पर कभी मुझे किसी तरह का मोह नहीं रहा है। हजार चारेक रुपए मैं मजे से दे सकता हूँ। और आपके सुख के लिए तो ज्यादा भी गंवा सकता हूँ। खैर ! आपके पिताजी का ख्याल है कि इन रुपयों को चुकाने की जरूरत न होगी। गो कि एक तरह से यह चुकाना ही होगा ! समझ गई ?

सिर हिलाकर अचला ने अस्फुट स्वर में कहा––जी।

सुरेश ने कहा––मैं साफ कह रहा हूँ, मेरी साफगोई का अन्यथा न समझें। खूब समझ रहा हूँ कि रुपयों की उन्हें सख्त जरूरत है, मगर इतने रुपए चुकाने की उनकी अवस्था नही है। गरचे मेरी तरफ से उसकी कोई जरूरत भी नहीं––अच्छा, यह तो आसानी से हो सकता है। परसों तक आप अपना इरादा उनपर जाहिर न करें तो कोई गड़बड़ी न रहे। क्यों, बनेगा आपसे यह ?

अचला उसी तरह सिर झुकाए बैठी रही। सुरेश ने कहा—आपने रुपयों के लोभ से राय नहीं दी, इससे मेरी श्रद्धा और भी बढ़ गई। बल्कि आप राजी हो गई होतीं तभी शायद मैं डर से पीछे हट जाता। मेरे लिए असंभव कुछ भी नहीं। मैं चला।

सुरेश हंसते हुए खड़ा होकर बोला—कहने को अपना मुंह नहीं रहा। तो भी जाने की घड़ी में आपसे एक भीख माँगता हूँ, मेरे अपराधों को आप याद न रक्खें। जरा आगा-पीछा करके बोला—नमस्ते। बुराई से जहाज लादकर मै चला, मगर मैं पिशाच भी नहीं। खैर, एतबार करने का जब कोई उपाय नहीं रहने दिया तो अभी कहना बेकार है। और दोनों हाथ उठाकर नमस्कार करके वह तेजी से निकल गया।

धीरे-धीरे उसके पैरों की आहट सीढ़ियों पर खो गई। अचला ने उसे सुना और फिर अकारण ही उसकी आखों मे टपाटप आंसू की बूंदें चूने लगी।

अंदर आते हुए केदार बाबू ने पूछा—सुरेश ?

अचला ने झट आंसू पोंछकर कहा—अभी-अभी चले गए।

केदार बाबू ने चकित होकर कहा - अच्छा, मुझसे मिले बिना ही चला गया। जाते वक्त तुमने कल यहां आने की बात याद दिला दी थी ?

अप्रतिभ होकर अचला ने कहा—मुझे याद नही रहा पिताजी।

याद नहीं रहा ! खूब ! कहकर केदार बाबू पास की चौकी पर निश्चेष्ट भाव से बैठ गए। बेटी की दबी आवाज से उनके मन में खटका सा हुआ, लेकिन सांझ के धुंधलके में चेहरा देख न पाने के कारण वह टिकाऊ न हुआ। बोले—इस बुढ़ापे मे जो काम खुद न करूं, जिधर खुद नजर न रक्खूं, वही नहीं होगा। उसीमें कोई न कोई भूल रह जाएगी। चलूं, बैरे के हाथों तुरत उसे लिख भेजूं। उसके घर का पता क्या है ?

पता तो मुझे नहीं मालूम बाबूजी ?

यह भी नहीं मालूम ? अच्छा ! केदारबाबू फिर कुर्सी पर बैठ गए। लेकिन तुरत रूखाई से बोल उठे—अपने हाथ-पांव तुम खुद काट डालना चाहती हो, तो काटो, मुझे रोकने की नहीं पडी। इतना तो कम से कम सोचना चाहिए कि जो एक बात पर इतने-इतने रुपए देने को तैयार हो गया, वह आदमी किस किस्म का है ? उसका पता भी नहीं पूछ रखना चाहिए ? तुम जैसे-जैसे बड़ी हो रही हो, कैसी तो हुई जा रही हो अचला, कहकर उन्होंने एक लंबा निश्वास छोडा।

कर्ज के जाल में फँसे पिता जिस झूठ और हीनता से बहरहाल आत्मरक्षा की कोशिश कर रहे थे, अचला वह सब देख रही थी। इससे उसके मन को चोट पहुँचती, पर वह सब चुपचाप सहा करती। अभी भी कोई जवाब देकर उसने उनकी खीझ का कोई प्रतिवाद नहीं किया। लेकिन मन में यही कल्पना करके केदार बाबू को राहत मिली कि वह लज्जित और पीडित हुई।

बैरा बत्ती जलाकर दे गया। उन्होंने स्नेह की झिड़की देकर कहा—तुमने

महिम क कभी खोज-पूछ भी न की। खैर, न ली, अच्छा ही किया। भगवान् जो करते हैं, भले के लिए करते है। मगर सुरेश के बारे में तो यह लागू नही हो सकता। देखा नहीं, मानो ईश्वर हाथ पकड़कर स्वयं इसे पहुँचा गए।

अचला ने पूछा—आप क्या सुरेशबाबू से रुपए कर्ज लेंगे ?

केदार बाबू की भगवद्-भक्ति अचानक बाधा पाकर विचलित हो उठी। बेटी की ओर देखकर बोले—हा,—ना, कर्ज ठीक नही, तब जानती हो बेटी, बात क्या है कि सुरेश बड़ा भला है, आज दिन ऐसा भला लड़का लाखों मे कही एक मिलता है। उसकी भीतरी इच्छा है कि कर्ज के चलते यह मकान न बेहाथ हो जाय। रहेगा तो तुम्हीं लोगों का रहेगा, मैं अब कै दिन को हूँ, समझी ?

अचला चुप रही। केदार बाबू उत्साहित हो बोल उठे— तुम तो जानती हो, मैं सदा साफ बात पसंद करता हूँ। अंदर और, मुँह में और, यह मुझसे नहीं होने का। इसीलिए खोलकर कह दिया कि अब सब जान-सुनकर महिम के हाथों तुम्हें सोंपने से पानी मे फेंकना बेहतर है। सुरेश की भी जब यही राय है, तब कहना ही पड़ेगा कि उसके दोस्त मे तुम्हारी शादी की बात दूर तक फैल चुकी है ऐसे में रिश्ता तोड़ने मे ही न चलेगा, नया ठीक भी करना होगा, नही तो समाज मे मुंह दिखाना मुश्किल होगा। किंतु जो कहो, लडका है सुरेश ! मैं मंगलमय को इसीलिए बार-बार प्रणाम करता हूँ।

पिता का प्रणाम करना फिर जब निर्विघ्न सम्पन्न हो गया, तो अचला ने धीरे-धीरे कहा—इनसे इतना रुपया न लें तो क्या न चले बाबूजी ?

केदार बाबू शंका से चौंक उठे। बोले लिए बिना चलने का जो नहीं बेटी ! अच्छा !

मगर हम चुका जो नहीं सकेंगे।

चुकाने की बात क्या सुरेश—उद्विग्न आशंका से बूढ़े बात को खत्म ही न कर सके। उनका समूचा चेहरा सफेद हो गया। उनकी वह शक्ल देखकर अचला को तकलीफ हुई। झट बोली, वे कह रहे थे, परसों आकर वे रुपए दे जाएँगे।

चुकाने की बात—

नहीं, यह उन्होंने नहीं कहा।

लिखा-पढी—

नहीं, इसका शायद उन्हे बिल्कुल इरादा नही।

यही बात ! कहकर तृप्ति की रुंधी सांस झट फेंक कर वे कुर्सी पर लेटे-से बैठे और आंखें बन्द करके दोनों पैर सामने की मेज पर रख दिए। आनन्द और आराम से उनका सर्वांग मानों कुछ देर के लिए शिथिल हो गया। कुछ देर उसी तरह से रहे

फिर पैर नीचे उतार कर दमकते स्वर में बोले, अब सोच तो देखो बेटी, कहां से क्या हुआ ? इसमें उस सर्व-शक्तिमान् का हाथ क्या साफ नहीं देख रही हो ? अचला चुपचाप पिता के मुंह की ओर ताकती रही। जवाब का इन्तजार न करके ही बोले, मैं साफ देख पा रहा हूं, यह केवल उनकी दया है। तुम से बताऊँ क्या बिटिया, ये दो साल मैं एक भी रात ठीक से सो नहीं सका हूं। केवल उन्हीं को पुकारता रहा हूं, और सुरेश को देखते ही लगा, यह मानो मेरे उस जन्म की सन्तान है।

अचला चुप बैठी रही। पिता की गिरी हुई आर्थिक दशा वह अब जानती थी, लेकिन अन्दर-अन्दर वह इ स हद तक पहुँच चुकी थी, यही नही मालूम था। दो साल की एकांत प्रार्थना मे मंगल-मय की कृपा हुई भी और अचानक वह समस्या हल भी हुई तो उसीका अपना मसला बड़ा पेचीदा हो गया। सुरेश से रुपया लेने के बारे मे अभी-अभी उसने जो संकल्प किया था, उस संकल्प को छोड़ना पडा। इसमे जरा भी बाधा देने की बात वह सोच नहीं सकी। जो भी हो, रुपया लेना ही पड़ेगा।

केदार बाबू संध्योपासना के लिए चले गए। अचला शुरू से अन्त तक सारी घटनाओं को दुहरा कर उपलब्धि के लिए वहीं बैठी रह रई।

उसके जीवन के संधिस्थल पर जो मित्र अगल-बगल आकर खड़े है, उनमें से एक को तो 'जाओ' कहकर विदाई देनी ही पड़ेगी, इसमें एक तिल भी संदेह नही; मगर किसे ? कौन है वह ? जो महिम उसके निःसंदेह विश्वास पर पता नहीं किस कर्त्तव्य की पुकार से, निश्चिन्त बेखटके बैठा है, उसका शांत मुखडा याद करते ही अचला की आंखें भर आई। जिसने कभी कोई अपराध नही किया, फिर भी जानो कहते ही वह चुपचाप चला जायगा। इसी जिन्दगी में किसी भी बहाने किसी भी नाते वह कभी उनके पथ में नहीं आएगा। अचला को स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा कि इस अभावनीय विदाई की अन्तिम घडी में भी उसकी अटूट गंभीरता विचलित नहीं होगी, वह किसी को दोष नहीं देगा, शायद हो कि कारण तक न जानना चाहेगा; गहरे विस्मय और गूढ़ वेदना की एक लकीर शायद उसके चेहरे पर झलके, मगर उसके सिवाय कोई उसे देख भी न पाएगा।

उसके बाद एक दिन वह सुनेगा कि मेरा विवाह सुरेश से हुआ। उस समय असावधानता में ही शातद एक लम्बा निश्वास छूट पड़ेगा या कि जरा मुसकुरा कर ही अपने काम में लग जायगा ! इस बात को सोचकर सूने कमरे में भी लज्जा और घृणा से उसका चेहरा लाल हो उठा।

नौ

दस-बारह दिन बित गए। केदार बाबू का रवैया देखकर लगता, इतनी स्फूर्ति शायद उनमें जवानी में भी न थी। आज सांझ से पहले वायस्कोप देखकर लौटते हुए गोल दीघी के आसपास हठात गाड़ी से उतर पड़ने को तैयार होकर बोले—सुरेश, मैं यहां से समाज चला जाऊँगा चलकर, तुम लोग घर जाओ बेटे; और हाथ की छड़ी को घुमाते हुए वे तेजी मे चले गये। सुरेश ने कहा— तुम्हारे पिताजी की तबीयत आजकल खूब अच्छी है, लगता है।

अचला उधर को ही ताक रही थी; बोली—जी हा, आपकी कृपा से। गाड़ी मोड़ पर मुड़ी और वे ओझल हो गए। सुरेश ने अचला के दाएँ हाथ को अपनी छाती पर खींचकर कहा—तुम्हे पता है इस बात से मुझे दुख होता है। क्या इसीलिए तुम बार-बार कहा करती हो ?

अचला जरा फीका हँसकर बोली—कहीं इतनी बड़ी दया भूल जाऊँ, इसीलिए बार-बार याद करती हूं। आपको दुखाने के लिए नहीं कहती।

उसकी हथेली को जरा-सा दबाकर सुरेश ने कहा—इसीलिए मुझे चोट ज्यादा लगती है।

क्यों ?

मैं खूब समझता हूँ कि सिर्फ इस दया को स्मरण करके ही तुम मन में बल पाती हो। इसके सिवाय तुम्हारा और जरा भी संबय नहीं, सच है या नहीं ?

अगर न कहूँ ?

इच्छा न हो, मत कहो। लेकिन मुझको कभी तुम भी नही कह सकोगी ?

अचला का मुख मलिन हो गया। सिर झुकाए धीरे-धीरे बोली—कभी कहना पड़ेगा, यह तो आप जानते हैं।

उसके उदास मुखड़े को देखकर सुरेश ने निश्वास फेंका। अगर यही होना है, तो दो दिन पहले कहने में ही कौन-सा गुनाह है ?

अचला ने उत्तर नहीं दिया। अनमनी-सी रास्ते की तरफ देखती रही। मिनट भर चुप रहकर सुरेश अचानक, बोल उठा, मुझे लगता है, महिम को सब मालूम हो गया है।

चौंककर अचला ने मुँह फेरा। उसका एक हाथ अब तक सुरेश के हाथ में ही था। उसे खींच कर पूछा—आपने कैसे जाना ?

उसकी आकुल आवाज सुरेश के कानों में खट् से लगी । बोला, नहीं तो अबतक वह आता ! पन्द्रह-सोलह दिन हो गए न !

अचला ने सिर हिलाकर कहा—आज को सिला कर उन्नीस दिन हुए । अच्छा पिताजी ने क्या उन्हे कोई पत्र लिखा है, मालूम है आपको ?

सुरेश ने संक्षेप मे कहा—नही, नही मालूम ।

वे घर से लौटे या नही, जानते है ?

नही, यह भी नही जानता ।

अचला ने फिर गाड़ी से बाहर देखते हुए कहा—तो फिर खत लिखकर उन्हें सब बताना पिताजी के लिए उचित है । किसी दिन अचानक आकर हाजिर न हो जायँ ।

फिर कुछ देर के लिए दोनो नीरव हो रहे । सुरेश ने फिर एक बार उसके शिथिल हाथ को अपने हाथ में लेकर धीरे-धीरे कहा - मुझे सबसे डर इस बात का लगता है अचला, जब मै सोचता हूँ कि तुम कभी मुझे श्रद्धा तक नही कर सकोगी । मुझे सदा यही लगेगा कि रुपए के बल पर मै तुम्हें तोड लाया हूँ, दोष यही हुआ ।

अचला ने इधर झट मे मुह फेर कर बाधा देते हुए कहा आप ऐसी बात न कहे—आपको मैं दोष नही दे सकती । जरा रुककर बोली, रुपए का जोर ससार मे हर जगह है, यह तो जानी हुई बात है; मगर वह जोर तो आपने नही लगाया । पिताजी न जानें, पर सब कुछ जानते हुए मैं अगर आप पर अश्रद्धा करूँ तो मुझे नर्क मे भी जगह नही मिलेगी ।

सुरेश की सदा की फितरत है, जरा-सी बात पर ही वह विगलित हो उठता। अचला के इसी छोटे-से प्यारे वाक्य पर उसकी आंखों मे पानी भर आया । उस पानी को अचला के हाथ से पोंछ कर उसने कहा—यह न सोचो कि इस अपराध, इस अन्याय का परिमाण मैं नहीं समझ सकता हूं । मगर मै दुर्बल हूँ । बहुत ही दुर्बल ! यह चोट महिम सह लेगा, मेरा कलेजा मगर टूक-टूक हो जायगा । कहते हुए मानो किसी जोर के धक्के को सम्हाल लिया, इस तरह से बोला—तुम मेरी नही, और किसी की हो, यह बात मैं सोच ही नही सकता - तुम्हें नहीं पाऊंगा यह सोचते ही मेरे पांवों के नीचे की जमीन तक खिसकने लगती है ।

रास्ते पर गैस की बत्तियां जलाई जा रही थी । उनकी गली मे गाड़ी के घुसते ही सुरेश के चेहरे पर रोशनी पड़ी और उसकी छल-छलाती आंखें अचला को दिखाई पड़ गई । क्षणिक दया के बस वह वही कर बैठी, जो कभी नही किया । सामने झुककर अपने हाथ से उसका आंसू पोंछती हुई बोली, मैं पिताजी को बात से कभी बाहर नही । मुझे तो उन्होंने तुम्हारे ही हाथों सोंपा है ।

अचला के उस हाथ को अपने होठों पर ले जाकर बार-बार चूमते हुए सुरेश कहने लगा, मेरे लिए यही सबसे बडा पुरस्कार है अचला, इससे ज्यादा नही चाहता। लेकिन जिसमे इतने से मुझे वंचित न करो।

गाड़ी घर के सामने खडी हुई। माईस दरवाजा खोलकर हट गया। सुरेश उतरा और उसने जतन से हाथ पकड़ कर अचला को उतारा तथा एक साथ दोनों ने देखा, ठीक सामने महिम खडा है। नजर पड़ते ही पल मे दोनों नर-नारी पत्थर हो गए।

दूसरे ही क्षण अचला ने अव्यक्त आर्त-स्वर मे क्या तो एक शब्द कहकर जोर से अपना हाथ खीच लिया और पीछे हट गई।

विस्मय से सुरेश हत-बुद्धि हो गया। बोला, सुरेश तुम यहां? पहले तो सुरेश के मुह से बात न फुटी। उसके बाद एक घोंट-घोंट कर फख पडे चेहरे पर सूखी हँसी खीच कर बोला वाह महिम! उसके बाद से लापता! बात क्या है? कब आए? चलो-चलो, ऊपर चलो। कहकर पास जाकर उसका हाथ हिलाकर कहा—मगर आपके पिताजी ने यह खूब किया। अपने तो गए समाज और पहुँचाने का भार पडा इस गरीब पर! खैर, अच्छा ही हुआ। नहीं तो महिम से शायद भेंट ही न होती। घर मे इतने दिन कर क्या रहे थे, कहो तो?

महिम न कहा—काम था। मारे अचरज के उसे अचला को नमस्ते करने की भी सुध न रही।

उसे जरा धक्का-सा देकर सुरेश बोला—जो भी हो, आदमी खूब हो तुम। हम लोग तो डर मे कातर। चिट्ठी भी देते न बना। खडे क्यों रहे? ऊपर चलो। कहकर उसे जबर्दस्ती ढकेल कर ही ऊपर ले गया। लेकिन जब वह बैठके में जाकर बैठे तो अचानक उसकी अस्वाभाविक प्रगल्भता एकबारगी थम गई। गैस की तेज रोशनी में उसका चेहरा स्याह हो उठा। दो-तीन मिनट कोई कुछ न बोला—महिम ने सूनी आंखों एक बार अपने दोस्त और एक बार अचला को देखकर सूखे स्वर मे पुछा, सब ठीक तो है?

अचला ने गर्दन हिलाकर जवाब दिया, बोली नही।

महिम बोला—मैं तो बेहद हैरान हूँ। मगर सुरेश से तुम लोगों का परिचय कैसे हुआ?

अचला सिर उठाकर मरी-सी होकर बोली, इन्होंने पिताजी के चार हजार का कर्जा वसूल कर दिया है। उसका मुह देखकर महिम के मुह से सिर्फ इतना ही निकला, उसके बाद?

इसके बाद तुम पिताजी से पूछना—कहकर अचला तेजी से अन्दर चली गई। महिम कुछ देर बैठा रहा और अन्त में मित्र से बोला' माजरा क्या है सुरेश ?

सुरेश ने उद्धत भाव से जवाब दिया, तुम्हारी तरह रुपया ही मेरी जान नहीं है। भले आदमी आड़े वक्त में मदद मांगते हैं, तो मैं देता हूँ, बस इतना ही। वे चुका ना सकें तो आशा है वह दोष मेरा नहीं। इतने पर भी अगर मुझे ही दोषी ठहराओ तो हजार बार ठहरा सकते हो, मुझे आपत्ति नहीं।

मित्र की यह बे सिर पैर की सफाई और उसके कहने के ऐसे अनोखे ढंग से महिम वास्तव में मूढ़ होकर देखता रहा और अन्त में कहा—एकाएक मैं तुम्हें ही क्यों दोषी बनाऊंगा, इसका कोई मतलब मेरी समझ में नहीं आया सुरेश। कृपा करके जब तक खोलकर न कहो तो कैसे समझ सकता हूँ।

सुरेश ने उसी रुखाई से कहा खोलकर क्या बताऊं, बताने को है ही क्या ?

महिम ने कहा— है। मैं जिस दिन घर जा रहा था, तब तुम इन लोगों को पहचानते न थे। इसी बीच ऐसी घनिष्ठता ही कैसे हो गई और एक ब्राह्म परिवार की मुसीबत मे चार-चार हजार रुपए देने की यह उदारता ही मन की कैसे आई, इतना ही मुझे समझा दो तो मैं कृतार्थ होऊं।

सुरेश ने कहा- सो हो सकता है। लेकिन मुझे अभी बात करने का समय नही है। मैं अभी चलता हूँ। इसके सिवा केदार बाबू से ही पूछ लेना न, कहने के लिए तो वे बैठे ही हुए है।

ठीक है। कहकर महिम उठ खड़ा हुआ। सुनने का बड़ा कौतूहल था, फिर भी उनके इन्तजार मे बैठने का अभी समय नहीं है। मैं जाता हूँ—

सुरेश फिर बैठा रहा कुछ बोला नही।

बाहर आकर महिम को नजर आया, सामने की रेलिंग पकड़ कर उसी तरफ देखती हुई अन्धेरे में अचला खड़ी है। लेकिन करीब आने या बात करने की उसने कोई कोशिश नहीं की। यह देखकर वह भी सीढ़ी से नीचे उतर गया।

दस

महिम कुछ जरूरी दवाएँ खरीदने के लिए कलकत्ते आया था, लिहाजा रात ही की गाड़ी से लौट गया। सुरेश ने खोज-पूछ से जाना, महिम डेरे पर नहीं पहुँचा—

चारेक दिन बाद केदार बाबू के बैठके में बैठ कर यही चर्चा शायद हो रही थी। केदार बाबू को वायस्कोप का नया नशा सवार हुआ था। तै था, आज भी चाय पीकर वे लोग निकलेंगे। सुरेश की गाड़ी बाहर खड़ी थी—ऐसे समय किसी बुरे ग्रह की तरह अकस्मात् महिम आकर दरवाजे के पास खड़ा हुआ।

सबने नजर उठा कर देखा और सबके चेहरे पर परिवर्तन-सा दिखाई दिया।

केदार बाबू ने विरस मुख से, जबर्दस्ती जरा हँसकर अगवानी की—आओ महिम। खबर सब ठीक है ?

नमस्कार करके महिम अन्दर आकर बैठा। घर मे इतनी देर होने का कारण पूछे जाने पर सिर्फ यह कहाकि जरूरी काम था। सुरेश ने मेज पर से उस दिन का अखबार उठा कर पढ़ना शुरू कर दिया। और अचला बगल की चौकी पर से सिलाई उठा कर उसमें लग गई। इसलिए बात सिर्फ केदार बाबू से होने लगी।

अचानक बीच में एक मिनट के लिए अचला उठ कर बाहर गई और तुरत अन्दर आ गई। जरा ही देर बाद सिर के ऊपर का पंखा खीचा जाने लगा। अचानक हवा जो लगी सो खुश होकर केदार बाबू बोल उठे, गनीमत है। इतनी देर में कंबख्त पंखा वाले की कृपा तो हुई।

सुरेश ने तीखी और टेढी निगाहों से देख लिया, महिम के कपाल पर पसीने की बूँदें जम आई है। क्यो अचला उठकर बाहर गई और अचानक पंखे वाले की दया कैसे हो गई, सारा कुछ लमहे मे बिजली की तरह उसके मन में खेल गया और जिस हवा से केदार बाबू खुश हुए थे, उसी हवा से उसका सर्वाग जल जाने लगा। अचानक गला खोलकर वह बोल उठा, पाँच बज गए। और देर करने से न चलेगा केदार बाबू।

केदार बाबू ने बातचीत बन्द करके चाय के लिए चीख-पुकार मचाई कि बैरा सारा सरंजाम लेकर आ पहुँचा। सिलाई छोड़कर प्याले मे चाय बनाकर पिता और सुरेश की ओर बढाते ही केदार बाबू ने पूछा—तुम नहीं पियोगी बेटी ?

अचला ने गर्दन हिलाकर कहा—नहीं, बड़ी गर्मी है।

अचानक महिम पर नजर पड़ते ही वे व्यस्त-से होकर बोल उठे, अरे, महिम को न दी। तुम नहीं पियोगे महिम ?

महिम जवाब दे, इसके पहले ही अचला ने मुड़कर उसकी ओर देख स्वाभाविक मृदुता से कहा—न, इतनी गर्मी में तुम चाय मत लो। फिर इस वक्त तो तुम्हें चाय बर्दाश्त नहीं होगी।

महिम की छाती पर से किसी ने तो दुर्वह पत्थर का बोझा जादू बल से उठा-

कर फेंक दिया। वह बोल न सका, सिर्फ अव्यक्त विस्मय से एकटक देखता रहा। अचला बोली—जरा देर सब्र करो, मैं लाइम-जूस का शरबत बनाकर लाती हूँ—और सम्मति का इंतजार किए बिना ही चली गई। सुरेश एक तरफ को मुँह घुमाकर कल के खिलौने-सा चाय पीता रहा जरूर, पर चाय की एक-एक बूंद उसे समय विस्वाद और कड़वी लगने लगी।

चाय पीकर केदार बाबू झटपट कपड़े बदल आए। आकर देखा, अचला बैठी-बैठी ध्यान से सिलाई कर रही है। उन्होंने आश्चर्य से कहा—बैठी सिलाई ही कर रही हो, तैयार नहीं हुई ?

अचला ने शांत-भाव से कहा—मैं नहीं जाऊँगी।

नहीं जाओगी ! यह कैसी बात ?

नहीं, आज आप लोग जायें। मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। कहकर वह जरा हँसी।

कुढ़न और क्रोध को दबाकर सुरेश ने कहा—चलिए केदार बाबू, आज हम लोग चलें। उनकी शायद तबीयत ठीक नहीं, जबर्दस्ती से क्या लाभ ?

उसे देखते ही केदार बाबू उसके अंदर के क्रोध को भाप गए। बेटी से पूछा, तुम्हें कुछ हुआ है ?

अचला ने कहा—मैं ठीक ही हूँ।

सुरेश महिम की तरफ पीठ करके खड़ा था। उसके मुँह के भाव को गौर नहीं किया, बोला—चलिए, हम चलें। उन्हें घर में कुछ काम हो सकता है—जोर करके ले जाने की क्या जरूरत है ?

केदार बाबू न कठोर स्वर से पूछा—घर मे कोई काम है ?

अचला ने सिर हिलाकर कहा—नहीं

केदार बाबू चिल्ला पड़े – मैं कहता हूँ, चल। जिद्दी, लड़की !

अचला के हाथ की सिलाई छूट कर नीचे गिर गई। वह स्तंभित-सी आंखें बड़ी-बड़ी करके पहले सुरेश फिर पिता को ताककर एकाएक मुंह घुमाकर तेजी से चली गई।

सुरेश ने स्याह मुखड़ा लिए कहा—आप तो सब बात में जोर-जबर्दस्ती करते है। मगर मै अब देर नही कर सकता, इजाजत दें, तो मैं जाऊँ।

अपने अभद्र आचरण से केदार बाबू मन ही मन लज्जित हो रहे थे सुरेश की बात से नाराज हो गए। मगर वह नाराजगी पड़ी महिम पर। वह बहुत ही दुखी और क्षुब्ध होकर उठना ही चाहता था। केदार बाबू ने कहा—तम्हें कोई काम है महिम

महिम अपने को जब्त करके उठते हुए बोला—नहीं।

केदार बाबू चलने को उद्यत होकर बोले- -तो आज हम लोग जरा व्यस्त है, फिर कभी आने से—

महिम ने कहा—जैसी आज्ञा। आऊँगा। लेकिन आने की कोई आवश्यकता है।

सुरेश को सुनाकर केदार बाबू ने कहा—मुझे अपने लिए कोई जरूरत नहीं। लेकिन जरूरत समझो तो आना, कुछ बातों पर चर्चा की जाएगी।

तीनों जने बाहर निकल पड़े। नीचे आकर महिम की तरफ सुरेश ने ताका तक नहीं, वह केदार बाबू को लेकर गाड़ी पर सवार हो गया। कोचवान ने गाड़ी हांक दी।

महिम कुछ ही दूर बढ़ा था कि पीछे से अपने नाम की पुकार सुनकर खड़ा हो गया। देखा, केदार बाबू का बैरा है। वह बेचारा हाँफता हुआ उसके पास आया और कागज का एक चिट उसके हाथ पर रख दिया। उस पर पेंसिल से सिर्फ अचला, लिखा था। बैरा ने कहा--उन्होंने बुलाया है।

महिम लौटा। सीढी पर पांव धरते ही देखा, अचला सामने खड़ी है। उसकी लाल आंखों की पलकें अभी भी गीली थी। पास जाते ही बोली तुम क्या अपने कसाई मित्र के हाथों मुझे जिबह के लिए छोड गए? जिसने तुम्हारे साथ इतनी बड़ी कृतघ्नता की तुम मुझे उसके हाथों छोड़कर कैसे जा रहे हो? और वह झर-झर रो पडी।

महिम काठ का मारा-सा खड़ा रहा। दो-एक मिनट में आंखें पोंछकर वह बोली—मुझे शर्माने का समय अब नहीं रहा। तुम्हारा दांया हाथ देखूँ? और खुद उसका दाहना हाथ खींचकर अपनी अंगुली से सोने की अँगूठी निकाल कर उसे उसने पहना दी। बोली मैं और सोच नही सकती अब जो करना है, तुम करो, इतना कहकर उसके पांवों तक झुक कर उसने प्रणाम किया और चली गई।

महिम ने भला-बुरा कुछ न कहा—बड़ी देर तक रेलिंग पर भार देकर चुप खड़ा रहा और फिर धीरे-धीरे उतरकर चला गया।

ग्यारह

सांझ के बाद सिर झुकाए जब महिम अपने डेरे की तरफ लौट रहा था, तो उसकी शक्ल देखकर किसी को यह कहने की मजाल न थी कि उस समय उसका प्राण पीड़ा से बाहर आने के लिए उसी के हृदय की दीवारों को खोद रहा था। कैसे सुरेश वहां पहुँचा, कैसे इतना घनिष्ठ हो गया---इसका छोटा-मोटा इतिहास अभी उसे मालूम जरूर नहीं हो सका था, लेकिन असली बात अब उसकी अजानी न थी। केदार बाबू को वह चीन्हता था। उन्हें जहां रुपए की बू मिली है, वहां से वे सहज ही पलट नही सकते, इसमे कोई सन्देह नहीं। सुरेश को भी वह छुटपन से बहुत रूपों मे देखता आया है। दैवात जिसे वह प्यार करता है, उसे पाने के लिए वह क्या दे नही सकता। यह कल्पना करना भी मुश्किल है। रुपया तो कोई चीज ही नही, यह तो उसके लिए सदा से तुच्छ रहा है। कभी उसीके लिए उसेन मुंगेर की गंगा मे अपनी जान की भी ममता नहीं की आज अगर वह किसी दूसरे के प्रेम के प्रबलता मोह मे अपने उसी महिम का ख्याल न करे तो वह उसे दोष कैसे दे ? फलस्वरूप सारी घटना उसे एक मार्मिक दुर्घटना सी लगने के बजाय उसने किसी को दोष नही दिया लेकिन यह जो इतनी-इतनी प्रचंड विरोधी शक्तियां सहसा जाग उठी है, इनको रोक कर अचला उसके पास लौट सकेगी, यह विश्वास उसे न था; इसीलिए अचला की अंतिम बातो, अंतिम आचरण ने क्षण के लिए चंचल करने के सिवाय उसे भरोसा नही दिया। अंगूठी की तरफ बार-बार देखकर भी उसे सांत्वना नही मिली---फिर भी आखिरी फैसला तो जरूरी ही ठहरा। अपने को इस तरह भुलाकर तो अब एक पल भी नहीं चल सकता। होना है सो हो, इसका अंतिम निर्णय वह जरूर हो कर लेगा। यही संकल्प करके वह अपने गरीब छात्रवास में रात के आठ बजे के बाद पहुँचा।

दूसरे दिन तीसरे पहर वह केदार बाबू के यहां गया, तो पता चला, अभी-अभी वे लोग बाहर चले गए--- कहीं न्योता है। उसके दूसरे भी दिन जाकर भेंट नहीं हुई। बैरा ने कहा – सब बायस्कोप देखने गए है, लौटने मे देर होगी। सब कौन, बिना पूछे भी महिम समझ गया। अपमान और अभिमान जितना बड़ा ही हो, लगातार दो दिनों तक लौट आना ही उसके जैसे आदमी के लिए काफी हो सकता था, लेकिन हाथ की अँगूठी ने उसे डेरे पर टिकने नही दिया तीसरे दिन फिर उसे ठेलकर वहां भेजा। आज खबर मिली, बाबू घर पर हैं, बैठके में बैठ कर चाय पी रहे है।

महिम को कमरे के पास देखकर केदार बाबू ने गंभीर स्वर में कहा—आओ महिम। महिम ने हाथ उठाकर नमस्ते किया।

वहां से कुछ दूर पर खुले झरोखे के पास एक सोफा पर अगल-बगल अचला और सुरेश बैठे। अचला की गोदी पर तस्वीरों की एक भारी किताब। दोनों तस्वीरें देख रहे थे। सुरेश ने नज़र उठाकर एक नजर देखा और फिर तस्वीर देखने में मशगूल हो गया; लेकिन अचला उलट कर देखा भी नहीं। उसका झुका हुआ मुखड़ा देखा नही जा सका, पर वह अपनी किताब के पन्नों पर जिस आग्रह से झुकी थी कि ऐसा सोचना असंगत नहीं कि पिता की आवाज, आगंतुक के पैरों की आहट, कुछ भी उसके कानों तक न पहुँची।

महिम अन्दर जाकर एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। केदार बाबू बड़ी देर तक और कुछ न बोले—थोड़ी-थोड़ी करके चाय पीने लगे, प्याला जब, खत्म हो चुका और चुप रहना जब निहायत नामुमकिन हो गया, तो प्याले को रखते हुए बोले—तो अब क्या कर रहे हो ? कानून का परीक्षा फल निकलने में तो लगता है अभी महीने भर की देर है।

महिम सिर्फ बोला—जी हा।

केदार बाबू बोले—मान लिया, पास ही कर गए और पास तुम होगे, इसमे मुझे कोई सन्देह नही, लेकिन कुछ दिन प्रैक्टिस करके कुछ रुपया जमा किए बिना तो और किसी तरफ मन को दौड़ा नहीं सकते। क्या ख्याल है सुरेश, महिम की सांसारिक हालत तो सुनते है, अच्छी नहीं है।

सुरेश बोला—नहीं। महिम जरा धीरे-धीरे हँसकर बोला—प्रैक्टिस करने से ही रुपए जमेंगे, इसका भी तो कोई ठिकाना नहीं।

केदार बाबू ने सिर हिलाकर कहा—नही, सो तो नहीं है—ईश्वर की मर्जी, लेकिन कोशिश से असंभव कुछ भी नहीं। हमारे शास्त्रकारों ने कहा है, पुरुषसिंह; तुम्हारे वही पुरुषसिंह होना होगा। और किसी भी तरफ नजर नहीं रहेगी—उन्नति और उन्नति। उसके बाद संसार कर्म करो, जो जी चाहे करो, कोई दोष नहीं—नही तो महापाप ! कहकर सुरेश की ओर एक बार देखकर बोले—क्यों सुरेश, परिवार को खिला-पहना न सकूं, बच्चों को लिखा-पढ़ा न सकूं। इसी तरह से तो हिन्दू लोग जहन्नम में गए। हम ब्रह्म समाजी भी अगर अच्छा आदर्श न दिखा पाएँ तो सत्य जगत के सामने मुंह तक न दिखा सकूंगा, ठीक है या नहीं ? क्यों सुरेश ?

सुरेश पहले की तरह ही मौन रहा; महिम मन-ही-मन असहिष्णु होकर बोला—आपके उपदेश को मैं याद रक्खूंगा। लेकिन आपने क्या मुझे इसी की चर्चा के लिए बुलाया था ?

केदार बाबू उसके मन की बात समझ गए। बोले– नहीं और भी बात है— लेकिन,···कहकर उन्होंने सोफे की तरफ देखा।

सुरेश ने खड़े होकर कहा—तो हम लोग उस कमरे मे जाकर बैठें। उसने झुककर अचला की गोदी से तस्वीर वाली किताब उठा ली। उसका यह इशारा लेकिन अचला के आगे बिल्कुल बेकार हो गया। वह जैसी बैठी थी, बैठी रही, उठने का उसमें कोई लक्षण ही न दिखाई दिया। केदार बाबू ने कहा--तुम दोनों जरा उस कमरे में जाकर बैठो बिटिया, मुझे महिम से कुछ बात करनी है।

अचला ने मुँह उठाकर पिता की ओर देखकर कहा— मैं रहूं बाबू जी।

सुरेश ने कहा—ठीक है, न हो मै ही जाता हूं और एक प्रकार से नाराज होकर हाथ की किताब उसकी गोद पर फेंककर वह जोर से कमरे से निकल गया।

हुक्म-उदूली से बेटी पर केदार बाबू खुश नहीं हुए, यह उन्होंने चेहरे के भाव से साफ बता दिया। मगर जिद भी नहीं की। कुछ देर रंज होकर बैठे रहे, फिर कहा—महिम, तुम यह मत सोचो कि मैं तुमसे ऊबा हुआ हूं, बल्कि तुम पर मेरी काफी श्रद्धा ही है। जभी एक बंधु की नाई सलाह दे रहा हूं कि इस समय किसी प्रकार की जिम्मेदारी कंधे पर लादकर अपने को निकम्मा न बना लो। अपनी तरक्की करो, कृती बनो फिर यह बोझ लेने का काफी समय मिलेगा।

महिम ने मुँह घुमाकर एक बार अचला की ओर देखा। देखते ही उसने नजर झुका ली। इस पर उसने केदार बाबू की ओर देखकर कहा—आपका आदेश सिर-आंखों। मगर आपकी बेटी की भी क्या यही राय है ?

केदार बाबू छूटते ही कह उठे–बेशक ! बेशक ! जरा देर स्थिर रहे और बोले– कम-से-कम इतना तो निश्चित है कि सारा कुछ जान-सुनकर मैं तुम्हारे पल्ले बांधकर बेटी को बहा नहीं दे सकता।

महिम ने शात स्वर से कहा—अंग्रेजों में एक प्रथा है। ऐसी हालत में वे एक दूसरे के लिए इंतजार करते है। मैं क्या आपका वही अभिप्राय मानूं ?

केदार बाबू जल-से उठे। बोले—सुनो महिम, तुम्हारे सामने शपथ लेने को मैंने तुम्हें नहीं बुलाया है। तुमने हमारे साथ जैसा सलूक किया है, और कोई बाप होता तो महाभारत मच जाता। पर मैं निहायत शांति चाहने वाला आदमी हूं, कोई शोर-गुल, कोई हंगामा नहीं पसंद करता; जहां तक संभव है, मीठी बातों से ही तुम्हें अपना इरादा बता दिया। अब तुम इंतजार करोगे या नहीं, अंग्रेज लोग क्या करते है, इतनी कैफियत से हमें कोई मतलब नहीं। फिर हम अंग्रेज नहीं, बंगाली हैं, लड़की के बड़ी हो जाने से हमें नींद नहीं आती, खाना नहीं रुचता, यह तुम्हीं कौन नहीं जानते हो ?

महिम का चेहरा और आंखें सुर्ख हो आईं, मगर अपने को जब्त करके उसने धीर भाव से कहा—मैंने ऐसा क्या सलूक किया कि और कोई होता, तो महाभारत मच जाता—यह सवाल मैं आप से नहीं पूछना चाहता। केवल आपकी बेटी के मुंह से एक बार यह सुनना चाहता हूं कि उनका भी यही अभिप्राय है या नहीं! और वह खुद उठकर अचला के पास गया, क्यों, यही तो?

अचला ने न सिर उठाया, न बात की।

उमडते हुए एक उच्छ्वास को पीकर महिम ने फिर कहा—एकांत में तुम्हारी मंशा जानने-पूछने का मुझे मौका नहीं मिला- इसके लिए मैं क्षमा चाहता हूं। उस दिन शाम को सनक में तुम जो कर बैठी थीं, उसके लिए भी तुम्हें जिम्मेवार न बनाऊंगा। सिर्फ एक बार यह कहो कि यह अँगूठी तुम वापस चाहती हो या नहीं?

आंधी की तेजी से कमरे के अंदर आकर सुरेश ने कहा – मुझे माफ करना पडेगा केदार बाबू, अब एक मिनट भी ठहरने का समय मेरे पास नहीं है।

जो मौजूद थे, सब ने अचरज से नजर उठाकर देखा। केदार बाबू ने पूछा, क्यों?

सुरेश ने नाट्य भंगिमा से कहा—नहीं-नही, मेरी इस गलती के लिए माफी नहीं। मेरा अंतरंग मित्र प्लेग से मरणासन्न है और मैं क्या तो यहा बैठा-बैठा नाहक ही समय बर्बाद कर रहा हूं!

केदार बाबू ने घबराकर पूछा—कहते क्या हो सुरेश! प्लेग! तुम वहाँ जाओगे क्या?

सुरेश हँसकर बोला—बेशक! बहुत पहले ही वहां जाना मेरा उचित था।

केदार बाबू शंकित होकर बोले- मगर प्लेग है! वे क्या तुम्हारे ऐसे कोई खास आत्मीय है—

सुरेश ने कहा—आत्मीय! आत्मीय से बहुत बड़ा केदार बाबू! महिम की कटाक्ष करके उसने यही पहली बार बात की, महिम, अपने निशीथ को कल रात से ही प्लेग हुआ है, जिएगा—यह आशा नहीं है। तुमसे भी बता देना उचित है—चलोगे देखने उसे?

महिम इस निशीथ को पहचान नहीं सका। पूछा—कौन निशीथ?

कौन निशीथ? कह क्या रहे हो महिम? इसी बीच तुम निशीथ को भूल गए? जिसके साथ तुम सारा सेकंड-इयर पढ़ते रहे, ऐसी आफत की घडी में उसे भूल गए? कहकर उसने अचला की तरफ देखकर व्यंग के स्वर में कहा—याद भी क्यों आए! प्लेग है न!

महिम ने इस व्यंग को चुपचाप सहकर पूछा—वे क्या भवानीपुर से आया करते थे ?

सुरेश ने व्यंग से ही जवाब दिया, हाँ, वही। मगर निशीथ तो दो-चार था नहीं कि अब तक तुम्हें याद नहीं आया। पूछता हूँ, चलोगे ?

अब पहचान कर पूछा—निशीथ इन दिनों कहां रहता है ?

सुरेश बोला – और कहां ? अपने घर, भवानीपुर में। ऐसे आड़े वक्त एक बार उससे मिलना क्या कर्त्तव्य नही लगता तुम्हें ? मै डाक्टर ठहरा, मुझे तो जाना ही पड़ेगा; और वैसी मिताई भूल नही गए हो तो तुम भी मेरे साथ चल सकते हो। केदार बाबू, मेरा ख्याल है, आप लोगों की बात खत्म हो चुकी। आशा है, थोड़ी देर के लिए भी इसे फुर्सत दे सकेंगे ?

यह व्यंग किस पर हैं, समझ न पाने के कारण केदार बाबू, कभी महिम और कभी बेटी की ओर उद्विग्न होकर ताकने लगे। अपने धनी भावी दामाद का मान-अभिमान किस बात में और कब जो तुनक पड़ता है, यह वे आज भी समझ न सके। उनके मुंह से बात न निकली, महिम भी काठ का मारा-सा देखता रहा। देखते-देखते अचला का चेहरा लाल हो उठा। वह धीरे-धीरे हाथ वाली किताब को मेज पर रखकर इतनी देर के बाद बोली। कहा तुम्हें तो जाना ही चाहिए; मगर इनके कानून की किताब में तो प्लेग का निदान नहीं लिखा है ? ये किस लिए जाँय ?

इस एक बारगी अप्रत्याशित जवाब से सुरेश अवाक् हो गया। मगर दूसरे ही क्षण बोल उठा—मैं वहाँ डाक्टरी करने नही जा रहा हूँ, उसे डाक्टरों की कमी नहीं है। मैं जा रहा हूँ, मित्र की सेवा करने। मिताई को मैं अपनी जान से भी बड़ी मानता हूँ।

एक निष्ठुर हँसी की झलक अचला के होठों पर झलक आयी; बोली—हर आदमी तुम्हारी ही तरह महान् होगा, ऐसी तो कोई बात नहीं। मिताई का इतना बड़ा बोध उन्हें न हो तो मैं लज्जा का कारण नहीं समझती। खैर जो भी हो, वहां इनका जाना हर्गिज न होगा।

सुरेश का चेहरा काला पड़ गया। केदार बाबू सशंकित हो उठे। भय से कहने लगे—यह सब तू क्या कह रही है अचला ? सुरेश जैसा, सच ही तो—निशीथ बाबू जैसे,

अचला ने टोककर कहा—निशीथ बाबू को पहले तो पहचान ही नहीं सके। फिर वे डाक्टर हैं, वे जा सकते हैं। लेकिन दूसरे को नाहक ही मुसीबत में खींच ले जाना क्या ?

चोट खाने पर सुरेश को होश नहीं रहता। उसने मेज पर जोरों की मुट्ठी मारी और जो मुंह में आया, चिल्ला कर वही बोल उठा—मैं डरपोक नहीं, जान को नहीं डरता मैं। महिम की ओर इशारा करके बोला—इस नमकहराम से ही पूछ देखो, दो-दो बार मैंने इसे मरने से बचाया या नहीं ?

अचला ने जोर भरे शब्दों में कहा नमकहराम ये हैं ! खूब ! मगर जिसे एक बार बचाया, कभी जी में आया तो उसका शायद खून भी कर दिया ?

केदार बाबू किंकर्त्तव्यविमूढ से बोल उठे—रुक भी अचला, ठहरो सुरेश। यह सब क्या !

सुरेश ने लाल-लाल आंखों से केदार बाबू की ओर देखकर कहा—मैं प्लेग के पास जा सकता हूँ, इसमें हर्ज नहीं ! महिम की जान ही जान है, मेरी कुछ नहीं ! देख लिया न आपने !

लज्जा और क्षोभ से अचला रो पड़ी। रुँधे स्वर मे कहने लगी—अपनी जान वे देना चाहते हैं, दें, मैं रोक नही सकती; किंतु जहां रोकने का मुझे पूरा अधिकार है, वहां मैं जरूर रोकूंगी। मैं इन्हें वैसी जगह हर्गिज नही जाने दे सकती। कहकर वह वहां से जाने लगी कि केदार बाबू चीख उठे—जा कहां रही है अचला !

अचला ठिठक गई। बोली—न, बाबू जी, रात-दिन इतना जुल्म अब मुझसे बर्दाश्त नहीं होता। जो बिल्कुल गैरमुमकिन है, प्राण रहते जो मैं कदापि नहीं कर सकूंगी, उसी के लिए तुम लोग रात-दिन मुझे वेध रहे हो। उमड़ती हुई रुलाई को दबाती हुई वह कमरे से बाहर चली गई। बूढ़े केदार बाबू हतबुद्धि से जरा देर ताकते रहे और बोले—सब बच्चे-से जुटे है—यह सब क्या है, कहो तो !

बारह

एक महीना के करीब बीता। केदार बाबू राजी हो गए—अगले रविवार को महिम से अचला की शादी तै पा गई। उस दिन सुरेश जैसी हरकत कर गया, वह सचमुच ही केदार बाबू के कलेजे में चुभी थी। लेकिन यह नहीं कि उसी अपमान को तौलकर अंत में महिम पर प्रसन्न होकर उन्होंने हामी भरी हो। सुरेश खुद ही जो कहां गायब हो गया, तब से आज तक उसका कोई पता ही नहीं। ऐसा सुनने में आया, वह कहीं पश्चिम चला गया है, कब लौटेगा, कोई नहीं जानता।

उस दिन अपनी रुलाई को दबाने के लिए अचला जब कमरे से बाहर चली गई, तो बड़ी देर तक स्याह मुँह किए तीनों जने बैठे रहे थे। पर बात पहले सुरेश ने ही की। केदार बाबू की तरफ मुखातिब होकर उसने कहा—मगर आपको आपत्ति न हो, तो आपके सामने ही मैं आपकी लड़की से दो-एक बात कहना चाहता हूँ।

केदार बाबू ने कहा—बखूबी ! तुम बात कहोगे, इसमें आपत्ति कैसी सुरेश ! सब बचपने की बात—

तो फिर उसे बुलाइए, मुझे ज्यादा समय नहीं है।

उसके चेहरे और कंठ-स्वर की गंभीरता से केदार बाबू के मन में शंका हुई। मगर जबर्दस्ती जरा हँसकर फिर वही टेक ले बैठे, सब बचपने की बात ! उसे जरा सम्हलने का मौका दिए बिना, समझ गए सुरेश, यह प्लेग-प्लेग के नाम से ही—औरत का जी ठहरा न ! सुना नहीं कि होश फाख्ता समझ गये बेटे—

किसी तरह की कैफियत पर ध्यान देने जैसी मन की अवस्था सुरेश को न थी—वह अधीर होकर बोल उठा—सच मानिए, इंतजार करने का मुझे बिल्कुल समय नहीं।

सो तो है। सो तो—। अरे, कौन है ? कहकर उन्होंने आवाज दी। कनखियों से महिम को देखा। महिम ने खडा होकर नमस्ते किया और चुपचाप बाहर चला गया।

केदार बाबू खुद जब अचला को बुलाकर ले आये, तब पश्चिम के झरोखे-दरवाजे से तीसरे पहर के सूरज की रंगीन किरणें कमरे भर में बिखर गई थीं। उस आभा में निखरी हुई इस युवती के दुबले-छरहरे वदन की ओर देखकर पल के लिए सुरेश के कुढ़े मन में एक मोह और पुलक का स्पर्श खेल गया, लेकिन वह स्थायी न हो सका। उसके चेहरे पर नजर पड़ते ही उसका वह भाव तुरन्त काफूर हो गया। फिर भी उससे आंखे हटाते न बना, अपलक उसे देखते हुए स्तब्ध बैठा रहा। अचला के मुँह पर आसमान का प्रकाश नहीं पड़ रहा था, पर सामने की दीवार से छिटककर आती हुई ज्योति में उसका मुखड़ा सुरेश को ब्रोंज की कठोर मूर्ति-सा लगा। उसने साफ देखा कि कैसी तो एक गहरी वितृष्णा ने उसकी सारी मधुरता, सारी कोमलता को सोख लिया है और उसके मुख की एक-एक रेखा तक को अडिग दृढ़ता से एकबारगी धातु की तरह सख्त कर दिया है। अचानक केदार बाबू के एक गहरे निश्वास के आघात से सुरेश चौंक उठा और सीधा बैठ गया।

केदार बाबू ने फिर अपनी वही पुरानी बात दुहराई—सब पागलपन, किससे क्या कहूँ, मैं सोच नहीं पाता—

अचला को लक्ष्य करके सुरेश खासी गंभीरता से बोला—आप जो कह गईं, वही ठीक है।

अचला ने सिर हिलाकर कहा—हां।

इसमें कोई परिवर्तन की गुंजाइश नहीं ?

अचला ने सिर हिलाकर कहा—नहीं।

खून की एक उबाल ने आग की लहक-सी सुरेश के आंख-मुंह को चमका दिया; लेकिन आवाज को संयत करके ही बोला—जब मेरी जान की ही कोई कीमत नहीं, तभी मैं समझ रहा था। उसकी छाती उस समय अन्दर से जल रही थी। कुछ देर स्थिर रहकर वह बोला—अच्छा यह पूछता हूँ,मैं ही क्या पहला शिकार हूँ कि और भी बहुत से लोग जाल मे फँसकर सिर मुड़वा चुके है ?

असह्य विस्मय से अचला ने आंखें बड़ी-बड़ी करके देखा। सुरेश ने केदार बाबू से कहा - सुना है, बाप बेटी मिलकर शिकार फँसाने का व्यापार विलायत में नया नही है; मगर आपसे मैं यह भी कहे देता हूँ केदार बाबू; आपको किसी दिन जेल जाना पड़ेगा।

केदार बाबू चीख उठे, तुम यह सब क्या कर रहे हो सुरेश ?

सुरेश ने उसी दृढ़ता के साथ कहा—चुप भी रहिए केदार बाबू, नाटक का अभिनय बहुत दिनों से चल रहा है। पुराना पड़ गया। मै अब इससे बहलने का नही रुपये मेरे गए, बला से; बदले में सबक भी कम नहीं मिला; मगर यही जिसमें अन्तिम हो !

अचला रो उठी, आपने इनके रुपये लिए क्यों बाबू जी ?

केदार बाबू एक टुकड़ा सादा कागज के लिए इधर-उधर हाथ बढ़ाते फिरे आखिरकार एक पुराने अखबार को ही उठाकर चिल्ला उठे—मैं अभी हैंडनोट लिख देता हूँ।

सुरेश ने कहा—रहने दीजिए, इस लिखा-पढ़ी की जरूरत नहीं। आप रुपये चुकाएँगे सो मैं जानता हूं। लेकिन उन थोड़े-से रुपयों के लिए नालिस करके मैं भी अदालत में खड़ा न हो सकूंगा।

जवाब देने के लिए केदार बाबू लगातार होंठ हिलाने लगे, पर एक भी शब्द न निकला।

सुरेश ने घूमकर अचला की तरफ देखा। उसके पीले पड़े चेहरे और गीली आंखों को देखकर उसे बूंद भर दया न आई, बल्कि अन्दर की ज्वाला सौगुनी बढ़ गई। वह पैशाचिक निष्ठुरता से बोल उठा—नाज करने लायक तुम्हें है क्या अचला,

यही तो मुंह की खूबसूरती, यही तो लकड़ी सा शरीर, यह रंग ! फिर भी मैं लट्टू था—वह क्या तुम्हारे रूप से ? ऐसा ख्याल भी न करना ।

पिता के सामने ऐसे बेहया अपमान से अचला दुःख और घृणा से दोनों हाथों से आंखें छिपाकर कोच पर औंधी पड़ गई । सुरेश ने खड़े होकर कहा—ब्राह्मों को मैं फूटी आंखों नहीं देख सकता । जिनकी छाया छू जाने से भी मुझे नफरत होती थी, उनके घर में कदम रखते ही जब मेरे आजन्म का संस्कार, सदा का विद्वेष एक पल में धुल गया, तभी मुझे शंका होनी चाहिए थी कि यह जादू है । मुझ पर जो बीता, बीते, परन्तु जाते समय मैं आप लोगों को हजारों धन्यवाद दिए बिना नहीं जा सकता । धन्यवाद अचला !

अचला मुंह गाडे हुए ही रूँधे स्वर से बोल उठी—पिता जी, उन्हे चुप रहने को कहिए । हम पेड के नीचे रहेंगे, वह भी अच्छा, मगर आपने उनका जो लिया है, लौटा दीजिए ।

सुरेश ने कहा —पेड़ के नीचे ? कभी तुम लोगों को वह भी नसीब न होगा । कहे देता हूं । फिर भी उस दिन मुझे स्मरण करना—कहकर वह उत्तर की राह देखे बिना ही जल्दी से चला गया ।

केदार बाबू कुछ देर चुप रहे, फिर एक लम्बी उसाँस लेकर बोले—उफ ! कैसा खतरनाक आदमी ! ऐसा जानता तो क्या मैं उसे घर में कदम रखने देता ।

पिता की बात अचला के कानों पहुँची, पर वह कुछ न बोली । औंधी पड़ी जैसे रो रही थी, वैसी ही पड़ी आंसू से अपनी छाती को भिगो रही थी । पास ही बैठे केदार बाबू सब देखते रहे लेकिन दिलासे का एक शब्द भी कहने का उन्हें साहस नहीं हुआ । सांझ हो गई । बैरा गैस की बत्ती जलाने आया कि उठकर वह अपने कमरे मे चली गई ।

महिम को लेकिन यह सब कुछ न मालूम हो पाया । सिर्फ उस दिन जब अन्त तक केदार बाबू ने अपनी बेटी के साथ उसके विवाह की सम्मति दी, वह कुछ देर के लिए विह्वल की नाईं स्तब्ध बैठा रहा । बहुत तरह की बातें, शंकाएँ उसके मन में उठीं जरूर, पर अपने इस सौभाग्य का खुद सुरेश ही मूल कारण है, इसकी कल्पना तक उसके मन में न उठ सकी । अचला के प्रति स्नेह प्रेम और करुणा से उसका हृदय परिपूर्ण हो उठा, मगर वह सदा मे मौन प्रवृति का आदमी ठहरा । आवेग और उच्छ्वास कभी प्रकट नहीं कर सकता, कर पाता भी तो यह उसकी जवान के लिए निहायत अप्रत्याशित, अजीब-सा आचरण लोगों की नजर में लगता । बल्कि शाम को अकेले में केदार बाबू से कुछ बातें करके जब वह डेरे लौटा, तो और

दिन की तरह अचला से भेंट करके उसे मामूली-सा नमस्कार भी न कर सका। बात केदार बाबू ने खुद उठाई थी। प्रसंग उठाने से लेकर के ब्याह की सम्मति, यहां तक कि दिन तै करना तक सब अकेले ही किया। मगर सब कुछ जैसे निरुपाय होकर किया; उनके चहरे पर उत्साह और उमंग की झलक तक न आई। फिर भी दिन बीतने लगे और ब्याह का दिन आया।

परसों विवाह! मगर लड़की के विवाह में धूम-धाम न करने की सोच रक्खी थी, इसलिए आयोजन जितना चुपचाप हो सके, इसमें कुछ कसर न रक्खी।

आज तीसरे पहर भी वे यथासमय चाय पीने बैठे थे। कोई सिलाई लेकर अचला पास ही एक कोच पर बैठी थी। बहुत दिनों से तकलीफ मे दिन काटते हुए इन कै दिनों से जो शान्ति उसके मनमे विराज रही थी, उसीकी हल्की आभा से उसका पीला मुखडा मद्धिम चांदनी सा ही स्निग्ध दीख रहा था। चाय पीते-पीते केदार बाबू बीच-बीच में यही देख रहे थे। झगडकर सुरेश के चले जाने के बाद से मनहूसियत से ही दिन काट रहे थे। लौटकर वह क्या करेगा; न करेगा-इसकी फिक्र! फिर भी इस सम्बन्ध मे उन्ही का अपना क्या कर्त्तव्य है—हैडनोट लिख देना या रुपया चुका देने के लिए और कही कर्ज़ लेना या कि इसकी जिम्मेदारी महिम के कन्धों लाद देना—क्या किया जाय, सोच-सोचकर कोई किनारा नही पा रहे थे। लेकिन कुछ करना जरूरी है, सुरेश के गायब हो जाने की दुहाई पर नही चलने का—या बेटी की तरह अपनी धुन मे मगन हो आंखे मूंदे रहने से यह आफत नही टलेगी, इसे वे खूब समझते थे। निराश प्रेमी अचानक एक दिन ताजा हो उठेगा और उस दिन आकर चारों तरफ यह बात फैला कर एक हंगामा खड़ा कर देगा। रुपया उसने चेक से दिया है, लिहाजा अदालत मे उससे इनकार करना मुश्किल होगा—सब सोच कर वे निस्संदेह हो उठे थे, लेकिन बेटी से जरा राय-सलाह की भी गुन्जाइश न थी। सुरेश का जिक्र करने में भी उन्हें डर लगता था। अभी अचला के शांत स्थिर मुख की छवि को देख-देख कर उन्हे जलन-सी हो रही थी कि उनके सारे दुखों की जड़ यह लड़की ही है जोकि कैसी सहूलियत हो आई थी और भविष्य मे जाने कितनी सहूलियत होती!

जो निर्दयी बेटी बाप के बारम्बार मना करने पर भी, उनके सुख-दुःख का ख्याल न कर सकी। सारा गुड़ जिसने गोबर कर दिया उस स्वार्थी संतान पर उनका छिपा क्रोध जब-तब अभिशाप बनकर यही कामना करता, जिसमें उसे इसका फल मिले, जिसमें किसी दिन उसे रो-रो कर कहना पड़े कि तुम्हारे खिलाफ जाने की सजा मैं भोग रही हूँ पिताजी। जहाँ तक लड़के का सवाल है, महिम से सुरेश कहीं अधिक वांछनीय है। यह धारणा उनके जी में ऐसी जम गई थी कि उससे नाता

टूट जाने को वे बहुत बड़ा नुकसान मान रहे थे। मन मे उन्हें उस पर क्रोध न था। इतना कुछ गुजर चुकने के बाद भी अगर उसे फिर से पाने का कोई उपाय होता, तो तै शुदा शादी को तोड़ देने में भी उन्हें देर न होती। मगर कोई उपाय नही – कोई उपाय नहीं। अचला के सामने तो उसका आभास तक लाने का उपाय नही।

सिलाई करते-करते अचानक सिर उठाकर अचला ने कहा—सुरेश बाबू के बारे मे पढ़ा ?

अचला की जबान पर सुरेश का नाम ! केदार बाबू ने चौंक उधर देखा। अपने कान पर विश्वास न हुआ। सुबह का अखबार मेज पर पड़ा था। अचला ने उसे उठाकर फिर से वही पूछा –अखबार पर सबेरे उन्होंने जहाँ-तहाँ नजर फेरी थी, लेकिन किसी और की खबर के लिए वैसी दिलचस्पी इस समय उन्हे नहीं थी। बोले– कौन सुरेश ?

अखबार मे उस जगह को ढूँढ़ते हुए अचला बोली शायद अपने ही सुरेश बाबू है।

केदार बाबू ने अचरज से दोनों आंखे फाड़ ली।

बोले—अपने सुरेश बाबू ? क्या किया उन्होंने ? कहाँ है वे !

अचला अखबार का वह स्थल पिता के हाथ पर रखते हुए बोली—पढ देखो न।

चश्मे के लिए जेब टटोलते हुए केदार बाबू बोले –चश्मा शायद मै कमरे मे ही छोड़ आया। तुम्हीं पढ़ो न, सुनूं, क्या माजरा है।

अचला ने पढ़कर सुनाया, फैजाबाद से किसी सज्जन ने पत्र लिखा है, उस-दिन शहर के गरीबों के मुहल्ले में जोरों की आग लग गई। एक तो प्लेग फैला है, तिस पर यह दुर्घटना लोगों के कष्ट की कोई सीमा न रही। कुछ दिनों से सुरेश नाम के एक भद्र युवक यहाँ आकर रुपए-पैसे, दवाई और शारीरिक श्रम लगा कर रोगियों की सेवा कर रहे है। इस मुसीबत के समय उन्हें खबर मिली, कोई बीमार औरत किसी जलते हुए घर के अन्दर घिर गई है - उसे बचाने वाला कोई नहीं।

संवाददाता ने इसके बाद लिखा है, उस बेचारी की जान बचाने के लिए किस प्रकार से वह दुस्साहसिक बंगाली युवक अपनी जान को हथेली पर रखकर लहकती आग में कूद पड़ा, आदि-इत्यादि।

पढ़ना खत्म हुआ। केदार बाबू बड़ी देर तक चुप बैठे रहे, फिर एक निश्वास छोड़कर बोले,लेकिन यह अपना ही सुरेश है, तुम्हें ऐसा लगता है ?

अचला ने शांत-भाव से कहा—हां, ये अपने ही सुरेश बाबू हैं।

केदार बाबू फिर चौंक उठे ! शायद अपने अजानते ही अचला के मुंह से इस अपने, शब्द पर जरा ज्यादा जोर पड़ गया था । हो सकता है, निश्चित विश्वास जताने के लिए, पर केदार बाबू के कलेजे में वह और ही प्रकार से लगा; और डूबता हुआ आदमी जैसे तिनको को पड़कने के लिए दोनों हाथ बढ़ा देता है, ठीक वैसे ही बूढ़े पिता ने बेटी के मुह की इस एक बात को बड़े आग्रह से कलेजे में धर लिया । यही एक बात उनके कानों पलक मारते कितनी क्या असंभव संभावनाओं का द्वार खोल गई, जिसकी सीमा नहीं । इतने दिनों के बाद आज उनका मुखड़ा एकाएक आशा के आनन्द से उद्‌भासित हो उठा । बोले—अच्छा बेटी, तुम्हें क्या ऐसा नही लगता कि—

पिता को हठात् थम जाते देख अचला ने उनकी ओर देख कर पूछा—क्या नही लगता है बाबूजी ?

केदार बाबू सावधानी से बढ़ने की नीयत से मुह की बात को दबा गए । बोले, तुम्हें क्या ऐसा नहीं लगता कि सुरेश हम लोगों के साथ जो व्यवहार कर गया, उसके लिए वह बहुत ही अनुतप्त है ?

अचला तुरत बोल उठी, मुझे ऐसा निश्चित लगता है पिताजी, केदार बाबू जोर से सिर हिलाकर बोले—बेशक ! बेशक ! हजार बार ! ऐसा न होता तो वह इस तरह भाग न जाता—कहां की एक मामूली स्त्री को बचाने के लिए आग में नहीं कूद पड़ा ! मुझे ऐसा लगता है, वह सिर्फ इसी अफसोस में जल मरने गया था ! सच है न बिटिया !

पिता की बात के ठीक जवाब को टालकर अचला धीरे-धीरे बोली—दूसरे को बचाने के लिए वे और भी कई बार अपनी जान खतरे मे डाल चुके हैं ।

बात केदार बाबू को वैसी अच्छी न लगी । बोले—वह और बात है अचला ! यह तो आग में कूदना हुआ ! मौत को सीधे गले लगाना ! दोनों का फर्क नहीं समझती ?

अचला ने बात नहीं काटी । कहा—जी हां, सो है । लेकिन जो बड़े दिल वाले होते है, वे किसी भी अवस्था में औरों की मुसीबत की घड़ी में अपनी मुसीबत भूल जाते हैं ।

केदार बाबू उत्साह से, उछल पड़े । दमकते स्वर में बोले—ठीक ! ठीक कहती हो ! जभी तो तुझसे कहता हूँ, सुरेश एक महत् प्राण व्यक्ति है ! उससे क्या किसी की तुलना हो सकती है ! इतने-इतने तो लोग हैं, मगर कौन किसकी बात पर पांच-पाँच हजार रुपए दे सकता है, बता तो ! उसने जो भी चाहे किया, बड़े दुःख से ही कर बैठा, यह मैं शपथ लेकर कह सकता हूँ ।

मगर शपथ की कोई जरूरत नहीं थी। यह सत्य अचला खुद जितना जानती थी, उसका सौवां हिस्सा भी वे नहीं जानते थे। लेकिन जवाब न दे सकी—पल की लज्जा कहीं खुल जाय, इस डर से झट गर्दन झुकाकर वह मौन हो रही। लेकिन बूढ़े की प्यासी आंखों से वह बच न सकी। वे पुलकित हृदय से कहने लगे, आखिर आदमी देवता तो है नहीं, वह आदमी ही है! उसका शरीर दोष-गुणमय है—लेकिन इसीलिए उसके दुर्बल मुहूर्त उत्तेजना को उसका स्वभाव नही मान लेना चाहिए। बाहर के जो चाहे सो कहें, मगर हम लोग भी अगर इसीको उसका दोष कहे तो उनसे हमारा फर्क कहां रहेगा बता? धनी तो बहुतेरे पडे है, पर इस तरह से देना कौन जानता है? क्या वहां पर लिखा है, एकबार फिर तो पढ बेटी। आग से उसे सुरक्षित निकाल लाया। ओः कितना बड़ा प्राण! देवता और कहते किसे हैं? कहकर उन्होंने लंबा निश्वास छोड़ा।

अचला वैसे ही सिर झुकाए चुप बैठी रही।

केदार बाबू कुछ देर स्तब्ध बैठे रहे, फिर बोल उठे—अच्छा, तार भेजकर उसका कुशल मँगाना क्या उचित नही है? उमकी इस मुसीबत मे भी क्या रूसना ठीक है।

अचला ने अब की सिर उठाकर कहा – मगर हमें उनका पता जो नहीं मालूम!

केदार बाबू बोले – पता! फैजाबाद मे ऐसा भी कोई है जो आज अपने सुरेश को नही पहचानता? उस पर मुझे बड़ा गुस्सा आया था, लेकिन अब कुछ नही है। एक तार लिखकर तुरत भेज दो बिटिया; उसके कुशल के लिए मैं व्यग्र हो उठा हूं।

अभी भेज देती हूं बाबूजी—वह तार का कागज लाने के लिए निकली कि सुरेश के सामने पड़ गई।

हृदय में गहरा दुःख ढोने की थकावट इतनी जल्दी मनुष्य के मुखड़े को सूखा और श्रीहीन कर देती है, अपने जीवन में अचला ने यही पहली बार देखा। चौंक उठी वह। कुछ देर तक किसीके भी मुँह से कोई बात नहीं निकली। उसके बाद वही बोली—बाबू जी बैठे हैं, चलिए अन्दर चलिए। फैजाबाद से कब आए? अच्छे तो हैं?

अनजानते उसकी बातों में कितना स्नेह झलक गया, वह खुद न समझ सकी। लेकिन सुरेश मानों टूट पड़ने को हो गया—फिर भी उसने अपने पिछले दिनों के कठोर सबक को बेकार नहीं होने दिया। तुरत उन दोंनों रँगे चरणों में घुटने टेक कर अपना सारा कुछ उड़ेल देने की दुर्जय आकांक्षा को जी-जान से दमन करके अदब के साथ बोला—मेरे फैजाबाद जाने की बात को आपने कैसे जाना?

अचला ने वैसे ही स्नेह भीगे स्वर में कहा—अखबार में पढ़कर बाबू जी तुरत मुझे तार भेजने को कह रहे थे। आपके लिए वे बड़े बेचैन हो उठे हैं - चलिए, उनसे जरा भेंट कर लीजिए। कहकर उसने मुड़ने की चेष्टा की कि सुरेश बोला—वे बेचैन हो सकते हैं, मगर तुमने मुझे कैसे माफ किया अचला ?

अचला के होठों पर हँसी की हलकी-सी झलक दिखाई दी। बोली—उसकी मुझे जरूरत नहीं पड़ी। मैंने एक दिन के लिए भी आप पर गुस्सा नहीं किया। आइए, अंदर आइए।

तेरह

सुरेश ने जब बताया कि वह महिम के पत्र मे शादी की खबर पाकर ही जल्दी जल्दी आ गया है, तो केदार बाबू शर्म से चचल हो उठे, मगर अचला के भाव मे कुछ भी नहीं झलका।

सुरेश बोला—महिम के विवाह मे आए बिना कैसे चले, वरना और कुछ दिन अस्पताल मे रह गया होता, तो ठीक था।

केदार बाबू ने उतावली से पूछा—अस्पताल मे क्यों सुरेश ? वैसा कुछ तो—

सुरेश ने कहा—जी हां, खास कुछ नहीं, लेकिन शरीर ठीक न था।

केदार बाबू निश्चित होकर बोले—इसके लिए ईश्वर को प्रणाम करता हूँ। अचला ने जब अखबार से तुम्हारी अलौकिक कहानी पढकर सुनाई, तो क्या बताऊँ तुमसे, आनन्द और गर्व से मेरी आंखों से आंसू बहने लगे। मन ही मन कहा—हे ईश्वर, मैं धन्य हूँ कि मै ऐसे आदमी का भी बन्धु हूँ ! उन्होंने हाथ जोड़कर कपाल से लगाया। कुछ रुककर बोले—मगर यह भी कहूँ, बार-बार अपनी जान को खतरे में डालना भी क्या ठीक है ? एक साधारण-से प्राण को बचाने मे अगर ऐसा एक महत् प्राण चला जाता, तो संसार का ज्यादा नुकसान नहीं होता ?

नुकसान ऐसा क्या होता ! कहकर सलज्ज भाव से नजर घुमाते ही उसने देखा, अचला अब तक एक टक उसीके चेहरे की तरफ ताक रही थी। अब उसने नजर झुका ली।

केदार बाबू बार-बार कहने लगे, ऐसी बात जबान पर भी नहीं लानी चाहिए। क्योंकि अपनों के दिल में इससे कितनी चोट लगती है इसका ठिकाना नहीं।

सुरेश हँसने लगा। बोला, अपना तो मुझे कोई नहीं है केदार बाबू ! हैं एक फूफी। मेरे गुजर जाने से उन्हीं को जो तकलीफ होगी।

गरचे सुरेश हँसते हुए बोला—तो भी यह सुनकर केदार बाबू की आंखें गीली हो आईं कि उसे कोई नहीं है। बोले, केवल फूफी को ही कष्ट होगा सुरेश ? नहीं-नहीं, इस बूढ़े को भी कुछ कम कष्ट नही होगा बेटे ! खैर, मैं जब तक जिन्दा हूं, इन कुछ दिनों अपने शरीर की हिफाजत रक्खो सुरेश, यही मेरा एकांत अनुरोध है।

घड़ी मे रात के दस बजे। लौटने को तैयार होकर अचानक हाथ जोड़कर उसने कहा—एक विनती है मेरी, महिम का विवाह तो मेरे ही घर से होगा, यही तै हुआ है; लेकिन वह तो परसों होगा; कल रात भी लेकिन इस नाचीज के घर चरणों की धूल देनी पड़ेगी - नहीं तो मुझे यह यकीन न आयगा कि मुझे माफी मिली है। कहिए, यह भीख देंगे आप ?—झुककर वह केदार बाबू के पैरों की धूल लेने गया।

केदार बाबू हड़बड़ मे जबर्दस्ती उसे इससे रोकने लगे कि उसकी अस्फुट आह से वे उछल पड़े। पीठ पर कुछ जल जाने के कारण पट्टी बंधी थी—ऊनी चादर डालकर सुरेश ने उसे छिपा रक्खा था। अनजाने में खींचातानी करते समय उन्होंने पट्टी ही खिसका दी थी। खुले जख्म को देखकर केदार बाबू डर से चीख पड़े। बिजली की तरह झट अचला आ पहुँची और पट्टी को थाम कर बोली—ठहरिए मैं ठीक से बांध देती हू। सुरेश को बगल के सोफे पर बिठाकर जतन से पट्टी बांधने लगी।

केदार बाबू धप्प से अपनी कुर्सी पर बैठ गए— आंखें बन्द कर लीं। बड़ी देर तक उनके मुह से शब्द ही न निकला। कोच की पीठ पर अपनी दोनों केहुँनी टेककर पीछे खड़ी हो अचला पट्टी बाध रही थी। देखते ही देखते उसकी दोनों आंखें आंसुओ से भर उठीं और धीरे-धीरे मुक्ता जैसी बूँदें एक पर एक टपकने लगीं। लेकिन सुरेश कुछ भी न देख पाया, इधर का उसे ध्यान ही न था। वह केवल निमीलित नयनों स्थिर बैठा अपने अपार प्रेम की आधार के कोमल हाथो के करुण स्पर्श का हृदय मे अनुभव करता रहा।

किसी कदर अपने आंसू पोछकर बीच मे अचला ने चुपचाप कहा—आज मेरे आगे आपको एक प्रतिज्ञा करनी होगी।

सुरेश का ध्यान टूटा। वह चौका। लेकिन उसने भी उसी कोमलता से पूछा—कैसी प्रतिज्ञा ?

इस प्रकार से आप अपनी जान नहीं बर्बाद कर सकते।

लेकिन जान तो मैं जानकर नहीं देने गया था ! दूसरे की मुसीबत में मुझे हो होशहवास नही रहता— यह तो मेरे बचपन का स्वभाव है अचला !

अचला ने बात नही काटी, लेकिन साथ ही उसके एक निश्वास छूट गया,

सुरेश को इसकी खाक भी खबर न हुई। पट्टी बंध गई तो सुरेश ने खड़े होकर कहा — कल लेकिन इस गरीब के घर पैरों की धूल देनी पड़ेगी — उसकी आंखें भर आईं, पर आवाज में कोई व्याकुलता नहीं झलकी।

सिर हिलाकर अचला ने कहा -- अच्छा।

केदार बाबू को नमस्कार करके सुरेश ने हँसकर कहा—देखिए निराश न करेंगे। और फिर एक बार अचला की तरफ ताककर अपना निवेदन चुपचाप जताकर वह धीरे-धीरे चला गया।

दूसरे दिन समय पर सुरेश की गाड़ी पहुच गई। केदार बाबू तैयार ही थे, बेटी के साथ न्योते पर चल पड़े।

सुरेश के फाटक के अंदर दाखिल होते ही केदार बाबू दंग रह गए। सुरेश बड़ा आदमी है, यह मालूम था, लेकिन कितना बड़ा-केवल अंदाज से इसका अनुमान करना था। आज इस बात में वे निश्चित हो गए।

आकर सुरेश ने दोनों का स्वागत किया। हँसकर बोला महिम की जिद लेकिन तोड़ी न जा सकी। कल दोपहर से पहले इस घर मे कदम रखने को वह हर्गिज तैयार नहीं हुआ।

केदार बाबू ने इस बात का कोई जवाब नही दिया। तीनों जने बैठक मे पहुँचे कि एक प्रौढ़ स्त्री दरवाजे की ओट से अंदर आकर अचला का हाथ पकड़कर उसे भीतर लिवा गईं। उनके कमरे के फर्श पर एक कालीन बिछा था। उसी पर जतन से अचला को बिठलाकर अपना परिचय दिया। बोलीं— नाते में मैं तुम्हारी सास होती हूँ बहू। मैं महिम की फूफी हूँ।

अचला ने प्रणाम करके उनके पैरो की धूल ली। अचरज से उनकी तरफ देखकर पूछा—आप यहा कब आईं ?

महिम की फूफी है, इसका उसे पता न था। प्रौढ़ा उसके अचरज का कारण समझ गई। हँसकर बोलीं--मै यही रहती हूँ बिटिया, मै सुरेश की फूफी हूँ। महिम भी तो मेरा विराना नहीं, इसीलिए उसकी भी फूफी लगती हूँ !

उनके स्वाभाविक कोमल स्वर मे कुछ ऐसा ही स्नेह और हार्दिकता जाहिर हुई कि अचला का हृदय आलोड़ित हो उठा। उसके मा नही, इस कमी को जरा भी पूरा करे, घर में ऐसी कोई औरत कभी नही रही। होश होने तक वह पिता के ही स्नेह में पली, लेकिन उस स्नेह ने उसके हृदय के कितने अंश को खाली रख छोड़ा था, वह एक पल में साफ झलक पड़ा, जब पराए घर की, पराई फूफी ने 'बहू' कहकर उसे आदर से बैठाया। शुरू मे इस नए सम्बोधन से वह शर्मा गई थी पर इसकी मधुरता, इसका गौरव उसके नारी-हृदय की गहरी गहराई में देर तक गूंजता रहा।

देखते ही देखते दोनों में बातों का सिलसिला जम गया। अचला ने लजाते हुए पूछा—अच्छा फूफी, आपने तो मुझे अपने पास बैठाया, ब्राह्म लड़की के नाते घृणा तो नहीं की आपने ?

फूफी ने झट अपनी अँगुली के छोर से उसका चुंबन लेते हुए कहा—तुमसे घृणा क्यों करूं बिटिया ! जरा हँसकर कहा—चूंकि हम हिन्दू है, इसलिए ऐसे निर्बोध, इतने हीन हैं बहू कि अलग धर्म होने के नाते तुम्हारी जैसी लड़की को भी पास बैठाने में हिचकें ? घृणा तो दूर की बात है।

अचला को बड़ी शर्म आई। बोली—मुझे माफ करें फूफी। मुझे मालूम नहीं था। अपने समाज के बाहर की किसी स्त्री से मैं कभी मिल नहीं पाई; केवल सुना था कि वे हमसे बहुत घृणा करती हैं, यहाँ तक कि साथ बैठने-खड़े होने से भी उन्हें स्नान करना पड़ता है।

फूफी ने कहा—वह घृणा नहीं है बेटी, वह एक आचार है। हमारे बाहरी आचरण देखकर बहुत बार हम ऐसी ही लगती हैं, पर सच मानो—वास्तव में घृणा हम किसी से नहीं करतीं। हमारे गांव में बागदी* चाची अभी भी जिन्दा है। उसे मैं कितना चाहती हूं, कह नहीं सकतीं।

कुछ क्षण रुककर बोलीं—अच्छा, तुमसे एक बात पूछूं, सुरेश से ऐसा सुनकर या आज मुझे देखकर तुम्हें इसकी याद आई ?

सुरेश का जिक्र आ गया, सो अचला धीरे-धीरे बोली—हां, एक बार उन्होंने भी कहा था।

फूफी ने कहा—उसकी यही आदत है। कुछ ख्याल आए कि खैर नहीं, चारों तरफ वही कहता फिरेगा। ब्राह्मों से कभी मिले बिना ही उसने सोच लिया कि वह उनसे बहुत घृणा करता है। इसी बात पर कितनी बार महिम से लड़ाई होते-होते रही। मगर मैंने ही तो उसे एक प्रकार से पाला है—मैं जानती हूँ, वह किसी से घृणा नहीं करता—करने की मजाल भी नहीं। यही समझो न, जिस रोज से उसने तुम लोगों को देखा—

लेकिन अपनी बात को पूरी न कर सकी, अचला के मुँह पर नजर पड़ते ही सहसा थम गईं। फूफी उन दोनों के सम्बन्ध के बारे में कहाँ तक जानती है, यह न समझते हुए भी अचला को सन्देह हुआ कि कम से कम कुछ तो फूफी जानती है। कुछ क्षण के लिए दोनों चुप हो रहीं ; अपनी खातिर शर्म को दबाकर अचला ने दूसरी बात छेड़ दी। कहा, सुरेश बाबू को क्या आपने ही पाला था फूफी ?

---

* जात-विशेष

आवेग-विभोर होकर फूफी ने कहा—हां बेटी, मैंने ही तो पाला है। दो हीं साल की उम्र में मां-बाप को खो बैठा था। मेरा वह भार अभी तक सिर से नहीं उतरा, किसी की दुःख-तकलीफ, आफत-मुसीबत वह सह नहीं सकता, प्राण का आशा-भरोसा छोड़कर खतरे में कूद पड़ता है। मैं जो दिन-रात किस कदर डरते-डरते काटती हूँ, यह तुमसे क्या बताऊँ बहू !

अचला ने धीरे से पूछा--फैजाबाद वाली घटना सुनीं आपने ?

फूफी ने गर्दन हिलाकर कहा, क्यों नहीं बहू, सुनी है, जभी तो भगवान से मनाती रहती हूं, हे भगवान्, जिसमें इन आंखों अब मुझे वह न देखना पड़े—माथे पर लात रखकर मुझे रसातल में मत बोर देना। यह मैं हर्गिज बर्दाश्त नहीं कर सकूंगी। कहते-कहते उनका गला रूंध गया। उनके मातृ-स्नेह से सनी उस कातर प्रार्थना को सुनकर अचला की आंखें सजल हो गईं। करुण-कंठ से बोली, आप मने क्यों नहीं करतीं फूफी ?

आंसुओं के अन्दर से जरा हँसकर फूफी ने कहा—मना ! मेरे मना से क्या होना बेटी ? जिसके मना से कुछ हो सकता है, मैं कितने सालों से उसी को तो खोजती फिरती हूँ। परन्तु वह तो जिस-तिस लड़की का काम नहीं। जो उसे बचा सके, वैसी लड़की भगवान न मिलाएँ तो मैं कहां पाऊँ ?

अचला थोड़ी देर चुप रही। उसके बाद पूछा—आपकी पसंद की लड़की कहीं मिल नहीं रही है ?

फूफी ने कहा—तुमसे कहा तो बिटिया, भगवान् न मिलाएँ तो कोई कभी नहीं पाता। जो सुरेश इस बात पर कभी कान ही नहीं देता, वह जब एक दिन खुद जाकर बोला कि फूफी, अब तुम्हें एक दासी मैं ला दूंगा : उस दिन मुझे कितनी खुशी हुई, वह शब्दों में नहीं बताई जा सकती। मन ही मन आशीर्वाद देकर बोली—तेरे मुँह फूल-चंदन बेटे ! वह दिन कब आयगा, जब बहू-बेटे को परछ कर घर लाऊँगी ! मैंने लाख कहा, सुरेश, एक बार मुझे दिखा तो ला, पर किसी भी तरह राजी न हुआ। हँसते हुए बोला—जिस दिन आशीर्वाद देने जाओगी, दिन ही तै कर आना। उसके बाद अचानक एक दिन आकर बोला—मामला ठीक बैठा नहीं फूफी, मैं रात को पश्चिम जा रहा हूँ। मैं पूछती रह गई, क्या ठीक नहीं बैठा, खोलकर बात बता मुझे, लेकिन कोई बात न बताई, रात ही चला गया। मैंने मन में सोचा, केवल मेरे बेटे की इच्छा से ही तो नहीं होने का, उस लड़की की भी तो जन्म-जन्मांतर की तपस्या चाहिए। है न बेटी ?

अचला ने चुपचाप सिर हिलाया। अब उसने समझा कि वह लड़की कौन है, फूफी यह नहीं जानतीं। एक बार तो उसे लगा कि कलेजे पर से एक पत्थर उतर

गया—मगर वह पत्थर यों ही नहीं उतरा, कलेजे के बहुत-से हिस्से को पीस-खरोंच गया है, यह वह दूसरे ही क्षण महसूस करने लगी।

खाने की तैयारी हुई, तो फूफी ने अचला को अलग बैठाकर खिलाया और साथ-साथ एक-एक कमरा, एक-एक चीज घुमाकर दिखाने के बाद एक निश्वास छोड़ती हुई बोलीं—बेटी, भगवान् की दया से कमी किसी बात की नही—मगर यह तो मानो लक्ष्मीविहीन बैकुँठ हो! कभी-कभी तो मेरे आंसू रोके नहीं रुकते!

नौकर ने आकर खबर दी, बाहर केदार बाबू जाने के लिए तैयार है। अचला ने उन्हें प्रणाम किया, पैरों की धूल ली। फूफी ने उसका हाथ थामकर जरा झिझकती हुई चुपचाप कहा—एक बात पूछूं अगर और कुछ न सोचो!

अचला उनकी ओर देखकर सिर्फ जरा हँसी।

फूफी बोलीं—सुरेश से मैने तुम्हारे और महिम के बारे में सब कुछ सुना है। उसी से यह सुना कि चूंकि वह गरीब है, शायद इसलिए तुम्हारे पिता की इच्छा न थी। सिर्फ तुम्हारी ही वजह से—

सिर झुकाकर अचला ने धीमे से कहा—सच ही है फूफी।

फूफी अकस्मात् मानो उमड़े आवेग से अचला के दोनों हाथ पकड़कर बोल उठीं—यही चाहिए बेटी! जिसको प्यार किया है, उसके सामने रुपया-पैसा, धन-दौलत की क्या विसात! मन में कोई गिला न रक्खो। मैं महिम को खूब जानती हूँ, वह ऐसा ही लड़का है कि उसके लिए जितना ही दुःख चाहे क्यों न उठाओ—भगवान् की दया से एक दिन वह सब सार्थक होगा। भगवान् इतने बड़े प्यार को हर्गिज हेठी नहीं कर सकते, यह मैं निश्चित कह सकती हूँ।

अचला ने झुककर फिर एक बार उनके चरणों की धूल ली। उसकी ठोढ़ी को छूकर चुंबन करते हुए फूफी बोलीं—अहा! एक ऐसी बहू के साथ मैं कहीं गिरस्थी कर पाती।

सुरेश ने जाकर दोनों को गाड़ी पर सवार कराया और नमस्कार करके चुपचाप लौट आया। लौटते समय लालटेन की रोशनी में उसके चेहरे ने पल को अचला का ध्यान खीचा; उस चेहरे में क्या जो था, ईश्वर जानें, लेकिन रुलाई उसके कंठ तक उमड़ आई—घोड़ा गाड़ी तेजी से रास्ते पर पहुँच गई। रास्ते की भीड़ कम हो गई थी, उधर देखकर उसे अचानक लगा, अब तक वह मानो एक बहुत बड़ा ख्वाब देख रही थी—वह ख्वाब दुःख का था या सुख का कहना मुश्किल था। केदार बाबू अब तक चुप ही थे—शायद सुरेश के ऐश्वर्य का रूप उनके दिमाग में चक्कर काटता रहा था। अचानक एक लंबा निश्वास लेकर बोले—बेशक धनी है!

लेकिन लड़की की ओर से कोई चेष्टा न झलकी। उत्साह के अभाव मे बाकी रास्ता वे चुप ही रहे।

गाड़ी जब उनके दरवाजे पर लगी और कोचवान दरवाजा खोलकर हटकर खड़ा हो गया, तो मानो फिर एक बार उनको चेत हुआ। एक उसास खींचकर बोले—सुरेश को हम कोई नहीं पहचान सके! देवता है वह!

चौदह

आज अचला का विवाह था। विवाह-मंडप की राह मे एक पल के लिए सुरेश पर नजर पड़ी थी। उसके बाद वह कहां, जो गायब हो गया, केदार बाबू के यहाँ रात भर में उसका पता ही न चला।

ब्याह हो गया। दो-एक दिन अचला के मन में उथल-पुथल-सी होती रही। उस रात सुरेश की फूफी ने जो कहीं, वे बातें वह भूल नहीं पा रही थी—आज उसका अन्त हुआ।

महिम की अटल गंभीरता आज भी बनी रही। खुशी-गम का कुछ भी बाहरी प्रकाश उसके चेहरे पर न दीखा। तो भी शुभ दृष्टि* की घड़ी में वही मुखड़ा देखकर अचला का हृदय आनन्द और माधुर्य से भर उठा। मन ही मन पति के चरणों पर सिर रखकर अपने तईं बोली—प्रभु, अब मुझे कोई डर नही; तुम्हारे साथ जहां भी, जिस अवस्था में ही क्यों न रहूँ, वहीं मेरा स्वर्ग है। आज से तुम्हारा झोंपड़ा ही मेरा राजप्रासाद है।

ससुराल जाने के दिन कुरते के आस्तीन से आँखें पोंछते हुए केदार बाबू ने कहा—मैं आशीर्वाद करता हूं बेटी, स्वामी के साथ दुःख और गरीबी का सामना करते हुए जीवन के मार्ग पर, कर्त्तव्य के पथ पर आगे बढ़ो! ईश्वर तुम्हारा कल्याण करें।—कहते हुए उसी तरह आँखें पोंछते-पोंछते बगल के कमरे में चले गए।

उसके बाद सावन के एक धुंधले-से दिन को दोपहर में माथे पर बारिश थमे

*बंगालियों की एक विशेष प्रथा, जब शादी के मंडप पर अन्य नेगों के पहले एक कपड़े से वर-वधू को ओट कर दिया जाता है और दोनों परस्पर एक दूसरे को एक नजर देखते हैं।

मेघ भरे आकाश और नीचे सँकरी कीच भरी फिसलन वाली राह से पालकी पर चढ़कर अचला अपनी ससुराल पहुँची। लेकिन इतने-से ही रास्ते में उसके नए विवाह का आधा आनन्द उड़ गया।

देहात से उसका परिचय छापे के हरूफों से ही था। उस परिचय में दुःख दरिद्रता के हजारों संकेत के बावजूद एक-एक पंक्ति में कविता थी, कल्पना की खुशबू थी। पाली से उतर कर घर के अन्दर जाकर उसने एक बार चारों तरफ देखा, कहीं से भी, किसी ओर से भी कवित्व का जरा भी कुछ उसके जी को न छू सका। उसकी कल्पना का गांव प्रत्यक्ष मे ऐसा आनन्दहीन, ऐसा सूना है—कच्चे मकान के कमरे ऐसे सील वाले, अँधेरे दरवाजे, खिड़कियाँ इतनी छोटी और सँकरी —ऊपर बाँस का छप्पर इतना भद्दा-इसे वह स्वप्न मे भी न सोच सकी थी। इसी घर में जिन्दगी बितानी पड़ेगी। यह सोच कर उसका कलेजा मानों टूक-टूक होने लगा। पति का सुख, विवाह की खुशियां सब माया-मरीचिका-सी उसके हृदय से तुरन्त काफूर हो गईं। घर में सास, सुसर; ननद, देवरानी कोई नहीं। दूर के रिश्ते की एक दादीजी स्वेच्छा से वर-वधू के परिछन के लिए उस टोले से आई थीं। व्याह को जिस साज-पुशाक की वह आदी थीं, उनकी निहायत कमी देखकर वह अत्यन्त अचरज से कुछ देर चुप खड़ी रही, अन्त मे बहू का हाथ पकड़ कर उसे अन्दर ले जाकर बिठा दिया। टोले की जो औरतें बहू को देखने के लिए दौड़ी आईं, अचला की उम्र देखकर उन्होंने एक दूसरे का मुँह देखा, एक दूसरे के बदन पर चिकोटी काटी और उनके लौटते समय अस्फुट स्वर में बरह्म, म्लेच्छ आदि दो-एक मोटे शब्द भी अचला के कानों पहुँचे।

बात की बात में तमाम गांव में यह बात फैल गई कि यह बात सच है कि महिम एक म्लेच्छ लड़की को उठा लाया है। विवाह के पहले ही ऐसी एक अफवाह आन्दोलन और आलोचना चल चुकी थी; अब बहू को देखकर किसी को तिल-भर भी सन्देह न रहा कि जो बात फैली थी वह सोलहों आने सही हैं।

पड़ोसिनों के लौट जाने पर दादी जी ने आकर कहा—तो बहू, आज अब चलती हूँ! काफी दूर जाना है और बिना गए चलने का नहीं, छोटा पोता—इत्यादि कहते-कहते आग्रह अनुरोध का मौका दिये बिना ही वह चली गईं। वह एक नाते की सोच कर ही अब तक जा नहीं पा रही थीं और जाने को छटपटा रही थी, अचला यह ताड गई थी। दादी जी का दोष भी न था। अगर वह जानती कि मामला आखिर इस हद पर पहुँचेगा तो शायद आती भी नहीं। क्योंकि गांव में रहे और इन बातों से न डरे, देहात के इतिहास में इतने चौड़े कलेजे का उदाहरण दुर्लभ है।

दादी जी के चल देने के बाद नौकर जद्दू, उड़िया रसोइया और मैके से साथ

आई हुई दाई हरिया की मां के सिवाय विवाह वाला घर बिल्कुल सूना हो गया। थोड़ी देर के लिए बारिश थम गई थी—फिर बूंदा-बांदी शुरू हो गई। हरिया की मां नजदीक में आकर बोली—दीदी ऐसा घर तो मैंने देखा ही नहीं—कोई कहीं नहीं—

अचला मुंह नीचा किए बैठी थी। अनमनी सी सिर्फ 'हूं' बोली।

हरिया की मां ने फिर कहा—पहुने को भी तो नहीं देख रहीं हूँ? बस एक बार झलक दिखाकर जो गए—

अचला ने इस बात का भी जवाब नहीं दिया।

बन-जंगल भरे इस शून्य पुरी मे हरिया की मां का अपना जी चाहे जितना धकधक करता हो, अचला को उसने छुटपन से ही पाला था; उसे जरा सचेत करने की गर्ज से बोली—डरना क्या, आखिर हम पानी में तो नहीं आ डूबे हैं! पहुना आ जाये, सब ठीक हो जायगा। जब तक ये कपड़े उतारो, मैं बक्स में से कपड़े निकाल देती हूँ—

अभी छोड़ो हरिया की मां—कहकर अचला उसी तरह सिर झुकाए काठ की मूरत-सी बैठी रही। जीवन का सारा स्वाद, सारी खुशबू उड़ चुकी थी।

बारिश जम गई। उस बढती जाती वर्षा मे कब जो दिन की क्षीण आभा बुझ गई, कब सावन के गाढ़े मेघ-स्तर को चीरकर उदास गांव में संध्या उतरी, कुछ भी पता न चला। सिर्फ अंधेरे कमरे के ओने-कोने गीला अंधेरा चुपचाप गाढा होने लगा। जद्दू ने आकर कमरे में लालटेन रख दी। हरिया की मा ने पूछा—और पहुना कहां है?

क्या पता, कहकर जद्दू लौटने लगा। उसके मुख्तसर और भद्दे जवाब से हरिया की मा ने शंकित होकर कहा—यह क्या पता क्या हुआ? वे बाहर नहीं हैं क्या?

नही—कहकर जद्दू चला गया। यह खूब समझ में आया कि बह इन आगंतुकों से प्रसन्न नही है। बहुत भयभीत होकर हरिया की मां अचला के पास जाकर बोली—रंग-ढंग तो मुझे अच्छा नही दीख रहा दीदी! दरवाजे की कुंडी लगा दूं?

अचला ने अचरज से कहा—कुंडी क्यों लगाएगी?

हरिया की मां छुटपन में ही गांव छोड़कर कलकत्ते आई थी, फिर कभी नही गई। देहात के चोर-डकैत, लठैत आदि के किस्सों की याद के सिवा सब कुछ उसके लिए धुंधला हो गया था। बाहर के अँधेरे पर एक चकित दृष्टि डालकर अचला के बदन से सटते हुए उसने कहा - कहना मुश्किल है दीदी! कहते-ही-कहते उसके बदन के रोएँ खड़े हो गए।

ठीक ऐसे समय आंगन में से आवाज आई—दादी जी कहां हैं—और कहते-कहते ही, बीस-इक्कीस साल की एक दुबली-पतली सी लड़की भीगती हुई दरवाजे के

पास आकर खड़ी हुई ; बोली – पहले आपको प्रणाम कर लूं दादीजी, फिर ओदे कपड़े बदलूंगी—और, अचला के पैरों के पास झुककर उसने प्रणाम किया तथा अचला के मुंह के पास लालटेन उठाकर देखते हुए चीख उठी, संझले भैया···ओ संझले भैया !

घर आकर महिम खुद इस लड़की को लाने गया था। बगल के कमरे से आवाज आई—क्या है मृणालनी इधर आओ न, बताती हूँ।

कमरे के बाहर खड़ा होकर महिम ने कहा—बोल ?

मृणाल ने लालटेन की रोशनी में और एक बार अच्छी तरह से अचला का मुंह देखकर कहा—नः, तुम्ही जीत गए ! मुझसे शादी करके ठगा जाते भैया तुम !

महिम ने बाहर से डांट बताई—तू मेरी बात मानेगी नहीं मृणाल ! फिर दिल्लगी ! नहीं मानेगी तू ?

वाः—दिल्लगी कैसी ! अचला की ओर देखकर बोली—मजाक नहीं दादीजी, कसम ले लो। अच्छा, अपने उनसे ही पूछ देखो कि कभी उन्होंने मुझ को पसंद किया था कि नहीं ?

महिम ने कहा-- तो तू करती रह बकबक, मैं बाहर चला।

मृणाल बोली--सो जाओ, मैंने कुछ पकड़कर रक्खा है तुम्हें बड़े स्नेह से एक बार अचला की ठोढ़ी को हिलाकर कहा—तुम्ही बताओ बहन डाह नही होती ? इस गिरस्ती की मालकिन मैं ही होने वाली थी ! मगर मेरी मुंह जली मां ने क्या जो मंतर सँझले भैया के कानों भर दिया कि मैं इसे फूटी आंखों से भी न सुहाने लगी। अरे जद्दू—घोषाल जी कहां गए ?

जद्दू ने कहा—हाथ-पांव धोने के लिए पोखरे की तरफ गए !

ऐं ! इस अंधेरे में पोखरे की तरफ ? मृणाल का हंसता मुखड़ा एक ही क्षण मे दुश्चिता से मलिन हो गया। घबराकर बोली—जद्दू, जरा लालटेन लेकर देख भैया उन्हें। बूढ़ा, आदमी कहीं गिर-पड़कर हाथ-पांव तोड़ लेगा।

उसके बाद अचला की तरफ देखकर लजाती हुई बोली—क्या नसीब लेकर आई थी दादी जी—कहां के एक महाबूढ़े को ला दिया मुझे –उसकी सेवा करते-करते और उसे सम्हालते-सम्हालते ही जान गई मेरी ! अच्छा बहन पहले मैं गीले कपड़े बदल आऊँ फिर बातें होंगी। मगर सौत कहकर नाराज न होना, कहे देती हूं, मैं अपने बुड्ढे का भी हिस्सा दूंगी तुम्हें !-- कहकर हंसी की छटा से सारे कमरे को चमकाती हुई वह जल्दी से चली गई।

इस तरह के हंसी-मजाक से अचला को कभी साबका नहीं पड़ा। सारा मजाक उसे ऐसा भद्दा और कुरुचिपूर्ण लग रहा था कि लज्जा के मारे वह सकुचा गई। वह सोच भी नहीं सकती थी कि ऐसी निर्लज्ज प्रगल्भता भी किसी औरत में हो सकती है। लिहाजा यह रसिकता उसमें जीवन भर की शिक्षा और संस्कार की बुनियाद पर

चोट पहुँचा रही थी। इतने पर भी उसे लग रहा था कि इसके आ जाने से उसके निर्वासन की पीड़ा का आधा तो छूमंतर हो गया ; और यह कौन है, कहां से आई, इससे नाता क्या है—ये सब बातें जानने के लिए वह उत्सुक हो उठी।

हरिया की मां ने पूछा—यह है कोन दीदी ? बड़ी मजाकिया है।

अचला ने गर्दन हिलाकर सिर्फ 'हां' कहा।

मृणाल कपडे बदल आई। बोली—हंसी-मजाक करके ही गई दादी जी, अपना असली परिचय अभी तक नही दिया। मगर परिचय भी वैसा क्या है ! असल में तुम्हारे 'वे' जो हैं, वे मेरी मा के बाप है। इसीलिए मैं छुटपन से संझले दादा जी कहा करती हूँ। इतना कहकर वह एक क्षण चुप रहकर फिर बोली—मेरे पिता और तुम्हारे ससुर, दोनों बड़े दोस्त थे। अचानक गाड़ी के नीचे आ जाने से पिताजी का का जब हाथ टूट गया और नौकरी चली गई, तो तुम्हारे ससुर ने सबको अपने यहां जगह दी। उसके बहुत दिनों के बाद मेरा जन्म हुआ। संझले दादा उस समय आठ साल के थे। उनकी मां तो उनके जन्मते ही चल बसी थीं—दो बडे लडके पहले ही डिप्थिरिया से गुजर चुके थे। सो आते ही मेरी मां इस घर की सब कुछ हो गई थी। उसके बाद मेरे पिताजी चल बसे—हम लोग यहीं रहे। उसके बाद तुम्हारे ससुर गुजर गए, हम लोग लेकिन रही गए यहा ! पांच साल हुए, पलासी के घोषाल परिवार में मेरी शादी करके संझले दादा जी ने मुझे दूर हटा दिया ! मा जिंदा होती, तो भरोसा भी होता।

बड़ी बहू यहा हो ?— कहते हुए नाटे कद के गोरे-गोरे से एक बूढ़े सज्जन दरवाजे के पास आकर खड़े हुए।

मृणाल ने कहा—आओ-आओ। अचला की ओर देखकर होठ दबाए हंसती हुई बोली—दादीजी यही है अपने मालिक। अच्छा, तुम्हीं बताओ, इस खूसट बूढ़े के बगल में सोहती हूँ मैं ? इस जन्म का रूप-यौवन सब मट्टी नहीं हो गया बहन ?

अचला जवाब क्या दे, लाज से उसने सिर झुका लिया।

उन सज्जन का नाम था भवानी घोषाल। हँसकर बोले—आप इनकी सुनें मत दादीजी—सब सफेद झूठ ! इनकी यही कोशिश रहती है कि मुझे उड़ा दें। नहीं तो मेरी उम्र तो महज बावन या ति

मृणाल बोली—चुप भी रहो, बहुत हुआ। यह सझले दादा मेरा कितना बड़ा दुश्मन है, भगवान् ही जानते हैं। मुझे चारों तरफ से मट्टी कर छोड़ा—अच्छा, इस बूढ़े के जिम्मे देने के बजाय हाथ-पांव बांधकर मुझे पानी में डाल देना बेहतर नहीं होता दादीजी ! तुम्हीं कहो बहन।

अचला वैसे ही सिर झुकाए बैठी रही।

घोषाल धीरे-धीरे अन्दर आए। अचला के लजीले झुके हुए मुखड़े को कुछ देर चुपचाप देखते रहकर अचानक बोल उठे—आपने मेरी जान बचाली दादीजी, अब जाकर इस छोरी का गुमान जाता रहा। अपनी खूबसूरती के घमंड से यह आंख-कान से देख ही नही पाती थी। और पत्नी की ओर देखकर बोले—क्यों, हुआ न ? जंगली इलाके में अब तक गीदड़ राजा था, शहर का रूप किसे कहते है, आंख खोलकर देख लो !

मृणाल बोली—अच्छा, यह बात ! मेरा घमंड जहां है—किसी की मजाल जो तोड़े ? कहकर उसने पति की तरफ छिपा कटाक्ष किया, लेकिन अचला ने यह देख लिया।

घोषाल हंसकर बोले—सुन लिया न दादीजी—जरा सम्हलकर रहिएगा—इन दोनों में जैसी पटती है, जैसा आना-जाना है कि कुछ कहा नहीं जा सकता -- और मैं तो खूसट बूढ़ा ठहरा, बीच में हूँ तो क्या, न हूँ तो क्या ! अपने उनको सम्हाले रहेंगी—इस बूढ़े की यही विनती है।

मृणाल, तमाम रात तुम लोग यही करती रहोगी ?

क्या करूं ?

रसोई की तरफ नहीं जायगी ?

मृणाल उछल पड़ी, उफ़, कैसी गलती हो गई। उस डड़िया रसोइया को पहले ही देख आना चाहिए था। अच्छा, तुम लोग जाओ बाहर, हम जा रही है।

महिम ने पूछा—हम कौन ?

मृणाल ने कहा—मैं और दादी जी। फिर अचला से बोली—जब मैं आ गई हूँ, तो इस गिरस्ती का सब कुछ तुम्हें समझाकर तब जाऊँगी।

महिम और भवानी बाहर चले गए। मृणाल ने अचला से कहा—मुझे दो दिन पहले ही आना चाहिए था। मगर सास के दमे के चलते घर से निकल ही न पाई। अच्छा, तुम कपड़े बदल डालो, मैं इतने में आती हूँ, आकर तुम्हें ले चलूंगी। मृणाल रसोई में चली गई।

बारिश थम गई थी और गाढी बदली छंटकर नौमी की चांदनी में आसमान बहुत कुछ साफ होता आ रहा था।

रसोई का सारा इन्तजाम करके मृणाल आकर अचला के पास बैठी। उसका एक हाथ अपने हाथ में लेकर बोली—इस दादीजी से संझली दीं कहना कहीं अच्छा है, क्यों संझली दी ?

अचला ने धीमे से कहा—हां।

मृणाल बोली—रिश्ते में गरचे तुम बडी हो, मगर उम्र में मैं बड़ी हूँ। मुझे भी तुम मृणाल दीदी कहना, क्यों ?

अचला ने कहा—अच्छा।

मृणाल बोली—आज तुम्हें रसोई दिखा लाई। कल एक बारगी भंडार की कुंजी अंचरे के छोर में बांध दूंगी, है न ?

अचला ने कहा—कुंजी से मुझे कोई काम नही बहन।

मृणाल बोली—काम नही है ? वाप रे, यह कैसी बात। भंडार आखिर कोई मामूली चीज है संझली दी कि कह रही हो कुंजी से कोई काम नही ? मालकिन की रियासत की वही तो राजधानी है।

अचला बोली—बला से राजधानी है मुझे उसका लोभ नहीं। लेकिन तुम पर मुझे बहुत लोभ है। इतनी आसानी से छोड़ नही देने की मृणाल दीदी !

मृणाल ने दोनों बाहों मैं अचला को लपेट लिया। कहा—सौत को झाड़ू मार कर भगाने के बजाय रोक रखना चाहती हो, तुम्हारी यह कैसी अकल संझला दी ?

अचला ने धीमे-धीमे कहा—मगर तुम्हारे ये मजाक अच्छे नही लगे बहन। इधर क्या सब ऐसे ही मजाक करते है ?

मृणाल खिलखिलाकर हंस उठी—नही-नही दादी जी, सब नही करते, मैं ही करती हूँ। सबको यह चीज नसीब कहां कि करें ?

अचला बोली—नसीब भी हो तो हम ऐसी बात जबान पर नहीं ला सकती बहन ! हमारे कलकत्ते के समाज में बहुत-से लोग तो शायद यह सोच भी नहीं सकते कि कोई भद्र स्त्री यह सब जबान पर ला भी सकती है !

मृणाल मगर जरा भी लज्जित न हुई, बल्कि अचला को फिर एक बार गले से लगाते हुए बोली—तुम्हारे शहर की कितनी भद्र महिलाएं इस तरह से गले लगा सकती हैं, यह तो कहो संझली दी ? सबमें क्या सब काम होता है ? तुम्हें मैंने कितनी देर को देखा है, इसी में ऐसा लगता है कि मुझको बहन न थी, एक छोटी बहन मिल गई। और यह सहज बात नहीं, जिन्दगी भर मुझे इसका सबूत देना पड़ेगा, याद रखना। इसमें हंसी-मजाक नहीं चलने का।

अचला पढ़ी-लिखी थी। गांव के इस विरोधी समाज में उसका भाबी जीवन कैसे कटेगा, यह वह घर में कदम रखते ही समझ गई थी। उसने इस मौके को सहज ही नहीं छोड़ दिया। परिहास को गंभीरता में बदलकर बोली—अच्छा, मृणाल दीदी सच ही क्या इसका सबूत तुम जीवन भर जुगाती रहोगी ?

मृणाल ने कहा—आखिर हम शहर की तो हैं नहीं बहन—बेशक जुगाना होगा ! तुम्हें छूकर जो शपथ ली, मर जाऊं, मगर पलटा तो इसे सकती नहीं।

उस बात को और ज्यादा न चलाकर अचला ने दूसरी बात उठाई। हंसकर कहा— जल्दी चली नहीं जाओगी, यह भी वैसे ही कहो।

मृणाल हंस पड़ी। बोली—बेवकूफ जानकर और भी फंदे मे डालना चाहती हो संझली दी ? मगर मैंने तो पहले ही कह दिया, ठीक से तुम्हें सब समझाए-बुझाए बिना न मानूंगी।

अचला ने सिर हिलाकर कहा—यह चार्ज समझने का आग्रह मुझे बिल्कुल नहीं।

मृणाल ने कहा—वही मै कर लूंगी, तब जाऊंगी। ज्यादा दिन तो घर छोड़ने की गुंजाइश नहीं बहन ! जानती हो, कितनी बड़ी गिरस्ती है मेरे माथे के ऊपर ?

अचला ने सिर हिलाकर कहा नही, नहीं जानती।

मृणाल ने चौंककर कहा - संझले दादा ने मेरे बारे मे पहले तुमसे जिक्र नही किया ?

अचला बोली— नही, कभी नही। अपने घर-द्वार के बारे मे सब कुछ बताया था, लेकिन जो सबसे पहले बताना चाहिए था, वही तुम्हारे बारे मे क्यों जो नही बताया, मुझे बड़ा अचरज लग रहा है !

मृणाल ने अनमने भाव से कहा—सो तो है।

अचला कुछ देर चुप रही। फिर हंसती हुई धीमे मे बोली पहले शायद तुमसे इनकी शादी की बात चली थी ?

मृणाल तब भी अनमनी-सी सोच रही थी कुछ। बोली हा।

अचला ने कहा—फिर हुई क्यो नही। होना ही तो ठीक होता।

अब इस बात ने मृणाल के कानों मे चोट की। अचला की ओर नजर उठा कर बोली—वह होना न था, न हुआ।

अचला ने तो भी पूछा—होने मे अडचन क्या थी ? तुम कुछ उनके नाते-रिश्ते की तो थी नही ? इसके सिवाय छुटपन में जो प्रेम पनपता है, उसकी उपेक्षा करना भी तो ठीक नही ?

उसके पूछने के ढंग से मृणाल एकाएक चौंक उठी। जरा देर थिर निगाहों से अचला की ओर ताककर कहा— इस तरह तुम क्या टटोल रही हो संझली दी ? तुम्हारा क्या ख्याल है, छुटपन के हर प्यार का यही आखिरी अंजाम है ? या कि मनुष्य ब्याह कर देने का मालिक है ? यह सिर्फ इस जन्म का नही संझली दी, जन्म-जन्मांतर का सम्बन्ध है। जिनकी मैं सदा-सदा की दासी हूँ, उन्हीं के हाथों इन्होंने सोंप दिया मुझे। मनुष्य की इच्छा-अनिच्छा से क्या आता-जाता है !

अचला अप्रतिभ होकर बोली– बजा है मृणाल दीदी—मैं वही पूछ रही थी-

बात वह पूरी नही कर सकी, चेहरा लाज से लाल हो उठा। मृणाल से यह छिपा न रहा। उसने अचला का हाथ अपनी मुट्ठी में लेकर स्नेह से कहा- -संझली दी, तुम्हें अभी उसी दिन पति मिला है, मगर मैं पांच साल से उनकी सेवा कर रही हूँ ! मेरी एक बात रखना, पति की इस दिशा को कभी अकल से आविष्कार करने की कोशिश मत करना। इस ठगी जाओ, वह भी बेहतर, लेकिन जीतने में लाभ नहीं।

जद्दू ने बाहर से आवाज दी—दीदी, बाबुओं का आसन लगा दिया गया।

अच्छा, चल, मैं, आई कहकर मृणाल हठात दोनों हाथ बढ़ा कर अचला का मुखडा नजदीक खीचकर उसे चूमकर जल्दी-जल्दी चली गई।

पंद्रह

अरी ओ संझली दी !

अचला घबराकर बगल के कमरे से आ पहुँची।

मृणाल ने कमरे मे फेंटा कस रक्खा था और एक दराज को अकेली ही सीधा करके रख रही थी। अचला के आते ही रंज जैसी चिल्लाकर बोली—अरी मुंहजली तुम हाथ-पाव समेट बैठी रहोगी और तुम्हारे सोने का कमरा मैं संवार दूंगी ? उठाओ झाडू, उस कोने को बुहार डालो। और हसी न सम्हाल पाकर खिलखिला उठी।

शोर सुनकर हरिया की मां भी पीछे लगी आई। बोली—तुम भी खूब कहती हो दीदी ! इनके घर कितनी तो नौकर-नौकरानी है—इन्हे झाडू छूने की कभी आदत भी है कि आप देहाती औरतों की तरह झाड़ू लगाएं। मैं बुहार देती हूं—कहकर वह झाडू उठाने लगी कि मृणाल ने डांट बताई—तू छोड़ भी। अपनी दीदी को मुझसे ज्यादा जानती है कि बीच में पंच बनने आई है ? मृणाल ने जबरन झाडू अचला के हाथ में देकर कहा—अरे तेरी दीदी चाहे, तो वह काम करे, जो कोड़ियों देहाती स्त्रियां न कर सके। अचला से बोली—लो तो संझली दी, उस कोने को झटपट बुहार दो।

अचला बुहारने लगी, तुम जादू जानती हो मृणाल दीदी ?

कैसे, कहो तो ?

अचला बोली—नहीं तो घर बुहारने को झाड़ू उठाती। यह जादू नहीं तो क्या है ?

मृणाल बोली—तुम नहीं उठाओगी तो कौन उठायेगी ? तुम्हारा घर बुहारने के लिए उस टोले से जद्दू की मौसी आएगी ? लो बातों मे समय मत बिताओ, सांझ हो चली।

काम करते-करते अचला ने हंसकर कहा—खुद भी घड़ी भर को न बैठोगी और मुझको भी काम करा-करा के मार डालोगी। सच कहती हूँ—ये पांच-छे दिन तुमने मुझसे जो करारी मिहनत कराई कि चाय बगान के मालिक भी कुलियों से नहीं कराते।

उसकी ठोढ़ी पर अंगुली की ठोकर मारकर मृणाल बोली—जभी तो घर-अंगना देखकर लगता है कि लछमी आई है। मिहनत की कहती हो संझली दी, पति-पुत्र, घर-गिरस्ती के चलते जब नहाने-खाने का समय न पाओगी, तभी तो औरत का जनम सार्थक होगा। भगवान् से मनाती हूँ, तुम्हारा वह दिन आए, मिहनत की अभी क्या हुई है मलकिनी जी !—कहकर उसने हंसना चाहा, पर होठ कांप गए।

हरिया की मां अचानक फक् से रो पड़ी। बोली—यही आशीर्वाद दो दीदी, यही आशीर्वाद दो। उसे अचला की मां की याद आ गई। वह साध्वी जब असमय में ही चल बसीं, तो इत्ती-सी अपनी इस बच्ची को हरिया की मां के ही हाथो सौप गई थी। वही बच्ची अब इतनी बड़ी होकर पति की गिरस्ती करने आई है।

मृणाल ने उसे डाटकर कहा—अरी दईमारी, रोने क्या लगी ? हरिया की मां आंसू पोंछती हुई बोली—रोती क्या शौक से हूँ दीदी। तुम्हारी बात से रुलाई रोके नहीं रुकती। तुम्हारी कसम, तुम नही आती तो इस घर में हमारी एक रात भी कैसे कटती सोच नहीं पाती हूं।

छः दिन हो गए, मृणाल इस घर में आई है। आने के वक्त से ही घर-द्वार से लेकर यहाँ के लोगों तक की शक्ल बदल देने में जुट गई है। लकिन उसके हर काम, हर हँसी-मजाक में उसके जाने का आभास अचला को बड़ा दुखाता था। क्योंकि मृणाल के बात-काम, आचार-व्यवहार मे एक इतनी बड़ी आत्मीयता थी कि उसकी ओट में खड़ी होकर उझके कर अचला अपने नए जीवन, अनचीन्ही गिरस्ती को चीन्ह लेने का मौका पा रही थी और इससे भी एक बड़ी चीज को अच्छी तरह तथा खास तौर से पहचानने का कौतूहल हुआ था, वह स्वयं मृणाल को। उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं, यह उसके दो नंगे हाथों को देखने से ही समझ में आ जाता—फिर स्वास्थ्यविहीन बूढ़े स्वामी, जो किसी ओर से उसके उपयुक्त नहीं; तिस पर घर में मशक्कत की हद नहीं—बूढ़ी सास अब मरी तब मरी हालत में गले

में भूल रही है, वजह-बे वजह उसकी बक-झक का अन्त नहीं--यह उसने मृणाल से ही सुना, लेकिन कोई प्रतिकूलता ही मानो सताकर इस औरत को जीवन-यात्रा के मार्ग मे निश्चेष्ट करके नहीं बिठा सकती। मन के खुशी-गम के सिवा बाहर किसी चीज का जैसे कोई अस्तित्व ही नही, कुछ ऐसा ही भाव था इस देहाती स्त्री का। लगातार साथ रहकर वह सभझ रही थी, कमल जैसे कीच में पैदा होते हुए भी कीच मे परे है, वैसे ही अपढ़ देहात की यह गरीब लडकी भी रात-दिन हर तरह के दुःख कष्टों की गोदी मे रहते हुए भी सभी प्रकार की व्यथा-पीडा से ऊपर ही तिरती चलती है। न तो उसे देह की क्लांति है, न मुँह की शाति। लिहाजा अचला को भी वह सारे अनभ्यस्त कामो में घसीटे चल रही थी। गो कि वैसे किसी काम से उसकी शिक्षा-दीक्षा, उसके संस्कार का कोई मेल नही था। तो भी अचला को यही लगता था कि मुंह फेरकर खडी रहना बहुत बडी शर्म की बात है। अपने भाग्य को भी कोसते हुए जरा देर बैठकर पछताए, इन छ दिनो मे इतना भी समय उसे नहीं मिला—सारे समय को काम गपशप, हँसी-खुशी से ऐसा ही भर रक्खा था उसने। इसीलिए जब वह लौट जाने की कहती, अचला को लगता, तुरत यह मिट्टी का मकान द्वार, खिड़की समेत पल भर मे ताश के महल-सा औधा उलट जायगा। मृणाल दीदी के चले जाने मे वह एक पल भी यहां टिकेगी कैसी ?

साझ के बाद एक बार अचला ने कहा यह हर घड़ी जो तुम चलने की कहती हो, मैके आकर कौन इतनी जल्दी लौट जाना चाहती है, कहो तो ? यह नहीं होने का, जब तक मैं कलकत्ते नहीं लौट जाती, तुम्हे रहना ही पड़ेगा।

मृणाल बोली -क्या करूँ मंझली दीदी, सास बूढ़ी न आप मरेगी; न मुझे जीने देगी। मै कहती हूँ, तू मर जा बूढ़ी। तेरे बेटे की उम्र साठ की हो गई, अन्त मे उसको निगलकर तब तू जायगी ? मगर रात-दिन इतनी जो खांसती है, दम तो नहीं घुटता !

अचला हंसकर बोली—शायद तुमको वह देख नही सकती ?

मृणाल सिर हिलाकर बोली --फूटी आखों नही।

अचला ने पूछा—और तुम ?

मृणाल बोली—मै भी नही। मैंने तो मन्नत मान रक्खी है कि बुढ़िया गुजरे तो सवा रुपए का प्रसाद चढ़ाऊँ।

अचला ने सिर हिलाकर कहा—लेकिन यकीन नहीं आता दीदी। तुम्हें संसार मे कौन नही सुहाता, तुम्हारी बातों से यह समझना मुश्किल है। शायद हो कि इस बुढ़िया को ही तुम सबसे ज्यादा चाहती हो।

मृणाल ने कहा—सबसे ज्यादा चाहती हूँ ? हो शायद । कहकर उसने अचला का गाल मसल दिया । और चली गई ।

अब गई, अब गई करते-करते भी मृणाल के कुछ दिन निकल गए । एक दिन अचानक अचला को यह लगा कि उसे जाने की जबानी जितनी जल्दी है, सचमुच जाने की उतनी नहीं । सचमुच ही जाने को वह वास्तव में उतनी उत्सुक नहीं । अब तक उसकी आड़ में खड़ी हो वह दुनिया को जैसे पहचाने ले रही थी, अब उसके आवरण के बाहर आकर दुनिया की वह शक्ल उसकी आंखों में न रही । यहां आने के बाद से ही जब भी उसे उसके पति से कभी मजाक करते देखा, उसके जी में छन् से लगा, अब लेकिन बीच-बीच में सुई चुभने लगी । यह सब कुछ भी नहीं, इसमें मजाक के सिवाय और कुछ नहीं, जी खराब करने की बात ही नहीं—मेरा मन बड़ा पापी है । इस तरह से अपने को रोकने की जितनी भी चेष्टा करती, उतनी ही जाने कहां से संशय के ठीक उलटे तर्क उसके हृदय में न चाहते हुए भी बार-बार मुँह निकाल कर उसका मुँह चिढ़ाया करते । महिम की स्वाभाविक गंभीरता उसे ज्यादती सी लगती । वह वितर्क करती, जब मन में कुछ है नहीं तो मजाक के बदले मजाक करने में क्या गुनाह है ! जो मजाक से उत्तर नहीं दे सकता, वह कम से कम हँसकर उसका लुत्फ तो ले सकता है ! लेकिन वह साफ देखा करती कि मृणाल मजाक किया चाहती कि महिम भागकर जान बचाता । सो वह इन दिनों इस चिन्ता को किसी भी तरह से अपने मन से नहीं निकाल पाती कि इसमें कोई अन्याय जरूर छिपा है । लगातार मृणाल के साथ काम-काज करते हुए भी हजार बार उसके जी में आता कि औरत होकर जी में ईर्ष्या को पीड़ा पालते हुए भी जब मैं इसे किसी तरह से छोड़ नहीं सकती, तो एक साथ इतने दिनों तक साथ रहकर कोई पुरुष क्या इस स्त्री को प्यार किए बिना रह सकता है ।

अचला को यह न मालूम था कि मृणाल के आते ही उड़िया रसोइया की जान का छुटकारा हो जाता था । अब की वह छुट्टी पाकर घूमता फिर रहा था । अचला लेकिन यही गौर से देखती रही कि अपने हाथों पकाकर महिम को खिलाना मृणाल को हृदय से अच्छा लगता । आज सुबह अचानक वह बोल उठी—मृणाल दीदी, आज तुम्हारी छुट्टी ।

मृणाल समझ नहीं सकी । पूछा—काहे की सँझली दी ।

अचला ने कहा—रसोई की । आज मैं रसोई करूँगी ।

मृणाल अवाक् होकर बोली—हाय रे नसीब, तुम क्या रसोई करोगी ?

अचला ने सिर हिलाकर कहा—वाह, मैं जैसे जानती ही नहीं ? घर में कितनी बार मैंने पकाया है । आज नहीं मानूंगी, मैं आज जरूर रसोई करूंगी ।

उसकी जिद्द देखकर मृणाल म्लान हो गई। बोली—अरे, यह भी होता है कहीं। मेरे रहते तुम किस दुःख से धुएं में कष्ट करोगी ?

उसके भाव को ध्यान से देखकर अचला और अड़ गई, फिर रसोइया के होते तुम्हीं क्यों कष्ट उठाती हो ? इस बेला मैं जरूर रसोई करूंगी।

उसे क्यों यह जिद्द हुई, मृणाल कुछ भी समझ नहीं सकी। वह हँसी दबाकर बनावटी रूसने के ढंग पर बोली—वाहरी लड़की ! एक-एक कर तुम मेरा सब कुछ छीन लिया चाहती हो ? सब तो ले चुकीं, दो दिन पकाकर खिला जाऊँ, यह भी शायद बर्दाशत नहीं हो रहा ? सौत की डाह शुरू हो गई ?

अचला के कलेजे के अन्दर फिर छन् से लगा। मृणाल की अंतिम बात ने उसकी डाह की पीड़ा पर चोट की। वह जरा देर गंभीर हो गई और बोली- नही आज मैं ही पकाऊंगी।

मृणाल ने देखा, अचला रज हो गई है। सो उसने और विवाद नही किया। उदास होकर बोली—ठीक है, तुम्ही पकाओ। चलो, मे तुम्हे दिखा आऊँ, कहां पर क्या है।

महिम घर ही था, यह बात दोनों मे से किसी को मालूम न थी। अचानक उसे सामने देखकर दोनों अप्रतिभ हो गईं।

उसने अचला से कहा—जब तक मृणाल है, वही रसोई करे न।

एतराज वह क्यों कर रही थी, महिम यह जानता था, पर यह तो खोलकर कहा नहीं जा सकता।

अचला और भी जल उठी। लेकिन गुस्से को पीकर सिर्फ बोली—न, मैं ही रसोई करूँगी—और किसी बात का इन्तजार किए बिना वह चली गई।

अचला जबर्दस्ती रसोई करने चली गई। रसोई करने मे वह किसी से कम नही थी, लेकिन इस ओर वह ध्यान ही नहीं दे सकी। पिछले दिनों के सारे किस्से हिलते-डुलते उसे चुभने लगे। उसे लगने लगा, शायद महिम कभी भी उसे वैसा प्यार नहीं कर सका है। विवाह से कुछ ही पहले सुरेश से जो ठन गई थी, उन बातों को खोद-खोदकर याद करके आज वह मानो साफ देख पाई कि महिम सदा से ही उसके प्रति उदासीन है। यहां तक कि पिताजी की राय से पहला रिश्ता जब बिल्कुल टूट जाने को था, उस समय भी महिम जरा भी नही डगमगाया, इसमे उसे जरा भी संदेह न रहा।

जब से यहां आई, मृणाल और अचला एक साथ खाने बैठती थीं। दोपहर को अचला ने मृणाल को बुलाने के लिए हरिया की मां को भेजा और इन्तजार करती

रहीं। हरिया की मां ने लौटकर बताया—उन्हें बुखार-सा हो आया है, वे नहीं खायेंगी।

अचला कुछ बोली नही। मृणाल के कमरे में गई। मृणाल आंखें बन्द किए पड़ी थी। अचला ने कहा मृणाल दीदी, चलो खालें ना।

मृणाल ने आंख खोलकर देखा। मुस्कुराती हुई बोली— तुम चलकर खालो संझली दी, मेरी तबीयत ठीक नहीं।

अचला ने रूखे स्वर से पूछा— क्या हुआ ? बुखार ?

मृणाल ने कहा—वैसा ही लग रहा है। आज फाका कर लूं, ठीक हो जायगा।

अचला ने झुककर मृणाल के कपाल का ताप देखकर कहा— मैं वैसी बेवकूफ नहीं हूँ दीदी, चलो खालें ना।

मृणाल सिर हिलाकर बोली—कसम संझली दी, मै कहती हूँ, खाने का उपाय नही। नाहक ही तुम कष्ट उठाकर मुझे बुलाने आई। बल्कि चलो, मैं चलकर तुम्हारे पास बैठती हूं।

अचला सख्त होकर बोली—एक भूखी मित्र को सामने बिठाकर खुद खाने की शिक्षा हमें नही मिली है मृणाल दीदी।

मृणाल फिर भी हँसने की कोशिश करती हुई बोली—मगर मित्र को खाने की गुंजाइश न हो तब ?

अचला ने उसी भाव से जवाब दिया—उपाय है क्यों नहीं, सुनूं जरा ? तुम्हे दरअसल बुखार नहीं हुआ है, हुआ है गुस्सा। खुद न खाकर मुझे भी भूखे मारने की ख्वाहिश हो, तो खोलकर कहो, मैं तंग न करूँगी।

मृणाल झट उठकर झोंक मे कह गई—पति की सौगंध खाकर कहती हूँ संझली दी, मैंने नाम को भी गुस्सा नहीं किया है। लेकिन खाने का कोई उपाय नहीं। चलो, मै तुम्हे गोदी में बिठाकर खिलाऊँ।

अचला बोली— तो मतलब कि बुखार-उखार नहीं, बहाना है।

मृणाल चुप रह गई। अचला खुद भी कुछ देर स्तब्ध-सी रहकर एक निश्वास छोड़कर बोली—अब समझा ! लेकिन तुमने शुरू में ही कह दिया होता दीदी कि तुम मेरा छुआ घृणा से मुंह में नही रख सकोगी, तो नाहक जिद करके मैं तुम्हें भी तकलीफ न देती और नौकर-दासियों के आगे खुद भी शर्मिन्दगी में न पड़ती ! खैर, मुझे माफ करना बहन—लेकिन दूध तो नहीं छुआ ना, एक कटोरा दूध ही ला दूं— और जद्दू दुकान से कुछ मिठाई ले आए क्यों ?

पहले तो मृणाल काठ की मारी-सी रह गई, जरा देर में वह स्थिति जाती भी रही, तो भी वह कुछ बोली नहीं, मुँह मुकाए चुप बैठी रही।

अचला ने फिर टोका—क्या कहती हो ?

आंचल से आंखें पोंछ कर मृणाल बोली—अभी छोड़ो।

अचला कुछ क्षण चुपचाप खड़ी रही फिर धीरे-धीरे चली गई।

मृणाल ने न सिर उठाया, न बात की। बुढ़िया सास के लिए उसे पकाना पड़ता है। वे बेहद अंधविश्वासी हैं। कहीं यह सुन लें, तो उसके हाथ का पानी तक न छुएंगी, अचला को उसने इसका आभास तक नहीं दिया।

अचला रसोई में गई। वहां का काम-काज कर लिया और हाथ धोकर अपने कमरे में जाकर पड़ रही। लेकिन और चाहे जिस कारण से भी हो, केवल घृणा से ही मृणाल ने उसके हाथ की रसोई नहीं खाई - इसे अचला मन में झूठ ही समझती थी, इसीलिए उसने जानकर इसे इस तरह का आघात पहुँचाया। अगर सच समझती तो वह मुंह से उच्चारण भी नहीं कर पाती। पर जिस सुबह की शुरूआत कलह से हुई, उसकी दोपहर को भगवान् ने किसी की किस्मत में भोजन नहीं दिया, इसे दोनों ने मन ही मन समझा।

तीसरे पहर बैलगाड़ी दरवाजे पर आकर खड़ी हुई। मृणाल अचला के कमरे में गई और कहा --नमस्ते करने आई हूं संझली दी, अपने घर जा रही हूँ। जी में कभी आए, तो बुलाना, फिर हाजिर हो जाऊँगी। थोड़ा थमकर बोली—जाने के समय बात ही नहीं करोगी बहन। कहकर कुछ देर उत्सुकता से देखती रही।

लेकिन अचला एक शब्द न बोली। जैसे बैठी थी, सिर झुकाए वैसी ही बैठी रही। उसके कमरे से निकलते ही मृणाल ने देखा, महिम घर आ रहा है। बोली—जरा रुक जाओ सँझले दादा, तुम्हें भी प्रणाम कर लूं।

महिम ने पूछा—बिना खाए ही चल दी मृणाल ? न हो आज की रात रह कर सुबह जाना ?

मृणाल सिर्फ जरा होठों में हँसकर बोली---नहीं-नहीं, जद्दू गाड़ी ले आया। आज मैं जाती हूँ। फिर कभी ले आना। यह कहकर उसने गले में अँचरा डालकर उसे प्रणाम किया और चरणों की धूल ली। कहा --मेरे सिर की कसम, और एक बार लाना भूल मत जाना।

आज महिम हँस पडा। बोला—री जलमुँही, तेरी आदत क्या कभी जायगी नहीं ?

मरने पर जायगी, उसके पहले नही—फिर एकबार हँसकर वह गाड़ी पर जा बैठी।

मृणाल अचानक आज ही चली जा सकती है, अचला ने यह कल्पना भी न की थी। मृणाल ने खुद नहीं खाया, उसे नहीं खाने दिया, इसकी सबसे बड़ी सजा कैसे देगी, कमरे में अकेली बैठी अब तक यही सोच रही थी। जो प्यार करता है, उसे घृणा करने का दोष लगाने जैसी बड़ी सजा दूसरी नहीं, यह बात प्यार ही कह देता है। मृणाल के लिए यही सजा तजबीज करके अचला बैठी थी। मृणाल इसे ब्राह्म लड़की समझकर हृदय से घृणा करती है, उठते-बैठते यही उलाहना देकर इसका बदला चुकाने का निश्चय किया था, सो बेकार हो गया।

लेकिन भूखी मृणाल जब विदा लेकर कमरे से बाहर चली गई, तो उसकी भी आखें आंसुओं से भर गई थीं; पर मृणाल के होठों की उस रत्ती-भर हंसी की आवाज ने लमहे में सूखे मरु की नाई उस निकले आसू को सोख लिया और किवाड़ की आड़ मे उन दोनों की विदाई का दृश्य देख ठीक वज्र गिरे पेड़ की नाईं जलती रही।

थोड़ी देर में जब महिम अंदर आया, तो अचला का स्वाभाविक धीरज जड़ से खत्म हो चुका था। फिर भी लेकिन उसकी सदा की शिक्षा और संस्कार ने उसे इतरता के हाथ से बचाया। जी-जान से अपने को जब्त करके वह सख्त हँसी हंसकर बोली—शहर के आदमी का देहात में आकर बसने जैसी बिडंबना थोड़ी ही है, है न ?

महिम ने स्त्री के मुँह की तरफ देखा और कुछ क्षण चुप रहकर बोला—तुम अपने बारे में कह रही हो न ? समझ रहा था शुरू में तुम्हें तरह-तरह का कष्ट होगा, लेकिन मृणाल से तुम्हारी बनेगी नहीं, यह नहीं सोच सका था। क्योंकि उससे कभी किसी की लड़ाई नहीं हुई।

अचला बोली—लेकिन मुझी से मुहल्ले भर की सदा लड़ाई होती है, यही तुमने कहां सुना ?

महिम ने धीरे-धीरे कहा—तुमने दिनभर खाया-पीया नही, छोड़ो इस बात की अभी जरूरत नहीं।

अचला और भी जल-भुनकर बोली—मृणाल दीदी भी तो बिना खाए ही घर गईं, लेकिन उनसे तो हँसकर बात करने में तुम्हें आपत्ति नहीं हुई !

महिम ने आश्चर्य से कहा—यह सब तुम क्या कह रही हो ?

अचला बोली—यही कह रही हूँ कि मैंने कौनसा ऐसा बहुत बड़ा अपराध किया कि जिसके लिए मेरा अपमान किए बिना नहीं चल रहा था ?

महिम ने हतबुद्धि होकर वही प्रश्न फिर पूछा। कहा- क्या कह रही हो ? मतलब क्या है इन बातों का ?

अचला अचानक जोर से बोल उठी—मतलब यही कि किस कसूर पर मेरा यह अपमान किया तुमने ? मैंने क्या किया ?

महिम विह्वल हो उठा—मैंने तुम्हारा अपमान किया ?

अचला ने कहा—हां, तुमने ।

महिम ने प्रतिवाद किया—झूठी बात ।

अचला क्षणभर के लिए स्तंभित हो रही । उसके बाद स्वर को कोमल करके कहा—मैं कभी झूठ नहीं बोलती । खैर, उसे छोड़ो, अगर तुम्हें सत्यवादी होने का अभिमान हो, सच्चा जवाब दो ?

महिम उत्सुक आंखों सिर्फ देखता रहा ।

अचला ने कहा—मृणाल दीदी आज जो कुछ करके चली गईं, उसे क्या तुम्हारे देहाती समाज में अपमान नहीं कहते ?

महिम बोला—लेकिन उसमें मुझे क्यों घसीट रही हो ?

अचला ने कहा—बताती हूँ । पहले यह कहो कि उसे यहां क्या कहते हैं ?

महिम बोला—खैर, वही अगर हो —

अचला ने टोककर कहा—अगर हो नहीं, ठीक जवाब दो ।

महिम बोला—हां, गांव में भी लोग अपमान ही समझते हैं ।

अचला बोली—समझते हैं न ? फिर सब जान-सुनकर तुमने अपमान कराया है । तुम्हें बेशक पता था कि वे मेरा छुआ नहीं खाएंगी । ठीक है या नहीं ? कहकर अपलक आंखों ताकती हुई वह महिम के कलेजे के भीतर तक अपनी जलती निगाह गड़ाने लगी । महिम वैसा ही अभिभूत-सा देखता रहा । मुंह से एक शब्द भी न निकला ।

ठीक ऐसे समय में बाहर से सुरेश की आवाज आई—महिम, अरे; कहां हो भाई !

सोलह

अरे, सुरेश ! आओ-आओ, अंदर आओ । सब मजे में ?

महिम का स्वागत-भाषण समाप्त होने के पहले ही सुरेश सामने आकर खड़ा हुआ । हाथ के ग्लैडस्टोन बैग को उतार कर बोला—हां, मजे में । मगर यह क्या,

अकेले खड़े हो अचला बहूरानी पल में सचला होकर कहां अंतर्ध्यान हो गई ? उनकी ऊँची आवाज ने तो मोड़ पर से ही मुझे इस घर का पता बताया।

वास्तव में अचला की आखिरी बात नाराजगी मे जरा जोर से निकली थी, वह घर के बाहर ही सुरेश के कानों तक पहुँची थी।

सुरेश ने कहा—देख लिया महिम, विदुषी स्त्री पाने का किता बड़ा लाभ है ? कै दिन हुए आए और इसी बीच देहात के प्रेमालाप के ढंग तक को ऐसा हासिल कर लिया कि उसमें त्रुटि निकाल सके, देहात की स्त्री मे भी ऐसी मजाल नहीं।

शर्म के मारे महिम का कान तक रंग गया। वह खड़ा रहा।

सुरेश ने कमरे की ओर देखकर अचला को लक्ष्य करके कहा—बड़े बेमौके आकर मजा किरकिरा कर दिया भाभी, माफ करना। महिम, अरे खड़े हो ? बैठने को कुछ हो तो ले चलो, जरा बैठूं। चलते-चलते तो पांव की गांठें टूट गईं—अच्छी जगह घर बनाया था भैया ! चलो-चलो, कलकत्ते चलो।

चलो, कहकर महिम ने उसे बाहरी बैठक मे ले जाकर बैठाया।

सुरेश ने कहा—भाभी मेरे सामने न आएंगी क्या ? पर्दानशीन ?

सुरेश के जवाब देन मे पहले ही अचला बगल का दरवाजा ठेलकर अंदर आई। उसके चेहरे पर कलह की जरा भी निशानी नहीं। प्रसन्नमुख से बोली—यह सौभाग्य तो आशातीत है ! मगर यों अचानक ?

उसके प्रसन्न हंसते चेहरे से सुख-सौभाग्य के निखरे विकास की कल्पना करके सुरेश का कलेजा डाह से मानो जल उठा। हाथ उठाकर उसने नमस्कार किया। कहा—लगता है, यों अचानक आकर मैंने ठीक नही 'कया है, मगर हो क्या रहा था अभी ? Their first difference. या जब से आई है, मतभेद चल रहा है। कौन-सा ठीक ?

अचला ने हँसते हुए कहा—कौन-सा सुनने पर आप खुश होंगे ? दूसरा, है न ? तो फिर मेरा वही कहना ठीक है—अतिथि का मन छोटा करना ठीक नहीं।

सुरेश का मुंह गंभीर हो गया। बोला—किसने कहा ? घर की मालकिन का वही तो असली काम है, वही पक्का परिचय है !

अचला ने हंसते हुए कहा—घर ही नही, तो घर की मालकिन ! गरीब के इस झोंपड़े में आपकी रात कैसे बीतेगी, इसी की चिन्ता हो रही है मुझे। मगर धन्य हैं आप, जानकर यह दुःख उठाने आए !

पति की ओर देखकर बोली—अच्छा नयनबाबू मे कहकर चन्द्र बाबू के यहां रात को इनके सोने का इन्तजाम नहीं कराया जा सकता ? उनका घर पक्के का है—बैठका भी है। इन्हें कोई तकलीफ न होगी।

सौजन्य की आड़ मे दोनों के श्लेष के इन वारों से महिम का मन अधीर हो रहा था। मगर इसे रोके कैसे, समझ नही आ रहा था—ऐसे मे सुरेश ने खुद ही इसका प्रतिकार किया। हाथ जोड़कर बोल उठा—पहले जरा चाय-वाय दो भाभी, पीकर जरा संजीदा हो लूं, फिर नयन बाबू से कहो और श्रावण बाबू से कहो—चन्द्र बाबू के पक्के घर में सोने की सिफारिश पर राजी हूं। मगर चाहे जो कहो महिम, इस पर ऐसा खिचाव हो, तो खुशी की बात है।

महिम की ओर से अचला ने ही जबाव दिया। हंसकर कहा - खुशी होना न होना किसी के अपने ऊपर है; लेकिन यह मेरे ससुर का घर है, इस पर खिचाव न हो और बड़े लाट के भवन पर हो, तो वही तो झूठ है। खैर, पहले संजीदा हो लीजिए, फिर बातें होंगी। मैं चाय के लिए पानी रखने को कह आई हूँ। पांचेक मिनट मे चाय हाजिर करती हूँ—तब तक मुंह बन्द करके जरा आराम कीजिए। कहकर हंसती हुई अचला चली गई।

उसके वहां से जाते ही सुरेश के जी की जलन मानो बढ गई। अपने को वह सदा कमजोर और चंचल चित्त का ही जानता था और इसके लिए उसे लज्जा या या क्षोभ भी न था। छुटपन मे महिम से उसकी तुलना करते हुए जब सगी-साथी उसे सनकी, ख्याली आदि कहा करते, तो वह मन ही मन खुश होकर कहता कि यह सही है कि मुझमें निश्चय की दृढता नहीं, प्रवृत्ति से मै मजबूर हूँ, किन्तु दिल मेरा साफ है, मैं कभी नीच या छोटा काम नहीं कर सकता। मै अपनी आमदनी समझकर खर्च करना नहीं जानता, अच्छे-बुरे का विचार करके तब दान नहीं करता मगर मेरा जी रो उठे तो बदन का कपडा तक किसी को दे आने मे मुझे झिझक नही होती—सो जिसको भी और जिस कारण से भी हो मगर मेरे बारे में किसीको भी यह शिकायत करने की गुंजाइश नही कि सुरेश ने किसी से डाह की है या कि स्वार्थ के लिए ऐसा कुछ किया है, जो उसे नही करना चाहिए था। लिहाजा शुरू से दिल के मामले में जिसकी बेहद कमजोर होने की बदनामी थी, और खुद भी जिसे वह सत्य ही मानता था, उसी सुरेश ने जब अचला के सम्बन्ध मे अन्तिम क्षण में अपने ऐसे कठोर संयम का परिचय पाया, तो अपने में इस अज्ञात शक्ति के अभास मे न केवल खुश हुआ बल्कि गर्व से उसकी छाती फूल गई। अचला के विवाह के बाद दो दिनों तक वह अपने को यह कहता रहा कि मैं कमजोर और लाचार नहीं, प्रवृत्ति का गुलाम नहीं हूँ, जरूरत हो तो मन से सारी प्रवृत्ति को ही कुरेद कर फेंक दे सकता हूं। अब मेरे मित्र और उनकी पत्नी यह सोचा करें कि दोस्ती क्या चीज होती है और उसके लिए कोई कितना त्याग कर सकता है।

लेकिन किसी भी झूठ से ज्यादा दिनों तक कोई फांक भरकर नहीं रक्खा जा सकता। उसका आत्म-संयम सत्य न था, वह आत्म-प्रतारणा थी। नतीजा यह हुआ कि एक हफ्ता गुजरते-न-गुजरते उसके झूठे संयम का यह मोह फूले हुए हृदय से धीरे-धीरे निकलकर उसे बड़ा संकुचित कर देने लगा। उसका मन बार-बार कहने लगा—इस त्याग से उसे क्या मिला ? इस त्याग ने उसे क्या दिया ? अब किस सहारे से वह अपने को खड़ा रक्खेगा ? फूफी कहेंगी—बेटे अब तुम ऐसी ही बहू ले आओ, उसके सहारे गिरस्ती सम्हालूं।

एक दिन समाज के फाटक पर केदार बाबू से भेंट हो गई। उन्होंने साफ कहा—कि ग़लती हो गई। महिम से अचला के ब्याह में वे शुरू से ही राजी न थे—लेकिन चूंकि सुरेश उदासीन-सा रहा, इसलिए लाचारी राजी होना पड़ा। घर लौट कर उसका मन शाप देने लगा कि इस विवाह से दोनों में से कोई सुखी न हों। मेरे मित्र भी औकात से बाहर जाने की गलती महसूस करें और अचला भी अपनी भूल समझकर अफसोस की आग में जले। लेकिन जो भी हो, उसका दिल छोटा नहीं है। इस बुरा चाहने के लिए वह अपने मन को तरह-तरह से दबाने लगा, पर उसका दुखी और प्रतारित मन वश में न आया। जिद्दी लड़के की नाईं बार-बार उसी को दुहराने लगा। इसी तरह उसने एक महीना तो काटा और एक दिन कुतूहल को दबा न पाकर हाथ में बैग लिए महिम के घर जा पहुँचा।

सुरेश न दोस्त की तरफ ताककर कहा—अब समझ रहे हो महिम, मेरी बात कितनी सही थी ?

महिम ने पूछा—कौन-सी बात ?

सुरेश ने विज्ञ जैसा कहा—देहात में मैं रहता जरूर नहीं हूँ, पर उसका सब कुछ मैं जानता हूँ। मैंने आगाह नहीं किया था तुम्हें कि गांव से, समाज से बड़ा विरोध होगा ?

महिम ने सहज ही कहा—कहां, विरोध तो वैसा कुछ नहीं हुआ ?

विरोध और किसे कहते हैं ? तुम्हारे यहां किसी ने भोजन किया ? यही क्या काफी बेइज्जती नहीं ?

मैंने किसी को खाने के लिए कहा नहीं।

नहीं कहा ? अच्छा हां, दावत का मुझे तो न्योता नहीं दिया ?

दावत ही नहीं हुई।

सुरेश ने अचरज से कहा—दावत नहीं हुई ? ओ, तुम्हारा तो—लेकिन ऐसे कब तक खैर मनाओगे ? आफत-मुसीबत है, बाल-बच्चों का जनेऊ ब्याह है—दुनियादारी करो तो है क्या नहीं ? मैं कहता हूँ—

जद्दू से चाय का सरंजाम लिवाए खुद मिठाई की रिकाबी लेकर अचला आई। सुरेश की अन्तिम बात उसके कानों पहुँची थी, पर चेहरे के भाव से सुरेश उसे समझ न सका। दोनों दोस्तों का नाश्ता और चाय पीना हो चुका, तो कन्धे पर चादर रखकर महिम उठ खड़ा हुआ। गांव का जमीदार था मुसलमान। महिम उसके लड़के को अंग्रेजी पढ़ाता था। जमींदार खुद लिखा-पढ़ा न था, मगर उदार था और महिम पर अच्छा ख्याल रखता था। इसलिए समाज की दुहाई देकर गांव के लोग उस पर जुल्म करने की हिम्मत न कर सके थे।

अचला ने कहा—आज पढ़ाने न जाते तो क्या था ?

महिम बोला—क्यों ?

अचला के मन का जोर और हृदय की निर्मलता जितनी बड़ी भी क्यों न हो. सुरेश से उसका सम्बन्ध जैसा हो गया था, उससे उसके इस अचानक आगमन से कोई भी स्त्री संकोच किए बिना नहीं रह सकती। सुरेश को वह पहचानती थी। उसका हृदय चाहे जितना बड़ा हो, उसकी सनक पर उसे आस्था न थी, बल्कि डर ही लगता था। उसी के साथ उसे अकेली छोड़कर जाने के प्रस्ताव से वह उत्कंठित हो उठी, मगर चेहरे पर उसे जाहिर न होने दिया और बोली—खूब ! यह भी होता है, मेहमान को अकेला छोड़कर—

महिम ने कहा—मेहमान नवाजी में इससे कमी न होगी। फिर, तुम तो हो ही—

अचला ने धुकचुक करके कहा—लेकिन मैं भी नहीं रह सकूंगी। यह जो उड़िया रसोइया है अपना, ऐसा पक्का है यह कि उसके साथ न रहो, तो एक कौर भी मुँह में रखना मुश्किल। मैं बताऊँ, तुम बल्कि—

महिम ने सिर हिलाकर कहा—नहीं-नही, सो न होगा। महज घंटे दो घंटे की तो बात है। और उसने कोने से अपनी छड़ी उठा ली। एक तो यों ही महिम का नियम टूटना मुश्किल, तिस पर एक मामूली-सी बात के लिए बार-बार आग्रह करने में भी अचला को शर्म आने लगी—कहीं इस डर का राज सुरेश को मालूम हो जाय और भी शर्मिंदा न होना पड़े।

महिम धीरे-धीरे चला गया। उसे सुनाते हुए सुरेश ने अचला से कहा—नाहक ही जबान खोलना। शुरू से जानता हूँ, वह ऐसा आदमी ही नहीं कि किसी का कहा माने। तुम मुझे कोई किताब देकर अपने काम में चली जाओ, मेरा समय मजे में कट जायगा।

यह बात अचला को अचानक लग गई सच ही महिम कभी उसका कोई अनुरोध नहीं मानता। यह उसका एक बड़ा गुण हो चाहे, फिर भी सुरेश के मुँह से

पति की इस कर्तव्य-निष्ठा की बात उसीके सामने उसे अपमानजनक उपेक्षा सी गड़ी। वह कुछ बोली नहीं। जद्दू से एक किताब भिजवावर वह रसोई में चली गई।

काफी रात हुए जब वह सोने गए तो महिम ने पूछा—सुरेश ने तुमसे कुछ कहा कि कितने दिन यहां रहेगा ?

एक तो यों ही आज कई कारणों से पति के ऊपर वह प्रसन्न न थी, जिस पर इस पूछने में कुछ टेढ़ा व्यंग है, यह सोचकर वह कुढ़ गई। रुखाई से पूछा—इसका मतलब ?

महिम अवाक् हो गया। उसने सहज ही ढंग से जानना चाहा था, व्यंग-मजाक नहीं किया था। असल में इतनी देर की बात-चीत में संकोचवश वह मित्र से यह बात पूछ न सका न सुरेश ने ही बताया। उसे उम्मीद थी कि सुरेश ने अचला को जरूर ही बताया होगा।

महिम को चुप देख अचला आप ही बोली—इस बात का अर्थ इतना आसान है कि तुमसे पूछने की भी जरूरत नहीं। तुम्हारा ख्याल है, सुरेश बाबू कुछ नीयत लेकर आए हैं और उसे पूरा होने में कितना समय लगेगा—मैं समझती हूँ। यही न ?

महिम और कुछ देर चुप रहकर बोला—मेरा ऐसा कोई ख्याल नहीं। लेकिन मृणाल के व्यवहार से आज तुम्हारा मन ठीक नही है, तुम कुछ भी धीर होकर समझ नहीं सकोगी। आज सो जाओ, कल बात होगी। कहकर उसने करवट बदल ली।

अचला भी लेट गई पर उसे किसी भी प्रकार नींद न आई। उसके मन में दिनभर जो खीझ जमा होती रही थी वह किसी झगड़े के रूप में निकल जाती, तो शायद उसे चैन मिलती—लेकिन इस तरह से उसकी जबान ही बंद कर देने के कारण वह भीतर ही भीतर जलती रही। वह प्रसंग तो बंद हो गया, जबर्दस्ती उसे खोदकर झगड़ने में जो कमीनापन है, अचला के लिए वह भी असंभव था। सो कल्पना मे ही पति को विपक्ष में खड़ा करके सुलगते सवालों से घायल करती हुई वह बिस्तर पर छटपटाती रही।

नींद जरा देर से टूटी। हड़बड़ा कर अचला बाहर निकली कि देखा, जद्दू चाय की केतली हाथ में लिए रसोई की तरफ जा रहा है। पूछा बाबू कुछ कह गए हैं ?

जद्दू ने कहा—कह गए है, पहर भर में लौटेंगे।

अचला ने पूछा—नए बाबू जग गए है ?

जद्दू बोला—जी ! उन्होंने तो चाय के लिए कहा।

अचला ने झटपट मुंह धोया, कपड़े बदले और बाहर निकली। देखा, सुरेश

कब का तैयार हो चुका है। कमरे की सारी खिड़कियां खोल दी हैं, दरवाजे के सामने एक कुर्सी रखकर कल वाली किनाब पढ रहा है। अचला के पैरों की आहट से उसने नजर उठाकर देखा। अचला के चेहरे पर रात के जागने के सारे ही लक्षण साफ झलक रहे थे। आंखों के नीचे स्याही-सी, गाल फीके, होंठ सूखे सुरेश देखने लगा और उसका जी डाह की आग से जलने लगा; मगर अपनी नजर वह किसी भी तरह हटा न सका।

उसके देखने के ढंग से अचला को अचरज हुआ, लेकिन वह मतलब न समझ सकी। बोली—कब जगे आप ? मुझे तो उठने में आज देर हो गई।

वही तो देख रहा हूँ, कहकर सुरेश ने धीरे-धीरे गर्दन हिलाई; सामने की दीवाल पर बड़ा-सा एक पुराना आईना टंगा था ठीक उसी समय उस आईने की तरफ देखते ही एक ही पल में अचला के सामने सुरेश की उस निगाह का अर्थ साफ हो गया और अपनी श्रीहीनता की शर्म से वह मानो गड़ गई। अपना यह मुँह वह कहा छिपाए, सुरेश की मूल धारणा का प्रतिवाद करे—वह कुछ भी न सोच सकी और जल्दी से कमरे से बाहर निकल गई—कहती गई आपकी चाय ले आऊ।

सुरेश कुछ नहीं बोला, एक लंबी उसांस भरकर वह सूनी आंखों देखता हुआ मौन बैठा रहा।

दसेक मिनट बाद जब चाय लेकर अचला आई, तो सुरेश अपने को सम्हाल चुका था। चाय का घूंट लेते हुए वह बोला—तुमने नहीं पी ?

अचला हँसकर बोली—मैं अब नहीं पीती।

क्यों ?

अब अच्छी नही लगती ! तिस पर यह जगह शायद गर्म है, पीने से नींद नहीं आती। कल तो तमाम रात सो ही नहीं सकी। एक रात नीद न आए तो ऐसी बन जाती है सूरत कि यह जला मुँह किसी को दिखाना मुश्किल। कहकर शर्माती हुई वह हँसने लगी।

सुरेश कुछ क्षण चुप रहकर बोला— मगर यह तो तुम्हारी बचपन की आदत है। महिम अनुरोध नहीं करता पीने का ?

अचला हँसकर बोली—करे भी तो सुनता कौन है ? और यह ऐसी चीज ही क्या है कि पिए बिना न चले ?

अचला की यह हँसी सूखी थी, यह सुरेश ने स्पष्ट देखा। वह फिर कुछ देर चुप रहकर बोला—तुम्हें तो मालूम है, भूमिका बनाकर बात करने की मेरी आदत नहीं, मुझसे बनता भी नहीं। मगर तुमसे खोलकर दो-एक बात पूछूं तो नाराज होगी ?

अचला हँसकर बोली— आपकी बात ! नाराज क्यों होने लगी ?

सुरेश ने कहा— खैर ! तो यह पूछूं, तुम यहां सुखी हो ?

अचला का हंसता मुखड़ा लाल हो उठा। बोली—आपका यह पूछना भी उचित नही।

उचित क्यों नहीं ?

अचला सिर हिलाकर बोली—नहीं। मैं सुखी नही हू—यह बात आपके मन में आना ही नाजायज है।

सुरेश जरा फीका हंसा। बोला—मन क्या कुछ जायज-नाजायज सोचकर मन मे लाता है अचला ? महज दो महीने पहले ऐसा सोचना मेरे लिए उचित ही नहीं, अधिकार था। इन दो महीनों के अरसे मे वह अधिकार मेरा जाता रहा है, तो जाय, उसकी नालिश नहीं करूंगा।—अब मैं केवल यह हकीकत जानकर जाना चाहता हूँ। जब से आया हूं, कभी तो लगता है कि जीत गई हो, कभी लगता है, हार गई हो। मेरा मन भी तुमसे छिपा नहीं, एक बार सच-सच कहो तो क्या है ?

रुलाई की एक बेरोक उफान अचला के गले तक उठ आई—लेकिन जी जान से उसे रोककर जोरों से सिर हिलाकर बोली मैं मजे में हूँ।

सुरेश ने धीमे मे कहा ठीक है।

इसके बाद कुछ देर तक दोनों मे से किसी को जैसे ढूंढ़े कोई शब्द न मिला। अचानक चौंककर सुरेश बोला—और एक बात, मैंने तुम्हारे लिए इतना झेला, यह तुम्हें कभी···

अचला ने दोनों कानों उंगली डालकर कहा—माफ करें, यह चर्चा आप न करें।

दोनों हाथ खुले दरवाजे में फैलाकर भागने की राह रोकते हुए सुरेश ने कहा—नहीं, माफ मैं नहीं कर सकता, तुम्हें सुनना ही पड़ेगा।

सुरेश की आंखों में वही दृष्टि—जिसकी याद आते ही अचला आज भी सिहर उठती है। थोड़ी पीछे हटकर डरती हुई बोली—अच्छा, कहिए।

सुरेश बोला—डरो मत, बदन में हाथ न लगाऊंगा—इतना होश अभी है। सुरेश फिर कुर्सी पर बैठ गया। बोला—इतना तो तुम्हें याद रखना ही होगा कि तुम पर अपना अधिकार मैं गर्वे खो चुका हूँ, पर मेरे ऊपर तुम्हारा सारा अधिकार है।

टोककर अचला ने कहा—इसे याद रखने में मुझे कोई लाग नहीं, लेकिन—कहते-कहते उसने देखा, इस बात ने चोट पहुँचाकर सुरेश को बदरंग बना दिया और तुरत खुद भी उसने महसूस किया कि उसे भी अफसोस ने चोट किया।

वह कुछ देर चुप रही। फिर बोली—सुरेश बाबू, ये बातें सुनना मेरे लिए पाप है और आपका भी बोलना उचित नहीं। आप ये बातें उठाकर मुझे क्यों दुखाते हैं ?

उसके चेहरे पर नजर रोककर सुरेश ने कहा—दुःख होता भी है अचला।

अचला के मुँह से एकाएक निकल पड़ा—आखिर मैं क्या पत्थर हूँ ?

सुरेश ने अपनी निगाह अचला पर से नहीं हटाई, पर अचला की आंखें झुक गईं। सुरेश ने धीरे-धीरे कहा—बस, यही मेरे जीवन भर का सहारा रहा—इससे ज्यादा नहीं चाहता मैं।

वह कुछ क्षण स्थिर रहकर फिर बोला—जब तुम पत्थर नही हो, तो इस अन्तिम भीख से तुम मुझे वंचित नहीं कर सकती। तुम्हारे सुख की जिम्मेदारी जिस पर है, रहे. लेकिन तुम्हारे हाथों जब दुःख ही मिलता रहा है, तो तुम्हारे दुःख का बोझा भी आज से मेरा रहे, यही वरदान मैं मांगता हूँ—यह भीख दो। कहते-कहते आंसुओं से उसका गला रुंध गया। अचला की आंखों से भी उसके पिछले दिन और रात की सारी संचित वेदना न चाहते हुए भी गलकर झर पड़ने लगी।

इतने में दरवाजे के बाहर जूतों का शब्द सुनाई पड़ा और तुरत ही अन्दर दाखिल होते हुए महिम ने कहा—क्यों भई सुरेश, चाय-वाय पी ?

सुरेश से तुरत जवाब देते न बना। उसने किसी प्रकार सिर झुकाकर धोती के छोर से आँखें पोंछी और अचला आंचल से मुँह छिपाए महिम के बगल से जल्दी से निकल गई। महिम एक पांव चौखट के अन्दर और एक बाहर रखकर काठ का मारा-सा खड़ा रह गया।

सत्रह

अपने को जब्त करके महिम अन्दर एक कुर्सी पर बैठ गया।

जिस स्थिति में मनुष्य का मन निहायत बेहयाई और तपाक से झूठ गढ़ सकता है, सुरेश के मन की वही स्थिति थी। इसने झट हाथ से आंसू पोंछकर शर्माया सा कहा—सचमुच मैं बेहद कमजोर हो पड़ा हूँ। लेकिन महिम ने इसके लिए कोई बेचैन न दिखाई, यहां तक कि इसका कारण तक न पूछा।

तब सुरेश आप अपनी कैफियत देने लगा। बोला—कहने को जो चाहे कहें लोग, मगर मैं यह जोर के साथ कह सकता हूँ कि इन लोगों की आंखों में आंसू देखकर

जाने कहां से तो अपनी आंखों में भी आंसू आ जाता है—रोके नहीं रुकता। मैं नहीं पहुँच गया होता तो केदार बाबू तो इस बार हर्गिज नहीं बचते, मगर बड़ा अजीब बदमिजाज है। महिम, इकलौती लड़की—उसे भी खबर नहीं करने दी। शादी होने के दिन से ही जो नाराज है, सो नाराज ही हैं। मैंने कहा—होना था सो तो हो ही चुका—

महिम ने पूछा—चाय तो मिली ?

सुरेश ने सिर हिलाकर कहा—हां, मिल गई। मगर बाप से ऐसा सलूक मिले तो किसकी आंखों आंसू न आए, कहो। मर्द ही नहीं झेल सकते, पर यह तो औरत ठहरी।

महिम बोला—बजा है। रात सोने में दिक्कत तो नहीं हुई, नींद आई थी ठीक ? नई जगह—

सुरेश झट बोल उठा—नही, नई जगह मे मुझे नींद मे कोई दिक्कत न हुई। एक ही करवट मैं सबेरा हो गया। अच्छा महिम, केदार बाबू ने अपनी बीमारी के बारे में कतई बताया ही नहीं, अजीब बात है।

महिम ने बिल्कुल सहज भाव से कहा—बेशक अजीब है। फिर जरा हँसकर कहा—मुंह हाथ धोकर जरा घूमने नही चलोगे ? जाओ, झटपट तैयार हो लो—मुझे फिर घंटे भर मे ही निकलना पड़ेगा। मेरा तो सुबह का काम-काज भी नहीं हुआ।

सुरेश ने किताब में ध्यान गड़ाते हुए कहा—कहानी मजे की लग रही है, खत्म ही कर डालूं।

वही करो। मैं दो घण्टे के अन्दर-अन्दर लौट आऊंगा। कहकर महिम वहा से उठ गया।

उसके मुड़ते ही सुरेश ने नजर उठाकर देखा। लगा, किस अदेखे हाथों ने तो तो उसके समूचे चेहरे पर शर्म की स्याही फेर दी।

जिस दरवाजे से महिम गया उसी खुले दरवाजे की ओर एकटक देखता हुआ सुरेश काठ जैसा सख्त हो रहा। लेकिन अन्दर-ही-अन्दर उसके अयाचित उत्तरदायित्व की सारी विफलता कुढ़न से उसके सर्वांग मे डंक मारती रही।

महिम ने नजर उठाई कि अचला ने स्वाभाविक स्वर मे पूछा—मेरे पिताजी ने कोई बहुत बड़ा अपराध किया है ?

अचानक ऐसे सवाल का मतलब न समझ कर महिम उत्सुक होकर उसको देखता रहा।

अचला ने फिर पूछा—मेरी बात शायद समझ नहीं सके।

महिम ने कहा—नहीं। प्रिय न होते हुए भी बात साफ है मगर इसका मतलब समझना मुश्किल है---कम-से-कम मेरे लिए।

भीतर के क्रोध को भरसक दबाते हुए अचला ने कहा—कठिन तुम्हारे लिए दो में मे कोई नहीं - कठिन है कबूल करना। जो बात सुरेश को तुम सहज ही जता आए वही बात मुझे बताने की तुम्हें हिम्मत नहीं पड़ रही है शायद। मगर आज मैं तुमसे साफ पूछना चाहती हूँ कि मेरे पिताजी तुम्हारे लिए इतने नाचीज हैं कि उनकी सख्त बीमारी की बात पर भी ध्यान देना तुम जरूरी नहीं समझते ?

महिम ने कहा—बेशक जरूरी समझता हूँ। मगर जहां यह जरूरी न हो, वहां मुझे क्या करने को कहती हो ?

अचला ने कहा—कहां जरूरी नहीं है, सुनूं जरा ?

महिम ने चुपचाप एक बार स्त्री की ओर ताका और कड़े स्वर में कह बैठा—जैसे अभी-अभी सुरेश के लिए नहीं था। और जैसे इसके लिए तुम्हारा भी नाराज होकर मेरे मुँह से कठोर शब्द कहाना जरूरी न था। खैर, छोड़ो। जिसके नीचे कीचड़ है उस पानी को कदोड़ करना मैं बुद्धिमानी नही समझता। कहकर महिम बाहर जा रहा था, अचला ने झपटकर सामने से रास्ता रोक लिया। जरा देर बाद वह दांतों से अपना होंठ जोरों से दबाए रही, ठीक जैसे किसी आकस्मिक सख्त चोट की मार्मिक चीख को जी-जान से दबा रही हो, ऐसा लगा। उसके बाद बोली—बाहर क्या कोई जरूरी काम है ? दो मिनट रुक नहीं सकोगे ?

महिम बोला—रुक सकता हूँ।

अचला बोली—तो फिर बात साफ ही हो ले ! पानी जब हट जाता है कीचड़ का पता तभी चलता है, यही तो ?

महिम ने सिर हिलाकर कहा—हां।

अचला ने कहा—नाहक ही पानी को कदोड़ करने की मैं भी हिमायती नही मगर इसी डर से पंकोद्धार भी बन्द रखना क्या ठीक है ? कदोड होता हो तो हो—अगर कीचड़ से छुटकारा मिले ! क्या ख्याल है ?

महिम ने सख्त होकर कहा—मुझे कोई एतराज नही, लेकिन उससे भी जरूरी काम पडा है—अभी समय नहीं है।

अचला ने भी वैसी ही सख्त आवाज में कहा—तुम्हारे इस ज्यादा जरूरी काम के हो जाने पर तो मिलेगी फुर्सत ? खैर, न होगा, मैं तब तक इंतजार करूंगी। कह कर वह रास्ते से हट गई।

महिम कमरे से बाहर हो गया। जब तक वह दीखता रहा, तब तक यह स्थिर खड़ी रही, उसके बाद किवाड़ बन्द कर लिया।

घंटेभर बाद जब नहाने का प्रसंग लेकर वह सुरेश के कमरे में पहुँची, तो उसकी थकी और शोक भरी सूरत का अनुभव सुरेश नजर उठाते हो कर सका। वह समझ गया। हो न हो महिम से उसकी कुछ खटपट हुई है। वह सिमट-सा गया मगर प्रश्न करने की हिम्मत न हुई।

अचला चुप खड़ी रही, फिर पूछा -यह क्या हो रहा है ?

सुरेश कपड़ों को बैग में सहेज रहा था। बोला -गाड़ी तो एक ही बजे है। पहले ही सब ठीक-ठाक किए लेता हूँ।

अचला ने आश्चर्य से पूछा आप क्या आज ही चले जाएँगे ?

सुरेश ने सिर बिना उठाए ही कहा—हां।

अचला बोली—लेकिन क्यों भला ?

सुरेश ने उसी तरह सिर झुकाए हुए ही कहा—और ज्यादा रहना क्या ? तुम लोगों से एक बार भेंट करनी थी, हो गई।

अचला जरा देर चुप रही। बोली -तो आप इधर आ जाइए। यह सब काम औरतों का है, आप लोगों का नही। मैं सब सहेज देती हूँ। वह आगे बढ़ आई। सुरेश बोल उठा—अरे नहीं-नही, तुम छोड दो—यह भी ऐसा क्या काम है—यह तो—

लेकिन उसके मुंह की बात खत्म होने से ही पहले अचला ने बैग उसके हाथ से ले लिया। उसकी चीजों को बाहर निकाला और तह किए हुए कपड़ों को फिर से चपोत-चपोत कर बैग में भरने लगी। पास खड़ा सुरेश सकुचा कर कहता गया -कोई जरूरत नही थी इसकी—अगर मैं खुद ही वगैरा-वगैरा।

अचला ने थोडी देर तक उसकी किसी बात का जवाब नहीं दिया। काम करते करते कहने लगी—आपके बहन या स्त्री होतीं तो यह काम वही करतीं—आपको नहीं करने देती। मगर आपको डर है, कहीं आपके दोस्त आकर देख न लें—है न ? मगर देखें तो क्या ? यह काम तो औरतों का ही है।

सुरेश चुप खड़ा रहा। अभी-अभी महिम के साथ उसका जो कुछ हो चुका, अचला उसे बेशक नहीं जानती, लिहाजा उस बात का जिक्र करके उसे दुखाने की हिम्मत न हुई; लेकिन डर भी लगता रहा, कही महिम आकर फिर अपनी आखों यह न देख ले।

बैग को ढंग से सजाकर अचला ने धीरे-धीरे कहा—पिताजी की बीमारी का जिक्र न करना ही ठीक था, इससे उनका महज अपमान ही हुआ—उन्होंने तो डकार भी न ली।

सुरेश ने चकित होकर कहा—महिम ने तुमसे क्या कहा ?

अचला ने ठीक उसकी बात का जवाब नही दिया, आख के इशारे से बगल के दरवाजे को दिखाकर कहा—वहा खड़ी होकर मैंनें अपने कानों सब सुना ।

सुरेश ने अप्रतिभ होकर कहा—इसके लिए मैं तुम से माफी चाहता हूँ अचला ।

अचला ने हँसकर कहा—क्यों ?

अफसोस के साथ सुरेश बोला—कारण तो तुमने खुद ही बनाया । अपनी गलती से मैंने तुम्हारा और उनका, दोनों का अपमान किया है । खास करके इसी लिए तुमसे क्षमा मांगता हूँ ।

अचला ने नजर उठाकर देखा । अचानक भीतर के आवेग से उसकी आंखें उसका चेहरा दमक उठा ; बोली - आपने किया चाहे जो कुछ भी हो सुरेश बाबू, किया मेरे ही लिए है न ? मुझे शर्मिन्दगी से बचाने ही के लिए तो यह शर्मिन्दगी आपको झेलनी पड़ी । फिर भी आपको मुझसे माफी मांगनी पड़े, ऐसी अनारी मे नहीं हूँ । आप किस लिए लज्जित हो रहे है । जो किया ठीक ही किया ।

सुरेश की ठगी-सी सूरत देखकर अचला ने समझा, वह उस की बात का मर्म समझ नही सका । इसलिए थोड़ी देर चुप रहकर बोली—आप आज न जाएँ सुरेश बाबू ! यहा आपको अगर कुछ शर्मिन्दा होना पडा है, तो वह मेरी शर्म ढांकने के लिए, वरना अपने लिए आपको पड़ी भी क्या थी ! और यह घर अकेले आपके मित्र का नहीं है, इस पर मेरा भी तो कुछ अधिकार है । उसी बलपर मैं आपको आमंत्रित करती हूँ, आप मेरे अतिथि होकर और कुछ दिन रहें ।

उसका साहस देखकर सुरेश ठक् रह गया । दुविधा में पड़कर वह कुछ कहना ही चाहता था कि देखा, महिम आ रहा है ।

अचला उस समय तक सामने बैग को रखे इधर को पीठ किए बैठी थी । महिम के आने की बात न जानकर कहीं वह और कुछ न बोल उठे, इस डर से सरेश सकुचाकर बोल उठा—तुम्हारा काम हो चुका महिम ?

हां, हो गया । कहकर अन्दर आते ही अचला को उस हालत में देखकर बोला—यह क्या हो रहा है ?

अचला ने मुँह फेरकर देखा, मगर उस सवाल का जवाब न देकर पिछले प्रसंग के सिलसिले में बोली—आप हमारे मित्र हैं, और मित्र ही क्यों आपने जो कुछ हमारे लिए किया है, उससे आप मेरे आत्मीय हैं । आपके इस तरह से चले जाने से मेरी लज्जा और क्षोभ की सीमा न रहेगी । आज तो मैं आप को हर्गिज नही जाने दे सकती ।

सुरेश सूखी हँसी हँसकर बोला—जरा सुन लो महिम ! तुम लोगों से मिलने

आया था। मिलना तो गया बस। मगर इस जंगल में मुझे ज्यादा दिन रोकने तुम लोगों को लाभ क्या होगा और मेरे लिए ही यह दुःख सहने का नतीजा क्या ?

महिम ने धीर भाव से कहा—शायद नाराज होकर चले जा रहे थे ; यह इनको पसन्द नहीं।

अचला ने तीखे स्वर में कहा—तुम्हें पसन्द है क्या ?

महिम ने कहा—मेरी बात तो हो नहीं रही।

सुरेश मन ही मन अत्यंत उत्कंठित हो उठा ; इस अप्रिय प्रसंग को किसी प्रकार दबा देने की नीयत से खुशी का भान करता हुआ बोला—झूठ आरोप क्या लगाना ! मैं नाराज क्यों होने लगा भला, गजब के आदमी हो तुम लोग तो ! खैर यही चाहते हो, तो दो एक दिन और ठहर जाऊँगा। भाभी कपड़े सहेजने की जरूरत नहीं निकाल दो। चलो महिम तुम लोगों के पोखरे में ही आज नहायें—ऐसा ही होगा तो घर जाकर कुनैन की शरण लूँगा।

चलो—महिम कपड़े बदलने के लिए कमरे से बहार चला गया।

अठारह

नए जूते की तीखी चिकोटी को चुपचाप बरदास्त करके जो बेपरवा होने का भान करता है, ठीक उसी आदमी जैसा सुरेश ने हँसी-खुशी में तमाम दिन काट दिया, लेकिन दूसरे से, जिसे और भी छिपे तौर पर उस चिकोटी का हिस्सा लेना पडा। ऐसा करते न बना।

पति के अटूट गांभीर्य के आगे इस घिनौनी बनावट और बेहयाई के क्षोभ और अपमान से उसे सिर पीटकर मरने को जी चाहने लगा। उसे वह मनकी ओर से बेशक आज भी नहीं पहचान पाई थी पर बुद्धि की ओर से पहचाना था। उसने साफ देखा कि इस तेजस्वी बुद्धि वाले स्वल्पभाषी व्यक्ति के सामने यह नाटक नितान्त विफल हो रहा है, जोकि शर्म की हवा ही हर पल मानों उसीके चेहरे पर गाढ़ी पुतती जा रही है। आज सुबह के बाद महिम कहीं बाहर नहीं गया, सो दिन से लेकर रात के भोजन तक प्रायः सारा समय इसी तरह बीत गया।

रात में बड़ी देर तक बिछावन पर छट-पट करते हुए अचला ने कहा—रात

भर बत्ती जलाकर पढ़ने से दूसरा कोई सो नहीं सकता। तुमसे इतनी भी दया की क्या मैं आशा नहीं कर सकती ?

उसकी उस आवाज से चौककर महिम ने बत्ती उतार दी। कहा मुझ से गलती हो गई, माफ करो। और उसने बत्ती बुझा दी। किताब रखकर बिस्तर पर सो रहा। इस मांगी हुई कृपा को पाकर अचला ने एहसान नहीं जताया लेकिन इस से उसकी नींद मे भी कोई सुविधा न हुई। बल्कि जितना ही समय बीतने लगा यह मौन अंधेरा मानों पीड़ा से बोझिल होकर हर-पल उसके लिए दुस्सह हो उठने लगा। जब महा नही गया तो उसने धीरे-धीरे पूछा अच्छा, जानते हो, अजानते हो, दुनिया में गलती करने ही मे मजा उठानी पडती है। यह क्या सच है ?

महिम ने सहज ही उत्तर दिया —पडित लोग ऐसा ही तो कहते है।

अचला फिर जरा देर चुप रही। उसके बाद बोली तो फिर हम दोनो ने जो गलती की है, जिसका बुरा अजाम आरम्भ मे ही शुरू हो गया है, उसका अंतिम परिणाम क्या होगा। अदाज कर सकते हो तुम ?

महिम ने कहा नही।

अचला बोली मै भी नही कर सकती। लेकिन सोच-सोचकर मैंने इतना भर समझा है कि और बाते छोड़ भी दे, तो भी मर्द होने के नाते इस सजा का ज्यादा हिस्सा मर्द को उठाना चाहिए।

महिम बोला--- थोड़ा और सोचो तो देखोगी, औरत का बोझ इससे एक तिल भी कम नही होता। मगर यह मर्द है कौन ? मै या सुरेश ?

अचला सिहर जो उठी, महिम अधेरे मे भी जान सका। थोड़ी देर चुप रहकर अचला ने कहा—कभी मेरे मुँह पर ही तुम मेरा अपमान करना शुरू कर दोगे, यह मैंने सोचा था और यह भी जानती हूँ कि एक बार यह शुरू हो जाय तो कोई कह नहीं सकता कि कहां जाकर खत्म होगा। मगर झगड़ना मेरे बस का नही और चूँकि ब्याह हो गया है, इसलिए झगड़कर तुम्हारी गिरस्ती करती रहूँ, यह भी न होने का। कल हो चाहे परसों, मै पिताजी के पास लौट जाऊँगी।

महिम ने कहा—तुम्हारे पिता चकित होंगे ?

अचला बोली—नही। वे इसको जानते थे, इसलिए बार-बार मुझे सचेत करने की कोशिश की थी कि इसका नतीजा अच्छा न होगा। कलकत्ते में चल सकता है, लेकिन गॅवई-गांव में समाज, सगे-सम्बन्धी, हित, मित्र सबको छोड़कर सिर्फ स्त्री के साथ किसी का ज्यादा दिन नहीं चल सकता। लिहाजा, वे और चाहे जो हों, चकित नहीं होंगे।

महिम ने कहा—तो तुमने उनकी मनाही मानी क्यों नही ?

जी-जान से एक उच्छ्सित निश्वास को दबाकर वह बोली—मैं समझती थी, बिना समझे-बूझे तुम कुछ भी नही नहीं करते ।

वह ख्याल जाता रहा ?

हां ।

इसीलिए साझेदारी के व्यापार में मुनाफा न हुआ, यह जानकर दूकान उठाकर घर लौट जाना चाहती हो ?

हां ।

महिम कुछ क्षण चुप रहा । चुप रहकर बोला -- तो फिर चली जाना । लेकिन तुमने अगर इसे व्यापार समझना ही सीखा है, तो मुझसे तुम्हारे विचार का कभी मेल न होगा । मगर यह भी न भूलना कि व्यापार को समझने में भी समय लगता है । तुम्हारी यह धारणा कभी टूटे तो मुझे सूचित करना, मै जाकर लिवा लाऊँगा ।

अचला की आंख से आंसू की एक बूंद लुढ़क पड़ी; हाथ से उसे पोंछकर कुछ देर वह थिर रही, फिर कंठ स्वर को संयत करके बोली - भूल किसीसे बार-बार नही होती । मैं नही समझती कि तुम्हें यह कष्ट कभी उठाने की जरूरत पड़ेगी ।

महिम बोला—समझा नहीं जा सकता, इसलिए उसे भविष्य कहते है । इसीलिए उस भविष्य की फिक्र भविष्य पर छोड़कर आज तो मुझे ब शो, मुझसे अब बकबक नहीं किया जा सकता ।

अचला को चोट लगी । बोली—मजाक कर रहे हो ? मजाक करना भूल है लेकिन । सच ही मैं कल-परसों चली जाना चाहती हूं ।

महिम ने कहा—मैं सचमुच तुम्हें जाने देना नहीं चाहता ।

अचला अचानक तैश में आकर बोली – तुम क्या मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझे रोककर रक्खोगे ? यह हर्गिज नही कर सकते, पता है ?

महिम ने शांत स्वर सहज भाव से कहा -- ठीक तो हे, वह भी तो आज रात की बात नही । कल-परसो जब जाओगी, सोचकर देखा जाएगा । कहकर उसने तकिए को उलटा कर बात कतई बन्द कर दी और थोडी ही देर मे सो भी गया शायद ।

सवेरे चाय पर बैठकर सुरेश ने पूछा महिम तो शायद आज भी खेती की निगरानी को निकल गया है ?

अचला सिर हिलाकर बोली—दुनिया इधर से उधर हो जाय, उनका अपना नियम नहीं टूट सकता ।

चाय का प्याला होठो मे अलग करते हुए सुरेश ने कहा—एक हिसाब से वह

हम लोगों से बहुत अच्छा है। उसके काम की एक गति है, जो कल के पहिए-सी तब तक जरूर चलेगी, जब तक की उसमे कुजी भरी है।

अचला ने कहा---आप क्या कल-से होने को ही ठीक कहते है ?

सुरेश गर्दन पर बल देकर बोला -हां, कहता हूँ, क्योंकि ऐसा कर सकना अपनी समता के बाहर है। दुर्बल होना भी कितना बडा गुनाह है, यह तो मै जानता हूँ; इसीलिए जो स्थिर मिजाज का है, उसकी प्रशंसा किए बिना मै नही रह सकता। लेकिन आज मुझे छुट्टी दो, मैं चलूं।

अचला तुरत राजी हो गई। बोली जाइए। मै कल जाऊँगी।

सुरेश ने आश्चर्य से पूछा—तुम कहा जाओगी कल ?

कलकत्ते।

अचानक ? कहा, कल तो यह इरादा नही सुना था ?

पिताजी बीमार है। उन्हे देखने जाऊंगी।

सुरेश के चेहरे पर उद्वेग की छाया उग आई। बोला-- बीमार पिता को देखने की इच्छा दुनिया में अनहोनी नही, मगर डर लगता है, कही मेरे कारण नाराज-वाराज होकर

अचला ने इसका कोई जवाब नही दिया। सामने से जद्दू जा रहा था। सुरेश ने पुकारकर पूछा -क्यो रे जद्दू, तेरे बाबूजी खेत से लौट आए ?

जद्दू ने कहा जी, आज सवेरे तो वे कही गए नहीं। अपने पढ़ने के कमरे मे सो रहे है।

अचला झटपट गई। दरवाजे पर से झांककर देखा—महिम एक कुर्सी पर ओठंग कर सामने की मेज पर दोनों पांव रखे सो रहा है। रात की अधूरी नींद कोई इस तरह पूरी कर रहा है, यह कोई अनोखी बात नही लेकिन अचला के आश्चर्य का वास्तव में ही ठिकाना न रहा, जब उसने देखा कि उसके पति दिन का काम बन्द करके असमय मे सो गए है। वह पर पैर दबाए अंदर गई और चुपचाप उसकी ओर ताकने लगी। सामने के झरोखे मे से छनकर सवेरे की हलकी आभा उस सोए हुए मुखडे पर पड रही थी। आज अचानक ही एक ऐसी चीज पर नजर पड़ी, जिसे इसके पहले ऊसने कभी नही देखा था। आज उसने देखा. शांत मुखड़े पर मानो अशांति का महीन जाल-सा पडा है; ललाट पर जो कुछ लकीरें झलक रही हैं, साल भर पहले वे नही थी। उसे लगा, सारा चेहरा किसी छिपी वेदना से श्रांत और पीड़ित है। वह चुपचाप आई थी, चुपचाप ही चली जा रही थी, लेकिन पिकदान को पैरों की ठोकर लग गई, उसी आहट से महिम ने आंखें खोल दी। अचला ने पूछा--इस समय सो रहे हो ? तबीयत तो खराब नहीं है ?

महिम ने आंखें मलते हुए कहा—क्या पता ! तबीयत खराब नहीं, यही तो ताज्जुब है !

अचला ने और कुछ न पूछा --कमरे से बाहर चली गई ।

खा-पी चुकने के बाद सुरेश जाने की तैयारी कर रहा था—महिम पास ही एक कुर्सी पर बैठकर उससे बात कर रहा था । अचला दरवाजे के पास आकर बिना किसी भूमिका के बोल उठी मै भी कल जा रही हूँ । सुविधा हो तो आप जरा पिता जी से मिल लेंगे ।

सुरेश ने अचरज से कहा—अच्छा ! फिर महिम की तरफ निगाह करके पूछा —भाभी जी को तुम कल ही कलकत्ते भेज रहे हो क्या ?

स्त्री की इस जबर्दस्ती खिलाफत से महिम जल-भुन उठा परन्तु चेहरे के भाव को प्रसन्न रखकर ही वह बोला --दूसरी कोई अड़चन नहीं थी, पर देहात के गृहस्थ घर मे नाटक करने का रवाज नहीं । कल क्या आज ही तुम्हारे साथ भेज दे सकता था ।

सुरेश का चेहरा शर्म के मारे तमतमा उठा । यह देखकर अचला तुरत जबरन हसती हुई बोली—सुरेश बाबू हम लोगो का घर शहर मे है, इसके लिए शर्म महसूस करने की कोई वजह नही । बीमार पिता को देखने जाना अगर गांव मे जायज नही है, तो मेरे ख्याल मे अपने शहर का नाटक कही बेहतर है । न हो तो आज भर आप रुक जायँ न सुरेश बाबू, कल साथ ही चलेंगे ।

उसकी इस बेहद ढिठाई से सुरेश का चेहरा फख हो गया, वह सिर झुकाकर कहने लगा—नही-नही, मेरे रुकने की अब गुंजाइश नही भाभी जी । जाना हो, कल जाइए आप, मै तो आज ही चला । कहते-कहते उत्तेजना मे वह अचानक बैग लेकर खड़ा हो गया ।

उसकी उत्तेजना के इस आवेग ने अचला को भी एकबार मानो भूल से झक-झोर दिया । वह व्याकुल होकर बोल उठी—गाड़ी को अभी काफी देर है सुरेश बाबू तुरत मत जाइए, रुक जाइए थोड़ी देर । कृपा करके मेरी दो बाते सुन जाइए । उसके आर्त-करुण अनुरोध से दोनो ही श्रोता चौक उठे ।

अचला बिना किसी तरफ देखे कहने लगी --मै आपके किसी भी काम न आ सकी सुरेश बाबू, मगर आपके सिवा हमारा बुरे वक्त का मित्र कौन है ? आप जाकर पिताजी से कह दें, इन लोगों ने मुझे बंद करके रक्खा है, कही जाने नहीं देंगे--मैं यहां पर मर जाऊँगी । आप लोग मुझे यहा से ले चलें सुरेश बाबू, जिसे प्यार नही करती, उसकी गिरस्ती करने को आप लोग मुझे यहां न छोड़ें ।

महिम विह्वल-सा चुपचाप ताकता रहा। सुरेश ने मुड़कर दोनों आंखें ढमका कर जोर से कहा—तुम्हें पता है महिम, ये ब्राह्म है। स्त्री हुई तो क्या, इन पर पाशविक बल-प्रयोग का तुम्हे अधिकार नहीं।

महिम जरा देर के लिए खो-सा गया था। अपने को जब्त करके उसने कहा—तुम किस लिए क्या कर रही हो, जरा सोच तो देखो अचला। फिर वह सुरेश से बोला—पशु-बल, मनुष्य-बल—मैने कभी किसी पर किसी भी बल का प्रयोग नही किया। खैर, अगर रुक सको तो तुम आज रुक ही जाओ सुरेश, कल इन्हे साथ लेकर ही जाना। मैं खुद जाकर गाडी पर सवार करा आऊँगा, इससे गाव की आखों को इतना बुरा भी न दीखेगा! कुछ क्षण रुककर बोला—मुझे जरा काम है, मैं जाता हूँ। आज अब जब जाना ही नही हुआ, तो कपडे बदल डालो सुरेश, मैं आधे घण्टे मे लौट आता हूं। और वह धीरे-धीरे बाहर हो गया।

अचला जैसी खडी थी. मूरत की नाई चौखट थामे उसी तरह खड़ी रही। सुरेश एक मिनट तो सिर झुकाए खडा रहा, फिर ठहाका मारकर हँसते हुए बोला—वाह, मजे का अभिनय हो गया एक अंक का। तुमने भी कुछ बुरा नही किया, मगर मैंने तो कमाल का किया! उसके घर मे उसीकी स्त्री के लिए उसी पर आखें तरेर दी मैंने! इससे ज्यादा क्या चाहिए? और मेरे दोस्त एक मीठी हँसी हँसकर मानो वाह-वाही देकर चल दिए। मैं शर्त बदकर यह कह सकता हूँ अचला, वह सिर्फ जी खोलकर हँसने के लिए काम का बहाना बनाकर चला गया! खैर, जरा आईना तो ला दो भाभी, एक बार देख लूं, क्या शक्ल बनी है अपनी! यह कहने के बाद सुरेश ने देखा, अचला का चेहरा बिल्कुल सफेद हो गया है। वह कुछ बोली नहीं—सिर्फ एक लंबा निश्वास छोड़कर वहां से चली गई।

उन्नीस

जिस सेज को छूने में भी अचला को आज नफरत होनी चाहिए थी, रोज की तरह शाम को वही सेज जब वह बिछाने के लिए कमरे में गई तो उसका मन कहां और किस दशा में था—जिनको भी मानव-मन की थोड़ी-बहुत जानकारी है, उनसे यह अजाना नहीं रह सकता।

कल के पुतले की नाईं नियमित काम करके जब वह लौट रही थी कि सामने

की मेज पर नजर पड़ गई और एक सास में वह पैड पर पड़ी एक छोटी-सी चिट्ठी को पढ गई। महज दो-तीन पंक्ति। दिन नही, तारीख नहीं—मृणाल ने लिखा था, संझले दादा जी, आखिर कर क्या रहे हो यह ? परसों से तुम्हारी राह देखते-देखते तुम्हारी मृणाल की आँखें घिस गईं !

बड़ी देर तक अचला की पलक नहीं हिली। ठीक पत्थर की बनी प्रतिमा जैसी पलक-विहीन दृष्टि उसी एक पंक्ति पर गड़ाए वह स्थिर खड़ी रही। यह चिट्ठी कब की है, कब कौन दे गया—यह सब उसे कुछ भी मालूम नहीं। मृणाल का घर किधर को है, किस मुँह को है उसके घर का दरवाजा, किस रास्ते पर, क्यों वह इस उत्सुकता और आकुलता से राह में अपनी नजर बिछाए है—कुछ भी जानने की उसे गुंजायश नहीं। सामने स्याही की यह लकीर सिर्फ इतना ही बता रही थी कि जानें किस परसों से कोई किसी की राह में नजर बिछाकर अपनी आंखें चौपट कर रही है, मगर दर्शन नहीं मिलते।

इधर उस झुटपुटे कमरे के अंदर एकटक देखते-देखते उसकी अपनी आंखें दुःख से दुखा गईं और काले-काले हरूफ पहले तो धुँधले फिर मानो छोटे-छोटे कीड़े से कागज पर रेंगने लगे। पता नहीं, कब तक वह इसी तरह देखती रह जाती; लेकिन अपने अजानते अब तक उसके अंदर जो निश्वास जमता आ रहा था, वही जब रुँधे स्रोत के बांध तोड़ देने की तरह अचानक जोर से निकल पड़ा, तो उसी की आवाज से चौंककर वह आपे में आई। नजर उठाकर बाहर देखा, आंगन में सांझ का अंधेरा उतर आया था और जद्दू बाहर के कमरे में लालटेन देने के लिए चला जा रहा था। पूछा—जद्दू, बाबू लौट आए ?

जद्दू ने कहा—नहीं मां जी, अभी तक तो नहीं लौटे।

अब अचला को याद आया, दोपहर के उस शर्मनाक अभिनय के एक अंक के के बाद ही वे बाहर गए है और तब से नहीं लौटे। पति के रोज-रोज के रवैय मे आज उसे जरा भी सन्देह न रहा। सुरेश के आने के बाद से घर मे झगडा-लडाई का रोज-रोज एक ऐसा सिलसिला जारी हुआ कि उसमें उलझकर अचला और सब कुछ भुला बैठी थी। वह अपने पति को प्यार नही करती, मगर गलती से उससे विवाह किया है—इसी भूल की जिन्दगी भर गुलामी करने के खिलाफ उसका चंचल मन बगावत की घोषणा करके रात-दिन जूझ रहा था। मृणाल की बात वह एक तरह से भूल गई थी, पर आज सांझ के धुँधलके मे जब उसी मृणाल की एक पंक्ति सारी जलन लिए पलट कर वह आई, तो पल में यह प्रमाणित हो गया कि भूल से अपना पति बनाए हुए पुरुष का और किसी नारी से अनुरक्त होने का संदेह जी को जलाने के लिए दुनिया की और किसी चिंता से हर्गिज छोटा नही।

उसने फिर एक बार चिट्ठी को पढ़ने के ख्याल से हाथ बढ़ाया, लेकिन शहरी घृणा से उसका हाथ आप ही लौट आया। चिट्ठी वही खुली पड़ी रही। अचला बाहर आई और खंभे के सहारे स्तब्ध खड़ी रही।

अचानक उसे लगा, सब झूठ है ! यह घर-द्वार, पति-परिवार, खाना-पहनना, सोना-बैठना—कुछ भी सत्य नही। किसी भी चीज के लिए मनुष्य को हाथ बढ़ाने की जरूरत नही। आदमी केवल मन के भ्रम से ही छटपटाता रहता है, वरना क्या शहर, इसका झोंपड़ा और राज महल ही क्या, पति-पत्नी, मां-बाप, भाई-बहन का रिश्ता ही कहां ! आखिर किस लिए यह लड़ाई-झगड़ा, रोना-पीटना ! दोपहर की उस उतनी बड़ी घटना के बाद भी जो पति स्त्री को अकेली छोड़कर घण्टों बाहर रह सकता है, उसके मन की बात को जानने के लिए सिरदर्द ही क्यों ? सब झूठ है, सब कुछ धोखा ! मरीचिका-सा ही भ्रम ! परंतु दुनिया उसके लिए ऐसी सूनी नही हो जाती, यदि वह मृणाल की भाषा पर ही सारी चिंता न लगाकर मृणाल को ही जरा सोचने की कोशिश करती ! दूसरी स्त्री से इस गवई, सदा आनन्दमयी नारी के आचरण की तुलना करती, तो इन की बातों की कलिमा ही उसके मन को इस कदर शायद काला नही कर पाती।

जद्दू उधर से लौटा। लौटकर उसने कहा--बाबूजी ने पूछा, चाय का पानी उबल गया है ?

अचला मानो नींद से लगी, किन बाबू ने ?

जद्दू ने जोर देकर कहा जी, अपने बाबू जी ने। वे लौट आए। चाय का पानी तो कब का तैयार हो चुका है मां जी।

अच्छा, चलती हूँ। अचला रसोई की ओर बढ़ी। थोड़ी देर मे चाय और नाश्ता नौकर के हाथ दे वह बाहर गई। देखा, महिम अंधेरे बरामदे पर पायचारी कर रहा है और सुरेश कमरे में लालटेन के सामने ध्यान से अखबार पढ़ रहा है। गोया किसी को किसी की मौजूदगी का आज पता ही नहीं। इस अत्यन्त लज्जाकर संकोच ने जो इन दो आजीवन मित्रों के सहज शिष्टाचार की राह भी बद कर दी है, उसके उपलक्ष की याद से अचला के कदम आप ही आप रुक गए।

अचला को देखकर महिम ने खड़े होकर पूछा—सुरेश को चाय देने मे इतनी देर हो गई ?

अचला के मुंह से बात ही न निकली। वह कुछ देर सिर झुकाए खड़ी रही फिर धीरे-धीरे अन्दर आई।

जद्दू चाय का सामान मेज पर रखकर बाहर चला गया। सुरेश ने अखबार से नजर हटाई ; कहा—महिम कहां है, अभी लौटा नहीं है ?

उसका कहना था और महिम अन्दर आया। एक कुर्सी खींचकर बैठा, किंतु

वह दसेक मिनट उसके कान के पास ही बरामदे पर चहल-कदमी कर रहा था, यहँ बताने का उसने प्रयोजन नहीं समझा। फिर सब चुपचाप। नजर झुकाए हुए ही अचला ने दो प्यालों में चाय बनाई। एक प्याला सुरेश को दे, दूसरा पति की ओर बढ़ाकर चुपचाप चली जा रही थी कि महिम की पुकार पर खड़ी हो गई।

महिम ने कहा—जरा रुक आओ और झट अपने से उठकर किवाड़ की चटखनी चढ़ा दी। लमहे में सुरेश को उसकी छः नली पिस्तौल की याद आ गई और हाथ का प्याला डगमगा गया, छलककर कुछ चाय नीचे गिर पड़ी। मुर्दे की तरह अपना चेहरा फीका बनाकर उसने पूछा—दरवाजा बंद कर दिया ?

उसकी आवाज, उसकी सूरत और सवाल करने के ढंग से तुरत अचला को भी वही शंका हुई और उसके सिर के बाल तक खड़े हो गए। उसने चीखने की भी शायद कोशिश की, मगर यह कोशिश कामयाब न हुई। अचला का यह हाल देखकर महिम समझ गया। सुरेश की ओर ताककर बोला—कही नौकर न आ जाय, इसी लिए—नही तो अपनी पिस्तौल जैसे सदा बक्स मे बंद रहती है, आज भी बंद पड़ी है। तुम लोग इस कदर डर जाओगे, यह मालूम होता, तो दरवाजा नहीं बंद करता।

सुरेश ने चाय का प्याला रख दिया और माना हँस रहा हो, ऐसा चेहरा बनाकर बोला—खूब, डरने क्यो लगा ? तुम मुझ पर गोली चलाओगे—खूब ! जान का डर ! मुझे ? कब, कब देखा तुमने ? खैर, जो हो।

उसकी बेसिलसिले बार कैफियत खत्म होने के पहले ही महिम ने कहा—तुम्हें डरते सच ही कभी नहीं देखा। जान की ममता तुम्हें नहीं है, यही मैं जानता था। सुरेश, तुम्हारे अपने दुःख से तुम्हारे पतन की चोट मेरे कलेजे मे आज ज्यादा लगी। जो तुम जैसे आदमी को भी इतना गिरा दे—नः, सुरेश, कल तुम जरूर घर चले जाओ। किसी बहाने अब रुको मत।

सुरेश फिर भी कुछ जवाब देना चाह रहा था, लेकिन अबकी उसके गले से आवाज भी न निकली, वह गर्दन भी न उठा सका—उसके अजानते ही मानो गर्दन झुक गई।

तुम अंदर जाओ अचला—कहकर दरवाजा खोलकर महिम अंधेरे में बाहर निकल गया।

अब सुरेश ने सिर उठाया। जबरदस्ती हंसकर बोला—सुन लो जरा बात। जाने ऐसी कितनी बंदूक-पिस्तौल से खेलकर बुड्ढा हो गया, अब उसकी टूटी-फूटी पिस्तौल के डर के मारे मर गया मैं ! हंसी आती है—और सुरेश खींच-खींचकर हंसने लगा। उसकी हंसी मे साथ देने लायक अचला के सिवाय कमरे में कोई न था।

अचला लेकिन जैसे सिर झुकाए खडी थी, वैसे ही कुछ देर खड़ी रही, फिर बगल के दरवाजे से चुपचाप अंदर चली गई।

घंटेभर बाद महिम अपने कमरे में आया। देखा, कोई नहीं है। बगल के कमरे में जाकर देखा, जमीन पर चटाई बिछाकर हाथ पर मुंह रखे अचला लेटी है। पति को अंदर आते देख वह उठ बैठी। पास ही एक खाली चौकी पड़ी थी। उस पर बैठकर महिम ने कहा—तो कल तुम्हारा मैके जाना तै है न ?

अचला नीचे देखती रही, कुछ बोली नही। महिम ने थोड़ा इन्तजार करके कहा— जिसे प्यार नहीं करतीं, उसी की गिरस्ती सम्हालो, पति होकर भी मैं तुम पर इतना बड़ा जुल्म नहीं ढा सकता।

मगर अचला फिर भी बुत बनी बैठी रही—यह देख महिम कहने लगा—लेकिन तुमसे मुझे दूसरी शिकायत है। मेरा स्वभाव तो जानती हो। ब्याह के बाद मे ही तो नहीं, बहुत पहले मे भी तो मुझे जानती थी कि सुख या दुःख, जो भी हो, अपने हक के सिवाय तिल भर भी ऊपरी पावना की उम्मीद नही रखता, मिलने पर भी नहीं लेता। मुहब्बत पर तो जबरदस्ती नहीं चल सकती अचला। मुहब्बत न कर सको, तो दुःख की चाहे हो, शर्म की बात नहीं। फिर क्यो नाहक इतने दिन कष्ट झेल रही थीं। मुझे जनाए बिना ही यह क्यों सोच लिया था कि मैं तुम्हे रोक रक्खूंगा ? वे तुम्हें यहां से निकाल ले जायेंगे तभी तुम्हारी जान बचेगी—और मुझे कहने से क्या कोई तदबीर नहीं होती ? तुम्हारी जान की कीमत केवल क्या वही समझते हैं।

आंसू मे स्पष्ट हुई आवाज को भरसक सहन और स्वाभाविक करती हुई अचला ने कहा—तुम भी तो प्यार नही करते।

महिम ने चकित होकर कहा—यह किसने क.ा ? मैंने तो कहा नहीं कभी ?

अचला को गर्म होते देर न लगी ; बोली कहना ही क्या सब कुछ है ? मुंह की बात ही केवल सच होती है, बाकी सब झूठ ! गुस्से मे मन के कष्ट से जो बात मुह से निकल पडती है, उसी को सत्य मानकर तुम जबरदस्ती किया चाहते हो ? तुम्हारी तरह तौल-तौल कर नही कह पाऊं तो क्या ढकेलकर डुबा देना चाहिए ? कहते-कहते गला रुंध गया।

महिम कुछ भी न समझ सका। बोला— इसका मतलब ?

उमड़ती हुई रुलाई को दबाकर अचला बोली—यह न सोचो कि तुम्हारे जैसे सावधान आदमी भी झूठ को सदा छिपा कर रख सकते है। तुमसे भी कितनी भूल हो सकती है, इसका सबूत अपनी मेज पर जाकर देखो। सिर्फ हमसे ही—

महिम ने हतबुद्धि होकर पूछा—मेरी मेज पर क्या ?

मुंह पर आंचल रखकर अचला चटाई पर औंधी लेट गई। उससे कोई जवाब न पाकर महिम धीरे-धीरे अपनी मेज देखने गया। पढ़ने के कमरे मे मेज पर कुछ किताबें पड़ी थी, दस मिनट तक उनको उलट-पुलट उनके नीचे, बगल में, सब देख गया पर पत्नी की शिकायत का कोई मतलब न निकाल पाया। विमूढ़ की नाईं लौट चला कि सोने के कमरे में कदम रखते ही मृणाल की चिट्ठी पर नजर गई। उसे उठाकर उसने पढ़ा। पढ़ते ही अंधेरे मे जैसे बिजली कौध जाती हो, महिम को लमहे में रास्ता सूझ गया। अचला का इशारा समझने मे उसे जरा भी देर न लगी। चिट्ठी को हाथ में लेकर महिम बिस्तर पर बैठ गया और सूनी निगाहो बाहर अंधेरे की ओर ताकता रहा। मृणाल पहले दिन जैसे आई थी, जैसे चली गई थी, सौत कहकर अचला से जो जो हँसी-मजाक किया—एक-एक कर उसे सब याद आने लगा। गँवई-गाव के ऐसे मजाको की जो स्त्री आदी नही हो, उसे हर रोज यह कैसा चुभता रहा और वह खुद भी जब वैसी दिल्लगियो मे खुले जी से साथ न दे सका, बल्कि स्त्री के सामने लज्जित होकर बार-बार रोकने की कोशिश की— उसकी वह लज्जा अगर इस शिक्षिता बुद्धिमती स्त्री के ख्याल मे अपराधी की सही शर्म के नाते धीरे-जमती गई हो, तो आज उसकी बुनियाद को उखाडकर कैसे फेंका जा सकता है? बाहर के अंधेरे में से ही बहुत से सत्य निकलकर उसे दिखाई देने लगे। दिन-दिन अचला का हृदय कैसे हटता गया है, स्वामी-संग कैसे दिन-दिन विषाक्त बनता गया है, स्वामी की पनाह उसके लिए कैद कैसे बनाती गई है—सब कुछ मानो वह साफ देख पाने लगा। इस दम घोटने वाली रुकावट से मुक्ति पाने की वह जो आकुल कामना सुरेश के सामने उस समय उबल पड़ी थी— वह उसके अंतरतम की कौन-सी गहराई से निकली थी, यह भी आज महिम के मन की आंखों के गोचर न रही। अचला को वास्तव में उसने हृदय से प्यार किया था। इतने दिन इतनी पास होते हुए भी उसी अचला के मन की पीड़ा से लापरवाह रहने को उसने अपना बहुत बड़ा अपराध गिना। मगर ऐसे तो अब एक पल भी नहीं चलने का। स्त्री के हृदय को फिर से पाने की संभावना भी है या नही, वह कितनी दूर हट गया है—आज इसका अंदाज कर सकना भी गैर मुमकिन है; लेकिन अनेक विरोधों से लड़कर भी एक दिन जिसको उसने पति कहकर अपनाया था, उसी में अपमान और फजीहत उठाकर आज उसे लौट जाना पड़ रहा है, इतनी बड़ी भूल तो उसे आगाह कर ही देना है।

महिम उठा। धीरे-धीरे अचला के दरवाजे पर पहुँचा। किवाड़ बंद मिला। ठेलकर देखा, अन्दर से बंद था। धीरे-धीरे दो-एक बार आवाज दी और जब कोई जवाब न मिला, तो नाहक ही उसकी शांति को भंग करने की इच्छा न हुई— इसी

लिए नहीं, बल्कि एक मुश्किल इम्तहान से बहरहाल छुटकारा मिल गया, इसीलिए जैसे वह बच गया।

महिम जाकर बिस्तर पर लेट रहा; लेकिन जिसके लिए मेज सूनी पड़ी रही वह दूसरे कमरे मे जमीन पर भूखी पड़ी है, यह सोच-सोचकर आंखों में नींद नहीं आई। उसे बुलाकर ले आना ठीक है या नही, आगा-पीछा करते-करते बहुत रात बीत जाने पर शायद कुछ देर के लिए उसकी आंखें लग गई थी। एकाएक मुंदी पलकों पर तीखी रोशनी का अनुभव करके उसने आंखें खोल दी। सिरहाने के पास की खिडकी तथा छप्पर की फांकों से बेहिसाब धुँए और प्रकाश से कमरा भर गया था। और पास से ही एक ऐसी आवाज उठ रही थी, जो कानो में प्रवेश करते ही सर्वांग को बेबस किए देती है। आग कहां लगी है, यह तो वह ठीक जान गया, फिर भी कुछ देर के लिए हाथ-पाव न हिला सका। लेकिन उसी क्षण के अन्दर उसके दिमाग में सारी दुनिया घूम गई। उछलकर वह उठ खड़ा हुआ। दरवाजा खोलकर बाहर निकला। देखता क्या है कि रसोई घर और जिस कमरे मे अचला सो रही थी, उसके बरामदे के एक कोने से आग की उठती लपटों ने ऊपर के जामुन गाछ को लाल कर दिया है। गांव मे फूँस के घर मे आग लग जाय, तो बुताने की कल्पना भी पागलपन है। उसकी कोई कोशिश ही नही करता। मुहल्ले के लोग अपने असबाब और गाय-गोरू को हटाने मे लग जाते है और दूसरे टोले के लोग, औरत एक तरफ, मर्द एक तरफ खड़े होकर मौखिक हाय-हाय करते है। कितना सामान जल रहा है, कैसे यह आफत आई। इसी की चर्चा करते हुए जब तक घर जलता रहता है, खडे रहते है। उसके बाद अपने-अपने घर जाकर बाकी रात सो रहते हैं। और सवेरे फिर लोटा लेकर मैदान जाते देखे जाते है और सबेरे के लिए उस चर्चा को वहीं खत्म करके नहाने-खाने चले जाते है। लेकिन किसी के घर की राखों की ढेरी दूसरे की रोजमर्रे की जिन्दगी मे कोई अडचन नही डालती।

महिम देहात का ही था, सब कुछ जानता था। सो नाहक ही शोर मचाकर उसने मुहल्ले के लोगों की नीद नहीं हराम की। जरूरत भी न थी। क्योंकि उस के आम-कटहल के बडे बगीचे को तड़प कर आग और किसीके घर को छूएगी, यह सम्भावना न थी। बाहर की कतार के जिन कमरों में सुरेश तथा नौकर-चाकर सोए थे, उन तक आग के फैलने में देर थी। देर न थी सिर्फ अचला वाले कमरे में। उसने उसीके दरवाजे पर जोर का धक्का मार कर पुकारा, अचला!

अचला जैसे जग ही रही हो, इस ढंग से बोली—क्या है?

महिम बोला—दरवाजा खोलकर निकल आओ।

अचला ने थकी-सी आवाज मे कहा—क्यो? मैं तो मजे में हूँ।

महिम ने कहा--देर न करो, निकल आओ। घर में आग लग गई है।

जवाब में अचला भीत कंठ से चीख उठी, उसके बाद चुप! महिम के फिर घबराकर पुकारने का जवाब भी न दिया। महिम को इसीका डर था, क्योंकि घर में आग लगना क्या होता है, इसकी कोई धारणा ही अचला को न थी। महिम ने समझ लिया अब तक वह आंख मूँदे ही बात कर रही थी। लेकिन आंख खोलते ही जिस नज्जारे ने उसको भी कुछ देर के लिए बेबस बना दिया था, उसी बेहिसाब प्रकाश से भरे घर को देखकर अचला का होश जाता रहा। इस दुर्घटना के लिए महिम तैयार ही था। उसने किवाड़ के एक पल्ले को उठाया और सँकल को खोल कर अन्दर दाखिल हो गया। मूर्छित पडी स्त्री की गोदी में उठाकर तुरन्त बाहर निकल गया।

अब घर के और लोगों को जगा देने के लिए वह नाम ले-ले कर पुकारने लगा। सुरेश फख सुआ चेहरा लिए बाहर निकल आया। जद्दू आदि नौकर भी दौड़कर निकले। उसके बाद जोरों की एक आवाज से चेत में आकर अचला ने दोनों बांहों से पति की गर्दन पकड ली और फफककर रो पडी।

सब को लेकर महिम जब बाहर की खुली जगह में जा खड़ा हुआ, तो बड़े कमरे में आग सुलग गई। उसे याद पड़ गया, अचला के गहने-पाते आदि जो भी कीमती सामान है, सब उसीमें है, और अब थोड़ी भी देर हो तो कुछ भी हाथ नहीं आने का।

अचला होश में आ गई थी; वह जोर से पति का हाथ दबाकर बोली—नहीं, यह नहीं हो सकता। बदला चुकाने का यही क्या मौका मिला? मैं तुम्हें उसके अन्दर हर्गिज नहीं जाने दे सकती। जलने दो खाक हो जाय सब।

बिना गए काम न चलेगा अचला—कहते हुए जबरदस्ती अपना हाथ छुड़ाकर वह दौडा हुआ धुएं के उस पहाड मे जा धँसा। जद्दू चीखता हुआ पीछे-पीछे दौड़ा।

सुरेश अब तक हक्का-बक्का-सा करीब ही खड़ा था। अचानक वह आपे में आया। अचानक दौड़ने की कोशिश करते ही धोती का छोर थामकर अचला ने कठोर स्वर में कहा—आप कहां चले?

सुरेश ने खींच-तान करते हुए कहा—महिम जो गया—

अचला रूखे स्वर में बोली—वे तो अपनी चीज बचाने गए। आप कौन हैं? आप को मैं हर्गिज नहीं जाने दूंगी।

उसके स्वर में स्नेह का नाम भी न था—यह मानों अनधिकारी के उत्पात को फटकार से दबाया उसने।

दो-तीन मिनट के बाद ही महिम दोनों हाथों में दो पेटियां और जद्दू माथे पर

एक बहुत बड़ा बक्स लेकर निकला। पेटी को अचला के पैरों के पास रखकर महिम ने कहा --गहने की पेटी को छोड़ना मत—हम लोग जरा कोशिश कर देखें, अगर बाहर के कमरे से कुछ निकाल सकें। अचला के मुँह मे एक भी शब्द न निकला। उसकी मुट्ठी में तब भी सुरेश की धोती का छोर था। वैसा ही रहा। महिम ने एक नजर उधर देखा कर और जद्दू के साथ तुरन्त ओझल हो गया।

बीस

सुबह की पहली जोत मे पति के चेहरे पर नजर पड़ने ही अचला का हृदय हा-हाकार करके रो उठा। किसी भी तरह से वह अपने आंसू रोक न सकी। यह क्या हो गया। धूल,बालू, राख से सिर के बाल रूखे; सूखे-रूखे चेहरे को झुलसा कर आग की लपटों ने उसके वैसे पति को एक ही रात मे बूढा बना दिया था। चारों तरफ घूम-फिरकर बस्ती के लोग शोर कर रहे थे। कांसे-पीतल के बर्तन-बासन तो सब गए दिखाई ही दे रहे थे। खैर, बर्तन जायं, मगर शाल-दुशाले गहने-पाते ही एक बक्स मे कितने बच रहे होंगे इसी पर खासी समालोचना चल रही थी। थोडी ही दूर पर बुझते हुए अग्नि-स्तूप की तरफ सूनी निगाहों देखता हुआ महिम चुप खडा था। सुन वह सब कुछ रहा था, पर लोगों का कौतुहल मेटने जैसी मन की अवस्था नहीं थी। उस टोले के भीखू बनर्जी--जाने-माने आदमी बात की तकलीफ के कारण अब तक पहुँच नही पाये थे। अब लाठी के सहारे लोगों के साथ उन्हें आते देखकर महिम उनकी ओर बढ़ा। बनर्जी बाबू तरह-तरह से विलाप करने के बाद बोले—महिम तुम्हारे पिता को गुजरे दिन हो गए, मगर हम दोनों दो नहीं थे। एक जान दो कालिब।

महिम गर्दन हिलाकर उत्सुक आंखों ताकता रहा। पास ही घेरे की आड़ में सामान के पास अचला बैठी थी। वह भी उद्ग्रीव हो उठी—इतनी ही भूमिका के बाद बनर्जी बाबू कहने लगे—ब्रह्मा का क्रोध तो कुछ यों ही नहीं होता बेटे! हम लोगों से पूछा तक नहीं, एक इतने बड़े ब्राह्मण का लड़का होकर क्या कुकर्म कर बैठे!

महिम समझ नहीं सका। अपनी बात की विस्तार से व्याख्या करने के लिए अपने अनुचरों की ओर ताककर कहने लगे—हम सभी यही कहा करते थे कि कुछ न कुछ हो ही गा। भला और किसी पर ब्रह्मा का क्रोध क्यों नहीं उमड़ा! बेटे, ब्राह्म

जो है, ईसाई भी वही है ! साहब को कहते हैं ईसाई और बंगाली हो, तो ब्राह्म। यह हमसे—जिन्हें शास्त्र का ज्ञान है—नहीं छिप सकता।

जो वहां मौजूद थे, सबने हामी भरी। उत्साहित होकर वे बोल उठे—करने को जो चाहे करो बेटे, पहले इसका प्रायश्चित्त करके और उसे त्याग कर—

महिम ने हाथ उठाकर कहा—रुकिए। आप लोगों का मैं अनादर नहीं करना चाहता, मगर ऐसी बात न कहिए, जो कि है नहीं। मैं जिन्हें ले आया हूँ, उनके पुण्य से घर रहे तो ठीक, नहीं तो बार-बार जल जाए, मुझे यह भी कबूल है। कहकर वह दूसरी तरफ चला गया।

बनर्जी बाबू जमात के साथ कुछ देर हा किए खड़े रहे फिर लाठी ठक-ठकाते हुए घर लौट गए। मन ही मन जो कहते गए उसे जबान पर न लाना ही बेहतर।

अचला ने जब सुना। उसकी आंखों से आंसू की बड़ी-बड़ी बूँदें टपकने लगीं।

जद्दू ने आकर कहा—मां जी, बाबूजी ने कहा—आपसे पूछकर मैं पालकी-कहार बुला दूँ। बुला दूँ ?

आंचल से आंखें पोंछकर अचला ने कहा—बाबू को एक बार बुलाओ तो जद्दू।

और पालकी ?

रहने दो अभी।

महिम के नजदीक आकर खड़े होते ही उसकी आंखों में फिर आंसू आ गए। झुककर अचानक उसने उसके पैरों की धूल ली कि महिम चकित और व्यस्त हो पड़ा। शायद हो कि वह पति के हाथ पकड़कर पास बैठाती या कि और कोई बचपना कर बैठती; क्या करती यह उसके अंतर्यामी ही जानें; लेकिन सवेरा हो चुका था, चारों तरफ उत्सुक लोग। अचला ने अपने को संयत करके कहा - पालकी किस लिए ?

महिम ने कहा—नौ बजे वाली गाड़ी पकड़ना ही तो सब तरह से अच्छा रहेगा। एक बजे तक घर पहुँच कर नहा-खा सकोगी। रात भी तो तुमने नहीं खाया।

और तुम ?

मैं ? महिम ने जरा सोचकर कहा—मेरा भी कोई न कोई उपाय हो ही गा।

तो फिर मेरा भी होगा। मैं नहीं जाऊँगी।

कौन-सा ऊपाय होगा, कहो।

अचला इस सवाल का जवाब न दे सकी। एक बार तो उसकी जबान पर

आया, जंगल में पेड़ तले ! मगर वास्तव में तो यह संभव नहीं। और बस्ती में किसी के यहां घंटे भर के लिए भी पनाह लेना कितना अपमान-जनक है, उसका आभास तो अभी-अभी अच्छी तरह से वह पा चुकी है। मृणाल की बात याद नहीं आई, सो नहीं—बार-बार याद आई, पर शर्म से वह बोल नही सकी। कुछ देर चुप रहकर बोली—तुम भी मेरे साथ चलो।

महिम ने आश्चर्य से कहा—मैं साथ चलूं ? लाभ ?

अचला ने कहा —लाभ-हानि देखना अब मेरे जिम्मे रहा। तुम्हारे हितू यहां ज्यादा हैं नहीं, यह मैं खूब देख चुकी। फिर तुम्हारी सूरत रात ही भर में जैसी हो गई है—तुम नही देख पा रहे हो, मैं देख रही हूँ। मेरा गला भी काट डालो, तो भी तुम्हें यहां अकेला छोडकर मैं नहीं जाऊँगी।

महिम के मन मे उथल-पुथल होने लगी —लेकिन वह थिर ही रहा।

अचला बोली—तुम इतना सोच क्यों रहे हो ? मेरे गहने तो हैं। इनसे पश्चिम में जहां भी हो, कोई छोटा-सा मकान हम मजे में खरीद सकेंगे। जहां भी रहूँ, मुझे तुम भूखी न मारोगे। कोशिश तुम्हें करनी ही होगी और कह तो दिया, वह भार अबसे मुझ पर रहा।

जद्दू ने आकर पूछा—पालकी ले आऊँ मां जी ?

जवाब के लिए अचला उत्सुक हो पति की ओर ताकने लगी। महिम ने जवाब दिया। जद्दू को पालकी लाने का हुक्म दिया और स्त्री से कहा—मगर मैं तो अभी नही जा सकता।

सुनकर अनिर्वचनीय शांति और तृप्ति से अचला का हृदय भर गया। मन के आवेग को दबाकर उसने कहा -मानती हूँ, तुरत चल सकना तुम्हारा नहीं हो सकता मगर यह कहो कि सांझ की गाड़ी से जरूर जाओगे ? नहीं तो मैं भोजन लिए बैठी सोचती रहूँगी, और—

मगर उसका मंतव्य महिम के निश्वास में मानो डूब गया। वह उदास होकर बोली—सांझ को नहीं जा सकोगे ? तो फिर अंधेरी रात मे किसके यहां—पर कहते-कहते वह रुक गई। जिसके यहां पति के रात बिताने की संभावना थी,उसकी याद आते ही उसका चेहरा गंभीर और फीका हो गया। महिम ने शायद उसके मन की बात नहीं समझी पूछा—कलकत्ते में मुझे कहां जाने को कहती हो ?

अचला ने तुरत जवाब दिया—क्यों पिताजी के यहां ?

महिम ने सिर हिलाकर कहा—नहीं।

नहीं क्यों ? वह भी क्या तुम्हारा अपना घर नहीं ?

महिम ने वैसे ही सिर हिलाकर कहा—नहीं।

अचला ने कहा—न हो तो वहां दो ही दिन रहकर हम पश्चिम चले जाएँगे।

नहीं।

अचला जानती थी, उसे डिगाना मुमकिन नहीं। कुछ सोचकर बोली—तो चलो, यहीं से हम पश्चिम के किसी शहर को चलें। मैं खूब जानती हूँ, मैं साथ दूंगी तो हमें कहीं तकलीफ न होगी। लेकिन गहने तो बेचने पड़ेंगे, यह काम कलकत्ते के सिवा कैसे होगा ?

महिम दूसरी ओर देखता हुआ चुप हो रहा। अचला ने अकुलाकर पूछा—पश्चिम में भी तो बड़े शहर हैं, वहां भी तो बेचा जा सकता है ? मेरे बक्स में लगभग दो सौ रुपए हैं। उनसे जाना तो हो ही जायगा। चुप हो ? जल्दी बोलो न ?

महिम स्त्री की नजर की ओर न देख सका। मगर जवाब दिया—तुम्हारे जेवर मैं नहीं ले सकूंगा अचला।

कोई भारी धक्का खाकर अचला जैसे पीछे हट गई। क्यों नहीं ले सकोगे, जान सकती हूँ क्या ?

महिम ने इसका कुछ जवाब न दिया। कुछ देर तक दोनों निस्तब्ध हो रहे। अचानक अचला ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी—संसार में पति क्या अकेले एक तुम ही हो ? आड़े वक्त में आखिर वे कैसे लेते है ? स्त्री का गहना रहता किस लिए है ? इतने कष्ट से आखिर तुम इन्हें बचाने ही क्यों गए। यह कहकर टिन के छोटे-से बक्स को हाथ से ठेलकर कहा—मुसीबत की घडी में ये काम ही न आए तो यह बोझा ढोते फिरने से क्या लाभ ? आग तो अभी जल ही रही है—मैं इसे उसी में डालकर निश्चिंत होकर चली जाती हूँ, तुम्हारे जी में जो हो, वही करना। उसने आंचल से आंखें दबाली।

दो-एक मिनट चुप रहकर महिम ने धीरे-धीरे कहा—मैंने सब सोच देखा अचला। मगर तुम्हें तो मालूम है, मैं कोई काम झोंक पर नहीं करता। और कोई करे, यह भी नहीं चाहता। तुम जो देना चाह रही हो, उसे अपना समझ कर मैं ले सकता तो आज मेरे सुख की सीमा नहीं रहती। लेकिन किसी भी प्रकार मे ले नही सकता। मेरी तकलीफ देखकर और भी बहुतेरे लोगों ने बहुत-बहुत देना चाहा था, लेकिन वह भी जैसी दया थी, यह भी वैसी ही दया है। लेकिन हममें न तुम लोगों का, न अपना, किसी का भला न होगा, ऐसा ही मेरा विश्वास है।

अचला और न सह सकी। रोना भूलकर शायद प्रतिवाद करने के लिए ही दोनों जलती आंखें उपर उठाकर स्वामी की नजर का अनुसरण करते ही देखा, थोड़ी

दूर पर उन लोगों का जो पोखरा है, उसी के घाट के पास वेदी, बंधे नीमगाछ के नीचे हाथ पर सिर टिकाए सुरेश आसमान की ओर पड़ा-पड़ा ताक रहा है। अचला के मुँह की बात मुंह में ही रह गई और उसका उठा हुआ सर आप ही आप झुक गया।

लेकिन महिम बहुत कुछ अनमना-सा अपने आप ही कहने लगा—यह नहीं कि मुझे कभी चैन नहीं मिलेगी, बल्कि बार-बार तुम्हें वंचित करूं, हममें यही सम्बन्ध कभी नहीं हुआ। थोड़ी देर रुककर बोला—अचला, अपने को उजाड़कर दान करने का दुःख बहुत बड़ा है। सनक में कभी पल भर में वह किया तो जा सकता है पर उसका नतीजा भोगना पड़ता है जिन्दगी भर! मैं जानता हूँ, एक भूल के चलते तुम लोगों के अफसोस का हद्दोहिसाब नहीं। एक भूल और बन जाय, तो न तो कभी तुम खुद को माफ कर सकोगी, न मुझ को। इस नुकसान को सहने का तुम्हारे पास कोई संबल नहीं, इस बात का पता मुझको आज चाहे न चले, दो दिन बाद चलेगा। इसीलिए तुमसे मैं कुछ भी नहीं ले सकता।

ये बातें अचला के कलेजे में चुभीं। पति की नजरों मे वह कितनी पराई है, इस बात का अनुभव आज जितना किया, और कभी नहीं किया था तथा साथ ही साथ मृणाल की याद आते ही वह गुस्से से भर उठी। वह भी सख्त होकर बोल उठी—इतनी देर से तुम मुझे जो समझा रहे हो, वह मैंने समझा। शायद हो कि तुम्हारा कहना सही है, या तुम्हारा मुँह देखकर दया से ही मैंने अपना सर्वस देना चाहा था। शायद दो दिन के बाद वास्तव में ही मुझे इसके लिए पछताना पड़ता—सब सही है, लेकिन देखो, दूसरों के मन की भावना को समझ लेने की जितनी भी शक्ति तुम्हें हो, लेकिन तुम्हें समझा देने वाली चीज भी है। स्त्री की चीजों को जबर्दस्ती लेने की बात तो जाने दो, हाथ फैलाकर ही लेने का तुम्हें कौन-सा सहारा है? तुम से अब तर्क नहीं करूंगी। आज से मेरी यही सांत्वना रही कि इतनी-सी विवेक-बुद्धि तुम में है। लेकिन मैं जहां कहीं भी रहूँ, कभी-न-कभी सारा कुछ तुम्हें समझना ही पड़ेगा। और हथेलियों से मुंह छिपाकर उसने अपनी रुलाई रोकी।

नौ बजे की गाड़ी से सुरेश भी घर लौट रहा था। रात की अगलग्गी ने उसे कैसा तो कर दिया था। उसे मानो किसी से बात करने की शक्ति ही न थी। गाड़ी को कुछ देर थी। महिम को स्टेशन के एक किनारे ले जाकर सुरेश ने कहा—महिम, इस अगलग्गी के लिए तुम्हें मुझ पर तो सन्देह नहीं है?

उसके दोनों हाथों को कसकर दबाकर महिम ने कहा—छिः!

सुरेश की आंखें डबडबा गईं। रुँधे स्वर से बोला—कल से इसी के लिए मुझे चैन नहीं है महिम।

महिम ने चुपचाप उसके हाथ को सिर्फ दबा दिया। उसके बाद बोला—एक सच्चा गुनाह बहुतेरे झूठे गुनाहों को ढो लाता है सुरेश। लेकिन बेहद दुःख पाकर तुम और चाहे जो करो, जिसे 'क्राहम' कहते है, वह नहीं कर सकते, ऐसा आज भी मेरा विश्वास है। जरा रुककर बोला—तुम भगवान को नहीं मानते सुरेश, लेकिन जो मानते हैं, वे सदा यही प्रार्थना करते हैं कि भगवान जिसमें उनके इस विश्वास को न तोड़ दें।

गाड़ी आ लगी। औरतों के डब्बे में अचला और उसकी नौकरानी को चढ़ाकर सुरेश के पास आते ही उसने खिड़की से हाथ निकालकर महिम का हाथ पकड़ कर कहा—तुमने मेरी कल की क्षति पूर्ति करने की प्रार्थना न मानी, पर ईश्वर जिसमें तुम्हारी प्रार्थना को मंजूर करें भाई। मुझको वे और छोटा न करें—कहकर उसने हाथ छुड़ाकर मुँह फेर लिया।

उधर खिड़की पर मुँह रखकर अचला अब तक जद्दू से चुप-चुप क्या तो कह रही थी; महिम के करीब आते ही उसने पूछा—मृणाल दीदी के पति क्या आज गुजर गए?

महिम ने सिर हिलाकर कहा—हां, सुना, थोड़ी देर पहले चल बसे।

अचला ने पूछा—दस-बारह दिन से न्यूमोनिया के शिकार थे। मुझे यह बताना भी तुमने आवश्यक नहीं समझा?

महिम ने इसका जवाब देना चाहा—पर कैसे क्रम बिठाकर कहे, यही सोचते-सोचते सीटी बजाकर गाडी खुल गई।

इक्कीस

केदार बाबू की सेहत अभी भी पहले जैसी नहीं हो पाई थी। खा-पीकर बरामदे के एक ईजी-चेयर पर पड़े-पड़े अखबार पढ़ते हुए शायद जरा आंखें लग गई थीं। दरवाजे पर खटका और गाड़ी की रूखी आवाज से उन्होंने आंख खोलकर देखा, सुरेश और उसके साथ-ही-साथ उनकी बेटी और दाई गाड़ी से उतरी। नींद उनकी काफूर हो गई। जाने कैसी एक शंका से उन्होंने जोर से कहा—अचला? तुम कहां से सुरेश? मामला क्या है? मैं तो कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ।

अचला ने आकर पिता के चरणों की धूल ली। सुरेश ने नमस्ते करके कहा—सुरेश का तार नहीं मिला?

केदार बाबू ने घबराकर कहा—कहाँ, नहीं तो।

एक कुर्सी खींचकर बैठते हुए सुरेश बोला—तो या तो वह तार लगाना भूल गया या अभी पहुँचा नहीं है।

केदार बाबू बोले—भाड़ में जाय तार, माजरा क्या है, यह बताओ न। इन्हें तुम ले कहां से आए ?

सुरेश बोला—कल रात महिम का घर जल गया।

घर जल गया ? सर्वनाश ! कहते क्या हो—घर जल गया ? कैसे जला ? महिम कहां है ? तुम्हें ये कहां मिले ? एक सांस में इतने सवाल पूछकर केदार बाबू धप्प से अपनी आराम-कुर्सी पर बैठ गए।

सुरेश ने कहा—मैं इन्हें वहीं से लेकर आ रहा हूं। मैं वहीं था न।

केदार बाबू का मुखड़ा बड़ा अप्रसन्न और गम्भीर हो उठा। बोले—तुम वहीं थे ? कब गए वहां, मुझे तो नहीं मालूम। मगर वह कहां है ?

सुरेश बोला—महिम तो आ नहीं सकता, इसीलिए—

उनका गम्भीर मुखड़ा स्याह पड़ गया। सिर हिलाकर बोले—नहीं-नहीं, यह सब अच्छी बात नहीं। बड़ी बुरी बात। घोर अन्याय। यह मैं हर्गिज—, कहते-कहते नजर उठाकर उन्होंने बेटी की ओर देखा।

अचला अब तक एक कुर्सी का हाथ थामे खड़ी थी। पिता का यह सन्देह उस के हृदय में गड़ा। उसके यों अचानक आ जाने के हेतु पर वे जरा भी यकीन नहीं कर सके, यह साफ समझकर लज्जा और घृणा से उसके चेहरे पर लहू का चिन्ह तक न रहा।

केदार बाबू से यहां भूल हो गई। बेटी की सूरत से उनका सन्देह और मजबूत हो गया। आराम-कुर्सी पर लेटकर अखबार को चेहरे पर रखते हुए एक निश्वास छोड़ बोल उठे—तुम लोग जो ठीक समझो, करो। मैं कल ही घर छोड़कर और कहीं चला जाऊँगा।

सुरेश ने अचरज भरी नाराजगी से कहा—आप यह सब कह क्या रहे हैं केदार बाबू ? आप घर छोड़कर ही क्यों जाएँगे और हुआ ही क्या है ? कहकर वह कभी अचला और कभी उसके पिता की ओर ताकने लगा। लेकिन उसे किसी का मुंह दिखाई नहीं पड़ा।

केदार बाबू का कोई जवाब न पाकर सुरेश उठ खड़ा हुआ। बोला—खैर, महिम ने मुझे जो भार सौंपा था, हो गया। अब आप लोग जो अच्छा समझें, करें। मैं नहा-खा नहीं सका हूं, घर जा रहा हूं। कहकर वह द्वार की तरफ दो-एक कदम

बढ़ा ही था कि केदार बाबू उठकर थकी-सी आवाज में बोल पड़े---आह, जा क्यों रहे हो ? बात क्या है, यह तो बताओ। आग लगी कैसे ?

सुरेश ने जैसे रूठे हुए-से कहा—सो नहीं जानता।

तुम वहां गए कब ?

पांच-छः दिन पहले। मैंने अभी भोजन नहीं किया—अब देर नहीं कर सकता। कहकर फिर जाने का उपक्रम करते ही केदार बाबू बोल उठे—अहा-हा, नहाना-खाना तो देख रहा हूं. किसी का नहीं हुआ है—मगर जंगल में तो नहीं आ निकले; यह भी घर ही है, यहां भी नौकर-चाकर हैं। अचला, बैरे को आवाज दो न जरा, खड़ी क्या हो ? बैठो-बैठो सुरेश, माजरा क्या है, खोलकर ही बताओ।

सुरेश पलटकर बैठ गया। जरा चुप रहा, फिर बोला--रात सो रहा था। महिम की चीख-पुकार से निकला। देखता हूँ कि सब धू-धू जल रहा है। फूस की छौनी, बुझाने का उपाय न था। वह बेकार कोशिश किसी ने की भी नहीं—सब राख हो गया !

केदार बाबू उछलकर बोल उठे—ऐं, सब जल गया। कुछ भी निकाला न जा सका ? अचला के गहने ?

वे बच गए !

गनीमत। कहकर एक लम्बा निश्वास छोडकर वे बैठ गए। कुछ देर चुप रहकर बोले—फिर भी, आग लगी कैसे ?

सुरेश ने कहा—कहा तो आपसे, इस बात का पता अभी नही चला है। लेकिन इतना मैं देख आया कि गांव में उसका खास कोई हितू नहीं है।

नहीं है ?

नहीं।

केदार बाबू और कुछ नहीं बोले। बड़ी देर तक चुप बैठे रहे। आखिर एक गहरा निश्वास छोड़ते हुए उठकर बोले—जाओ, नहा लो सुरेश, अब देर न करो। देखूं चलकर, क्या कुछ बन-बना रहा है—और उसे साथ लेकर कमरे से बाहर चले गए।

खान-पान के बाद भी उन्हींने सुरेश को जाने नहीं दिया। एक आराम-कुर्सी पर वह अर्धनिदाया पड़ा था। अचला वही जो नहाकर अपने कमरे में दाखिल हो दरवाजे को बन्द किए रही, सो उसका पता नहीं। चैन न थी सिर्फ केदार बाबू को। अब तार आने न आने का कोई मतलब न था, लेकिन उसी के लिए बेताबी से इधर-उधर करते हुए—शाम के समय सोना ठीक नहीं है—कहते हुए उन्होंने बेटी को बुलवाया और बोले—तुम लोगों ने तो बताया, उसने तार भेजा है, तार भेजा है.

कहां, कुछ पता तो नही उसका। तुम लोग ट्रेन से चलकर आ पहुँचे और तार की खबर अभी तक नहीं आ पहुँची। अच्छा ठहरो, देखता हूँ --बेटी के उत्तर का इन्तजार बिना किए ही वे चप्पल फटफटाते हुए तेजी से नीचे उतर गये, और थोड़ी ही देर में नीचे से उनकी तेज आवाज सुनाइ देने लगी। अचला की दाई से वह तरह-तरह का जिरह करने लगे और वह बेचारी अचरज मे बार-बार प्रतिवाद करने लगी--जी; अपनी आंखों देख आई, आग लगी, घर-द्वार राख हो गया और आप क्या तो कह रहे हैं, नहीं जला है! सोच देखें, आग ही नहीं लगी तो घर-दरवाजा जलकर राख कैसे हो गया!

सुरेश सब सुन रहा था। नजर उठाकर उसने देखा, चौखट पकड़े खड़ी-खड़ी उड़े हुए चेहरे से अचला एक-एक बात को पी रही है। सूखे उपहास के ढंग से कहा—तुम्हारे बाबूजी को हो क्या गया; बना सकती हो?

अचला ने चौंककर देखा। कहा—नहीं।

सुरेश बोला—मैं बेखटके कह सकता हूँ, उन्हें यकीन नहीं आया। उनका ख्याल है, आग लगने का किस्सा हमने गढ़ लिया है। जरा देर थमकर बोला—असली बात का पता आखिर एक न एक दिन चल ही जायगा, लेकिन उनका संदेह कुछ ऐसा है कि मेरा यहां आना असंभव हो उठा।

अचला ने उदास होकर पूछा--आप क्या अब नहीं आएंगे?

खडे होकर सुरेश ने कहा—मुमकिन नहीं लगता है। आखिर मुझे भी तो कुछ आत्म-सम्मान है? किसी आदमी से मेरा बैग मेरे यहां भिजवा देना।

अचला ने सिर हिलाकर कहा—अच्छा। लेकिन उसके यहां आने न आने के बारे में एक शब्द न बोली।

कल सवेरे ही भिजवा देना। बहुत सी जरूरी चीजें हैं उसमें --और केदार बाबू की राह देखे बिना ही चला गया।

लौटने पर केदार बाबू कुछ चकित जरूर हुए, लेकिन मन में नाखुश हुए है, ऐसा न लगा।

रात काफी देर तक बिस्तर पर करवट बदलते रहने के बाद अचला उठ बैठी। जी में आया, बरामदे पर टहलती हुई वह बाहर के लोगों को सड़क पर आते-जाते देखकर थोड़ी अनमनी हो जाय।

कमरे के उस ओर वाले दरवाजे को खोलकर वह बरामदे पर पहुँची। देखा बैठके की रोशनी अभी जल ही रही थी। पहले यह जी में आया कि नौकर शायद गैस बन्द करना भूल गए; लेकिन कुछ ही दूर बढ़ने पर पिता की आवाज कानों में

पड़ने से उसके आश्चर्य की सीमा न रही। वे सदा दस बजते न बजते सो जाते मगर आज साढ़े दस बज गए। तुरत दाई की आवाज सुनाई पड़ी। वह कह रही थी—पति चल बसे, मृणाल दीदी अब पति का घर संभालेगी, मुझे तो ऐसा नहीं लगता बाबू। मेहमान से दादा-पोती का कैसा जो रिश्ता है, वही जानें।

केदार बाबू, हूँ, करके रह गए।

अचला समझ गई, इसके पहले काफी बात हो चुकी है। मृणाल के बारे में, महिम के बारे में, उसके बारे में—बाकी कुछ नहीं छूटा है। लेकिन कहीं अपने बारे में अपने ही कानों निहायत कटु बातें सुननी पड़ें, इस डर से वह जैसे चुपचाप आई थी, वैसे ही चुपचाप चल देना चाहने लगी; लेकिन जानें किस बात ने तो लोहे की जंजीरों से उसके पांवों को बांध दिया।

कुछ देर चुप रहकर केदार बाबू ने पूछा—गर्ज कि दोनों में पटी नहीं, यह कहो।

दाई बोली—रत्ती भर नहीं, तिल भर नहीं बाबू। एक दिन भी नहीं। इस दाई को अचला आज तक नादान ही समझती थी—आज पता चला, अक्ल उसे किसीसे भी कम नहीं।

केदार बाबू मिनट भर चुप रहकर फिर बोले—तो कल रात किसी को खाना नहीं नसीब हुआ, क्यों? सुरेश के जाने के बाद से लगभग लड़ते-झगड़ते ही बीता?

दाई का जवाब सुना न जा सका, लेकिन पिता की बात से ही समझ में आ गया कि गर्दन हिलाकर उसने क्या राय जाहिर की। क्योंकि दूसरे ही क्षण केदार बाबू एक गहरा निश्वास छोड़ कर बोले—मैं पहले ही जानता था कि एक दिन यह नौबत आएगी। आजकल की लड़के-लड़कियां मां-बाप की बातों की तो परवा करते नहीं। नहीं तो, मैं तो करीब-करीब सब ठीक पर ले आया था। आज उसे चिन्ता किस बात की थी! कहकर उन्होंने फिर एक निश्वास फेंका, वह भी साफ सुनाई पड़ा।

दाई ने पूरी हमदर्दी के साथ छूटते ही कहा—आप ही कहें बाबू, नहीं तो आज चिन्ता किस बात की थी! कैसे तो एक गंवई-गांव में माटी का घर! वह भी न रहा! और मेहमान भी तो—कहकर उसने भी बात को अधूरा ही रखकर एक लम्बे निश्वास से काफी दूर तक ठेल दिया।

नसीब! कहकर केदार बाबू कुछ देर चुप रहे, फिर खड़े होकर बोले—खैर, तू जा। उसे रुखसत करके बत्ती गुल करने के लिए वे बैरे को पुकारने लगे।

अचला पांव दबाए धीरे-धीरे अपने कमरे में जाकर पड़ रही। पिता की

उदारता, उनके सज्जनता बोध की धारणा कभी भी उसके मन में ऊँची नहीं रही थी; लेकिन वह इस हद तक नीचे हैं कि वे घर की दाई से भी अकेले में ऐसी चर्चा कर सकते हैं, अचला यह नहीं सोच सकती थी। आज उसका मन छोटा होकर जमीन पर लोट रहा था पर उसका पति, उसका पिता, उसकी दासी, उसका मित्र—सभी जब उसकी तरफ धूल में लुटे पड़े हैं, तो किसी का सहारा लेकर जो वह कभी इस गिरावट से ऊपर भी उठ सकेगी, इस भरोसे की वह कल्पना तक नहीं कर सकी।

बाईस

दुनिया के और-और लोगों की तरह केदार बाबू दोष-गुण वाले ही आदमी थे। लड़की के ब्याह के लिए पढ़े-लिखे दामाद, संपन्न घर की ही उन्होंने कामना की थी। महिम लड़का भला है, एम० ए० पास है, गांव में रहने-खाने का ठौर-ठिकाना है। लिहाजा उसके हाथों बेटी को सौंपना उन्होंने सौभाग्य ही समझा था। लेकिन एकाएक एक दिन उसका धनी दोस्त सुरेश अपनी गाड़ी पर आकर उलटा बताकर जब खुद ही ब्याह का उम्मीदबार बन बैठा, तो दोनों की माली हालत का लेखा लगाकर महिम को जवाब देकर सुरेश को अपनाने में केदार बाबू को जरा भी एतराज न हुआ। प्यार के बारीक तत्वों से उन्हें कोई वास्ता न था; उनकी धारणा थी कि लड़कियां पति के रूप में उसी को अच्छा समझती हैं, जिसके पास गाड़ी-पालकी चढ़कर, गहना-कपड़ा पहनकर आराम से रह सकें। लिहाजा बेटी को खुशी बनाना ही अगर पिता का फर्ज है, तो ऐसे एक अपने आप आए हुए मौके को हाथ से निकलने देना ठीक नहीं; यह तै कर लेने में उन्हें खास कुछ मगजपच्ची नहीं करनी पड़ी।

यहां तक कि विवाह के पहले ही दामाद से पांच हजार रुपया कर्ज लेना भी उन्हें अनुचित न लगा। उसे चुकाने की चिंता ने भी उन्हें परेशान नहीं किया, इसलिए कि वह घर तो उसी का रहेगा।

मगर इस दईमारी लड़की ने सब कुछ गोबर कर दिया, हर्गिज राजी न हुई। लाचार अन्त तक उन्हें महिम के ही हाथों बेटी को सौंपना पड़ा जरूर, लेकिन इस दुर्घटना से उनके क्षोभ की सीमा न रही; इसके सिवाय जो बात उन्हें अपने आप कबूल करनी पड़ी, वह यह कि रुपया अब लौटा देना चाहिए। लेकिन चूंकि कर्ज की लिखा-पढ़ी न थी और वसूल करने का उपाय भी उतना साफ-सहज न था, इसलिए

उस चिंता को भी वे मन में उतना महत्व नहीं दे सके। सो गर्चे कि यह सवाल मन में उठा लेकिन जवाब वैसा ही धुंधला रहा।

अचला ससुराल चली गई। इसके बाद सुरेश का आना-जाना, घनिष्टता केदार बाबू को पसन्द न थी। घर में नहीं है, यह कहलाकर ज्यादातर भेंट भी नहीं करते थे। लेकिन उसे चाहते थे, इसलिए बेटी के दुर्व्यवहार से वे मन ही मन लज्जित हो दुःखी ही रहते थे।

ऐसे ही दिन बीत रहे थे। अचानक एक दिन वे खासे बीमार पड़ गए। सुरेश ने आकर इलाज किया ; बेटे से भी ज्यादा सेवा-जतन करके उन्हें चंगा किया। कर्ज की बात उन्होंने खुद उठाई तो यह कहकर टाल गया कि वह मैंने दोस्त को दहेज में दिया। उसी दिन से इस युवक के प्रति उनका स्नेह प्रतिदिन गाढ़ा और अकृत्रिम हो उठने लगा। यहां तक कि कभी-कभी बेटी के लिए उनके मन में अभिशाप आता — हतभागिन लड़की ऐसे रतन को न पहचान सकी, उपेक्षा से छोड़कर चली गई ; इसका फल जिसमें कभी उसे मिले।

इस मामले में महिम उन्हें फूटी आंखों नहीं सुहाता था, यह सही है, लेकिन उनकी बेटी नारी-धर्म को गँवाकर पति को त्यागने की कलंक-कालिमा सारे बदन में पोतकर उन्हीं के यहां आएगी, यह उन्होंने स्वप्न में भी न सोचा था। और इस महा पाप में जिस आदमी ने उसे मदद दी है, वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, पिता के मन का भाव क्या होगा, यह समझना भी कठिन नहीं।

दूसरी ओर पिता के लिए बेटी का मनोभाव चाहे जो रहा हो, जिस दिन वे सिर्फ रुपए के नाते महिम के बदले सुरेश के हाथों उसे सौंपने को तैयार हो गए थे और कर्ज चुकाने का कोई उपाय न रहने के बावजूद उससे कर्ज लिया था, उसी दिन से आदमी के रूप में केदार बाबू अचला की निगाहों में काफी नीचे उतर गए थे। वह अश्रद्धा कल रात सौ गुनी ज्यादा बढ़ गई, जब उसने अपने कानों सुना कि अपनी बेटी के चरित्र के बारे में छिपकर नौकरानी की राय लेने में भी उन्हें हिचक नहीं हुई।

लेकिन इसके साथ-साथ अचला आज अपने को भी देख पाई। उसके रोंगटे खड़े होकर उसकी नजर में आया कि जभी उसने अपने मुंह से पति को यह कहा कि वह उसे प्यार नहीं करती, तभी नारी की सर्वोत्तम मर्यादा भी उसके लिए संसार से समाप्त हो गई। इसीलिए आज वह पति के आगे छोटी हो गई है, पिता के आगे छोटी है, दाई के आगे छोटी है, यहां तक कि सुरेश जैसे आदमी की नजर में भी इतनी छोटी है कि उसे लालसा-संगिनी बनाने की कल्पना भी उसकी दुराशा नहीं। लेकिन वास्तव क्या यही है ? इतनी छोटी है वह ? अभी-अभी उस दिन वह जिसके

प्यार को सब पर विजयी बनाने के लिए सभी विरोध, सभी प्रलोभन को पार कर गई थी, इसी बीच क्या यह बात सब कोई भूल गए ? उसे सुरेश के साथ भेज देने के बावजूद पति ने उसकी कोई खोज नहीं ली ? उदासीनता का गहरा अपमान और लांछना रात भर मानो उसे आग में झुलसाती रही ।

सुबह देर मे नीद टूटी । सूरज की तरुण किरणें झरोखे मे आकर कमरे के फर्श पर पड़ रही थीं ।

वह बिस्तर पर उठ बैठी और सिरहाने की खिड़की खोलकर चुपचाप रास्ते की तरफ देखती रही ।

कलकत्ते की सड़क पर लोगों का ताता टूटने वाला नहीं । कोई काम से निकला था, कोई घर लौट रहा था और कोई सुबह की धूप-हवा में यों ही घूम रहा था— यह देखते हुए अचानक याद आया, ऐसे समय अपने घर मे तो कोई नहीं बैठा है । मैंने ही ऐसा कौन-सा गुनाह किया है कि मुंह नहीं दिखा सकती —खुद को कैद करके रक्खा है ! गुनाह कुछ किया भी हो, तो उनसे किया है । उसकी सजा वही देंगे; किंतु नाहक ही जो कोई दंड देने आए, उसे ही सिर झुकाकर क्यों उठा लूं ?

अचला तुरत उठ बैठी और सारी ग्लानि को मानो बलपूर्वक झाड़-फेंककर हाथ-मुंह धोया, कपड़े बदले और बैठके में गई ।

केदार बाबू आराम कुर्सी पर बैठे अखबार पढ़ रहे थे । उन्होंने एक बार नजर उठाकर देखा और फिर अखबार पढ़ने लगे ।

थोड़ी ही देर के बाद बैरा केतली मे चाय का पानी और और-और सामान रख गया; केदार बाबू उठकर आए । अपने लिए एक प्याला चाय तैयार करके ले गए और अखबार लेकर आराम-कुर्सी पर बैठ गए ।

अचला नजर झुकाए पिता का सारा आचरण देखती रही; परन्तु खुद जाकर चाय तैयार कर देने या कुछ पूछने की उसे हिम्मत भी न हुई, इच्छा भी नहीं ।

लेकिन घर मे मूरत-सा इस तरह मुँह सिए रखना भी मुश्किल । यहां तक कि इस तरह ज्यादा दिनों तक एक घर मे उनके साथ रहना संभव और उचित है या नहीं और न हो तो वह क्या करेगी, इस पेचीदे मसले पर कहीं अकेले बैठकर जरा सोचने के लिए वह उठना ही चाहती थी कि असह्य विस्मय से उसने देखा, सुरेश आ रहा है ।

उसने हाथ उठाकर केदार बाबू को नमस्ते किया । केदार बाबू ने सिर उठाकर जरा गर्दन हिलाई और फिर अखबार पढ़ने लगे ।

सुरेश कुर्सी खींचकर बैठ गया । चाय का सामान ले जाने के लिए जैसे ही

बैरा कमरे में आया, वह बोला—मेरा बैग कहां है, उसे मेरी गाड़ी पर रख आओ तो। हजामत बनाने तक का सामान उसी में है। देर मत करो, मुझे तुरत जाना है।

जी—कहकर उसके चले जाने के बाद सारे कमरे में फिर सन्नाटा छा गया। थोड़ी देर में हठात् सुरेश पूछ बैठा—महिम की कोई खबर मिली ?

केदार बाबू बोले—नहीं।

सुरेश बोला—ताज्जुब है !

उसके बाद फिर सब चुपचाप। बैरे ने आकर बताया—बैग गाड़ी पर रख दिया है।

तो मैं जा रहा हूं। महिम की चिट्ठी आए तो मुझे जरा खबर भेज देंगे। सुरेश उठने लगा। एकाएक हाथ का अखबार नीचे फेंककर केदार बाबू बोल उठे—तुम जरा ठहर जाओ सुरेश, मैं अभी आया। और उसकी ओर ताका तक नहीं, चप्पल चट-चटाते हुए जरा तेजी से ही चले गए।

अब तक अचला नजर झुकाए ही थी। केदार बाबू के चले जाने पर सुरेश ने जैसे ही नजर उठाकर देखा, अचला की डरी, दुःखी और मलिन आंखें दिखाई दीं। पूछा—बात क्या है ?

मुंह नीचे किए अचला ने सिर्फ गर्दन हिलाई।

सुरेश ने कहा—मैं कितना दुःखी हुआ हूं, कितना लज्जित—यह कह नहीं सकता।

अचला वैसी ही चुप बैठी रही।

वह फिर बोला—तुम्हारे पिताजी मुझे इतना नीच, ऐसा मक्कार सोच सकते हैं, यह मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था।

इस शिकायत का भी अचला ने कोई जवाब नहीं दिया। वैसी ही स्थिर बैठी रही।

सुरेश ने कहा—मुझे तो ऐसा लग रहा है कि इसी वक्त महिम के पास जाकर उसे—बात पूरी न कर सका। केदार बाबू लौट आए।

उनके हाथ में छोटा-सा कागज। सुरेश के सामने मेज पर उस कागज को रखते हुए बोले—तुम्हारे उस रुपए की रसीद आज-कल करते नहीं दी जा सकी थी। पांच हजार का हैंडनोट ही लिख दिया, सूद शायद न दे सकूं। लेकिन मकान तो रहा ही, इससे मूल भर तो वसूल हो ही जायगा।

सुरेश कुछ देर हक्का-बक्का-सा खड़ा रहा, बोला—मैंने तो आपसे हैंडनोट मांगा नहीं केदार बाबू !

केदार बाबू बोले—तुमने मांगा बेशक नहीं, मगर मुझे तो देना चाहिए। अब

तक नहीं दे पाया, यही बहुत बड़ा अन्याय हो गया है सुरेश, इसे जेब में रख लो ! थका आम हो रहा हूँ, अचानक कहीं चल बसूं तो तुम्हारे रुपए का गोल-माल हो सकता है।

सुरेश ने आवेग के साथ जवाब दिया—महिम और चाहे जो करे केदार बाबू, रुपए का कभी गोल-माल नहीं कर सकता। तिस पर आप खुद भी मानते हैं कि मुझे ये रुपए नहीं चाहिए—यह मैंने मित्र को दहेज दिया है।

केदार बाबू ने कहा—तो वह अपने मित्र को ही देना—मुझे नहीं। जो मैंने लिया है, वह ऋण मेरा ही है।

सुरेश बोला—खैर दोस्त को ही दूंगा—कहकर सुरेश ने कागज मेज पर से उठाया और दो कदम पीछे हटकर अचला के पास जाकर खड़ा हुआ कि केदार बाबू आग की नाईं भभककर चीख उठे—खबरदार सुरेश, कल से मैंने बहुत अपमान चुपचाप बर्दास्त किया। लेकिन मेरी आंखों के सामने मेरी बेटी को तुम रुपए दे जाओ यह मैं हर्गिज बर्दास्त न करूंगा। कहे देता हूँ ! कहकर कांपते-कांपते आराम कुर्सी पर बैठ गए।

सुरेश पहले तो चौंककर केदार बाबू की तरफ एकटक ताकता रह गया। उनके उस तरह से बैठ जाने पर उसने उदास होकर अचला की ओर मुड़कर देखा, अचला पल भर में मानो पत्थर हो गई है। बड़ी कोशिश करके सुरेश ने क्या तो कहना चाहा; लेकिन उसके सूखे गले से एक बेमानी आवाज के सिवा और कुछ नहीं निकला। फिर मुड़कर देखा, केदार बाबू दोनों हथेलियों से मुँह छिपाए पड़े थे। उसने और कुछ कहने की कोशिश भी न की, कुछ क्षण काठ का मारा-सा खड़ा रहकर आखिर धीरे-धीरे चला गया।

वह चला गया, लेकिन बाप-बेटी दोनों ठीक वैसे ही बैठे रहे। और दीवाल घड़ी की टिक्-टिक् के सिवा कमरे में एक बेरहम चुप्पी छा रही थी।

सुरेश के रबर टायर वाली गाड़ी फाटक पार हो गई, यह घोड़े की टापों से ही समझ में आ गया। दूसरे ही क्षण बैरे ने अन्दर आकर आवाज दी—बाबू !

केदार बाबू ने नजर उठाकर देखा, उसके हाथ में कागज का एक टुकड़ा था। और कुछ कहना न पड़ा। वे उछल पड़े और अपना दायां हाथ बढ़ाकर चीत्कार कर उठे। ले जा हरामजादा, ले जा सामने से ! निकल जा कहता हूँ—बैरा मालिक का रवैया देखकर अवाक् रह गया और भाग खड़ा हुआ। उसके जाते ही जलती आंखों बेटी को देखते हुए गले की आवाज पर एक पर्दा और चढ़ाकर वे बोले—हरामजादा, कमीना, फिर कभी किसी बहाने मेरे यहां आया कि मैं उसे पुलिस के हवाले करूंगा—यह मैं तुम से कह देता हूँ अचला !

अपना नाम सुनकर अपना निहायत पीला पड़ा चेहरा उठाकर अचला चुपचाप अपनी पीड़ित आंखों पिता की ओर देखती रही।

वे बोल—रुपये बखेर कर बाप की आंखों को अंधा नहीं किया जा सकता। यह बात जिसमें वह याद रक्खे।

बेटी इस पर भी चुप रही, लेकिन उसकी मलिन आंखें धीरे-धीरे तेज हो उठने लगीं। यह पिता की नजर में न आया। उन्होंने तर्जनी तानकर कहना शुरू किया—हैंडनोट फाड़कर बाप को घूस नहीं दिया जा सकता, यह बात उसे समझा कर तब छोड़ूंगा मैं। मैं यह घर बेचकर कर्ज अदा करके जी चाहे जहां चला जाऊंगा। मुझे कोई रोक नहीं सकता, कान खोलकर सुन लो।

अब अचला ने बात कही। शुरू में रुकावट पड़ी पर बाद में स्थिर अविचलित स्वर में कहा—कर्ज बिना दिए घर मेरे लिए छोड़ जायेंगे, मैं क्या यही आशा रखती हूँ ? तुम न करते तो यह काम तो मुझे ही करना होता।

केदार बाबू और भी गर्म होकर बोले—तुम लोग जो कर आये हो, मालूम है, उसीके मारे तो मैं भले समाज में मुंह नहीं दिखाने लायक रहा ?

अचला ने वैसे ही शांत और दृढ़ स्वर में कहा—नहीं, नहीं मालूम है। मैंने ऐसा कुछ अगर किया होता, जिससे समाज मे तुम मुंह नहीं दिखा पाते, तो उससे पहले तो मेरा ही मुंह तुम लोग कोई नहीं देख पाते। वहां और जिस चीज का अभाव चाहे हो, डूब मरने लायक पानी का अभाव नहीं। कहते-कहते रुलाई से उसका गला रुंध आया। बोली—कल से तुम मेरा जो-जो अपमान कर रहे हो, चूंकि झूठ है इसलिए सह पा रही हूँ, नही तो—

यहां पहुँचकर उसका गला बिल्कुल बन्द हो गया। मुंह पर आंचल रखकर किसी तरह रुलाई रोकती वह कमरे से बाहर भाग गई।

केदार बाबू एक बारगी हक्का-बक्का हो गए। रंज होने, आघात करने, शोक करने यानी कन्या के दूषित आचरण से हर तरह का गहरा दुःख उठाने की स्थिति महज उन्ही की हुई है, यही उनकी धारणा थी; लेकिन दूसरा पक्ष भी अचानक उन्हीं के आचरण को नितांत निन्दनीय कहते हुए मुंह पर भिड़ककर तीखे अभिमान से रोकर चल दे सकता है इसकी सम्भावना उन्हें ख्वाब में भी न सूझी थी। सो कुछ क्षण हक्के-बक्के से खड़े हो वे धीरे-धीरे बैठ गए। और सर पर हाथ फेरते हुए बार-बार कहने लगे —यह लो, यह फिर दूसरा प्रसाद !

इसके बाद बाप-बेटी के आठ-दस दिन कैसे निकले, यह सिर्फ अन्तर्यामी ने ही देखा। अचला अपने कमरे से निकली ही नहीं, घर के नौकर-चाकरों के सामने

भी मुँह दिखाना उसे मुहाल था। पिछले दिनों की तरह रास्ता देखकर ही समय काटने के ख्याल से वह खुली खिड़की के सामने बैठी थी।

जाड़े के दिन, दोपहर के साथ-साथ धुँधली छाया मानो आसमान से धीरे-धीरे धरती पर उतर रही थी। और उस धुँधलेपन से अपने सारे जीवन का क्या तो एक अज्ञात सम्बन्ध हृदय की गहराई से अनुभव करके उसका मन उस अल्पायु वेला की ही तरह चुपचाप अवसन्न होता आ रहा था। यह नहीं कि उसकी आंखे ठीक कुछ देख रही थी, पर जैसी आदत थी, ऊपर नीचे, अगल-बगल कुछ भी उस की निगाह से बच नहीं पा रहा था। एक जैसी बैठी-बैठी जब वेला बीत चली तो अचानक उसने देखा, सुरेश की गाड़ी उसके फाटक में घुस रही है। बात की बात में उसका चेहरा फक हो गया और पुलिस को देखकर चोर जैसे बेतहाशा भागता है, ठीक उसी तरह खिड़की के सामने से भागकर वह आकर बिस्तर पर सो रही।

कोई बीसेक मिनट के बाद उसके दरवाजे पर खट-खटाहट हुई और बाहर से पिता ने स्निग्ध स्वर में पूछा जाग रही हो बेटी ?

मगर फिर भी जब जवाब न मिला, तो और भी कोमल स्वर में बोले - वेला जाती रही बेटी, उठो। सुरेश की फूफी तुम्हे लेने आई है। क्या तो, महिम बहुत बीमार है।

अचला ने उठकर चुपचाप दरवाजा खोल दिया और सुरेश की फूफी अन्दर आई।

झुककर अचला ने उनके पैरों की धूल ली।

केदार बाबू सबसे पीछे कमरे के भीतर गए और बिस्तर के एक किनारे बैठ कर बेटी से बोले—तुम लोगो के चले आने के बाद से ही महिम को जोरों का बुखार आ गया। मेरा ख्याल है, ठंड लगने से, फिक्र से यह बुखार आया है। उस के बाद सुरेश की फूफा से बोले— मै तो सोच के मारे परेशान था। आखिर इन लोगो को भेज देने के बाद से कोई खबर क्यों नही भेजी उसने ? सुरेश दीर्घजीवी हो, वह सोच समझकर इन्हे न ले आया होता तो क्या जो होता। भगवान् ही जाने। स्नेह भरे अनुताप से बूढ़े का गला भर आया।

अचला चुपचाप सब सुनती रही। उसने कोई सवाल नही किया, कोई घबराहट नहीं जाहिर की।

सुरेश की फूफी ने अचला की बाह पर अपना दाया हाथ रखकर शांत स्वर मे कहा—डरने की बात नहीं बिटिया, दो ही दिन में वह ठीक हो जायेगा।

अचला ने कुछ कहा नहीं फिर से एक बार उनको झुककर प्रणाम करके अलगनी पर से चादर उतार कर वह जाने के लिए तैयार हो गई।

सर्दियों की सांझ—इस ठंड में बिना कोई गर्म कपड़ा पहने उसी रूप में बाहर जाने को तैयार होते देख बूढ़े पिता के जी को चोट लगी। लेकिन सुरेश की विधवा फूफी के पहनावे को देखकर उन्हें उसे टोकने की इच्छा न हुई। वे सिर्फ इतना ही बोले—चलो बिटिया, मैं भी चलता हूं। और चप्पल पहने सबसे आगे सीढ़ियों से नीचे उतर गए।

तेईस

अचला को महिम से सबसे बडी शिकायत यही थी कि स्त्री होने के बावजूद उसे कभी पति के सुख-दु:ख मे हाथ बटाने का मौका नही मिला। इसके लिए सुरेश भी अपने दोस्त से छुटपन से ही काफी झगड़ता आया, पर कोई नतीजा नही निकला। कंजूस के धन की तरह उस चीज को सदा सारी दुनिया से बचाकर महिम कुछ इस तरह से अगोरता रहा है कि दु:ख-दुर्दिन में किसी की मदद की बात तो दूर रहे, उसे अभाव क्या है, कहां उसे पीड़ा है, यही कभी कोई समझ नहीं पाता।

लिहाजा घर जब जलकर राख हो गया, तो बाप-दादों के उस राख की ढेरी मे बदले हुए मकान की ओर देखकर महिम के मन में क्या चोट लगी, इसे उसके मुँह को देखकर अचला समझ नहीं सकी। मृणाल विधवा हो गई, इससे भी उसके स्वामी के दु:ख का अन्दाज करना वैसा ही असम्भव था। जिस दिन अचला ने मुँह पर कह दिया था कि वह उसे प्यार नहीं करती, महिम के लिए वह आघात कितना बड़ा था, उसके बारे में भी अचला अँधेरे में ही रही। मगर इतनी ना समझ भी वह नही थी कि हर बदनसीब घड़ी मे पति की निर्निवार उदासीनता को सत्य ही कबूल कर लेने में उसके जी में कोई खटका होता ही न हो। इसलिए, उस दिन स्टेशन पर पति के दृढ़-शान्त मुखड़े को बार-बार देखकर तमाम रास्ता सिर्फ यही सोचती आई थी कि सहिष्णुता के उस झूठे नकाब की ओट मे उसके वास्तविक मुख का स्वरूप जाने कैसा है!

आज जब उसकी बीमारी को मामूली और स्वाभाविक घटना का रूप देने के लिए केदार बाबू ने कहा कि इससे उन्हें ताज्जुब नही हुआ, बल्कि इतनी बड़ी दुर्घटना के बाद ऐसे ही कुछ की आशंका मुझे थी—तो अचला के जी में जो भाव पल के लिए उदय हुआ था, उसे उत्कंठा भी नही कहा जा सकता।

सुरेश के रबर-टायर वाली गाड़ी तेजी से दौड़ रही थी। फूफी एक ओर का

दरवाजा खींचकर चुप बैठी थी और उनके बगल में अचला पत्थर की मूर्ति जैसी स्थिर थी। अकेले केदार बाबू किसी तरफ से कोई उत्साह न पाकर रास्ते की ओर देखते हुए बकते चले जा रहे थे। सुरेश जैसा दयावान, बुद्धिमान, गुणवान तरुण देश में दूसरा नहीं; महिम के एक बगीचा में मैं तो ऊब गया हूँ; जहां आदमी ढूंढ़े न मिले, डाक्टर-वैद का नाम नहीं, सिर्फ चोर-डकैत और गीदड़ रहते हैं ऐसे गांव में जा बसने की सजा एक-न-एक दिन उसे भोगनी ही पड़ेगी;---ऐसी ही बे सिर-पैर की बातें बिना सोचे-समझे वे उस चुप बैठी नारी के कानों ढालते चले जा रहे थे।

इसका भी कारण था। केदार बाबू वास्तव में ऐसी हल्की प्रवृत्ति के आदमी थे, ऐसी बात नहीं। लेकिन आज उनके हृदय का गहरा आनन्द संयम के किसी बांध को मान ही नहीं रहा था। अपने परम मित्र सुरेश से खुलकर विवाद--इकलौती लड़की का मौन विद्रोह और सबसे बढ़कर निहायत घिनौनी और भोंडी आशंका का दबाव पिछले कई दिनों से उनकी छाती पर चक्की-सा सवार था; आज अचानक फूफी के आ जाने से वह बोझा अचानक गायब हो गया था। महिम की बीमारी को मन में उन्होंने वैसा महत्व ही नहीं दिया। उस रात की दैवी दुर्घटना में सर्दी खाकर थोड़ा बुखार ही आ गया हो, तो वैसी कोई बात नहीं। फूफी ने दो-तीन दिन में चंगा होने का दिलासा दिया है, शायद इतना भी समय न लगे, शायद हो कि कल ही ठीक हो जाय। बीमारी के बारे में उन्होंने यही सोच रक्खा था। लेकिन असली बात यह कि सुरेश खुद जाकर उसे अपने यहां लिवा लाया है और किसी बहाने उसकी स्त्री को उसके पास पहुँचाने के लिए अपनी फूफी तक को भेज दिया है। बेटी-दामाद में कुछ दिनों से मन-मुटाव चल रहा था, दाई की जबानी सुनी इस बात को वे भूले न थे, इसलिए यह सारा कुछ उसी दांपत्य-कलह का नतीजा है—इस सत्य के जाहिर हो जाने से इस बक-झक में भी उन्हें बड़ी आत्म-ग्लानि के साथ यह लगने लगा कि वहां पहुँचकर उस निर्दोष और भले युवक की तरफ वे नजर उठाकर देखेंगे कैसे? लेकिन उनकी बेटी के सर्वाङ्ग में एक कठोर नीरवता विराज रही थी। बीमारी खास कुछ नहीं, यह उसने भी समझा था, पर वह यह नहीं पा रही थी कि आखिर सुरेश उसे पकड़ कैसे लाया! इतना तो उसने स्वामी को पहचाना था।

साफ हो गई थी। रास्ते की गैस-बत्तियां जल चुकी थीं। गाड़ी सुरेश के फाटक में घुसी और गाड़ी बरामदे के पास जाकर लगी। उझककर केदार बाबू ने देखा और घबराकर बोले---दो-दो गाड़ियां क्यों खड़ी हैं?

अचला की चकित दृष्टि तुरत उधर को गई और उसने देखा--एक प्रवीण अंग्रेज को सुरेश अदब के साथ गाड़ी पर सवार करा रहा है और साहबी पुशाक में

एक बंगाली सज्जन बगल में खड़े है। पलक मारते ही वह समझ गई, ये दोनों डाक्टर हैं।

वे चले गए तो यह गाड़ी, गाड़ी-बरामदे में जाकर लगी। सुरेश खड़ा था। केदार बाबू ने चिल्लाकर पूछा--महिम कैसा है सुरेश ? बीमारी क्या है ?

सुरेश ने कहा—ठीक है। आइए।

केदार बाबू और परेशान होकर बोले—बीमारी क्या है, सो तो कहो।

सुरेश बोला-- बीमारी का नाम बताऊँ, तो आप समझ नहीं सकेंगे केदार बाबू ! बुखार है। छाती मे थोड़ी सर्दी जमी है। लेकिन आप उतरें तो सही, उन्हे उतर आने दे।

केदार बाबू ने उतरने की जरा भी कोशिश न की। बोले--थोड़ी-सी सर्दी जम गई है, तो इसका इलाज तो तुम खुद कर सकते हो ! आखिर मैं कोई नन्हा-मुन्ना नही हूँ सुरेश, दो-दो डाक्टर क्यों ? और फिर अंग्रेज डाक्टर ? कहते-कहते उनकी आवाज कांपने लगी।

सुरेश करीब आ गया। हाथ पकड़कर उन्हे उतारते हुए बोला—फूफी अचला को अन्दर ले जाओ। मैं आता हूं।

अचला ने किसी से कुछ पूछा-आछा नही, अन्धेरे मे उसकी शक्ल भी नही दिखाई पडी। उतरते समय पादान पर उसका पांव लड़खड़ाने लगा, यह भी किसी ने नही देखा--यह भी किसी को नजर न आया कि वह जैसी चुपचाप आई थी, वैसी ही चुपचाप फूफी के पीछे-पीछे भीतर चली गई।

दो-एक मिनट बाद जब परदे को हटाकर वह कमरे में दाखिल हुई, तो महिम शायद अपने घर के बारे मे क्या सब कह रहा था। उस लडखड़ाती आवाज के दो-एक शब्द कानों में पहुँचते ही यह समझना बाकी न रहा कि वह अल्ल-बल्ल बक रहा है और रोग कितना ज्यादा बढ गया है; जरा देर दीवाल का सहारा लेकर उसने अपने को सम्हाला।

सिरहाने बैठकर जो स्त्री माथे पर बर्फ-पट्टी दे रही थी, उसने उलटकर देखा और धीरे से उठकर आई, झुककर उसे प्रणाम करके सीधी खडी हो गई। विधवा का वेश। बाल गर्दन तक छोटे-छोटे छंटे चेहरे पर युग-युग की सभी विधवाओं का वैराग्य मानो गहरा होकर विराज रहा था। मद्धिम रोशनी म अचला पहले यह न पहचान सकी कि वह मृणाल है; अब जब दोनों आमने-सामने खडी थीं, तो दोनों ही जरा देर के लिए ठक्-सी रह गई। अचला का सारा शरीर जैसे हिल उठा, क्या तो कहने के लिए उसके होंठ भी कांप उठे, पर एक भी शब्द न फूटा और दूसरे ही क्षण उसका बेहोश शरीर टूटी लता की नाई मृणाल के कदमों पर लुढ़क पड़ा।

होश में आई तो पाया, पिता की गोद मे सिर रक्खे अचला एक कोच पर पड़ी है। एक नौकरानी आंख-मुँह में गुलाब जल के छीटे दे रही है। पास खड़ा सुरेश धीमे-धीमे पंखा झल रहा है।

हो क्या गया, यह सोचने मे उसे देर लगी। लेकिन याद आते ही लाज से घबराकर उसने उठने की कोशिश की। बाधा देते हुए केदार बाबू बोले—जरा आराम कर लो बिटिया, अभी उठो मत।

अचला ने धीमे से कहा—मैं अब ठीक है बाबूजी, और उसने फिर उठने की कोशिश की। पिता ने जबर्दस्ती उसे रोककर कहा—उठने की अभी जरूरत नही, बल्कि थोडा सो जाने की चेष्टा करो।

अस्फुट स्वर में सुरेश ने भी शायद इसी बात का समर्थन किया। अचला ने चुपचाप एक बार उसकी ओर ताका और उत्तर मे पिता का हाथ ठेलकर सीधी खड़ी होकर बोली— सोने के लिए यहाँ नही आई हूं। मुझे कुछ नही हुआ है—मैं उस कमरे में जा रही हूँ। और वह बाहर चली गई।

इस मकान के कमरों को वह भूली नही थी। बीमार का कमरा ढूँढ़ने मे देर न लगी। अन्दर जाते ही मृणाल ने उसे देखा। बोली—संझली दी, जरा देर तुम यहां बैठो, मैं आह्निक कर लूँ। जरा ख्याल रखना, बर्फ की टोपी लुढ़क न जाय। मृणाल अपनी जगह पर अचला को बिठाकर चली गई।

चौबीस

सख्त न्यूमोनिया; चंगा होने में कुछ देर लगेगी। लेकिन महिम धीरे-धीरे चँगा होने की तरफ ही जा रहा था, डर की कोई बात न थी—यह सभी देख रहे थे। उसका वह प्रलाप, आंखों की खोई-खोई निगाह-शान्त और स्वाभाविक होती आ रही थी।

दसेक दिन बाद एक दिन तीसरे पहर महिम शान्त-सा लेटा हुआ था। इस साल तमाम सर्दी ज्यादा पड़ी थी। तिस पर अभी-अभी बाहर एक बौछार बारिश हो गई। रोगी की खाट से सटाकर ही एक बड़ी-सी चौकी डालकर उस पर बिस्तर बिछाया गया था; सब लोग उसी पर अच्छी तरह से कपड़े ओढकर बैठे थे। सबकी आंखों में चिन्ता रहित तृप्ति की झलक। केवल फूफी घर के धंधों में और कहीं जुटी थीं और केदार बाबू घर से अभी तक यहां पहुँच नहीं पाए थे।

सुरेश की ओर ताककर हाथ जोड़ते हुए मृणाल ने कहा—अब मुझे छुटकारे का हुक्म मिले सुरेश बाबू, मैं अपने घर जाऊँ। इस कड़ाके की सर्दी में बुढ़िया सास मेरी चल न बसी हो!

सुरेश बोला—अब भी क्या उनके जीने की जरूरत रह गई है? उँ हूँ, उनके लिए आपका जाना नहीं हो सकता।

मृणाल ने जरा देर के लिए गर्दन घुमाकर शायद एक लम्बे निश्वास को ही रोका। फिर सुरेश की तरफ देखकर मुस्कराती हुई बोली—आप ही क्यों, मैंने भी यह सवाल पहले बहुत बार पूछा है? लगता भी है कि अब उनके जाने से ही कल्याण है। लेकिन जो मरने-जीने के मालिक है, उनको तो ऐसा ख्याल नहीं। होता तो संसार में आदमी बहुतेरे दुःख-कष्टों से बच जाता।

अचला अब तक चुप रही थी। मृणाल की बातों पर शायद उसके पति की ही मौत की बात याद करके बोली—इसके मानी जो अंतर्यामी है, वे जानते हैं कि हजारों तकलीफ के बावजूद आदमी मरना नहीं चाहता।

मृणाल के चेहरे पर एक छिपी वेदना की झलक झाक गई। सिर हिलाकर बोली - नहीं संझली दी, ऐसी बात नहीं। ऐसा समय सचमुच में आता है, जब मनुष्य सचमुच ही मौत चाहता है। उस दिन किसी रात को अचानक नींद जो छूटी तो अपनी सास को बिस्तर पर नहीं पाया। चल्दी से बाहर निकली। देखा, पूजा घर का दरवाजा जरा-सा खुला है। चुपचाप करीब-करीब में जाकर खड़ी हुई। मैंने देखा, गले में आंचल डाले हाथ जोड़कर वे देवता से मौत की भीख मांग रही है। कह रही हैं, हे देवता, अगर एक दिन को भी तन-मन से मैंने तुम्हारी सेवा की हो, तो आज मेरी लाज रख लो। मैं मुक्ति नहीं मांगती, स्वर्ग नहीं चाहती, सिर्फ इतना ही चाहती हूँ कि मुझे और शर्मिंदा न करो ठाकुर—मैं अपना यह मुंह अब बहू को दिखा नहीं सकती हूं। कहते-कहते मृणाल रो पड़ी।

इस प्रार्थना में मां के हृदय की कितनी गहरी वेदना थी, यह समझने में किसी को कठिनाई न हुई। सुरेश की दोनों आंखे भर आईं। किसी के भी मामूली दुःख पर वह डोल उठता था—आज उस पुत्रहीना जननी के मार्मिक दुःख की कथा सुनकर उसके हृदय में आंधी-सी बहने लगी। वह जरा देर स्तब्ध होकर जमीन की ओर ताकता रहा और अचानक सिर उठाकर आवेगमय स्वर में बोला उठा—अच्छा जाओ दीदी, अपनी बूढ़ी सास की सेवा करके अपना फर्ज अदा करो, मैं तुम्हे नहीं रोकूंगा। इस अभागे देश के पास आज भी अगर गर्व करने को कुछ है, तो वह है तुम जैसी नारियां! ऐसी चीज और कोई भी देश नहीं दिखा सकता! कहकर उसने जिज्ञासु दृष्टि से एक बार अचला की ओर देखा। लेकिन वह खिड़की से बाहर धुमैल मेघ के

एक टुकड़े पर नजर टिकाए बैठी थी, इसलिए उसकी तरफ से कोई उत्तर न आया।

लेकिन शर्माकर मृणाल ने आलोचना को अपने पर से हटाकर दूसरी ओर मोड़ने के ख्याल से झटपट कहा — नहीं, नहीं क्यों है ! आप सभी देश की बात जानते हैं न ! अच्छा, संझले दादा से आप बड़े हैं या छोटे ?

इस अजीब सवाल से सुरेश हँसकर बोला —क्यों भला ? कहिए तो ?

मृणाल ने बाधा दी, मुझे अब आप संबोधन न करें। मैं दीदी हूँ, पर उम्र में जब छोटी हूँ तो मँझले दादा, छोटे दादा — ? कहिए जल्दी कहिए, क्या ?

अब की अचला ने आसमान की ओर से नजर हटाकर उसकी तरफ देखा। बहुत दिन पहले एक दिन उसने इसी जल्दी और सहजता से उससे सँझली दीदी का नाता जोड़ लिया था, वह बात याद आ गई। लेकिन चूंकि सुरेश की मृणाल के चरित्र की यह खासियत मालूम न थी, इसलिए वह उस अजीब औरत की ओर ताकते हुए कौतूहल भरी हँसी के साथ कहा—छोटे दादा ! तुम्हारे सँझले दादा से मैं कोई डेढ़ साल का छोटा हूँ।

मृणाल बोली—तो कृपा करके छोटे दादा जी एक आदमी ठीक कर दीजिए कि सुबह की गाड़ी से मुझे पहुँचा आए।

सुरेश ने यह नहीं सोचा था कि जाने की अनुमति मिल जाने से वह कल ही जाने को तैयार हो जायगी।

इसलिए वह जरा देर चुप रहा और गंभीर होकर बोला—और दो दिन भी क्या नहीं रुक सकोगी दीदी ? तुम्हारे जिम्मे छोड़कर महिम की ओर से हम लोग निश्चित थे। मुझे ऐसा ख्याल नहीं आता कि इस सावधानी और सहेज कर सेवा करते मैंने अस्पताल में भी किसी को देखा है। क्यों अचला ?

जवाब में अचला ने सिर्फ सिर हिलाया।

सुरेश को चिंतित-सा देखकर मृणाल बोली—आप इसके लिए तनिक भी न सोचें। जिसकी चीज है, उसीके हाथों सौंपकर जा रही हूँ, नहीं तो शायद मैं जा भी नहीं सकती। आपको तो याद है, हमें किस जल्दी में चला आना पड़ा था। कोई इंतजाम ही करके न आ पाई। कल आप मुझे छुट्टी दें, फिर जब हुक्म होगा, चली आऊँगी।

सुरेश फिर कुछ देर चुप रहा। सहसा बोल उठा—अच्छा मृणाल उस घोर देहात में एक बूढ़ी सास की सेवा और पूजा-आह्निक करके तुम्हारा समय कैसे कटेगा मैं केवल यही सोच रहा हूँ।

मृणाल के चेहरे पर फिर पीड़ा झलकी। मगर वह हँसकर बोली—समय

काटने का भार मुझी पर तो नही है छोटे दादा, जिन्होंने समय को बनाया है, वही उपाय करेंगे।

सुरेश ने कहा—अच्छा, यह तो हुआ। लेकिन तुम्हारी साम तो ज्यादा दिन जिन्दा न रहेंगी और डाक्टर की सलाह के मुताबिक महिम के भी कुछ दिनों के लिए पश्चिम के किसी स्वास्थ्यकर स्थान मे रहना होगा। फिर तुम वहा अकेली कैसे रहोगी ?

मृणाल ऊपर की ओर देखकर सिर्फ जरा हँसी। बोली—यह वही जानें।

अन-जानते ही सुरेश के एक दीर्घश्वास छूट गया। मृणाल ने कहा—छोटे दादा शायद यह सब नहीं मानते ?

क्या सब ?

वही, जैसे भगवान्—

नही।

फिर हम लोगों के लिए शायद आपके मुंह से उपेक्षा का श्वास छूटा ?

सुरेश ने अचानक इसका कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ देर अनमना-सा उसकी ओर देखते रहकर हठात् गर्दन हिलाकर बोला—नहीं मृणाल, वह बात नही। किसी अजाने भविष्य का भार अजाने एक ईश्वर पर छोड़कर वैसे लोग बल्कि हम लोगों से जीत के ही रास्ते पर चलते हैं, यह मैंने खूब देखा है। मगर इस तर्क को छोड़ो भी दीदी, शायद हो कि मुझसे तुम्हें नरफत हो जाय।

मृणाल ने झट झुककर सुरेश के पैरों की धूल ली। कहा—अच्छा, रहे ! सुरेश ने अवाक् होकर पूछा—यह फिर क्या हुआ मृणाल ?

क्या ?

कोई बात नहीं और यों पैरों की धूल लेना ?

मृणाल बोली—बड़े भाई के पैरों की धूल लेने के लिए दिन तिथि देखनी पड़ती है क्या ? और वह हँस पड़ी।

अजीब लडकी है ! कहकर स्नेह से हँसते हुए उसकी ओर देखकर सुरेश अचरज से अवाक् रह गया ! उसे ऐसा लगा, उसकी सारी शक्ल सावन की काली घटा वाले आसमान-सी घिर गई है। लेकिन अचरज के इस धक्के को संभाल कर इस सम्बन्ध में कुछ भी पूछने-आछने की चेष्टा करने के पहले ही अचला हक्का-बक्का हुए सुरेश को आकाश-पाताल सोचने का काफी मौका दे तेजी से मृणाल के प्रायः साथ ही साथ कमरे से बाहर हो गई।

वही हत-सा बैठा सुरेश बार-बार अपने ही आपको पूछने लगा, यह फिर क्या से क्या हो गया ! मृणाल के यों प्रणाम करने के साथ इसका कैसे तो कोई गहरा

सम्बन्ध है, इसका वह आप ही अनुमान करने लगा—लेकिन वह सम्बन्ध है कहां ? अचानक उसकी पद-धूलि लेकर मृणाल चलती क्यों गई और साथ ही साथ यो उडा हुआ चेहरा लिए अचला ही क्यों बाहर हो गई ? शुरू से आखिर तक अपनी एक-एक बात को दुहराकर वह देख गया, पर खाक समझ मे नही आया क्योंकि उसने खूब समझा कि आस-पास ही दो-दो इतनी बडी घटनाएँ कुछ यो ही नही घटी । हो न हो उसीका कोई बुरा आचरण इसकी जड है, यह संदेह उसके मन मे काटे-सा चुभने लगा ।

मगर मृणाल से भी इसके बारे मे कुछ पूछना असभव था । रात तो उसने कतरा-कतराकर काटी, लेकिन सवेरे एक समय अचला को अकेली पाकर कहा - तुम्हे मेरी एक बात का जवाब देना होगा ।

अचला का मुँह शर्म से लाल हो उठा---बात क्या थी, यह उसकी अजानी न थी । पिछली रात की हरकत की कैफियत देनी होगी, यह जानकर उसने मृदु स्वर मे पूछा कौन-सी बात का ?

सुरेश ने धीमे-धीमे कहा---कल मृणाल एकाएक मेरे पैरो की धूल लेकर चली गई और तुम भी रज होकर मुह लटकाए चली गई, क्या इसलिए कि मैने उसकी सास के मरने की बात कही थी ?

इस अप्रत्याशित प्रश्न से एक राह मिल गई, इससे अचला मन ही मन खुश हुई । बोली - यह प्रसंग छेडना क्या उचित था ? बेचारी के पति नहीं, सास के मरने से उसके अकेलेपन की तो सोच देखो जरा !

सुरेश बहुत ही खीझकर बोला --मुझसे बडी गलती हो गई । लेकिन यह तो मृणाल भी समझती है कि वे अब चन्द दिनों की मेहमान है । फिर वह असहाय ही क्यों होने लगी ?

अचला ने कहा—हम लोगों ने तो यह बात उससे एक बार भी नही कही । तुमने ही बल्कि उसे तरह-तरह से डराया कि गांव में वह अकेली रहेगी कैसे !

सुरेश ने पछताकर पूछा---तो उसके जाने के पहले क्या हमें भरोसा नहीं देना चाहिए ? यह कि उसे कोई डर नही । यह बात—

कहते-कहते करुण से उसका गला भर आया ।

अचला उसकी शक्ल देखकर हँसी । पराए दुःख से दुःखी इस युवक की दया की हजारों कहानियां उसे पल भर मे याद आ गई । बोली--- नही; नहीं भरोसा नहीं देना होगा और डर दिखाने की भी जरूरत नही ।

सुरेश आवेग से आत्मविस्मृत हो अकस्मात् उसके हाथ को कसकर पकड़कर जोरों से झकझोर दिया । कहा - वह तुम्हारे लायक बात हुई ! तुमसे यही तो मैं

चाहता हूँ अचला ! कहते ही लेकिन अशेष लज्जा से उसका हाथ छोडकर वह भाग गया।

उसका जो आवेग क्षणभर पहले दूसरे की भलाई के स्वच्छ आनन्द मे विजयी हुआ था, इस शर्मनाक भाग खड़े होने से पल मे ही वह घिनौना और कलुषित-सा हो उठा। अचला की नसों का खून बिजली की रफतार से दौड़ा, और पसीने की बूंदों से कपाल भर गया; बदन बार-बार सिहर उठा। वह एक कुर्सी खींचकर निर्जीव की तरह बैठ गई। थोडी देर में वह भाव तो जाता रहा, पर बीमार पति की खाट पर बैठने में सुबह का सारा समय कैसे तो एक भय में बीतने लगा।

जाने-जाते भी मृणाल को दो-एक दिन की देर हो गई। महिम से विदा मांगने गई तो देखा, आज वह करवट बदलकर असमय में सो गया है। जो विदा मांगने गई थी, इस झूठी नींद का निश्चत कारण समझते हुए भी बोली—उन्हें अब जगाने की जरूरत नहीं सँझली दी दी। है न ?

जवाब में अचला के होंठ पर एक बांकी मुस्कान खेल गई। मृणाल मन में समझ गई, उसके इस बहाने को एक और भी स्त्री समझ गई है। मन ही मन अचला उससे ईर्ष्या करती है, महिम मे इसका कोई आभास न पाने के बावजूद मृणाल जानती थी। यह निरा निरर्थक द्वेष उसे कांटा-सा गढा करता। फिर भी अचला अपनी हीनता से उस बीमार आदमी की पाक कमजोरी का उलटा मतलब लगाएगी, यह वह नहीं सोच पाई थी, एक क्षण के लिए उसका जी जल उठा। लेकिन अपने को जब्त करके उसने उसके कान में कहा- -तुम तो सब कुछ जानती हो सँझली दीदी मेरी ओर से उनसे क्षमा मांग लेना। कहना, चंगे होकर जब गांव लौटेंगे तो जिंदा रही मैं तो भेंट होगी।

नीचे केदार बाबू बैठे थे। मृणाल ने जैसे ही उन्हें प्रणाम किया कि उनकी आंखें गीली हो गईं। इसी छोटे-से अरसे में औरों की नाईं वे भी इस विधवा को बहुत स्नेह करने लगे थे। कुरते के आस्तीन से आंख पोंछते हुए बोले—बेटी, तुम्हारे मंगल से ही हमने महिम को यम के जबड़े से वापस पाया है। जभी फुर्सत मिले, घूमने की इच्छा से तो इस बूढ़े चाचा को भूलना मत बिटिया। मेरा घर तुम्हारे लिए रात-दिन खुला रहेगा।

कुछ दूर पर अचला खड़ी थी; मृणाल ने उसे दिखाते हुए मुस्काकर कहा—इनके होते यम के बाप की क्या मजाल कि संझले दादा को ले जाय। मैंने जिस दिन उन्हें सँझली दीदी के जिम्मे कर दिया, मेरा काम उसी दिन चुक गया।

केदार बाबू कुछ गम्भीर-से हो गए, मगर बोले कुछ नहीं।

दो प्रौढ़-से कारिंदे और एक नौकरानी, मृणाल को उसके घर छोड़ आने को तैयार थे ; उन सब को लेकर घोडा-गाडी फाटक से बाहर निकल गई तो केदार बाबू के अंततंम से एक दीर्घ श्वास निकला। उन्होंने आहिस्ते से इतना ही कहा—अजीब, अनोखी लड़की !

सुरेश का मन भी शायद इसी भाव से भरा था। उसने और किसी तरफ गौर न करके हामी भरते हुए आवेग के साथ कहा मैंने तो ऐसा कभी नहीं देखा। न तो ऐसी मीठी बात सुनी है कभी, न ऐसा कुशल काम-काज ही देखा है। जो भी काम दीजिए, इस कुशलता से करेगी कि जी में होगा, जीवन भर शायद वह यही करती आई है। मगर गजब तो यह कि गांव से बाहर कभी कदम भी नहीं रक्खा।

केदार बाबू ने सच मानते हुए भी अचरज के साथ पूछा—अच्छा !

सुरेश बोला—जी। उसे देख-देखकर मेरे जी मे आता था, पूर्व जन्म के संस्कार की जो बात कही जाती है, सच न हो कहीं। कहकर वह हंसने लगा।

पूर्व जन्म के प्रसंग से केदार बाबू कुछ चिंतन मे होकर सहसा बोल उठे—सो जो भी हो, इसे देखकर मेरी निश्चित धारणा हुई है कि स्त्रियों में यह अनमोल रतन है। इसे आजीवन यों जीवन्मृत बनाए रखना पाप ही नही, महापाप है। मेरी लडकी रही होती वह तो मैं हर्गिज ऐसा निश्चिंत नही रह सकता था।

सुरेश ने ताज्जुब में आकर पूछा—क्या करते आप ?

बूढ़े ने ओज भरे शब्दों में कहा—मैं फिर से उसकी शादी करता। एक बुड्ढे को सौंपकर जिन लोगों ने इस उन्नीस-बीस साल की उम्र मे उसे जोगन बनाया है, वे उसके हितू नही, कट्टर दुश्मन है। दुश्मन के काम को मैं किसी भी हालत में वाजिब नहीं मानता।

वे जरा चुप रहकर फिर बोले—जरा उसके स्वामी के ही सलूक को तो देखो। दो-दो बीवी के गुजरने के बाद जब पंचास साल की उम्र में उस खूसट ने इस लड़की से गठबंधन किया, तो अपने मौज-मजे के सिवाय उसने इसके भविष्य के बारे में सोचा भी ?

सुरेश को निरुत्तर देख वे और भी जोश मे आ गए। बोले मैं विधवा-विवाह के बुरे-भले का तर्क नहीं करना चाहता। लेकिन इस पर तुम्हारा सारा हिंदू-समाज चीख-चीखकर मर भी जाय तो मैं यह नही मानने का कि उस दूध पीती बच्ची के लिए यही विधान श्रेय है। उसे ऐसा कुछ भी नही, जिसे देखकर वह एक भी दिन गुजार सके। सारी जिंदगी कोई खिलवाड़ है कि ब्रह्मचर्य-ब्रह्मचर्य का शोर मचाने से सारी दुनिया रातो-रात तपोवन हो जायगी। उस लड़की के कपड़े लत्ते देखकर ही मेरा कलेजा टूक-टूक हो जाता था।

सुरेश ने जवाब नही दिया, नजर उठाकर देखा तक नही। लेकिन कनखियो से देखा कि अचला अब तक चौखट का सहारा लिए बुत-जैसी खड़ी थी—वहां अब वह नही है। जाने कब अन्दर चली गई है।

मृणाल के चले जाने के बाद अचला जब-जब सुरेश के चेहरे की तरफ ताकती, उसे लगता, वह अनमना हो गया है। और जाने कौन-सा शोक उसे क्रमशः नीरस किए दे रहा है।

दो दिन के बाद की बात। तीसरे पहर निचले बरामदे के एक ओर धूप मे आराम-कुर्सी पर बैठा सुरेश जाने कौन-सी तो किताब पढ़ रहा था। आहट पाकर उसने उलटकर देखा। देखा, अचला खुद उसके लिए चाय लेकर आ रही है। पहले कभी ऐसा नही हुआ, सो हैरत मे आकर सुरेश ने सीधा बैठते हुए पूछा—बैरा कहां है? खुद ही लिए आ रही हो!

अचला ने इसका जवाब न दिया। एक छोटी-सी तिपाई पर चाय का प्याला रखते हुए दूसरी कुर्सी खींचकर आप भी बैठ गई।

उसके इस बिल्कुल नए आचरण मे दूसरा सवाल करने का साहस सुरेश को न हुआ। उसने चुपचाप चाय का प्याला हाथ मे उठा लिया।

कुछ देर चुप बैठी रहकर अचला ने धीमे से कहा—अच्छा सुरेश बाबू, विधवा-विवाह को आप किसी भी हालत में अच्छा नहीं समझते?

चाय के प्याले मे होंठ लगाए रखकर ही सुरेश ने कहा—समझता हूँ। इस लिए मेरा कुसंस्कार अभी उस हद तक पहुँचा नहीं है।

अपने को सोचने का और ज्यादा मौका न देकर अचला बोली—फिर तो मृणाल जैसी लडकी से विवाह करने में आपको रत्ती भर भी एतराज न होना चाहिए।

चाय के प्याले को हाथ में लिए सख्त होकर बैठते हुए सुरेश ने कहा—इसका मतलब?

अचला की शक्ल या आंखों में उत्तेजना के आसार न दिखाई दिए। वह सहज ढंग से बोली—आपके आगे मैं असंख्य ऋण से ऋणी हूं। इसके सिवा मैं आपका भला चाहने वाली हूं। आपको मैं सुखी सहज सांसारिक और स्वाभाविक देखना चाहती हूँ। एक दिन आप विवाह करने को तैयार थे, आज मेरा एकांत अनुरोध है, स्वीकार कीजिए।

जैसे कंठस्थ हो, एक ही सांस में इतनी-इतनी बात बोलकर अचला हांफने लगी।

बड़ी देर तक सुरेश बुत-सा स्थिर बैठा रहा और आखिर बोला—इससे क्या तुम सच ही खुशी होगी ?

अचला ने कहा—हा ।

वह राजी होगी ?

मैं समझती हूँ, होगी ।

सुरेश जरा फीका हंसकर बोला—लेकिन मैं ऐसा नही समझता । तुमने किताब में पढ़ा है, कोई-कोई सती सहमरण मे हंसते-हंसते जल मरती थी । मृणाल उसी कोटि की औरत है । मुँह की बात पर उसे राजी करना तो बहुत दूर की बात है, एक-एक करके उसके हाथ-पाव काटते जाओ, तो भी दुबारा ब्याह करने के लिए उसे राजी नहीं कराया जा सकता । इस असंभव को सभव करने की चेष्टा मे नाहक ही उसके सामने मेरी मिट्टी पलीत मत करो अचला । उसने मुझे दादा कहा है, इस सम्मान को मैं सुरक्षित रखना चाहता हूं ।

देखते ही देखते अचला का चेहरा मारे गुस्से के काला पड गया । सुरेश का का कहना खत्म हुआ कि सख्त-सी होकर बोल उठी—संसार मे अकेली मृणाल ही सती नही है सुरेश बाबू । ऐसी भी सतियां है, जिन्होंने मन मे भी किसी को पतिरूप में चुन लिया हो, तो लाखों प्रलोभनों से भी उन्हें डिगाया नही जा सकता । इनका जिक्र छापे की किताबों में न भी मिले, तो भी इसे सच जानें ! इतना कहकर हैरान-से रहे, हक्के-बक्के से सुरेश की तरफ नजर तक न उठाकर वह गर्वित नारी दृढ कदम बढ़ाती हुई बाहर चली गई ।

पच्चीस

किसी की उच्छृंखित निश्छल प्रशंसा मे किसी और के लिए कितना कठोर आघात और अपमान छिपा रह सकता है, वक्ता और श्रोता, दोनों मे से शायद कोई थोड़ी देर पहले तक भी इसे नही जानते थे । हाथ का प्याला हाथ ही मे लिए सुरेश बेबस-सा बैठा रहा; और अचला अपने कमरे मे जाकर तकिए मे मुँह गाड़कर रुलाई के बेरोक वेग को रोकने लगी—बगल में ही महिम का कमरा था—कही उसके कानों आवाज न पहुँचे ! अन्तर्यामी के सिवाय वास्तव में इस रुलाई का इतिहास और कोई नही जान सका ।

लेकिन इस गहरे दुःख से उसे एक नया तथ्य मिला । नारी-जीवन में यह

सतीत्व कितनी मूल्यवान वस्तु है, इतने दिनों के बाद आज ही मानो पहले-पहल उस की आंखों के सामने प्रकट हुआ। उस रोज सुरेश ने उसके संस्पर्श पर पिता की संदेहालु दृष्टि से वह बेहद दुःखी और नाराज हुई थी, समझा था कि यह उस पर जुल्म है, पर आज जब अचानक उसी धर्महीन, पराई स्त्री पर निगाह रखने वाले सुरेश को ही सतीत्व के चरणों सिर नवाकर इस तरह प्रणाम करते देखा, तो उसे यह समझना बाकी न रहा कि उसका असली स्थान क्या है।

एक बात और। उसने आज यह भी अनुभव किया कि स्पष्ट कहने की ताकत क्या होती है। वह शिक्षिता थी। तन-मन से स्वामी के लिए निष्ठा ही सतीत्व है, यह बात उसकी अजानी न थी। यह वह अच्छी तरह जानती थी कि अकेला मन या अकेला तन, कोई भी पूर्ण नहीं। फिर भी मन जब उसका डांवाडोल हुआ है, जबान से यह कहने में जब उसे हिचक नही हुई कि पति को वह प्यार नही करती-- तब भी लेकिन उसे अपने आप को छोटा नहीं लगा। पर आज जब सुरेश की जबान से निकली हुई बात ने अजानते ही उसके नाम से असली शब्द को जोड़ देना चाहा तो उसकी अन्तरात्मा एक हृदय भेदी वेदना के आर्त स्वर मे चीखकर रो पड़ी।

मगर इसका यह मतलब नही कि मृणाल पर उसकी श्रद्धा बढ गई हो, उसके सम्बन्ध में आज उसे जो चेतना मिली, उसे वह जिन्दगी मे कभी नही भूलेगी, मन ही मन वह बार-बार यही प्रतिज्ञा करने लगी।

बाहर पिता की छड़ी की ठक्-ठक् और पीछे से सुरेश के पैरो की आहट उस ने सुनी। समझ गई कि वे लोग महिम के पास जा रहे है। जरा ही देर में पिता की पुकार पर उसने आँचल से भली तरह आंखें पोंछकर किवाड खोला और उस कमरे में पहुँची।

उसकी सूरत देखकर केदार बाबू ने पूछा—क्यों, बात क्या है ? दो ही बजे शोरबा देना था, चार बज रहे है। अरे, यह शक्ल ऐसी क्यों ? सो रही थी ?

अचला जवाब न देकर जल्दी से चली गई। जब से मरीज को शोरबा देने को कहा गया था, यह काम मृणाल ही करती थी। नौकर चूल्हे पर चढ़ा देता था, वह समय पर अन्दाज से उतार लिया करती थी। उसके जाने के बाद यह भार अचला पर आ पड़ा था। आज से उसे इसकी याद ही नहीं रही। दौड़ी-दौड़ी गई। देखा, आग कब की ठंडी हो गई है और शोरबा जलकर सूख गया है।

बड़ी देर तक सन्न-सी खडी होकर जब वह लौटी, तो यह सुनकर केदार बाबू ने अचला से कुछ नही कहा। सुरेश से बोले --मैंने तो तुम से तभी कहा था सुरेश कि अभी एक अच्छी नर्स न रक्खोगे तो महिम को बचा नहीं पाओगे। मेरी लड़की को मुझसे क्या तुम लोग ज्यादा जानते हो ?

सुरेश चुप बैठा रहा। लेकिन यह किसी ने नही देखा कि महिम अब तक स्त्री के शर्म से फीके पड़े चेहरे की ओर देख रहा था। वह धीरे-धीरे बोला—सुरेश नर्स के हाथों से मुझे दवा तक न रुचेगी। लेकिन मदद के लिए इन्हें कोई आदमी दो। कल-परसों, दो-दो रात इन्हे रात-रात भर जगना पड़ा है। दिन के वक्त थोड़ा-सा आराम न करने दो तो कल-पुर्जे के आदमी से भी काम नहीं ले सकते।

बात अक्षरशः सत्य न हो, झूठ न थी। सुरेश खुश हो गया लेकिन केदार बाबू अपनी रूखी बात पर लज्जित हो कुछ कहने ही जा रहे थे कि अचला कमरे से बाहर चली गई।

रात मे बहुत बार उसके जी मे आया कि बीमार पति से रो-रोकर अपने अनेक अपराधों के लिए क्षमा मांगकर पूछे कि उसकी जैसी पापिनी को फजीहत मे बचाने की उन्हें क्या पडी थी ? लेकिन चरम लज्जा मे यह सवाल किसी भी प्रकार मे उसके मुँह से न निकला।

सुरेश का एक नियमित काम था. वह रोज रात को महिम के कमरे में जाकर सारी जरूरी चीजों का इंतजाम करके तब सोने जाता था। मृणाल जब थी, तो वह लगभग रात भर आता-जाता रहता था। जरूरत भी थी, लेकिन इधर कै दिन से देखा गया—सहज ही वह कमरे मे नही जाता। जरूरत होती तो वह दाई को भेजकर खोज लेता; केवल सांझ मे पहले एक बार जरा देर के लिए खुद आकर खोज-पूछ करता। उसके इस रवैया ने सबसे पहले अचला का ही ध्यान खींचा था। लेकिन इस पर कुछ कहना उसके लिए सभव नही था। इसीलिए वह चुप ही थी; पर जिस दिन महिम ने खुद ही इसका जिक्र किया तो उसे कहना ही पड़ा कि आज-कल वह जादातर घर में भी नहीं रहते। इसकी वजह भी वह नहीं जानती। महिम ने चुपचाप सुना, कोई राय अपनी न दी।

दूसरे दिन सबेरे अचला नीचे उतर रही थी और सुरेश भी किसी काम से ऊपर जा रहा था; अचला को देखते ही वह दूसरी तरफ हट गया। उसे संदेह न रहा, सुरेश उसी से कतराता चलता है और एक दिन हृदय से उसने जिसकी कमाना की थी; सुरेश की हरकत से उसका वही हृदय व्यथा से पीड़ित हो उठा

छब्बीस

सभी काम-काज उठने-बैठने तक में अचला के मन के एकान्त कोने में जो बात हर पल सुलगती रही, वह यह कि सुरेश के मन में कोई बहुत बड़ा परिवर्तन काम कर रहा है, जिससे उसका कोई ताल्लुक नहीं। जो उद्दाम प्रेम कभी उसमें पैदा होकर बढ़ा, वह मानो टूटे-फूटे घर-सा उसे छोड़कर और कहीं चला गया। वह अपने आप को हजारों तरह से झिड़कने-धिक्कारने लगी। लेकिन विदाई की वेदना को वह हर्गिज मन से दूर न हटा सकी। यहां तक कि बीच-बीच में भयानक डर से उसके सर्वांग के रोएँ खड़ा करते हुए यह संदेह उसके मन मे झांक-झांककर उठने लगा कि अपने अनजानते उसने कभी सुरेश को चुपचाप प्यार किया है या नहीं। हर बार इस आशंका को वह असंगत अमूलक कहलर टाल देने लगी; अपने आप पर व्यंग करके कहने लगी इस असंभव के सम्भव होने से पहले वह डूब मरेगी— तो भी यह बात छाया-सी उसके पीछे ही लगी रही; घूमते-फिरते वह इसे अपनी आंखों देखने लगी और शायद इसीलिए इस विभीषिका से पिंड छुड़ाने की नीयत से नहाने-खाने भर के समय को छोड़कर रात-दिन मे थोड़ा भी समय पति से अलग रहने का साहस न कर सकी। बगल का जो कमरा उसके लिए था, इन कै दिनों मे उसमे जाने की भी उसकी इच्छा न हुई। ऐसे भी कुछ दिन बीत गए।

महिम लगभग चंगा हो गया। आवहवा बदलने के लिए जल्द ही जल्बलपुर जाने की बात चल रही थी। उस दिन अचला नीचे बैठकर स्टोप पर पति के लिए दूध गरम कर रही थी। दूध बार-बार उफना रहा था, उसे किसी तरफ ताकने की फुर्सत न थी—वह जानती न थी कि महिम अब तक उसी की ओर ताक रहा था—अचानक पति की लम्बी उसांस की आवाज सुनकर उसने सिर उठाकर एक बार देख भर लिया और फिर अपने काम मे लग गई।

महिम कभी भी ज्यादा नही बोलता, मगर आज एकाएक निश्वास फेंककर बोल उठा—सच अचला, बहुत बड़े दुःख के बिना कभी कोई बड़ी चीज नही पाई जा सकती। मेरा घर भी फिर बनेगा और यह बीमारी भी जाती रहेगी—लेकिन इसमे भी जो अनमोल चीज मैंने पाई; वह तुम हो। आज मुझे लगता है, तुम्हारे बिना मेरा एक क्षण भी नही कट सकेगा।

अचला चुपचाप कटोरे के गरम दूध को ठंडा करती रही, बोली नही। कुछ देर रुककर महिम ने फिर कहा—मृणाल सुरेश—इन लोगों ने भी कुछ कम सेवा नही की मेरी, लेकिन न जाने क्यों, जभी तुझे होश आता, मैं घुटन महसूस

करता। बार-बार जी में आता, इन्हें इतनी तकलीफ, इतनी असुविधा हो रही है, इनके इस एहसान का बदला जीवग मैं कैसे चुकाऊँगा ! लेकिन ईश्वर के हाथों का बांधा यह ऐसा सम्बन्ध है कि तुम्हारे बारे में यह फिक्र ही नहीं होती कि यह ऋण कभी मुझे चुकाना ही पड़ेगा ? मुझे बचाना मानों तुम्हारी ही गर्ज है—कहकर महिम जरा हँसा ।

अचला गर्दन झुकाए दूध को चलाती ही गई, बोली कुछ नहीं ।

महिम ने कहा—और कितना ठंडा करोगी, लाओ ।

अचला ने तो भी कुछ नही कहा । नजर झुकाए उसी तरह बैठी ही रही । पहले तो महिम को हैरानी-सी हुई लेकिन वह तुरन्त समझ गया कि मुझ से अपने आंसू छिपाने ही लिए वह उस तरह सिर गाड़े बैठी है ।

सुरेश क्यों नहीं आता है, इसका वास्तविक कारण न समझते हुए भी महिम ने कुछ अनुमान नहीं किया था, सो नही । इसके लिए उसके मन मे क्षोभ मिली हुई एक खुशी ही थी। क्योंकि अचला सतर्क हो गई है, अकेले में अचानक भेंट हो जा सकती है, इस खतरे से वह सहज ही कमरे से बाहर नही निकलती , महिम ने यह अनुभव किया । इसलिए आज उसका मन मानों बसन्त की हवा में उड़ता रहा । उसकी खाट के करीब ही एक चौकी पडी थी । उस दिन काफी रात तक अचला उसी पर बैठी कोई किताब पढ़ रही थी और थककर बाकी रात वही सो रही । सबेरे महिम के जगाए वह हड़बड में जगी । खिड़की खोलकर देखा, वेला हो आई है ।

महिम किसी काम के लिए उसे कहते-कहते रुक गया और सिर से पांव तक स्त्री को बार-बार गौर करके अचरज मे पूछा - तुम्हारी अपनी चादर क्या हो गई ?

उससे भी ज्यदा हैरत मे आकर अचला ने देखा—अभी-अभी जगने के बाद जो चादर वह लपेट कर आई है, वह सुरेश की है । पति के इस सवाल ने मानों उसे कोड़ा लगाया । लाज और दुःख से सारा चेहरा बदरंग हो गया । मगर यह हुआ कैसे, वह सोच ही न पाई । याद आया, रात जब वे सो गए थे तो अपनी चादर चपोतकर वह उनके पैरों पर रख कर खुद अंचरा ओढ़े ही पढ़ने बैठ गई थी । इतना ही सिर्फ याद आया, कि नींद में उसे सर्दी-सी लगी थी, और अब जगकर यही देख रही है ।

स्त्री के शर्माए चेहरे को देखकर महिम स्नेह से कौतुकपूर्ण हँसी हँसा । बोला—इसमें इतने शर्माने की क्या बात है अचला ? हो सकता है नौकर ही

उलटा-पुलटा कर दिया हो, तुम्हारी चादर वहां और उसकी यहां रख दी हो। या सुरेश खुद ही कल शाम को यहां छोड़ गया हो, तुमने बदन पर रख ली। बैरे से कह दो, बदल देगा।

कहती हूँ, कहकर अचला चादर लिए बाहर आई और जब अपने कमरे में विमूढ़-सी बैठ गई, तो कुछ भी समझना बाकी न रहा। काफी रात बीतने पर सुरेश चुपचाप कमरे मे आया होगा और उसे जड़ासे देख स्नेह जतन से अपनी चादर उढ़ाकर चला गया होगा। इस बात में उसे जरा भी संदेह न रहा। आंखें मूँद कर उसकी वह झुकी और प्यास भरी निगाह वह स्पष्ट देख पाई। और उसके रोंगटे खड़े हो गए। उसे ऐसा लगा कि सुरेश उसीको देखने तथा अच्छी तरह से देखने के लिए आया होगा और शायद रोज ही आता है, किसीको मालूम भी नहीं हो सकता।

इस आचरण से उसकी लज्जा की सीमा न रही। इसे घिनौना, निंदनीय, असभ्य कहकर वह हजार तरह से लथेड़ने लगी; मेहमान के प्रति मकान मालिक का चोरी-चोरी ऐसा करने को अपने जीवन में कभी न क्षमा करने की बार-बार प्रतिज्ञा की। फिर भी उसका मन इस अभियोग के लिए खुलकर हामी नहीं भर रहा है, यह भी उसने समझा। लेकिन साथ ही उसके आगे यह भी स्पष्ट हो गया कि आज तक क्या और कहां चुभता रहा उसे।

केदार बाबू के कोई बचपन के साथी जबलपुर मे रहते थे। उनके यहां से जवाब आया, जलवायु और कुदरती नज्जारों के लिए यह जगह बड़ी ही अच्छी है। मेरा घर भी काफी बड़ा है। महिम आये तो बड़े मजे में यहीं रह सकता है।

एक दिन सबेरे केदार बाबू ने आकर यह बताया। कहा—माघ महीना बीत चला। और राह की थोड़ी बहुत तरद्दुद झेलने लायक भी हो ही गए तो अब देर काहे की? चल ही देना चाहिए। जवानी में एक बार वे जबलपुर गए थे। उस की स्मृतियां मन में थी, उन्हीं का बड़े उमंग से वर्णन करते हुए बोले--जगदीश की स्त्री अभी जीवित है, वे मां के समान महिम को जतन करेंगी और इसी बहाने उनका भी फिर एक बार जबलपुर जाना हो जायेगा। महिम चुपचाप सब सुनता रहा, पर कोई उत्साह नहीं दिखाया। उसकी यह उदासी सिर्फ अचला ने ही देखी। पिता जब वहा से चले गये तो उसने धीमे-धीमे पूछा--क्यों जबलपुर तो अच्छी जगह है, नहीं जाना चाहते हो?

महिम ने कहा---तुम लोग मुझे जितना तन्दुरुस्त और सबल समझ रही हो, हकीकत में उतना मैं अभी हुआ नही--कभी हूँगा या नही, मैं इसकी भी आशा नहीं करता।

अचला ने कहा - जभी तो डाक्टर ने जलवायु परिवर्तन करने की सलाह दी है। घूम आओ, सब ठीक हो जायेगा।

महिम ने धीरे-धीरे गर्दन हिलाई और जरा देर चुप रहा। बोला—क्या जानें। लेकिन ऐसी हालत में अपने या और किसी के भरोसे मुझे स्वर्ग जाने का भी भरोसा नहीं होता! अन्दर से मैं बहुत अस्वस्थ, बहुत कमजोर हूँ अचला? तुम पास न रहो, तो शायद ज्यादा दिन न बचूंगा। कहते-कहते उसकी आवाज भर्रा गई।

वह जबान खोलकर कभी कुछ मांगता नहीं, कभी कोई कमी और दुःख नहीं जाहिर करता। सो उसके मुंह की इस व्याकुल याचना ने मानों कील चुभोकर अचला के हृदय में अब तक के सारे रुंधे स्नेह, करुणा और माधुर्य का मुंह खोल दिया। वह अपने आपको और सम्हाल न सकी और कहीं कुछ कर न बैठे इस डर से आंसू दबाती हुई दौड़कर वहां से भाग गई। महिम बड़ी देर तक अचरज और दुःख से खुले दरवाजे की तरफ देखता रहा, फिर धीरे-धीरे लेट गई।

फिर जब दोनों की भेंट हुई, तो दो में से किसी ने भी इसके बारे में कोई बात न की। दूसरे दिन सबेरे हाथ में एक तार लिए आई और मुस्कुरा कर बोली—जगदीश बाबू ने तार का जवाब दिया है, उन्होंने अपने मकान के पास ही हम लोगों के लिए एक छोटा-सा मकान ठीक किया है।

महिम ठीक न समझ पाकर बोला—मतलब इसका?

अचला बोली—वे पिताजी के मित्र हैं, इस नाते उन्होंने आपको जगह दी, माना, मगर दो-दो आदमी तो उनके कंधे पर जाकर नहीं लद जा सकते। इस लिए मैंने कल ही पिताजी को लिख भेजा था कि एक दूसरा मकान ठीक करने के लिए उन्हें तार दे दें। उसीका यह जवाब है। यह कहकर उसने पीला-सा लिफाफा पति के बिछावन पर फेंक दिया।

महिम ने उसे उठाकर शुरू से अन्त तक पढ़कर सिर्फ अच्छा कहा। वह समझ गया कि अचला स्वेच्छा से साथ जाना चाहती है। लेकिन कल वाले आचरण को याद करके जो आज भी उसके लिए ऐसा ही दुर्बोध, वैसा ही दुर्ज्ञेय है, किसी तरह की चंचलता दिखाने की उसे इच्छा न हुई।

किन्तु अचला की ओर से सफर की पूरी तैयारी होने लगी। उस दिन दोपहर को इस घर में आकर वह अपने सरो-सामान ठीक कर रहा थी। केदार बाबू दरवाजे के पास कुछ देर तक खड़े-खड़े देखते रहकर बोले—तुम न जाओ, तो कोई हर्ज है बेटी?

अचला ने चौंककर देखते हुए पूछा—क्यों पिताजी?

सेहत और इलाज के लिहाज से उसका साथ रहना ठीक नहीं है। पिता होकर बेटी से यह कहने में उन्हें शर्म नहीं आई। इसलिए महिम की मौजूदा आर्थिक स्थिति का इशारा करते हुए बोले—कौन ज्यादा दिन की बात है! फिर जगदीश के यहां उसे कोई तकलीफ ही नहीं होगी। कुछ दिनों के लिए नाहक ही ज्यादा खर्च करके—

असली बात अचला ने नहीं समझी! उसने पिता की ओर नजर उठाकर पूछा—शायद उन्होंने कहा था!

नहीं-नहीं महिम ने कुछ नहीं कहा—मैं ही ऐसा सोच रहा हूँ—

तुम कुछ न सोचो—मैं सब ठीक कर लूंगी—कहकर उसने अपने सामान में ध्यान लगाया। दूसरे ही दिन अपने दो जेवर बेचकर उसने नकद रुपये मंगवाकर रक्खे।

फागुन के बीचों-बीच जाने का विचार था, पर सुरेश की फूफी ने पंडित से पत्रा दिखलवाकर पहले ही हफ्ते में यात्रा का दिन तै कर दिया। सबको वही राय माननी पड़ी।

जाने के दो दिन पहले से ही अचला का मन हवा में तिरता फिरने लगा। कलकत्ता से बाहर कुछ दिनों के लिए ससुराल में रहने के सिवाय वह कभी बाहर नहीं गई, पश्चिम की तो उसने कभी शक्ल ही नहीं देखी। वहाँ कितनी पुरानी निशानियाँ है, कितने वन-जंगल, पहाड़-पर्वत, नद-नदी, जल-प्रपात, कितना कुछ है, जिनके बारे में लोगों की जबानी सुनने के सिवाय आँखों देखने की कल्पना कभी उसके मन में भी नहीं आई। वही सारे आश्चर्य, अब वह अपनी आँखों देखने जा रही है। इस के सिवाय वहां उसके पति को सेहत मिलेगी, वहाँ अकेली वही पति की घरनी, गृहिणी, सभी कामो में हाथ बटाने वाली रहेगी। तन्दुरुस्ती के लिए वहाँ की आब-हवा अच्छी है, जीवन-यात्रा का पथ सहज-सुगम है; ये अच्छे हो गए तो वहीं कभी अपनी दुनिया बसाएगी, और निकट भविष्य मे जो अनचिन्हे अतिथि एक-एक करके आकर उनकी गिरस्ती को भरी-पूरी कर देंगे, उनके कोमल मुखड़े निहायत चिन्हे जाने से ही मानो उसकी निगाहों पर नाचने लगे। ऐसे जाने सुख के कितने सपने उसके दिमाग मे रात-दिन चक्कर काटने लगे। पति उसे छोड़कर अकेले अब स्वर्ग जाने का भी भरोसा नहीं करते, इस बात ने तो उसकी सारी चिन्ता को मधुमय कर दिया। अब उसे किसीके लिए न तो शिकवा रहा, न शिकायत; हृदय की सारी ग्लानि धुल गई और मन गंगाजल-सा निर्मल तथा पवित्र हो गया। उसे इस बात की बड़ी इच्छा होने लगी कि जाने के पहले एक बार मृणाल से भेंट हो जाय, उसे

अपनी छाती से लगाकर जाने-अजाने अपने सभी अपराधों के लिए क्षमा माँग ले। आज सुरेश के लिए भी उसका प्राण रोने लगा। परम बन्धु होने के बाद भी जो वह आज लाज और संकोच से उन लोगों के सामने नहीं आता, उसकी बदनसीबी की इस वेदना का उसने आज जैसा अनुभव किया, और कभी नहीं किया था। उस से भी हृदय से क्षमा मांगनी है। लेकिन खोज करने पर पता चला, वे कल से ही घर पर नहीं हैं।

जाने के दिन सुबह से ही बदली घिर आई। बूँदा-बांदी शुरू हो गई। सामान बाँधे जा चुके थे, कुछ-कुछ स्टेशन भी भेज दिए गए थे, टिकट तक कटा लिया गया था। अचला के लिए भी दूसरे ही दर्जे का टिकट लेने की बात चली थी, लेकिन उसने एतराज किया। कहा—रुपया फूंकने ही का शौक हो, तो कटाओ। मैं स्वस्थ हूँ, सबल हूँ और कितने बड़े-बड़े घर की स्त्रियां ड्यौढ़े दर्जे के जनाना, डब्बे में सफर करती हैं, मैं नहीं कर सकती ? ड्यौढ़े से ऊपर मैं हर्गिज नहीं जाऊंगी।

आखिर वैसा ही किया गया।

पूरे दो दिन सुरेश के दर्शन नहीं। लेकिन आज दिन अच्छा न था, चाहे इस लिए या और किसी कारण से, वह अपने पढ़ने वाले कमरे में ही था। उस आनन्द-विहीन कमरे में अचला ने बसन्त के एक झोंका-सा प्रवेश किया। उसकी आवाज में खुशी छलकी पड़ रही थी। बोली—इस जन्म में अब हम लोगों की आप शक्ल ही न देखेंगे क्या ? ऐसा क्या अपराध किया है, कहिए तो ?

सुरेश चिट्ठी लिख रहा था। नजर उठाकर उसने देखा। अपना घर जल जाने के बाद उसके आस-पास के पेड़-पौधों की जो सूरत अचला देख आई थी, सुरेश के इस चेहरे ने उनकी ऐसी याद दिला दी कि वह मन-ही-मन सिहर उठी। बसन्त की हवा निकल गई—वह भूल गई कि क्या कहने आई थी, पास जाकर उद्विग्न होकर पूछा—तबीयत खराब है सुरेश बाबू ? मुझ से नहीं कहा ?

सुरेश ने क्षण को ही नजर उठायी थी। तुरत झुकाकर बोला - नहीं, तबियत मेरी खराब नहीं हैं,मैं ठीक हूं। उसके बाद किताब के पन्ने पलटता हुआ बोला—आज ही तो जा रही हो—सब ठीक हो गया ? जानें अब कब तक भेंट न होगी।

लेकिन दो-एक मिनट तक दूसरी तरफ से कोई जबाब न पाकर अचरज से उसने सिर उठाकर ताका। अचला की दोनों आंखें लबालब भर गई थीं, आंख मिलते ही आंसू की बड़ी-बड़ी बूंदें टपाटप चू पड़ीं।

सुरेश की नसों में गरम खून खौल उठा, लेकिन आज सारी शक्ति लगाकर अपने को जब्त करके उसने सर झुका लिया।

आंचल से आंसू पोंछकर अचला ने गाढ़े स्वर में कहा--तुम्हारी तबियत हर्गिज अच्छी नहीं है। तुम भी हम लोगों के साथ चलो।

सुरेश ने सिर हिलाकर कहा—नहीं।

नहीं क्यों ? तुम्हारे लिए—बात पूरी न हो सकी। बाहर से बैरे ने आवाज दी—बाबूजी, चाय—और पर्दा हटाकर वह अन्दर आया, साथ ही साथ मुँह फेरकर अचला बाहर चली गई।

घण्टे भर बाद जब वह कमरे मे गई तो महिम ने पूछा— सुरेश दो दिनों से गया कहां है, जानती हो ? फूफी से भी कुछ नहीं बताया है। वह आज मुझसे भेंट नहीं करेगा क्या ?

अचला ने धीरे-धीरे कहा - आज तो वे घर ही पर हैं। महिम ने कहा— नहीं ! अभी-अभी नौकरानी कह गई—वह सबेरे ही निकल गया है।

अचला चुप रही। थोड़ी ही देर पहले उससे भेंट हुई है, वह बीमार है, छुट-पन की तरह इस बार भी उसने तुम्हारी जान बचाई है—केवल इसी एहसान से उसको एक बार बुलाना तुम्हारे लिए उचित है—उससे अब खतरा नहीं— शर्म से भरी हुई शंका की निगाह से देखकर और मत लजाओ— उसके मन की इन बातों में से एक भी आवाज जीभ से बाहर नहीं निकली। वह पति की ओर ठीक से ताक भी न सकी। चुपचाप किसी काम में लग गई।

धीरे-धीरे स्टेशन जाने का समय करीब आ गया। नीचे केदार बाबू की चीख-पुकार सुनाई पड़ी और फूफी भरा घट लिए व्यस्त हो पड़ीं। नौकरों ने गाड़ी पर सारा सामान लाद दिया, लेकिन जो मकान-मालिक थे, उन्हीं का कोई पता नहीं चला। फिर भी इस पर खुलकर आलोचना करने की किसी को हिम्मत न हुई - अन्दर-अन्दर मामला कुछ ऐसा था कि उसने मानो सबको कुण्ठित कर दिया था।

अकेले में पाकर बेटी के माथे पर हाथ रखकर केदार बाबू ने स्नेह-सने स्वर में कहा—सती हो बिटिया, मां सी हो ओ। बुढ़ापे के कारण बहुत बुरा-भला कहा है—रंज मत होना; कहकर वे झटपट वहाँ से खिसक गए।

गाड़ी पर सवार होकर अकेले में महिम ने दुःखी होकर अचला से कहा— आखिर उसने हमसे भेंट नहीं ही की। उससे एक बात कहने के लिए मैं दो दिनों तक उसकी प्रतीक्षा करता रहा।

पिता की बात से उस समय अचला की आंखों से आंसू बह रहा था। उसने केवल गर्दन हिलाकर कहा—नहीं।

ओट में फूफीं खड़ी थीं। भक्ति से उन्हें प्रणाम करके अचला ने उनके चरणों की धूल जो ली, गद्‌गद् होकर असंख्य आशीर्वाद देती हुई वे बोल उठीं—तुम्हारा

सुहाग अक्षय हो बिटिया, पति को आरोग्य करके जल्द लौट आओ, ईश्वर से यही प्रार्थना है।

मेरे लिए यही सबसे बड़ा आशीर्वाद है फूफी !--आंखें पोंछती हुई वह गाड़ी पर जा बैठी। बात केदार बाबू के भी कानों गई। वे अक्षम्य लज्जा से मानो मर-से गए।

सत्ताईस

हवड़ा से गाड़ी छूटने में दसेक मिनट की देर थी। बाहर बादलों से भरा आसमान। बूंदा-बांदी का विराम नहीं। लोगों के चलने से सारा प्लेटफार्म कीचड़ से भर गया था, लोग मठरी-मोटरी लिए किसी तरह सम्हल-सम्हलकर जगह ढूंढ़ते फिर रहे थे, ऐसे में अचला ने देखा, हाथ में एक बड़ा-सा बैग लिए सुरेश आ रहा है।

अचरज और दुश्चिंता से केदार बाबू का चेहरा स्याह हो उठा; उसके पास न आते न आते वे चीख उठे –अरे, माजरा क्या है सुरेश ? तुम कहां चले ?

जवाब सुरेश ने अचला को दिया। उसीकी ओर देखकर सूखी हंसी हंसते हुए कहा—न; मैंने देखा, तुम्हारा उपदेश, तुम्हारा आमंत्रण, किसीकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। आज सबेरे आंख में उंगली गड़ाकर तुमने बता न दिया होता, तो मैं समझ ही न पाता कि सेहत मेरी कितनी खराब हो गई है। चलो, कुछ दिन तुम्हारा ही मेहमान होकर रहूँ, देखूं, ठीक हो सकता हूँ कि नहीं ! सच कह रहा हूँ न—

ठीक तो है, ठीक तो। उसके अलावा नई जगह मे हमें काफी मदद भी मिल जायगी; कहकर महिम ने अचला की ओर देखा। उसकी उस मौन और दुःखी निगाह ने मानो शोर करके सबको सुनाते हुए अचला से कहा---मुझसे क्यों नहीं कहा ? जिसकी सेहत के लिए इतनी उत्कंठा रही, आज सुबह तक तुम दोनों ने जिस बात की चर्चा की—उसकी खाक भी खबर मुझे क्यों नहीं होने दी ? इस चुप-चुप की क्या जरूरत थी अचला ?

लेकिन अचला उधर को मुंह फेरे रही और सुरेश कुछ समय तक विमूढ़-सा रहकर अचानक अन्दर की उत्तेजना को बाहर ढकेलकर नाहक ही परेशान-सा बोल उठा—लेकिन अब समय तो है नहीं। चलो, गाड़ी पर ही बातें होंगी। चलिए

केदार बाबू, कहकर केवल सामने की ओर ही नजर किए मानो सब को ठेलता ही ले चला।

बड़ी देर तक केदार बाबू कुछ नहीं बोले। महिम को उसकी जगह पर बिठाकर अचला को उन्होंने औरतों वाले डब्बे में चढ़ा दिया। केवल उस समय जब गाड़ी छूटने लगी और झुककर उन्हें प्रणाम करके सुरेश महिम की बगल में जा बैठा, तो उन्होंने कहा—तुम्हीं साथ रहे, आशा है, रास्ते में कोई तकलीफ न होगी। औरतों वाला डब्बा जरा दूर है, बीच-बीच में जरा खोज-खबर लेते रहना सुरेश! महिम से कहा—पहुँचते ही समाचार भेजना न भूलना। ख्याल रहे। मैं बेताब रहूँगा—कहकर उन्होंने आंसू रोकते हुए प्रस्थान किया। उनका वह उदास चेहरा और स्नेहगीला स्वर बड़ी देर तक दोनों मित्रों के कानों में गूंजता रहा।

गाड़ी छूटी और सर्दी लगने के डर से महिम झट कम्बल लपेटकर लेट गया, लेकिन सुरेश वहीं उसी तरह बैठा रहा। वहां उसकी शक्ल की तरफ गौर करने वाला कोई नहीं था, अगर होता तो कोई भी देखकर कह सकता कि आज उन दो आंखों की निगाह हर्गिज स्वाभाविक न थी—भीतर बहुत बड़ी कोई अगलग्गी न होते रहने से किसी की आंख से ऐसी तीखी रोशनी छिटक ही नहीं सकती।

पैसेंजर गाड़ी हर स्टेशन पर रुकती-रुकती धीमी चाल से बढ़ने लगी और बाहर बारिश होती रही। किसी बड़े स्टेशन पर गाड़ी रुकने को हुई तो चादर में लिपट मुंह बाहर निकाल कर महिम ने कहा—भीड़ तो थी नहीं, थोड़ा सो क्यों नहीं लिया सुरेश? ऐसी सुविधा तो हर वक्त नहीं मिल सकती।

सुरेश ने चौंककर कहा—हां, सो रहता हूँ।

इसका यह चौंकना ऐसा बेतुका और अहेतुक लगा कि महिम आश्चर्य से अवाक् हो गया। मानो वह उससे छिपाकर कोई गुनाह कर रहा था, पकड़ जाने के खौफ से डर गया है। इस आशंका को महिम देर तक मन से निकाल नहीं सका।

गाड़ी रुक गई।

अपनी स्थिति समझकर हंसी के आभास से मुखड़े को कुछ सरस बनाकर कहा—मैंने सोचा था, तुम सो रहे हो, सो चौंक उठा—

महिम ने केवल 'हूँ' कहा—बिना जरूरत की यह सफाई भी उसे अच्छी नहीं लगी।

सुरेश बोला—उन्हें किसी चीज की जरूरत है कि नहीं, पूछता—

लेकिन पानी नहीं पड़ रहा है?

खास नहीं। मैं झपटकर देख आता हूँ; और सुरेश दरवाजा खोलकर बाहर निकल गया। औरतों वाले डब्बे के पास जाकर देखा—अचला को एक हमउम्र

साथिन मिल गई है। वह उसीसे गप-शप कर रही है। उसी लड़की ने पहले सुरेश को देखा और अचला को छूकर इशारा करके मुँह फेरकर बैठ गई। अचला ने पलटकर देखा। सुरेश ने, कुछ चाहिए या नहीं, यह पूछा--। अचला ने सिर हिलाकर नाहीं की। कहा—तुम्हें पानी में नहीं भीगना है, चल दो। कहकर वह खिड़की के पास आ गई। धीमे से कहा – मेरी फिक्र की जरूरत नहीं, जिनकी फिक्र है, उनका जरा ख्याल रखना।

सुरेश ने कहा—उसका ख्याल है। लेकिन तुम्हें खाने को कुछ, पानी—

अचला ने मुस्कराकर कहा नहीं-नहीं, कुछ भी नहीं चाहिए। तुम भीग-भीगकर बीमार पड़ना चाहते हो क्या ?

सुरेश ने एक नजर अचला को देखा और निगाह नीची कर ली। कहा—चाहता तो जमाने से हूँ, मगर अभागे के पास बीमारी भी तो फटकना नहीं चाहती !

सुनकर अचला की कनपटी तक शर्म से लाल हो उठी—लेकिन नजर उठाते ही सुरेश कहीं देख न ले, इस आशंका से किसी कदर उसने इसे दिल्लगी की शक्ल देने की कोशिश करते हुए हंसकर कहा—अच्छा तुम चलो तो सही। वह काम करा-ऊँगी तुमसे कि—

लेकिन बात को वह पूरी नहीं कर सकी। उसकी छिपी लज्जा ने इस बना-वटी दिल्लगी के बाहरी प्रकाश को बीच में ही झिड़कते हुए रोक दिया।

गाड़ी छूटने की घंटी बजी। क्या कहना चाहते हुए भी सुरेश बिना कहे चला जा रहा था कि बाधा पाकर उसने उलटकर देखा—उसकी चादर का एक छोर अचला की मुट्ठी में है। वह फुसफुसा कर गरज-सी उठी—मैंने तुम्हें साथ चलने को कहा था, यह बात तुमने सबके सामने क्यों कह दी ? मुझे इस तरह से अप्रतिभ क्यों बनाया ?

ठीक इसी बात के लिए तब से सुरेश के अन्दर उथल-पुथल मची थी और वह पाश्चाप से जल रहा था। इसलिए वह करुण स्वर में बोला—अनजानते मुझसे अपराध हो गया अचला।

अचला जरा भी नर्म न पड़ी। वैसी ही गरम होकर कहा—अनजानते ! सबके सामने मेरी हेठी कराने के लिए जानकर ही कहा तुमने।

गाड़ी चल पडी। सुरेश को और कुछ कहने का मौका न मिला; अचला ने उसकी चादर छोड़ दी और वह धडकता दिल लिए तेजी से चला गया। वह बेशक किसी तरफ निगाह किए बिना चल पड़ा, लेकिन नजरों से उसका पीछा करते हुए और एक जने की धड़कन थम जाने को हुई। अचला ने देखा—अपने डब्बे में खिड़की

से बाहर सर निकाल कर महिम उन्हीं लोगों को देख रहा है। अचला जब अपनी जगह पर आ बैठी, तो उस लड़की ने पूछा—यहीं हैं आपके बाबू ?

अनमनी अचला केवल हूँ करके सूनी आंखों बाहर खेत-खलिहान, पेड़-पौधों को देखती रही। जिस गप को अधूरा छोड़कर वह सुरेश के पास गई थी उसे फिर से पूरा करने की उसे इच्छा न हुई।

फिर गांव और गांव, शहर और शहर पार होने लगा, उसके मन की कुढ़न फिर जाती रही तथा चेहरा निर्मल और प्रशान्त हो गया। फिर से वह अपनी हम-सफर से खुशी-खुशी बात करने लगी; जिस शर्म ने घंटा भर पहले उसे मायूस कर दिया था, वह याद भी न रही।

किसी बड़े स्टेशन पर सुरेश खानसामा के हाथों चाय और खाने की चीजें लेकर हाजिर हुआ। अचला ने सब कुछ रखवाकर शिकायत करते हुए कहा—इन झंझटों के लिए तुमसे किसने कहा ? तुम्हारे मित्र रत्न ने शायद ?

अचला खूब जानती थी कि इन बातों में सुरेश किसी के कहने की अपेक्षा नहीं रखता, फिर भी अन मांगे इस जतन के लिए इतनी-सी चिकौटी काटे बिना वह न रह सकी।

सुरेश होंठ दबाकर हंसते हुए चला जा रहा था, अचला ने आवाज दी—उसके होठों पर हंसी का वह आभास अभी था ही। उसे देखते ही अचला सहसा फिक् करके हंस पड़ी कि लाज से लाल हो उठी। उस लाल आभा को सुरेश ने दोनों आंखों मानो जी भर कर पी लिया।

अचला ने दर असल पति के बारे मे जानने के लिए ही सुरेश को फिर से पुकारा था कि उन्हें कोई तकलीफ या असुविधा तो नहीं है या कि कोई जरूरत है या नहीं—एक बार आ सकेंगे क्या—एक-एक कर यही बातें जानने की इच्छा, उसके बाद अब एक भी बात पूछने की उसे शक्ति न रही। उसने बेतुकी गंभीरता से सिर्फ इतना पूछा—हमें इलाहाबाद में गाड़ी बदलनी होगी ? कितनी रात को गाड़ी वहां पहुँचेगी, मालूम है आपको ? पता करके कह जाएंगे मुझे।

अच्छा। इतना कहकर सुरेश कुछ चकित-सा हो चला गया।

लौटकर अचला ने देखा, वह लड़की अपनी जगह से दूर हटकर बैठी है। जी की खीझ को सम्हाल न पाकर अचला ने पूछा—आपके यहां लोग चाय-डबल रोटी नहीं खाते ?

वह नम्रता के साथ हँसकर बोली—भला पूछती हैं, इस बला से भी कोई घर बचा है ? सभी खाते हैं।

अचला ने कहा—फिर घृणा से दूर जो खिसक गईं ?

उसने शर्माकर कहा—नहीं बहन, घृणा से नहीं; मर्द तो सभी खाते हैं, लेकिन मेरे ससुर यह सब पसंद नहीं करते, और हम औरतों को—

ऐसे ही खाने-छूने के मामले में मृणाल से उसकी जुदाई हुई थी। उस दिन भी जिस कारण से अपने को रोक नहीं सकी थी, आज भी वैसी ही एक जलन से वह अपने को भूल बैठी और रुखाई के साथ उससे बोली—मैं आपको तंग नहीं करना चाहती, आप मजे में अपनी जगह पर आकर बैठ सकती हैं—और पलक मारने भर की देर में अचला ने चाय-रोटी खिड़की के बाहर फेंक दी। वह लडकी बड़ी देर तक काठ की मारी-सी रही, उसके बाद मुँह फेरकर आंचल से आंसू पोंछने लगी। शायद उसने यही सोचा, इतनी देर के परिचय और बातचीत की जिसने कोई मर्यादा नहीं रक्खी, आंसू देखकर न जानें वह क्या कर बैठे।

थोड़ी देर के लिए बारिश थम जरूर गई थी, मगर आसमान में बादल जमते ही चले जा रहे थे। तीसरे पहर के करीब फिर बारिश जम गई। वह लड़की इसी पानी में उतर जायगी—तैयार होने लगी।

अचला से और रहा न गया, वह उसके पास जा बैठी। उसकी हथेली अपनी मुट्ठी मे लेकर स्निग्ध स्वर में कहा—अपने व्यवहार पर मैं बेहद शर्मिंदा हूं। आप मुझे माफ करें।

वह हँसी, लेकिन तुरत उत्तर न दे सकी। अचला ने फिर कहा—मेरा मन ठीक नहीं रहने पर मैं क्या कर बैठती हूँ, कोई ठिका नहीं। पति बीमार है, उन्हें लेकर जल-वायु परिवर्तन के लिए बाहर जा रही हूँ—अच्छे हो गए तो ठीक ही है, नहीं तो इस परदेश में क्या बीतेगी, भगवान् ही जानते हैं। कहते-कहते उसका गला भर आया।

उस लड़की ने आश्चर्य से कहा—मगर आपके पति को देखकर तो यह नहीं लगता कि बीमार हैं।

अचला ने कहा—मेरे पति इसी गाडी में हैं, आपने उन्हें नहीं देखा है। ये मेरे पति के मित्र हैं।

वह लड़की और भी हैरान होकर चुप रही।

उस समय जब इसने पूछा था, यही क्या आपके बाबू है, तो अनमनी अचला ने हुँ कर दिया था, यह अचला को याद न था, लेकिन वह न भूली थी। सो उसके चकित होने को अचला ने अनुभाव से ग्रहण किया। सुरेश से उसकी बातचीत का ढंग उसे कैसा बुरा लगा, मन ही मन इसकी कल्पना करके वह लाज से मर गई। और निहायत बेमानी और भद्दा-सा जवाब दे बैठी—हम लोग हिन्दू नहीं हैं, ब्राह्म हैं।

उसने फिर भी जब कोई जवाब नहीं दिया, तो अचला ने उसका हाथ छोड़ दिया। कहा—आप चूंकि हमारा आचार-व्यवहार ठीक-ठीक समझ नहीं सकतीं, इसलिए हमें अजीबो-गरीब न समझें !

अबकी वह लड़की हँसी। बोली—हम तो ऐसा नहीं सोचतीं, आप ही लोग बल्कि जिस कारण से भी हो, हमसे दूर रहना चाहते हैं। यह मैंने कैसे जाना, कि हमारे दो-एक अपने लोग आपके समाज के हैं। उन्हींसे मैंने जाना। कहकर वह हंसने लगी।

अचला ने पूछा—वह कारण क्या है ?

वह बोली—वह आप जरूर जानती होंगी। नही जानती हों, तो समाज के किसी से पूछ देखें। इसके बाद हँसकर इस प्रसंग को दबाते हुए वह बोली—अच्छा, अपने पति को लेकर इतनी दूर न जाकर हमारे यहां क्यों नहीं चलतीं ?

कहां आरा ?

राम कहिए ! वहां भी आदमी रहता है ! मेरे पति ठेकेदारी करते हैं, इसीलिए मुझे कभी-कभी वहां जाकर रहना पड़ता है। मैं डिहरी की बात कह रही हूँ। सोन नदी के किनारे अपना छोटा-सा घर है। वहां दो दिन रहने से आपके पति चंगे हो जायंगे। चलेंगी ?—अचला के दोनों हाथ अपनी गोदी में लेकर वह उसकी ओर ताकने लगी।

इस अपरिचित स्त्री की उत्सुकता और हार्दिक आग्रह देखकर अचला मुग्ध हो गई। बोली—लेकिन इसके लिए आपके पति की अनुमति होनी चाहिए। उनके कहे विना कैसे जा सकती हूँ ?

उसने सिर हिलाकर कहा—ऐसा भी क्या ! हम सेवा करने के लिए दासी हैं, इससे क्या सब बात में दासी ? ऐसा सोचें भी मत हुक्म देने में तो हम ही मालिक हैं। वह जगह आपको पसंद न आए तो आप सीधे डिहरी चली आएं—बिल्कुल न सोचें, मैं कह रखती हूँ। अनुमति लेनी हो तो मैं लूंगी, अपको क्या गर्ज पड़ी है ? यह कहकर उस सुहागिन लड़की ने अपनी खुशी की अधिकता से मानो अचला को आच्छन्न कर दिया।

गाड़ी की धीमी चाल से समझ में आया कि आरा स्टेशन करीब आ रहा है। उसने फिर अचला के दोनों हाथ अपनी गोद में लेकर कहा—मेरा स्टेशन आ रहा है, मैं अब उतरूँगी। लेकिन आप सोच-सोचकर जी न खराब करें, कहे जाती हूँ। कोई डर नहीं, आपके पति अच्छे हो जायेंगे। परन्तु वचन दीजिए, लौटती बेर एक बार मेरे घर में पैरों की धूल देंगी ?

अचला ने आंसू रोकते हुए कहा—वह सुअवसर मिला, तो आपसे जरूर मिलती जाऊँगी।

उसने कहा—क्यों नही, सुअवसर जरूर मिलेगा। आपको मैंने पहचान लिया। मैं कहे जाती हूँ, आपकी ऐसी भक्ति और प्यार की ईश्वर कभी उपेक्षा नहीं कर सकते ऐसा ही ही नहीं सकता।

अचला जवाब न दे सकी। मुंह फेरकर उसने उमड़े आंसू को रोका।

बारिश में गाड़ी प्लेटफार्म पर लगी। उसका देवर वहीं खड़ा था। उसने आकर दरवाजा खोल दिया। उसके कान के पास मुंह ले जाकर अचला ने चुपचाप कहा—अपने पति का नाम तो नहीं लेंगी आप, जानती हूं, मगर अपना नाम तो बताइए। अगर कभी आऊँ, तो आपको ढूंढूंगी कैसे ?

उसने जरा हँसकर कहा—मेरा नाम राक्षसी है। डिहरी में जिस बंगाली लड़की से भी पूछेंगी, मेरा ठिकाना बता देगी। मगर दोनों जने एक बार आइए, मेरे सर की कसम, मैं राह देखती रहूँगी। सोन के किनारे पर ही मेरा घर है। इसके बाद उसने दोनों हाथ जोड़कर अचला को नमस्कार किया और भीगती हुई चली गई।

भाफ की गाड़ी फिर धीरे-धीरे चल पड़ी। अभी-अभी सांझ हुई थी, किन्तु वर्षा के साथ हवा के झोंकों ने दुर्योग की इस रात को और भी भयंकर कर दिया था। खिड़की के काच के बाहर देखते-देखते उसकी आंखें दुख गई— उसे यही लगने लगा कि इस हाथ को हाथ न सूझने देने वाले अंधेरे ने उसके आदि-अंत को लील लिया है। जोत का, आनन्द का मुखड़ा अब वह कभी नहीं देख सकेगी —जीवन में अब इससे छुटकारा नहीं। साथीहीन सूने कमरे के एक कोने में जाकर चादर लपेटकर आंखें बन्द किए वह लेट गई। अब उसकी दोनों आंखों से आसू की धारा बहने लगी। यह आंसू आखिर क्यों, उसका यह दुःख ही आखिर क्या है —यह भी नही सोच सकी वह परन्तु रुलाई भी किसी तरह नहीं रोक सकी। अटोक लहरों-सी वह उसके कलेजे को चूर-चूर करती हुई गरजती फिरने लगी। पिता की याद आई, छुटपन की सहेलियों की याद आई, फूफी की भी याद आई, मृणाल की याद आई, अभी-अभी जो लड़की राक्षसी के नाम से अपना परिचय दे गई, उसकी याद आई—यहां तक कि नौकर जद्दू भी मानो उसकी नजर में आने-जाने लगा। उसके मन में ऐसी ही पीड़ा होने लगी, मानो वह जिन्दगीभर के लिए सब से विदाई लेकर निरुद्देश्य यात्रा में निकली हो।

लगातार यों रोते-रोते अगले स्टेशन तक में उसका वेदना-विकल हृदय कुछ

शांत हो आया। वह उठकर आकुल-सी देखने लगी कि शायद कोई स्त्री मुसाफिर इस आफत की रात में उसके डब्बे में आ जाए। भीगते-भीगते कोई-कोई उतरे कोई-कोई सवार भी हुए, पर उसके डब्बे के पास भी कोई नही फटकी।

गाड़ी छूट जाने के बाद एक लम्बी उसांस भरकर वह अपनी जगह पर लौट आई और सिर से पांव तक चादर लपेटकर पड रहते ही अबकी किसी अचिंतनीय कारण से उसका भूखा हृदय सहसा सुख की कल्पना से भर उठा—लेकिन यह कोई नई बात न थी, जिस दिन जलवायु परिवर्तन का प्रस्ताव हुआ था, उस दिन भी उसने ऐसा ही स्वप्न देखा था। आज भी उसे उसी प्रकार अपने बीमार पति को याद करके उनके स्वास्थ्य और दीर्घायु की कामना करके एक अजानी जगह में आनन्द और सुख-शांति का जाल बुनते-बुनते विभोर हो गई।

वह कब सो गई थी और कितनी देर सोई, पता नहीं, एकाएक अपना नाम सुनकर वह चौंककर उठ बैठी - देखा, दरवाजे के पास सुरेश खड़ा है और खुले दरवाजे से हवा के झोंके के साथ पानी ने आकर अन्दर प्लावन-सा कर रक्खा है।

सुरेश ने चिल्लाकर कहा - जल्द उतरो; गाड़ी प्लेटफार्म पर खडी है। तुम्हारा बैग कहाँ है ?

अचला की आंखें तब भी निंदाई थी, लेकिन उसे याद आया, जब्बलपुर के लिए इलाहाबाद में गाड़ी बदलनी है। अपना बैग उसे दिखाती हुई वह हड़बड़ा कर उतर पड़ी। बोली—इस पानी में उन्हें कैसे उतारिएगा ? यहां पालकी-वालकी कुछ नहीं मिलती ? ऐसे तो बीमारी बढ़ जायगी सुरेश बाबू !

सुरेश ने क्या जवाब दिया, बारिश मे समझ में नहीं आया। एक हाथ से बैग और दूसरे से अचला का हाथ कसकर पकड़े हुए वह उधर वाले प्लेटफार्म की ओर लपका। वह गाड़ी खुलने-खुलने को थी। पहले दर्जे के एक सूने डिब्बे में अचला को ढकेलते हुए बोला-- तुम स्थिर होकर बैठो, मैं उसे ले आऊँ।

तो मेरी यह मोटी चादर लेते जाइए, उन्हें अच्छी तरह से ओढ़ा कर लाइए। अचला ने अपनी चादर सुरेश के बदन पर फें कदी। वह तेजी से चला गया।

जहां तक नजर जा सकी, अचला सामने देखती रही। दूर-दूर खंभे पर स्टेशन की रोशनी जल रही थी, पर इस घोर बारिश में वह रोशनी इतनी नाकाफी-सी थी कि कुछ भी लगभग नजर नहीं आ रहा था। मुसाफिर पानी में दौड़रहे हैं, माथे पर बोझा लिए कुली आ-जा रहे हैं, रेल-कर्मचारी परेशान से—यह सब बस धुँधली छाया-सा दीख रहा था। धीरे-धीरे वह भी न दीखने लगा, स्टेशन की घंटी जोरों से वज उठी और जिस गाड़ी से अचला अभी-अभी उतर कर आई थी, खौफनाक अजगर की

नाई फोंस्-फोंस् की आवाज से आकाश-पाताल कंपाती हुई वह प्लैटफार्म से बाहर निकल गई—अंधेरे के सिवा सामने और कोई और ओट न रही।

फिर घंटी बजी। अचला ने समझा कि यह घंटा इस गाड़ी के छूटने की है—लेकिन वे लोग चढ़ गए कि नहीं, कहां चढ़ गए, सामान सब लदा या नहीं—कुछ भी न जान पाकर अचला चिंतित हो गई।

कंबल ओढ़े हाथ में नीली लालटेन लिए एक प्यादा तेजी से जा रहा था। उसे सामने से गुजरते देख अचला ने पुकारकर पूछा—सारे मुसाफिर चढ़ गए या नहीं? पहले दर्जे का डब्बा देखकर वह ठिठक गया। बोला—जी मेम साहब।

अचला कुछ निश्चित-सी हुई। समय पूछा, उसने बताया—नौ बज के—

नौ बज के? अचला चौंक उठी—लेकिन इलाहाबाद पहुँचने में तो रात लगभग बीत जाती। अकुलाकर पूछा—इलाहाबाद—

लेकिन वह आदमी और खड़ा नही रह पा रहा था। ऊपर रोड नहीं था, फिर गाडी की छत से छीटे उडकर उसके नाक-मुंह में सुई-से चुभ रहे थे। हाथ की रोशनी को तेजी से हिलाते हुए, मुगल सराय-मुगल सराय! कहता हुआ वह चला गया।

सीटी बजाकर गाड़ी खुल गई। इतने मे उसके सामने से दौड़ते हुए सुरेश कहता गया, डरो मत, मैं बगल के ही कमरे में हूँ।

अट्ठाईस

सुरेश बगल के डिब्बे में चढ़ गया, ठीक है, मगर वे? तब से वह बाहर ही ही तो आंखें बिछाए है—जितना धुँधला चाहे हो, उनकी शक्ल क्या बिल्कुल नजर ही नहीं आती? फिर इलाहाबाद के बजाय जाने किस नए स्टेशन में आखिर गाड़ी क्यों बदली गई? पानी के छींटे से उसके बाल, उसका ब्लाउज भीगने लगा, फिर भी खिड़की से मुंह बाहर किए कभी सामने, कभी पीछे, अँधेरे में वह क्या देख रही थी, वही जाने। लेकिन उसका मन किसी भी प्रकार से यह मानने को राजी न हुआ कि इस गाड़ी में उसके पति नहीं हैं, वह सुरेश से साथ निरी अकेली किसी दिशाहीन उद्देश्यहीन यात्रा में जा रही है। ऐसा नहीं हो सकता! कहीं न कहीं वे इसी गाड़ी में जरूर है।

सुरेश आदमी चाहे जैसा हो, जो भी करे, मगर एक बेकसूर स्त्री को उसके समाज, धर्म नारी, के सारे गौरव से हटाकर अनिवार्य मृत्यु में ढकेल देगा, ऐसा पागल वह नहीं है। खासकर के इससे उसे लाभ क्या है ? अचला के जिस शरीर के प्रति उसे इतना मोह है, उसे एक वेश्या के शरीर में बदलने को वह जीवित नहीं रह सकती. यह सीधी-सी बात अगर उसने नहीं समझी, तो प्रेम शब्द को जबान पर लाया ही क्यों था ? नहीं-नहीं, ऐसा हर्गिज नहीं हो सकता ! वे कहीं इंजन के आस-पास ही सवार हो गए, वह देख न पाई शायद।

अचानक एक झोंका के आ लगते ही सिमटकर वह एक कोने में चली गई और अपने को देखा. सारे बदन पर का कपड़ा कहीं भी जरा-सा सूखा नहीं रह गया था। बारिश में वह इस कदर भीग गई थी कि अँचरा से लेकर ब्लाउज की अस्तीन से टपाटप पानी चू रहा था। बिना जाने वह जो झेलती रही, जानकर उससे अब वह न झेला गया; कपड़े बदलने की गर्ज से उसने अपने बैग को अपनी ओर खींचकर खोलना चाहा कि गाड़ी की चाल इतने में धीमी पड़ गई। जरा ही देर मे गाड़ी स्टेशन पर जाकर रुकी। पानी जोरों से पड़ ही रहा था, यह जानने की कोई तरकीब न थी कि कौन-सा स्टेशन है; फिर भी बैग खुला ही पड़ा रहा, अंदर के अदम्य आवेग से नीचे उतरकर अंधेरे में अंदाज से झपटकर सुरेश वाले डब्बे की खिड़की के सामने जा खडी हुई।

जोर से आवाज दी—सुरेश बाबू !

उस डब्बे में दो-एक बंगली और एक अंग्रेज सज्जन थे। सुरेश एक कोने मे सिमटकर आंखें बंद किए बैठा था। अचला को आशंका थी, उसके गले से आवाज शायद न निकले, इसीलिए कोशिश से निकाली गई चीख ने ठीक मानो घायल जानवर के ऊंचे चीत्कार की तरह न केवल सुरेश को, बल्कि वहां मौजूद सबको चौंका दिया। हक्के-बक्के सुरेश ने आंख खोलकर देखा—दरवाजे पर खड़ी अचला के चेहरे पर पानी की धारा और आलोक-किरण ने एक साथ ही पड़कर रूप के एक ऐसे इंद्रजाल की रचना की थी कि सबकी मुग्ध दृष्टि विस्मय से एक बारगी आवाक् थी ! सुरेश दौड़ कर उसके समीप पहुँचा कि उसने पूछा—उन्हें नहीं देख रही हूँ -- कहां हैं वे ? कौन-से डब्बे में चढ़ाया उन्हें ?

चलो, ले चलू तुम्हें—कहकर सुरेश बारिश में ही उतर पड़ा और अचला का हाथ पकड़कर उसी तरफ खींचता ले चला, जिधर से वह आई थी।

दोनों बंगाली एक दूसरे को देखकर जरा मुस्कराए, अंग्रेज बेचारा कुछ न समझ सका, लेकिन एक स्त्री की करुण पुकार उसके जी को छू गई थी—जमीन पर

गिरे कंबल को अपने पांव पर खींचकर उसने एक लंबी सांस ली और चुपचाप अंधेरे में बाहर देखता रहा।

अचला के डब्बे के पास जाकर सुरेश ठिठक गया, अंदर देखकर घबराते हुए पूछा तुम्हारा बैग खुला कैसे है ? उसने अचला के जवाब का इंतजार नहीं किया—जोर से खींचकर अचला को अंदर ले जाकर दरवाजा बंद कर दिया।

उंगली से दिखाते हुए पूछा—इसे खोला किसने ?

अचला ने कहा—मैंने। मगर छोड़ो उसे, वे कहां हैं, मुझे दिखा दो, या सिर्फ बता दो, किधर हैं, मैं खुद ढूंढ़ लूंगी। कहते-कहते उसने दरवाजे की तरफ कदम बढ़ाया। सुरेश ने झट उसका हाथ थाम लिया। कहा—इतनी घबरा क्यों रही हो, देखती नहीं, गाड़ी खुल गई ?

बाहर अंधेरे की ओर देखकर ही अचला समझ गई, बात ठीक ही है। गाड़ी चलने लगी थी। उसकी दोनों आंखों में निराशा मानो आकार लेकर दिखाई दी। उसने मुड़कर पलभर के लिए सिर्फ सुरेश के पीले और श्रीहीन चेहरे को देखा और कटे पेड़ की नाईं गिरकर दोनों हाथों से सुरेश के पैर को जकड़ती हुई रो पड़ी—कहां हैं वे ? उन्हें क्या आपने सोते में गाड़ी से ढकेल दिया ? बीमार आदमी का खून करके तुम्हें—

ऐसी खौफ़नाक तोहमत का तब भी लेकिन अंत न हो सका। एकाएक उसका हृदय-विदारक रोना चौचीर हो फैलकर सुरेश को एक बारगी पत्थर बनाता हुआ, चारों तरफ फैला और वैसी ही खौफ़नाक रात के अंदर जाकर खो गया और वहीं, उसी गद्दी वाली बेंच पर टिककर सुरेश असह्य आश्चर्य से काठ का मारा-सा बैठा रहा। उसके पैरों के नीचे क्या हो रहा था, बड़ी देर तक मानो वह कुछ समझ ही न पाया। बड़ी देर के बाद अपना पांव खींचकर वह बोला—मैं ऐसा काम कर सकता हूँ, तुमको यकीन आता है ?

अचला उसी तरह रोते-रोते बोली—तुम सब कुछ कर सकते हो। हमारे घर में आग लगाकर तुमने उन्हें जलाकर मार डालना चाहा था। मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, बताओ, कहां पर क्या किया है तुमने ? कहकर वह फिर उसका पैर पकड़ कर उसी पर सिर कूटने लगी। लेकिन जिसके पैर थे, वह एक बारगी अचेतन-सा टुकुर-टुकुर ताकता रहा।

बाहर पगली रात वैसी ही तमकती रही, बिजली बार-बार अंधेरे को वैसे ही चीर देने लगी, बरसाती झोंके उसी तरह सारी दुनिया को तोड़ते-मरोड़ते रहे, मगर अभिशप्त नर-नारियों के अंधे हृदय में जो प्रलय उमड़-घुमड़ रहा था, उसके मुकाबले यह सब तुच्छ था, कुछ भी नहीं।

एकाएक अचला तीर की गति से उठ खड़ी हुई, तब सुरेश का सपना टूट गया। उसने अनुभव किया, अगला स्टेशन करीब आ गया है, इसलिए गाड़ी की चाल धीमी हो आई है। उसे समझते देर न लगी कि अचला आखिर इस तरह खड़ी क्यों हो गई। बड़ी कोशिश से अपने को सम्हालकर दाएँ हाथ से उसे रोकते हुए सुरेश ने कहा—बैठो ! महिम इस गाड़ी पर नहीं है।

नहीं हैं ! तो हैं कहां ! कहते-कहते वह धप्प से सामने की बेंच पर बैठ गई।

सुरेश ने गौर किया, उसके चेहरे पर से लहू की आखिरी निशानी तक गायब हो गई। शायद अब तक के इतने रोने-धोने, इतना सिर पीटने के बावजूद उसके हृदय में सारी विरोधी दलीलों के बाद भी एक अव्यक्त आशा छिपी थी—हो सकता है ये सारी आशंकाएँ निर्मूल हों, हो सकता है, भयंकर दुःस्वप्न की असह वेदना नींद टूटते ही एक लंबी सांस के साथ ही खत्म हो जाय। ऐसी एक अकथनीय वस्तु ने उस समय तक भी उसके समूचे हृदय को उजाड़ नहीं दिया था। क्योंकि अभी-अभी तो संसार में उसकी कामनाओं का सर्वस मौजूद था और एक रात भी न बीती, उसे कुछ नहीं रहा, कुछ भी नहीं ? पलक मारते न मारते जिंदगी बदनसीबी की आखिरी हद को पार कर गई ? परिमाणहीन इतनी बड़ी विपत्ति में शायद अपने जीवित रहने पर ही उसे विश्वास नहीं हो रहा था। दोनों बुत-से बैठे रहे। गाड़ी एक अजाने स्टेशन पर आकर लगी और खुल गई।

सुरेश ने एक बार क्या तो कहना चाहा, फिर चुप हो रहा, फिर उठ खड़ा हुआ। खिड़की का काच उठाकर एक-दो बार उसने चहल-कदमी की और फिर अचला के सामने जाकर खड़ा हुआ। बोला—महिम सकुशल है। अब वह इलाहाबाद पहुँचा होगा। जरा रुककर फिर बोला—वहां से वह जबलपुर भी जा सकता है। कलकत्ता भी वापस हो सकता है।

अचला ने सिर उठाकर पूछा—और हम कहाँ जा रहे है ?

उस आंसू मलिन मुंह पर दुःख और निराशा की चरम प्रतिमूर्ति फिर एक बार सुरेश को दिखाई दे गई। उससे कितनी बड़ी भूल हो गई, यह उसे मालूम न था। और इसके लिए आज वह अपनी हत्या भी कर सकता था। लेकिन जिसकी छलना ने उसकी सत्य-दृष्टि को इस तरह से ठगकर इस भूल में ही बार-बार अंगुली का इशारा किया है, उस छलनामयी के लिए भी उसका हृदय विषाक्त हो उठा। इसीलिए अचला के प्रश्न का उसने बड़ी रुखाई से जबाब दिया—हम शायद सदेह नरक में ही जा रहे हैं। जिस पतन के रास्ते में राह दिखाते हुए इतनी दूर खींच लाई हो, उसके बीच में ही चाहने से रुकने की जगह तो मिल नहीं सकती ! अब तो अन्त तक चलना ही पड़ेगा।

जबाब सुनकर अचला एड़ी से चोटी तक एक बार कांप उठी उसके बाद सिर झुकाकर वह चुप हो रही। जो झूठा मक्कार पराई स्त्री को गलत रास्ते लेजा कर भी बेझिझक ऐसी बात जबान पर ला सकता है, उससे कोई क्या कहे !

सुरेश फिर पायचारी करने लगा। उस पाषाण-प्रतिमा के सामने बोलने की शक्ति शायद उसे नहीं थी। कहने लगा—तुम तो कुछ ऐसा जता रही हो, जैसे सर्वनाश अकेले तुम्हारा ही हुआ। लेकिन सर्वनाश का जो मतलब है, वह मेरे हक में किस हद को गुजरा पता है ? मैं तुम लोगों की तरह ब्रह्मज्ञानी नहीं हूँ। मैं नास्तिक हूँ। मैं पाप पुण्य का स्वांग नहीं भरा करता, वास्तविक सर्वनाश की ही सोचता हूं। तुम्हारे पास रूप है, आंसू है, एक औरत के जो हथियार है, तुम्हारे तरकस में सभी हैं —तुम्हें किसी भी रास्ते में रुकावट नहीं आयेगी। लेकिन मेरा अंजाम सोच सकती हो ? मैं मर्द हूँ, लिहाजा जेल से बचने के लिए मुझे अपने हाथों यहाँ हर गोली खानी पड़ेगी। कहकर सुरेश ने खड़े होकर छाती के बीच में हाथ रख कर दिखाया।

जानें क्या कहने को तो मुँह उठाकर भी अचला ने मुँह फेर लिया। लेकिन उसकी आंखों से घृणा छलकी पड़ती थी यह देख सुरेश आग-बबूला हो बोल उठा—मोर का पखना खोंसकर कौआ कभी मोर नही होता अचला ! उस निगाह को मै पहचानता हूँ। मगर वह तुम्हें नहीं सोहती। जिसे सोह सकती,वह मृणाल है, तुम नहीं ! तुम असूर्यंपश्या हिन्दू-नारी नहीं, इतने से तुम्हारी जात नही जायगी। उतर कर तुम जी चाहे जहां चली जाओ। मैं चिट्ठी लिखे देता हूं, महिम को दिखाना, वह तुम्हें अपना लेगा। खाने के लोभ में जंगली जानवर जैसे फदे मे गिरकर गुस्से में जो भी पाता है, उसी को फाड़ता रहता है, ठीक वैसे ही सुरेश अचला की चित्थी-चित्थी उड़ा देना चाहने लगा। बीच ही में सहसा थमकर बोला —आखिर यह ऐसा कौन-सा अपराध है ? तुसने तो पति के घर में ही उनके मुँह पर कहा था—तुम किसी और को प्यार करती हो —याद है ? जिस आदमी ने घर फूंककर तुम्हारे पति को जला डालना चाहा था। ऐसा तुम्हारा विश्वास है, उसीके साथ चल देना चाहा था—चली भी आई थीं—याद आता है ? उसीके घर, उसीके आश्रय में रहकर छिपकर रोते हुए उसे साथ आने का आग्रह किया था, ख्याल आता है ? यह क्या उससे भी बड़ा गुनाह है ? रोज-रोज की और भी जानें कितनी हरकतें !, जभी मुझे यह हिम्मत पड़ी। असल में तुम एक गणिका हो, इसलिए तुम्हें भगा लाया। इससे ज्यादा की तुमसे उम्मीद नहीं की। मैं तुम से बार-बार कहता हूं, तुस सती-सावित्री नहीं हो। वह तेज, वह गरूर तुम्हें नहीं सोहता , नहीं फबता—यह निहायत अनधिकार चर्चा है तुम्हारे लिए ! कहकर सुरेश रुँधी सांस

की वजह से ज्योंही थमा, अचला सिर उठाकर टूटे स्वर में चीख उठी—रुकें नहीं, आप रुकें नहीं सुरेश बाबू, और कहिए। दोनों पैरों से मुझे रौंदकर संसार में जितनी भी कड़वी बात है, घिनौनी व्यंग है, जितना भी अपमान है—सब कीजिए—वह जमीन पर औंधी पड़ गई और रुँधी रुलाई की फटी आवाज में बोली—यही चाहती हूँ मैं, इसीकी मुझे जरूरत है। हमारा यही वास्तविक सम्बन्ध है। संसार से; ईश्वर से, आप से केवल यही मेरा पावना है।

सुरेश गाड़ी की दीवाल से टिकर काठ-सा हो रहा। अचला के खुले-बिखरे बाल जमीन पर लोटने लगे, उसके भीगे कपड़े धूल में सनकर लतपत हो गए। लेकिन सुरेश उधर कदम नहीं बढ़ा सका। नया शिकारी पहले निशाने में गिरी हुई चिड़िया की मृत्यु यंत्रणा को जैसे अवाक् होकर देखता है, वैसे ही दो मुग्ध अपलक आंखों की निगाह से वह मानों किसी मरणासन्न स्त्री की अन्तिम घड़ी की गवाही के लिए खड़ा रहा।

गाड़ी की गति फिर धीमी,और धीमी होते-होते यह स्टेशन पर आकर रुकी। सुरेश ने सीधा खड़ा होकर सहज शांत स्वर में कहा—तुम्हें इस हालत में देखकर लोग चकित रह जायेंगे। तुम उठकर बैठो, मैं अपने डब्बे में जाता हूँ। सुबह होने पर तुम जहां उतरना चाहोगी, जहां जाना चाहोगी, मैं तुम्हें भिजवा दूँगा। इस बीच में कुछ खौफनाक,कुछ कर बैठने की कोशिश मत करना। उसका कोई नतीजा न होगा। सुरेश दरवाजा खोलकर नीचे उतर गया। सावधानी से दरवाजे को बन्द करके क्या सोचकर तो जरा देर चुपचाप खड़ा रहा। उसके बाद मुँह बढाकर बोला –मेरी बात तुम समझोगी नहीं। लेकिन इतना सुन लो; इस मसले का हल मेरे जिम्मे रहा। तुम्हारी कोई बुराई मैं न होने दूंगा। यह कर्ज मैं पाई-पाई चुकाकर जाऊँगा —कहकर वह धीरे-धीरे अपने डिब्बे की ओर चला गया।

गाड़ी की खिंची और लगातार आवाज के बन्द होने के साथ-साथ हर बार ही सुरेश की तंद्रा टूट जाती थी, लेकिन पलकों का भार ठेलकर देखने की शक्ति मानों उसमें न रह गई थी। भीगे कपड़ों में उसे बेहद सर्दी लग रही थी। वास्तव में वह बीमार पड़ सकता है और मौजूदा हालत में यह बात कितनी खतरनाक है, अन्दर ही अन्दर इसे महसूस भी कर रहा था, लेकिन बैग को खोलकर कपड़े बदलने की कोशिश एक असंम्भव इच्छा-सी ही उसके मन में बेबस पड़ी थी। ठीक ऐसे ही समय एक सुपरिचित कंठ का स्वर उसके कानों पड़ा -कुली ! कुली अध जगा-सा आंख खोलकर उसने देखा, गाड़ी किसी स्टेशन पर खड़ी है और जानें कब अंधेरा मिटकर बारिश थमे धुमैले मेघों से छनकर एक तरह की मटमैली रोशनी में सब झलक उठा है। उसने देखा, बहुत-से लोग उतर रहे हैं, बहुतेरे चढ़ रहे हैं और

उन्हीं में खड़ी शोक-मग्न एक नारी-मूर्ति किस इन्तजार में तो खड़ी है । यह अचला थी । चमड़े का एक बहुत बड़ा बैग माथे पर लिए एक कुली के उतरते ही उसने क्या तो पूछा और धीरे-धीरे गेट की तरफ बढ़ी ।

अब तक सुरेश बेबस-सा सिर्फ देख ही रहा था । शायद उसका यह आंखों का देखना अन्दर दाखिल होने की राह नहीं पा रहा था, पर जैसे ही गाड़ी खुलने की सीटी प्लेटफार्म के किस छोर से गूंज उठी कि जैसे बिजली छू गई हो, उसके भीतर-बाहर की जड़ता जाती रही । तुरत उसने अपना बैग खींच लिया और उतर पड़ा ।

टिकट की बात अचला को याद ही नहीं थी । गेट पर टिकट बाबू के सामने जाते ही अचला ठिठक गई कि इतने में पीछे से सुरेश ने स्निग्ध स्वर में कहा—रुको मत, बढ़ो, मैं टिकट दे रहा हूं ।

अचला को उसके आने की खबर न थी । पल के लिए, भय और झिझक से उसके पांव नहीं उठे, मगर यह हिचक औरों के देख सकने के पहले ही वह धीरे-धीरे बाहर हो गई ।

बाहर जाकर दोनों की यों बातें हुईं—

सुरेश ने कहा—मैंने सोचा था, तुम सीधे कलकत्ते ही लौट जाना चाहोगी, लेकिन यक-बयक डिहरी में क्यों उतर पड़ीं ? यहां जाने-चिन्हे कोई है क्या ?

अचला दूसरी तरफ नजर किए थी । उसी तरफ नजर किए बोली—कलकत्ते में किसके पास जाऊँगी ?

लेकिन यहां ?

अचला चुप रही । सुरेश खुद भी कुछ देर तक चुप रहकर बोला—शायद मेरी किसी बात का अब तुम एतराज न कर सकोगी, उसके लिए मुझे कोई शिकायत भी नहीं, अन्तिम समय में मैं केवल कुछ भीख चाहता हूँ ।

अचला वैसी ही चुप खड़ी रही ।

सुरेश ने कहा—मेरी बात किसी को समझाने की भी नहीं और मैं समझाना भी नहीं चाहता । मेरी चीज मेरे ही साथ जाए ! जहां जाने से यहां की आग जला नहीं सकेगी, मैं आज उसी देश की राह ले रहा हूँ, पर मेरा आखिरी सहारा मुझे दो, मैं हाथ जोड़कर विनती करता हूँ ।

तो भी अचला के मुंह से एक भी शब्द न निकला; सुरेश कहने लगा— मैंने तुम्हें बहुत कड़वी बातें कही हैं, बहुत दुःख दिया है, लेकिन बाद में अच्छे रहने के घमण्ड में ऊपर बैठकर तुम्हारे माथे कलंक की कालिमा पोतूं, यह मैं मरकर भी बर्दाश्त

नहीं कर सकूंगा। मेरे लिए तुम्हें तकलीफ न उठानी पड़े, विदा होने के पहले मुझे इस सुयोग की भीख देती जाओ अचला।

उसकी आवाज में क्या था, अंतर्यामी ही जानें, गरम आंसू में अचानक अचला की दोनों आंखें डूब गईं। फिर भी जी-जान से अपने कंठ को सम्हालकर उसने धीरे-धीरे पूछा—मुझे क्या करना होगा, कहिए ?

सुरेश ने जेब से टाइम-टेबिल निकालकर गाड़ी का समय देखकर कहा—तुम्हें कुछ नहीं करना होगा। सांझ से पहले अब किसी भी तरफ जाने की कोई गुंजाइश, नहीं, इसलिए इतनी देर के लिए मुझ पर अविश्वास न करो, बस इतना ही चाहता हूँ। मुझसे अब तुम्हारा कोई अमंगल न होगा, तुम्हारा ही नाम लेकर मैं कसम खाता हूँ।

लोगों की कौतूहल भरी दृष्टि से बचने के लिए स्टेशन के छोटे-से वेटिंग रूम में जाकर रुकने की इच्छा उन दोनों में से किसी की न हुई। पूछताछ करने पर पता चला, बड़ी सड़क पर सम्राट् शेरशाह के नाम पर कायम सराय की बुनियाद आज भी बिल्कुल मिट नहीं गई है। शहर के छोर पर की उसी सराय में जाने के लिए उन्होंने किराए की एक बैलगाड़ी तय की।

रास्ते में किसी ने किसी से बात नहीं की, किसी ने किसी का मुंह नहीं देखा। सिर्फ उस समय, जब बैलगाड़ी सराय में जाकर रुकी, तो एक झलक सुरेश की शक्ल देखकर अचला न केवल हैरान हुई, बल्कि बेचैन-सी हुई। उसकी दोनों आंखें बेहिसाब लाल थीं, जो कि चेहरे पर मानो किसीने स्याही पोत दी हो। संसार के बड़े-से-बड़े अंधड़-तूफान में उसने उसे देखा था, किन्तु उसकी यह शक्ल कभी देखी हो, ऐसा याद नहीं आया।

गाड़ीवान को किराया चुकाकर सुरेश ने मनीबैग को वहीं रख दिया। कहा—जब तक यह तुम्हारे ही पास रहा, जरूरत हो तो लेने में संकोच मत करना।

अचला के जी में आया, पूछे कि इसका मतलब क्या। मगर न पूछ सकी। सुरेश ने कहा—यह सामने वाला ही कमरा कुछ अच्छा है शायद. तुम जरा सुस्ताओ मैं बगल के कमरे में इन कपड़ों को जरा बदल डालूं। पता नहीं, इन्हीं सबके चलते ऐसा भद्दा लग रहा है—कहकर अचला की सुविधा-असुविधा का कोई ख्याल न करते हुए ही कह अपना बैग उठाकर नशेबाज जैसा डगमगाता हुआ बरामदे को पार करके कोने वाले कमरे में चला गया।

उसके चले जाने के बाद अचला अकेली रास्ते पर खड़ी न रह सकी। सो अपने वजनी बक्से को किसी तरह ढेल-ढूलकर कमरे में ले आई और उसी पर ठक्-से बैठी राह से आने-जाने वालों को देखने लगी।

उनत्तीस

उसी कमरे के सामने बक्स पर बैठे-बैठे आशा और भरोसा का स्वप्न देखते हुए कैसे अचला के नौ घंटे निकल गए, वह सोच न सकी। थोड़ी ही देर हुई, सूर्योदय हुआ। सर्दियों के धूल-भरे पेड़-पौधे कल की बारिश से धुल-निखरकर सुबह के सूरज की किरणों से झलमला रहे थे। भीगे कोमल पथ पर थकावट-मिटे राही हँसते हुए चलने लगे थे, इक्के-दुक्के इक्के भी छोटी घंटियों की आवाज गुँजाते दौड़ रहे थे; बीच-बीच में चरवाहे बालक गाय-भैंस के झुंड लिए अजीबो-गरीब रिश्ता कायम करते हुए जाने किस गांव की ओर चल पड़े थे, पास ही के किसी एक झोंपड़े से किसी गृहस्थ-वधू के जाने के साथ जेंतसार की अथक अजानी लय तिरती आ रही थी। कुल मिलाकर नए दिन का यह कर्म-स्रोत उनकी चेतना में गतिशील हो रहा था, उसीके अनोखे प्रवाह में उसका दुःख, उसका दुर्भाग्य, उसकी चिंता कुछ देर के लिए कहां तो बह गई थी मानो। उसे याद ही न थी कि वह ठीक किस लिए, क्यों यहां बैठी है। अचानक दो गँवई बालक की हैरान-सी निगाह याद आई! वे अंगना के एक ओर से आंखें फाड़-फाड़कर ताक रहे थे। इस टूटी-फूटी पुरानी सराय के बीते दिनों का गौरव-इतिहास उन बच्चों को मालूम न था। लेकिन उनके होश सम्हालने के वक्त से ऐसे यात्री इसमें कभी नहीं आए, उनकी मौन आंखों की निगाह ने अचला को यह साफ बता दिया। जगने के बाद रोज की तरह खेलने आए कि यह ताज्जुब उन्हें दिखाई पड़ गया।

अचला ने चौंककर खड़ी हो उनसे कुछ पूछना चाहा था, लेकिन वे लड़के तुरत चंपत हो गए। उसी क्षण उसे याद आया, कोई दो घंटे पहले कपड़े बदलने की कहकर सुरेश जो गया है, सो गया ही है। आखिर इतनी देर से अकेला वह कर क्या रहा है, यह जानने के लिए वह धीरे-धीरे उस कमरे के सामने पहुँची और बन्द किवाड़ के अन्दर से कोई आहट न पाकर दो-एक मिनट चुप खडी रही, फिर धीरे-धीरे किवाड़ के पल्ले हटाकर सामने ही जो कुछ देखा, उससे एक साथ ही मुक्ति की तीखी घबराहट और भय से जरा देर के लिए उसका सारा शरीर मानो पत्थर हो गया। कमरा अन्धेरा था, सिर्फ उधर के एक टूटे झरोखे से छनकर थोड़ी-सी रोशनी फर्श पर पड़ रही थी। वहां अंधेरे-उजाले में निहायत गंदी जमीन पर सुरेश चित् पड़ा हुआ था। उसके बदन पर कपड़े वही थे, बैग केवल खुला पड़ा था और उसमें की कुछ चीजें इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं।

पलक मारने की देर में अचला को उसकी आखिरी बातों की याद आ गई, सुरेश डाक्टर है, वह मनुष्य की जिंदगी को बचाना ही नहीं जानता, उसकी जान को चुपचाप निकाल बाहर करने का भी हुनर उसे आता है । इस भयंकर भूल के लिए सुरेश की उत्कट आत्मग्लानि की याद आई; याद आई उसकी विदा-याचना, उसका भरोसा देना—सबसे ज्यादा बारंबार प्रायश्चित्त करने का कठोर इशारा—एक साथ एक ही सांस में सबने मानों उस लोटती हुई देह के एक हो परिणाम की बात उसके कानों कही। वह द्वार थामकर वहीं बैठ गई, यह हिम्मत न पड़ी कि अन्दर जाए।

लेकिन अब उस लोटते हुए शरीर को देखकर उसकी आंखें मानो फटकर आंसू बहाने लगीं। जो उसीके लिए कलंक का इतना बड़ा बोझा माथे पर रखकर हताशा के मारे सदा के लिए इस दुनिया को छोड़ चला, उसका गुनाह कितना ही बड़ा क्यों न हो, उसे क्षमा नहीं कर सके, ऐसा वज्र हृदय संसार में शायद ही हो और आज पहली बार अपने सामने उसका अपना अपराध भी स्पष्ट हो उठा।

सुरेश से पहचान होने के उस पहले दिन से आज तक जितनी इच्छा-आकांक्षा, जितनी भूल-चूक, जितना मोह, जितना छल, जितना आग्रह-आवेग दोनों के बीच से गुजरा, एक-एक कर सब फिर से दिखाई देने लगा। उसका अपना आचरण, पिता का आचरण—अचानक उसका सारा बदन सिहर उठा। लगा, अपना ही नहीं, बहुतों के बहुत-बहुत पातक का भारी बोझा उठाकर सुरेश जिस विचारक के चरणों में जा पहुँचा है, वहां वह मुँह बंद किए चुपचाप सभी सजा कबूल कर लेगा, या एक-एक करके सारा दुःख, सारा अभियोग बताकर उनसे क्षमा की भीख मांगेगा।

जीवन के उपभोग के बहुत से सामान, बहुत से उपकरण उसके पास थे, तो भी जो वह चुपचाप, बिना किसी आडंबर के सब कुछ छोड़कर चला गया—इसकी गहरी पीड़ा अचला को आज रह-रहकर बेधने लगी। उसने सचमुच ही प्रेम किया था, इस बात को उस मौत के सामने खड़े होकर पूछने, अविश्वास करने की गंजाइश न रही।

फिर उसके गालों पर से आंसू की धारा बहने लगी। पिछली रात गाड़ी पर दोनों में धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय पर काफी तर्क हो गया था। लेकिन वह सब कितनी थोथी बकवास है, अचला पहले यह क्या जानती थी। प्यार के जात नहीं होती, धर्म नहीं होता; जो इस तरह से मर सकता है, वह समाज के गढ़े हुए कायदे-कानूनों के बहुत ऊपर है, ऐसे विधि-निषेध उसे छू नहीं सकते—इस मृत्यु के सामने खड़ी होकर इस बात को आज वह इनकार कैसे कर सकती है ?

अचला आंचल से आंसू पोंछ रही थी। अचानक उसका कलेजा छन् से हो रहा—लगा, लाश मानो हिल उठी और दूसरे ही दम एक अस्फुट कातर स्वर के

साथ सुरेश ने करवट बदली। वह मरा नहीं है—जिंदा है। आवेग के एक प्रचंड वेग से अचला उसके पास फेंका गई और टूटे स्वर में कहा—सुरेश बाबू !

पुकार सुनकर सुरेश ने अपनी लाल-लाल आंखे खोलकर देखा, मगर कुछ बोला नहीं।

अचला भी कुछ बोल नहीं सकी, केवल एक अदम्य वास्पोच्छ्वास उसके गले को बंद करता हुआ आंसू के रूप में दोनों गालों पर से झरने लगा। लेकिन पल भर पहले के आंसू से कितना फर्क था इसका !

फिर भी सबसे ज़्यादा जो चिंता भीतर-भीतर उसे दुखा रही थी, वह थी इसका वास्तविक पहलू। इस अनजान अपरिचित जगह में सुरेश के शव को लेकर वह क्या उपाय करेगी, किसे बुलाएगी, किसे कहेगी—हो सकता है बहुत अप्रिय आलोचना हो, बहुत-बहुत घिनौनी बात उठें—उनका वह किसे क्या जवाब देगी, शायद हो कि पुलिस वाले खोद-खोदकर सब भेद निकालें, ऐसी बेहयाई की शर्मिंदगी से उसका सारा देह-मन भीतर-भीतर कैसा पीड़ित, कैसा दुखी हो रहा था, उसकी वह खुद भी पूर्णतया उपलब्धि नहीं कर सकी थी। इस बेअंदाज मुसीबत के चंगुल से अचानक छुटकारा पाकर अब उसके आंसू रोके नहीं रुकने लगे। और वह मरा नहीं है, सिर्फ इसी बात पर अचला का हृदय उसके प्रति कृतज्ञता से भरपूर हो उठा।

कुछ क्षण इसी तरह बीत जाने पर सुरेश ने धीरे-धीरे पूछा—क्यों रो रही हो अचला ?

अचना ने भर्राई आवाज में कहा—तुम इस तरह से सोए क्यों रहे ? गए क्यों नहीं ? मुझे इतना डराया क्यों ?

उसकी आवाज में जो स्नेह उमड़ा, वह ऐसा करुण, इतना मधुर था कि न केवल सुरेश के, बल्कि अचला के भी मन में एक प्रकार के मोह का संचार हुआ। वह बोली—तुम्हें इतनी ही नींद लगी थी, तो मुझसे कहा क्यों नहीं ? मैं उधर वाले कमरे को झाड़-पोंछकर तुम्हारे लिए कुछ बिछा देती ? गाड़ी आने में तो काफी देर थी।

सुरेश ने कोई जवाब नहीं दिया, सिर्फ विगलित स्नेह से उसकी तरफ ताकते हुए उसका दायां हाथ उठाकर अपने तपे कपाल पर रक्खा और एक लंबा निश्वास फेंका।

अचला ने चौंककर कहा—यह तो तप रहा है। बुखार हो गया क्या ?

सुरेश ने कहा—हूँ और यह बुखार सहज ही जाने वाला भी नहीं। शायद—

अचला ने धीरे-धीरे हाथ खींच लिया। जवाब में उसके मुंह से भी इस बार सिर्फ दीर्घ निश्वास ही निकला। उसकी सारी स्नेह-ममता एक क्षण में जमकर पत्थर

हो गई। सहने की, धीरज धरने की उसे जितनी भी शक्ति थी, सब को इकट्ठा करके गाड़ी के वक्त तक स्थिर रहने की मन में ठान रक्खी थी, लेकिन इस अकल्पनीय विपत्ति के आ पड़ने से जब उसकी आशा की पतली किरण भी पल में छिप गई तो मौत की कामना के सिवाय दुनिया में मांगने की उसे दूसरी चीज न रही।

वह इस हालत में उसे यहां अकेला छोड़ जाने की कल्पना भी न कर सकी; मगर जिसकी सेवा का सारा उत्तरदायित्व, सारा भार उसके माथे पर पड़ा, उसे लेकर इस परदेश में वह करेगी क्या, किससे वहां जाकर मदद मांगेगी, क्या परिचय देकर लोगों की सहानुभूति की अधिकारिणी होगी—बिजली की तरह एक साथ इन इन चिंताओं के दिमाग में दौड़ते ही, वह सोचकर कोई किनारा न पा सकी कि वह भाग जाए कि फुक्का फाड़कर रो पड़े या जोर से सिर पीट-पीटकर अपने ही हाथों अपने जीवन का लगे हाथ अंत ही कर दे।

तीस

उस दिन स्टेशन से भीगते हुए जो लौटे, सो गांठ के दर्द और सर्दी-बुखार से केदार बाबू सात-आठ दिन तक बीमार रहे। बेटी-दामाद का कोई कुशल नहीं मिला, इसलिए बेहद फिक्रमंद होने के बावजूद अपने मित्र को जब्बलपुर एक चिट्ठी डालने के सिवाय और कोई जतन नहीं कर सके। आज उसका जवाब आया। खत में यही लिखा था कि वहां कोई नहीं पहुँचे, नहीं उन्हें किसी की कोई खबर है। ये चंद पंक्तियाँ पढ़कर उड़े हुए चेहरे से सूनी आंखें केदार बाबू बाहर की ओर देखते और बार-बार चश्मे के काच को पोंछते रहे। आखिर उन लोगों का हुआ क्या, कहां गए वे—किसे लिखें, किससे पूछें, कुछ भी न सोच सके; उनकी आफत-मुसीबत में जो आदमी तन-मन से उनके काम आता था, वह सुरेश भी नहीं, वह भी उन्हीं के साथ है।

ठीक इसी समय बैरा ने और एक चिट्ठी लाकर उनके सामने रखदी। केदार बाबू ने किसी कदर नाक पर चश्मा रखकर जल्दी से चिट्ठी को उठाकर देखा, वह अचला के नाम थी। यह चिट्ठी कहां से आई, किसने लिखी—यह जानने की अकुलाहट में दूसरे का पत्र खोलना चाहिए कि नहीं, यह सवाल भी उनके मन में न उठा। उन्होंने झटपट लिफाफे को फाड़ डाला। देखा, लिखने वाली मृणाल थी। उसके बाद शुरू से आखिर तक पत्र को पढ़ गए और सूनी निगाहों बाहर की ओर

देखते हुए चश्मा पोंछने के काम में जुट गए। उनके जी में क्या होने लगा, ईश्वर ही जानें। बड़ी देर के बाद चश्मा पोंछना बंद करके उसे जगह पर रखकर फिर से एक बार चिट्ठी को पढ़ने लगे। मृणाल ने स्त्री की सहिष्णुता, धीरज, क्षमा आदि के तीखे उपदेश देकर अंत में लिखा था—

यह जरूर है कि संझले दादा तुम्हारे बारे में कुछ नहीं कहते, पूछने पर भी बड़े गंभीर हो उठते हैं, मगर मैं तो औरत हूं, सब समझ सकती हूँ ! अच्छा तो यह कहो संझली दीदी, झगड़ा-झंझट किसके नहीं होती बहन ? लेकिन इसीके लिए ऐसा रूठना ! शरीर और मन की ऐसी हालत में न समझकर तुम्हारे पति नाराज भी हो सकते हैं, घबराकर ऊबकर चले भी आ सकते हैं, मगर तुम तो अभी पागल नहीं हो गई हो कि उन्होंने कहा और तुमने हां कर दी- -जाओ वनवास ! जभी मैं सोचा करती हूँ संझली दी कि कैसे साहस करके तुमने अपने मरणासन्न पति को इस जंगल में भेज दिया और निश्चित होकर सात-आठ दिन, सात-आठ दिन क्यों कहें, सात-आठ साल से बाप के घर मजे में पड़ी हो ! यकीन मानो, उस दिन जब वे सरो-सामान के साथ घर आए, मैं उन्हें पहचान नहीं सकी ! किस बात में तुम लोगों की लड़ाई हो गई, कब हो गई, क्यों इन्होंने जब्बलपुर जाना मुल्तवी करके यहां आने का तै किया, मैं कुछ भी नहीं जानती और जानना भी नहीं चाहती। जानती ही तो हो, सास को छोड़कर मुझे कहीं जाने का उपाय नहीं। मेरे सर की कसम, पत्र पाते ही तुम चली आना। जा पाती तो मैं जाकर तुम्हारे पैर खींचकर फिर भी ले आती, अगर संझले दादा इतना ज्यादा बीमार न हो गए होते। तुम एक बार आओ, आकर आंखों देखो, तब समझोगी कि नाहक मान करके तुमने कितना बड़ा अन्याय किया है ! यह घर भी तुम्हारा है, मैं भी तुम्हारी हूँ, इसलिए यहां आने में हिचक न करना। तुम्हारी राह देखती रही, चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम। एक बात और, मेरे पत्र की बात संझले दादा न जानें, मैंने छिपाकर लिखा है। इति—मृणाल।

पत्र समाप्त करके पुनश्च मृणाल ने छोटी-सी कैफियत दी थी— मैं जानती हूँ कि पति की गैरहाजिरी में तुम घड़ी भर को भी सुरेश बाबू के यहां नहीं रह सकतीं, इसलिए मैके के पते पर ही पत्र दे रही हूँ। आशा है, मिलने में देर न होगी।

केदार बाबू के हाथ से चिट्ठी छूटकर गिर गई। वे फिर से आसमान की तरफ नजर किए अपने चश्मा पोंछने के काम में लग गए। इतना समझ में आ गया कि महिम जब्बलपुर के बजाय अपने घर पर है और अचला वहां नहीं है। वह कहां है, उसका क्या हुआ, यह सब या तो महिम जानता नहीं या जानकर भी बताना नहीं चाहता।

अचानक ख्याल आया, सुरेश आखिर कहां है ? वह तो उन्हीं का मेहमान रहने के ख्याल से साथ हो गया था। बेशक वह अपने घर नहीं लौटा, नहीं ो एक बार जरूर मिल जाता। उसके बाद जो आशंका उनके मन में शूल-सी चुभी, उसकी चोट से वे सीधे नहीं रह सके, आराम कुर्सी पर लेट गए, आंखें मूंद लीं।

दोपहर को नौकरानी सुरेश के घर जाकर पूछ आई, फूफी को कुछ भी मालूम नही। कोई पत्र नहीं आया है, इससे वे भी चिंतत हैं।

रात को सोने वाले कमरे में केदार बाबू फिर मृणाल के पत्र को लेकर रोशनी में बैठे। उसके हरूफ-हरूफ को गौर से देखकर खोजने लगे, कहीं अगर टिकने की जगह मिले। न भी हो तो वे कहां जाकर किस तरह मुंह छिपाएंगे, नहीं जानते। पुश्तों से कलकत्ते रहे, कलकत्ते के बाहर भी कोई भला आदमी जिन्दा रह सकता है, यह वह सोच भी नहीं सकते। इस जन्म के चीन्हे-जाने स्थान, समाज, सदा के बंधु-बांधव से बिछुड़ कर कही अज्ञात वास में जीवन के बाकी दिन बिताने ही पड़े, तो वे दुस्सह दिन कैसे कटेंगे, यह उनकी कल्पना से परे था और बेटी होकर जिस हतभागन ने बीमार जर्हफ बाप के कमजोर कंधों पर यह बोझा लाद दिया, उसे वे क्या कहकर अभिशाप दें, यह भी उनकी कल्पना के बाहर था।

रातभर में वे एक बार भी झपकी न ले सके। सुबह होते-होते उनकी बदहजमी वाली बीमारी फिर दिखाई दी। लेकिन आज चूंकि उनकी ओर देखने वाला तक कोई न दिखाई दिया, तो बेबस-से बिस्तर पर पड़े रहने में भी उन्हें घृणा महसूस हुई। इतनी बड़ी पीड़ा को भी शांत भाव से छिपाए और दिन की तरह वे बाहर निकले और स्टेशन के लिए एक गाड़ी लाने के लिए बैरा को कहकर आप जल्दी-जल्दी कपडा-पत्ता सहजने लगे।

इकत्तीस

जाड़े का सूरज तीसरे पहर ढलने को था और उसकी कुछ-कुछ गर्म किरणों से सान नदी के पास का दूर तक फैला हुआ चौर धू-धू कर रहा था। ऐसे समय एक बंगाली के मकान में बरामदे की रेलिंग पकड़ कर उधर को देखती हुई अचला चुप खड़ी थी। उसकी अपनी जिन्दगी से उस महखंड का कोई सम्बन्ध था या नहीं, यह और बात है, लेकिन उन दो अपलक आंखों की निगाह को एक नजर देखते ही यह

समझ में आ सकता कि उस तरह से देखने पर देखा कुछ नहीं जा सकता, सिर्फ सारा संसार एक अजीब और बहुत बड़े जादू के करिश्मे-सा लगता।

दीदी ?

चौंककर अचला ने पीछे देखा। जो लड़की एक दिन अपने को राक्षसी बता कर आरा स्टेशन में उतर गई थी, यह वही थी। समीप आकर अचला के उद्भ्रांत और बहुत ही श्रीहीन मुखड़े की ओर एक नजर रखकर मान करती हुई-सी बोली—अच्छा दीदी, हर कोई तो यह देख रहे हैं कि सुरेश बाबू चंगे हो गए हैं; डाक्टर कह रहे हैं कि अब जरा भी डर नहीं, फिर भी रात-दिन तुम्हारी यह मायूसी नहीं जाती यह क्या तुम्हारी ज्यादती नहीं ? पति हमारे भी हैं, उन्हें कुछ होता-हवाता है तो हम भी फिक्र के मारे मर-सी जाती हैं, मगर कसम ले लो, तुमसे उसकी तुलना ही नहीं हो सकती।

मुँह फेरकर अचला ने सांस ली, कोई जवाब नहीं दिया।

वह रूठकर बोली—इष ! एक उसांस ले ली, बस ! कहकर देर तक जब अचला का कोई जवाब नहीं मिला, तो उसका एक हाथ अपनी मुट्ठी में लेकर बड़े ही करुण ढंग से पूछा—अच्छा, सुरमा दीदी, सच बताना हमारे घर तुम्हारा घड़ी भर भी मन नहीं टिक रहा है, है न ? खूब तकलीफ हो रही है, असुविधा न ?

अचला जैसे नदी की ओर देख रही थी, देखती रही; लेकिन अब की जवाब दिया; कहा—तुम्हारे ससुर ने मेरी जो भलाई की है, वह क्या मैं जन्म भर भूलूंगी बहन !

वह हँसी। बोली—मैं जैसे भूलने के लिए ही तुम्हारे पीछे पड़ी हूँ ! और दूसरे ही क्षण मीठे उलाहने के तौर पर बोली - शायद इसीलिए उस समय बाबूजी के उतना पुकारने पर भी जवाब नहीं दिया ? तुमने सोचा, बुड्ढा जब-तब—

अचला ने बड़े अचरज से पलट कर कहा—नहीं, हर्गिज नहीं—।

राक्षसी ने जवाब दिया हूँ हरिगिज नहीं ! वह भी मैं अगर खुद गवाह न होती ! मैं ठाकुर घर में थी। मैंने सुना सुरमा, सुरमा, अरी ओ बिटिया सुरमा ? चार-पाँच बार उन्होंने पुकारा तुम्हें। पूजा की तैयारी कर रही थी, छोड़कर लपकी। मैंने देखा वे सीढ़ी से नीचे उतर रहे हैं। कसम सच कह रही हूँ।

इसे केवल अचला ने ही समझा कि बूढ़े की पुकार को उसके अनमने मन का दरवाजा ढूंढ़े क्यों न मिला। फिर भी लाज भरे पछतावा से वह चंचल हो उठी। बोली—शायद कमरे में—

राक्षसी ने कहा—कहां का कमरा। जिनके लिए कमरा है, वे तो उस समय बाहर टहलने गए थे ! मैंने आंगन से साफ देखा, ठीक इसी तरह रेलिंग पकड़े खड़ी।

कहकर वह जरा थमी और हँसकर बोली—लेकिन तुम तो अपने में थीं नहीं बहन कि बूढ़े-ठेढ़े की पुकार सुन पातीं ! जो सोच रही थीं, वह कहूं तो—

अचला चुपचाप फिर नदी के उस पार देखने लगी—इन तानों का जवाब देने की कोशिश तक नहीं की। लेकिन यहां यह बता रखना जरूरी है कि राक्षसी नाम से उसकी जरा भी समानता न थी और नाम भी उसका राक्षसी नहीं, वीणापाणि था। पैदा होते ही मां मर गई थी, इसीलिए दादी ने यह अपवाद दिया था, जिसे वह सास-ससुर, पड़ोसी से छिपा नहीं सकी थी।

अचला को एकाएक मुँह फेरकर चुप हो जाते देखकर वह मन ही मन शर्मिन्दा हुई। अनुतप्त होकर बोली—अच्छा बहन, तुमसे जरा दिल्लगी करना भी मुहाल ! मैं क्या जानती नहीं हूं कि बाबूजी को तुम कितनी श्रद्धा-भक्ति करती हो। उनसे ही तो मैंने सब कुछ सुना। टहल कर वे सवेरे लौट रहे थे और तुम रोती हुई डाक्टर की तलाश में निकली थीं। उसके बाद वे तुम्हारे साथ गए और सराय से तुम्हारे पति को लिवा आए। यह सब भगवान् कृपा है दीदी, वरना तुम लोगों के चरणों की धूल भी कभी इस कुटिया पर पड़ेगी, उस दिन गाड़ी में यह किसने सोचा था ? लेकिन मेरे सवाल का तो जवाब नहीं मिला। मैं पूछ रही थी कि यहां तुम्हें एक घड़ी भी अच्छा नहीं लग रहा है, यह मैं समझ गई हूँ। लेकिन क्यों ? यहां तुम्हें कौन-सा कष्ट, कौन-सी असुविधा हो रही है ? मैं सिर्फ यही जानना चाहती हूँ; कहकर पहले की ही तरह अब की भी जरा देर इन्तजार करके उसे लगा, जवाब का वह बेकार ही इन्तजार कर रही है। सो जिसे उसके ससुर ने जगह दी थी, सुरमा दीदी कहकर उसने भी स्नेह किया था—उसका चेहरा अपनी ओर खींचते ही उसने देखा, उसकी आंखों के कोनों से चुपचाप आंसू बह रहा है; वीणापाणि स्तब्ध खड़ी रही और आंचल से आंसू पोंछकर उसने अपनी सूनी निगाह दूसरी ओर फेर दी।

दूसरे दिन तीसरे पहर एक नए मासिक पत्र की कोई कहानी पढ़कर वीणा-पाणि अचला को सुना रही थी। बेत की कुर्सी पर अधलेटी अचला कुछ तो सुन रही थी और कुछ उसके कानों में कतई पहुँच ही नहीं रहा था—ऐसे समय वीणा-पाणि के ससुर रामचरण लाहिड़ी 'बिटिया राक्षसी' कहते ऊपर आए। दोनों जने झट उठ कर खड़ी हो गईं; वीणापाणि ने बूढ़े के सामने एक कुर्सी खींचकर पूछा—क्या है बाबूजी ?

ये बूढ़े बड़े ही निष्ठावान् हिन्दू थे। उन्होंने धीरे-धीरे कुर्सी पर बैठते हुए स्नेह-से अचला की ओर देखते हुए कहा—एक बात कहनी है बिटिया। अभी-अभी पुजारी जी आए थे। वे तुम पति-पत्नी के नाम से संकल्प करके भगवान् को तुलसी चढ़ा रहे थे, वह कल समाप्त होगा। सो कल तुम को कष्ट करके जरा देर तक बिना

खाए रहना पड़ेगा। वे हमारे घर ही ठाकुर लेते आएंगे, तुम्हें कहीं जाना न पड़ेगा। सुनकर अचला का सारा चेहरा स्याह हो उठा - धुंधले प्रकाश में यह बूढ़े को न दिखा, मगर वीणापाणि की नजर पड़ी। वह हिन्दू नारी थी, जन्म से उसी संस्कार में पली और बीमार पति के कल्याण के लिए यह कितने उत्साह और आनन्द की बात है, इसे वह संस्कार जैसा ही समझती थी, लेकिन अचला की शक्ल का ऐसा अजीब परिवर्तन देख उसके अचरज की सीमा न रही। फिर भी सखी के नाते पूछा—अच्छा बाबूजी, तुलसी तो आपने सुरेश बाबू के लिए चढ़वाई, तो फिर उन्हें उपवास न करा कर आप दीदी को क्यों कह रहे हैं ?

बूढ़े ने हँसकर कहा—वे और तुम्हारी दीदी क्या दो हैं बिटिया ? सुरेश बाबू तो इस दशा में उपवास कर नहीं सकेंगे, सो तुम्हारी सुरमा दीदी को ही करना पड़ेगा। शास्त्र में ऐसा नियम है, सोचने की बात नहीं।

इसके जवाब में भी जब अचला हां-ना कुछ न बोली—तो उसकी वह निश्चेष्ट नीरवता शुभाकांक्षी बूढ़े के भी नजर में आई। उन्होंने सीधे अचला की ओर देखते हुए पूछा—इसमें क्या तुम्हें कोई आपत्ति है बेटी ? कहकर उसके प्रतिवाद की आशा में देखते रहे।

अचला से अचानक इसका भी कोई जवाब देते न बना। जरा देर चुप रहकर बोली—उन्हें कहने से खुद वही करें शायद। उसके बाद सभी चुप हो गए। यह बात कैसी अजीब-सी, कितनी रूखी और सख्त सुनाई पड़ी, इसे कहने वाले के सिवाय शायद और किसी ने नहीं अनुभव किया। लेकिन अंतर्यामी के सिवा और कोई, उसे नहीं जान सका।

बूढ़े ने खड़े होकर कहा—तो वही होगा और धीरे-धीरे नीचे उतर गए। नौकर बत्ती दे गया, पर दोनों वैसे ही सिमटी और झिझकी रहीं। मासिक पत्रिका की वैसी जानदार जोशीली कहानी का बचा हिस्सा पढ़ने का उत्साह भी किसी में न रहा।

बाहर अन्धेरा गाढ़ा होने लगा और उसीको चीरकर उस पर की बालका भूमि एक से दूसरे छोर तक इन दो क्षुब्ध, मौन और लज्जित नारियों की आंखों पर सपने-सी तैरने लगी।

इस तरह भी काफी समय कट जाता, लेकिन जानें क्या सोचकर वीणापाणि एकाएक कुर्सी अचला के पास खींच लाई और अपना दायां हाथ सखी की गोदी में रखकर धीरे-धीरे बोली—उस पार के चौर को देखकर मेरे जी क्या में आ रहा था, जानती हो दीदी ? लग रहा था, ठीक जैसे तुम हो। जैसे ठीक उसी तरह थोड़े से अंधेरे में लिपटी—अरे, ऐसे सिहर क्यों उठीं ?

अचला कुछ क्षण चुप रहकर बोली—एकाएक सर्दी-सी लग आई। वीणा-पाणि अंदर गई। एक ऊनी चादर ले आई। भली तरह अचला के बदन को उससे ढककर अपनी जगह में बैठकर बोली—तुमसे एक बात पूछने को बड़ा जी चाहता है दीदी, लेकिन कैसी तो शर्म आती है। नाराज न हो तो—

अजानी आशंका से अचला का कलेजा कांप उठा—ज्यादा बोलने मे गला न कांप उठे, इस भय से मुख्तसर में सिर्फ ना कहा—और स्थिर बैठी रही।

दुलार से उसकी हथेली को थोड़ा दबाकर वीणापाणि कहने लगी—अभी तो तुम मेरी दीदी हो, मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ; मगर उस दिन गाडी में तो मैं कोई नहीं होती थी, फिर तुमने अपना सही परिचय मुझसे छिपाना क्यों चाहा था? जो तुम्हारे पति थे, उनके लिए कहा कोई नहीं है, कहा—बीमार पति दूसरे डिब्बे में हैं, उन्हें लेकर जब्बलपुर जा रही है—लेकिन मुझे तुम ठग नहीं सकी। मैं ठीक पहचानती थी कि वे तुम्हारे कौन है। फिर तुमने बताया कि तुम ब्राह्म हो—इसके बाद वह जरा हँसकर बोली—पर अब देखती हूँ, तुम्हारे देवता का जनेऊ देखकर विष्णुपुर के पाठक-ठाकुर लोग भी शर्मा सकते है। इतना झूठ क्यों बताया था भला?

जबर्दस्ती जरा सूखी हँसी-हँसकर अचला बोली—यदि न बताऊँ? वीणापाणि बोली—तो मैं ही बताऊँगी। मगर पहले यह कहो कि ठीक बता दूं तो क्या दोगी?

अचला के कलेजे मे में लहू की रफ्तार बन्द होने की नौबत। उसके चेहरे पर मौत का जो पीलापन छा गया, बत्ती की मद्धिम रोशनी में वह अछला को नजर आया या नहीं, कहना कठिन है' लेकिन होंठ दबाकर फिर जरा हँसती हुई वह बोली—अच्छा, कुछ दो या न दो, मैं अगर सच बता दूं तो मुझे क्या खिलाओगी अचला दीदी?

अचला का अपना नाम उसके कानों में आग की लपट-सा समाया और उसके बाद से ही वह आधी होश में आधी बेहोश-सी सख्त होकर बैठी रही।

वीणापाणि कहने लगी—हम दोनों बहनों का लेकिन उतना कसूर नहीं है, कसूर जो कुछ है, हमारे पति-देवताओं का। एक ने बुखार की बदहोशी मे तुम्हारा असली नाम कह दिया और दूसरे ने सोचकर तुम्हारा सही परिचय ढूंढ़ निकाला।

अचला ने जी-जान से अपने धड़कते कलेजे को संयत करके कहा—क्या है सही परिचय, सुनूं जरा?

वीणापाणि बोली—सच हो या नहीं, उन्हें अक्ल है, यह तुम्हें मानना ही पड़ेगा। एक रात आकर अचानक वे बोल उठे—अपनी अचला दीदी का रवैया

मालूम है तुम्हें ? वे घर से भाग आई है। मैंने रंज होकर कहा—रक्खो भी चालाकी अपनी। दीदी कहीं सुन लें तो जिन्दगी भर तुम्हारी शक्ल नहीं देखेंगी।

अचला कुर्सी को मुट्ठियों से कसकर पकड़े बैठी रही।

वीणापाणि कहने लगी, वे बोले—मेरी शक्ल चाहे वे देखें, चाहे न देखें, मगर मैं कसम खाकर कह सकता हूँ कि बात यह सच है। ननद-देवरानी से झगड़कर हो या सास-ससुर से न पटने के कारण ही हो, पति के साथ वे निकल पड़ी है। सुरेश बाबू का हाल देखकर तो लगता है तुम्हारी दीदी उन्हें समुद्र में डूब मरने को कह दें, तो वे नहीं कर सकते। खैर, जहां भी हो, छिपकर दोनों जने रहेंगे, जब तक कि खोज-ढूंढ़कर रो-पीटकर, मना-मनूकर सास-ससुर बेटे-पोतोहू को ले न जाएं। यही असली घटना न हो तो तुम मुझे—

मैंने कहा—अच्छा, वही सही, मगर गाड़ी मे मुझ-जैसी एक मूर्ख अपरिचित स्त्री से झूठ बोलने की दीदी को क्या गरज पड़ी थी ? इस पर उन्होने हँसकर जवाब दिया, तुम्हारी दीदी अगर तुम्हारी-जैसी अक्लमंद होतीं, तो कोई गर्ज न होती। लेकिन अक्लमंद वे बिल्कुल नहीं है। उन्होंने जैसे ही सुना कि तुम्हारा घर डिहरी है, दो दिन के बाद तुम वहीं जाओगी, वैसी ही वे डिहरी के बदले जब्बलपुर यात्री, अचला के बदले सुरमा और हिन्दू के बदले ब्राह्म बन गईं। तुम्हारे दिमाग को यह नही सूझा राक्षसी कि जो टिकट कटाकर जब्बलपुर जा रहे थे, एकाएक गाड़ी बदल कर वे डिहरी क्यों आने लगे और अपने बीमार पति को लेकर किसी बंगाली के यहां न उतरकर इतनी दूर एक सराय में क्यों ठहरते ? कहते-कहते बगल झुककर वीणापाणि ने उसका गला लपेट लिया और स्नेह-प्रेम से गद्‌गद हो उसके कान के पास मुँह ले जाकर अस्फुट-स्वर में कहा—बताओ न दीदी, हुआ क्या था ? मै कभी किसी को कोई बात न बताऊंगी—तुम्हारा बदन छूकर कसम खाती हूँ।

वीणापाणि की जबानी उनके बारे में सत्य आविष्कार का गलत इतिहास सुनकर अचला की देह मानो निर्जीव पत्थर के एक टुकड़े-सी सखी के आलिंगन में लुढ़क पड़ी। जीवन की आखिरी शर्मिन्दगी एक-एक कदम बढ़ाकर कहां आ पहुँची' वह यही देख रही थी, लेकिन वह जब एकाएक अजीब ढग से मुँह फेरकर दूसरी ओर चली गई, उसे छूआ तक नही, तो इस इतने बड़े सौभाग्य को ढो सकने की भी शक्ति उसे नहीं रही। आंसू के अटूट प्रवाह के सिवा बड़ी देर तक उसमें जीवन का और कोई लक्षण नहीं दीखा।

ऐसे कुछ समय कटा। वीणापाणि अपने दामन से रह-रहकर उसके आंसू पोंछकर स्नेह-सने स्वर में बोली—सुरमा दीदी, उम्र में बड़ी होते हुए भी तुम छोटी बहन का कहना मानो दीदी, अब घर लौट जाओ। कहा मानो, यह यात्रा तुम्हारी

अच्छी यात्रा नहीं। इतने-इतने कष्ट से सुहाग का सिंदूर जब बच गया, तो मान करके गुरुजनों को अब दुःख मत दो, उन्हे न रुलाओ। झुककर ससुराल लौट जाने में कोई शर्म, कोई हेठी नही बहन।

कुछ देर मौन रहकर वह फिर बोली—चुप हो ? नही जाओगी ? मां-बाप से नाराज होकर घर से बाहर सुरेश बाबू ठीक नहीं रहते। तुम्हारे मुँह से जाने की बात सुनकर वे खुश ही होंगे, यह मैं निश्चित कहती हूँ।

आंखें पोंछ कर अचला अब सीधी बैठी। देखा, वीणापाणि उसी उत्सुकता से उसकी ओर देख रही है। पहले तो जवाब देने में उसे बड़ी शर्म आने लगी, लेकिन चुप रह जाने से ही उससे पिंड नहीं छूट सकता, जब इस बात में कोई संदेह नही रहा, तो जबर्दस्ती सब संकोच हटाकर वह बोली—हमारे घर लौटने का कोई उपाय नहीं है वीणा।

वीणापाणि विश्वास न कर सकी। बोली, कोई उपाय नही ? तुम्हें मैं ज्यादा दिनों से जरूर नहीं जानती, परंतु जितना जानती हूँ, उससे समूची दुनिया के सामने खड़ी होकर कसम खाकर कह सकती हूँ कि तुम ऐसा कोई काम हर्गिज नहीं कर सकती दीदी, जिससे कोई तुम्हारा किसी तरफ का रास्ता बंद कर सके। अच्छा, तुम अपनी ससुराल का पता बता दो, परसों तो हम लोग घर जा ही रहे है, बाबूजी के साथ लेकर तुम्हारे यहां जाऊँगी, देखती हूँ, वे मुझे क्या जवाब देते है। तुम्हारे सास-ससुर मेरे भी वही हुए, उनके सामने खड़ी होने में मुझे कोई शर्म नहीं।

अचला ने चौंककर पूछा—परसों तुम लोग घर जा रहे हो, सुना तो नहीं ? यहां कौन-कौन रहेगे ?

कोई नहीं। सिर्फ नौकर-दरबान घर की रखवाली करेंगे। मेरी जेठ-सास बहुत दिनों से बीमार हैं, अब उनके जीने की आशा नहीं—उन्होने सबसे मिलने की इच्छा जाहिर की है।

अचला ने पूछा—तुम्हारी ससुराल है कहां ?

वीणापाणि ने कहा—कलकत्ते में। पटल डांगा।

पटल डांगा का नाम सुनकर अचला का मुँह सूख गया। जरा देर चुप रह कर धीरे-धीरे बोली—तब तो हमें भी कल ही यह घर छोड़कर जाना पड़ेगा। यहां रहना तो न होगा अब।

वीणापाणि हँस उठी। इसीलिए तुम्हें घर जाने को कह रही थी, क्यों ? इतनी देर में मेरी बात का यह मतलब निकाला। तुमने ! नहीं-नहीं, मुझसे कसूर हो गया, तुम्हें अब कभी कहीं जाने को न कहूँगी। जब तक जी चाहे, इस झोंपड़े में रहो, हममें से किसी को कोई एतराज नहीं।

मगर इस सदय निमंत्रण का अचला कोई जबाब नही दे सकी। कुछ देर चुप रहकर बोली—सच ही क्या तुम लोगों का जाना तै पा गया है ?

वीणापाणि बोली—हां। गाड़ी में जगह तक रिजर्व हो गई। बाबूजी के कमरे में झांक देखो जरा, देखोगी, प्रायः पन्द्रह आना समान भी बंध चुका।

नौकरानी दरवाजे के पास आकर बोली—बहूजी, मांजी रसोई में बुला रही है जरा।

आई—कहकर जरा हँसते हुए उसने फिर एक बार दोनों बाँहों से अचला का गला लपेटकर कानों में कहा—इतने दिन भीड-भाड़ में बड़े कष्ट में ही तुम लोगों के दिन बीते है। अब पूरा घर खाली—कोई कहीं नहीं, मैं बला भी टल रही हूं—समझ गई न दीदी ? और सखी के गाल पर दो उँगली का दबाव देकर दाई के पीछे तेजी से निकल गई।

खुशी का एक टुकड़ा, दक्खिनी बयार-सी वह सौभाग्यवती स्त्री धीरे-धीरे नजर से ओझल हो गई, लेकिन कानों में कही उसकी दो बातों को दोनों कानों में डाले अचला वहीं बुत-सी बैठी रही। आज की रात और कल का दिन-भर बाकी। उसके बाद कोई रोक, रुकावट नही, इस सूनी नगरी में पास और दूर, जहां तक उसकी दृष्टि जाती—भविष्य के बीच आंख खोलकर देखा—अकेली वह और केवल सुरेश के सिवाय उसे कुछ भी दिखाई नही पड़ा।

बत्तीस

इस सूने घर में अकेले सुरेश को लेकर दिन बिताना पड़ेगा और वह बुरी साइत हर पल करीब ही होती आ रही थी। बाधा नहीं, रोक नहीं, लाज नहीं, जाग नहीं, कल का कोई बहाना करने तक का मौका नहीं मिलेगा।

वीणापाणि ने कहा था—सुरमा दीदी, ससुराल अपना घर है, औरतों को वहां झुककर जाने में कोई शर्म नहीं।

हाय रे हाय ! उसके कौन है और क्या नहीं है, इसका लेखा अंतर्यामी के सिवा और किसने रक्खा है ! फिर भी उसके पति आज भी हैं और अपना कहने को वह जला हुआ घर अभी धरती की गोद से मटियामेट नहीं हुआ है। आज भी वह पल-भर के लिए उसमें जाकर खड़ी हो सकती है !

बँधे जानवर की आंखों पर से जब तक बाहर का यह फांक एकबारगी ढँक

नहीं जाता, तब तक जैसे वह एक ही जगह में सिर पीट-पीटकर मरता रहता है, वैसे ही उसके बेरोक मन की उदग्र कामना उसके कलेजे में हा-हा करती हुई निकल बाहर होने की राह ढूढ़ती हुई घुटने लगी। पास के कमरे में सुरेश निश्चित सो रहा था। बीच का दरवाजा थोड़ा-सा खुला और उसीके इस तरफ फर्श पर चटाई डाल कर ऐड़ी से चोटी तक कंबल ओढ़े नौकरानी सो रही थी। घर-भर में किसी के भी जगने का कोई आभास नहीं—केवल वही मानो आग की सेज पर दहकती रही। दिनों तक इसी पलंग पर उसके बगल में वीणापाणि सोती रही, पर आज उसके पति यहीं थे, वह अपने कमरे मे सोने गई थी और कही इसी चिंता का छोर पकड़कर अपना दुखी और उद्भ्रात मन सहसा उन्हींके बंद कमरे के पर्यंक के प्रति हिंसा, अपमान, लज्जा के अणु-परमाणु में चूर-चूर हो दम तोड़े, इस डर से उसने अपने-आपको जार-जबर्दस्ती खींचकर लौटाया, लेकिन तुरत उसका सारा शरीर बिजली छू जाने जैसा थर-थर कांपने लगा।

बगल के किसी कमरे की घड़ी मे दो बजे। बदन पर की ऊनी चादर को हटाते ही उसने अनुभव किया, इस जाड़े की रात मे भी उसके कपाल पर, मुह पर बूद-बूद पसीना जमा है। सो उसने सिरहाने की खिड़की खोल दी। देखा—अंधियारे पाख की आठवी का चांद ठीक सामने ही उगा है और उसीकी कोमल किरणों से सोन नदी का नीला पानी बड़ी दूर तक चमक उठा है। गहरी रात की ठंडी हवा ने उसके गर्म ललाट को सहला दिया और वह वहीं उस खिड़की के सामने अपने भाग्य की अंतिम समस्या को लेकर बैठ गई।

अचला की निश्चित धारणा हो गई थी कि उसके शापित अभागे जीवन का जो-कुछ सत्य है, लोगों को सारा-का-सारा एक अद्भुत उपन्यास-सा लगेगा। जिस रोज से इस कहानी की शुरूआत हुई, तब से जीवन में जितने झूठ ने सत्य का नकाब डालकर झलक दिखाई है, उनमें से एक-एक को याद करके क्रोध, क्षोभ और मान से भाग्य-विधाता ने उसकी जवानी के पहले आनंद को मिथ्या से ऐसा बिगाड़कर, ऐसे मजाक की चीज बनाकर संसार के सामने उधार देने में कोई हिचक नहीं दिखाई; उस बेरहम बेदर्द को बचपन से अगर भगवान् कहने की उसने शिक्षा पाई है, तो वह शिक्षा उसकी बेकार गई, बिल्कुल बेईमानी हुई। वह आंखें पोंछते हुए बारंबार कहने लगी—हे ईश्वर, तुम्हारे इतने बड़े विश्व-ब्रह्मांड में इस अभागिनी के जीवन को छोड़ कर कौतुक करने को और क्या खाक कुछ नहीं मिला!

मन ही मन बोली—कहां थी मैं और कहां था सुरेश। ब्राह्म की छाया छूने में भी जिसकी घृणा और द्वेष का अंत नहीं था, किस्मत के खेल से आज उसीकी आसक्ति का आदि-अंत बन रहा। जिसे उसने कभी प्यार नहीं किया वही उसका

प्राणोपम है, सिर्फ इसी झूठ को लोगों ने जाना ? और जो सत्य है, उसे कहीं, किसी के पास जगह नहीं मिली ? और उस झूठ को उसीके मुँह से प्रचार कराने की जरूरत थी ? अदृष्ट की इतनी बड़ी विडंबना कब किसके नसीब में घटी ? पति को उसने बड़े दुःख से पाया था, मगर वह बर्दाश्त न हुआ—उसके चरम दुर्भाग्य की गठरी लिये सुरेश अभिशाप की नाई उसके गांव में जाकर हाजिर हुआ। उसके सुख का बसेरा जलकर खाक हो गया और उसीके साथ उसकी तकदीर भी जलकर भस्म हो गई, इस बात में जब कोई शुबहा ही न रहा, तो फिर उसके बीमार पति को उसीकी गोद में डाल दिया गया, जिसे वह एकबारगी खोने को थी, सेवा से पूर्णतया उसे लौटा देने का ही संकल्प अगर विधाता का था, तो फिर उसकी दुःख-दुर्दशा, ग्लानि-अपमान का अंत क्यों नहीं ?

दोनों हाथ जोड़कर अचला रुँधे स्वर में कहने लगी—जगदीश्वर, रोगमुक्त पति के आशीर्वाद से सभी अपराधों का प्रायश्चित्त हो चुका, अगर मुझे यही विश्वास करने दिया था, तो फिर इस इतनी बड़ी दुर्गत में क्यों ढकेल दिया ? उसने संकोच नहीं माना, इतनी-इतनी हरकतों के बाद भी उसने सुरेश को साथ आने को आमंत्रित किया, दुनिया में इस कसूर के मिटने का उपाय नहीं, कलंक की यह कालिमा नहीं मिटने की—मगर मेरे अंतर्यामी, मेरे भाग्य से तुमने भी क्या भूल समझा ? कलेजे के अंदर क्या है, वह क्या दिखाई ही नहीं दिया तुम्हें ?

पिता की चिंता, पति की चिंता को वह जी-जान से मानो ठेलकर हटा दिया करती थी, आज भी चिंता को उसने पास नहीं फटकने दिया; किंतु उसे मृणाल की बात याद आई, फूफी की याद आई। याद आया आने के वक्त सती-साध्वी कहकर उनका आशीर्वाद देना। उसके संबंध में उनके मनोभाव की कल्पना करते हुए अकस्मात् मार्मिक आघात खाकर देर के लिए उसका ज्ञान मानो खो गया और देह-मन की उस अवश-बेबस दशा में खिड़की पर माथा रक्खे अजानते ही उसकी आंखों से आंसू बह रहा था; ऐसे वक्त पीछे पैरों की हल्की आहट हुई। अचला ने मुड़कर देखा, खाली बदन, नंगे पांव सुरेश आकर खड़ा है। आकस्मिक उत्तेजना से वह कुछ कहने जा रही थी, लेकिन गला रुंध गया। उसे दमन करने की उसकी इच्छा न हुई और मुँह फेरकर तुरत उसने फिर उसी तरह खिड़की पर सर रख लिया; लेकिन जो आंसू अब तक बूंद-बूंद टपक रहा था, उसका बांध मानो टूट गया और एक पगली धारा-सी फूट निकली।

कहीं कोई शब्द नहीं। घर के भीतर-बाहर रात की गहरी नीरवता छा रही थी। पीछे पत्थर की मूरत-सा चुप खड़ा सुरेश, सहसा उसका शरीर पत्ते की

तरह कांपने लगा और लमहे में उसने दोनों हाथ बढ़ाकर अचला का माथा अपनी छाती में खींच लिया।

अपने को उससे छुड़ाकर अचला ने आंखें पोंछीं, लेकिन सबसे बड़े अचरज की बात यह कि जो आदमी उसकी इतनी बड़ी दुर्गत की जड़ था, उसके इस व्यवहार से अचला को तीखी नफरत हुई, बल्कि धीमे से कहा—तुम इस कमरे में क्यों आए?

सुरेश चुप रहा। शायद उसकी आवाज ही न निकली। अचला ने धीरे-धीरे खिड़की बंद कर दी। बोली—सर्दी से तुम्हारा हाथ कांप रहा है, नंगे खड़े मत रहो—अंदर जाकर सो रहो;

सुरेश की आंखें जल उठीं, लेकिन उसकी आवाज कांपने लगी—अचला का हाथ अपने हाथ में खींचकर अस्फुट स्वर में बोला—तो तुम भी मेरे कमरे में चलो।

अचला जरा देर आवाक् विस्मय से उसके मुंह की ओर ताकती रहकर सिर्फ बोली—नहीं, आज नहीं। और, धीरे-धीरे उसने अपना हाथ छुड़ा लिया।

इस शांत और सयत ठुकराहट मे क्या था, ठीक-ठीक समझ न पाने के कारण सुरेश चुपचाप खड़ा रहा। अचला उसकी ओर देखे बिना ही बोली—क्या तुम यह जानकर इस कमरे में आए कि मैं जाग रही हूँ?

सुरेश ने चोट खाए हुए की नाईं कहा—और क्या तुम्हें सोई समझकर आया हूँ, यह ख्याल है तुम्हारा?

ख्याल? अचला मुंह फेरकर जरा हँसी। यह तीखी और सख्त हँसी धुंधली जोत में भी सुरेश की नजर से न बच सकी। उस हँसी ने मानो साफ शब्दों में उससे कहा—अरे कायर। सोई स्त्री के कमरे में चोर सरीखा घुसना नही चाहिए, पुरुष के इस महत्व का तुम आज भी दावा करते हो? लेकिन वह बोली कुछ नहीं। थोड़ी देर में झरोखे से हटाकर खड़ी होती हुई धीरे-धीरे बोली तुम्हारी तबियत ठीक नहीं, ज्यादा जगो मत, सो रहो जाकर। कहकर वह अपने बिस्तर पर जाकर सिर से पांव तक कंबल ओढ़कर सो रही।

सुरेश कुछ देर तक पंगु-सा वहीं खड़ा रहा और फिर धीरे-धीरे अपने कमरे में चला गया।

तैंतीस

पांच-छः दिन हुए दो-एक नौकर-नौकरानियों के अलावा सब कलकत्ता चले गए।

गए नहीं एक मकान-मालिक। जरूरी काम के चलते जाते-जाते वक्त वे न जा सके। इन कै दिनों तक रामचरण बाबू अपने काम में व्यस्त रहे, खास नजर नहीं आते वैसा। आज पहले सुबह ही एकाएक वे ऊपर के कमरे में आ पहुँचे और सुरमा का नाम लेकर पुकारने लगे। सर्दियों का सवेरा, अब तक कोई जगा न था, पुकार सुन कर अचला हड़बड़ाकर बाहर निकली और सुरेश भी दूसरे दरवाजे से आंखें मलता हुआ आया। दोनों जने को दो अलग-अलग कमरे से निकलते देख बूढ़े की प्रसन्न दृष्टि अचानक संदिग्ध हो उठी, इसे सुरेश ने नहीं देखा, लेकिन अचला ताड़ गई।

सुरेश की ओर देखते हुए रामबाबू ने दुःखी-से स्वर में कहा—असमय में आप की नींद तोड़ दी, बड़ी भूल हो गई मुझ से।

सुरेश ने हँसकर कहा—गलती क्या ! असल में मैं जाग ही रहा था वरना ढोल पीटकर भी मेरी नींद तोड़ सकें, क्या मजाल ! पर इतना सवेरे ?

बूढ़े ने अचला को सम्बोधन करके कहा—आज सुरमा बिटिया पर कुछ उपद्रव करने की जरूरत आ पड़ी है यह कहकर जरा हँसते हुए उसकी ओर मुखातिब होकर बोले—मेरी खटोली हाजिर है, मुझे तुरत बाहर जाना है, दो-तीन बजे से पहले लौट न सकूं शायद, सो थोड़ा दाल-चावल उबालकर रख लेना बिटिया—उतनी देर को जिसमें आकर मुझे चूल्हा-चक्की न करना पड़े।

कट्टर धार्मिक ये ब्राह्मण अपनी स्त्री और पतोहू के सिवा और किसी के हाथ का बना भोजन नहीं खाते थे। उनकी रसोई भी बिल्कुल अलग थी। यहां तक कि हर कोई उसमें जा तक नहीं सकता था ; खुद से बीच-बीच में बना लेने की उन्हें आदत थी, जभी घर की औरतें कलकत्ता जा पाई थीं। इन कै दिनों तक वे वही करते रहे थे, पर आज एकाएक इस अपरिचित स्त्री पर यह भार देने से वह अचरज और सबसे ज्यादा डर से अभिभूत हो गई।

अचला के उदास चेहरे को देखकर रामबाबू ने कहा—तुम सोच रही हो, आखिर यह बुड्ढा आज कह क्या रहा है। रसोई के मामले में जो इतना परहेज, इतना विचार रखता है, उसे आज यह हो क्या गया ? तुम्हारे हाथ के भोजन से अरुचि क्यों होगी ? और हो, न हो, उतनी देर से लौटकर चूल्हा फूंकने को जी नही चाहता। इतना कहकर अचला के मौन मुखड़े को जरा देर देखकर फिर हँसते हुए बोले—मन ही मन तुम जरूर सोच रही हो कि इस बुड्ढे में अचानक इतनी उदारता जब आ ही गई है, तो मुझे तकलीफ न देकर उस रसोइए के हाथ का खाने से ही तो चल जाता। नहीं बिटिया, वह नहीं चलता। इस बुड्ढे में आज भी वही कट्टरता है, वही कुसंस्कार है—मर भी जाऊँ तो संध्या-गायत्री न करने वाले इस रसोइए के हाथ का अन्न मेरे गले से नहीं पार हो सकता। फिर, बिटिया राक्षसी और तुमको इस बीच मैंने एक

ही मान लिया है, यह भी नहीं, पर जितना सोचता हूं, मुझे लगता है, यह बिटिया भी एक दिन रांध दें तो वह मेरी अन्नपूर्णा का अन्न न होगा, यह मैं हर्गिज नहीं मानता। मगर अब तो रुक नहीं सकता, कहने को जो बाकी रह गया, खाते वक्त ही कहूँगा। वही सबसे बढ़कर वास्तविक कहना होगा। कहकर बूढ़े जाने लगे कि अचला व्यस्त हो उठी। क्या बोले—आगा-पीछा करते-करते जो बात पहले जबान पर आई, वही बोल उठी। कहा—मैं तो पकाना वैसा जानती नहीं, मेरे हाथ की रसोई आपको पसंद नहीं आएगी।

पलटकर रामबाबू जरा हंसे। बोले—तुम मुझे इसी पर यकीन करने को कहती हो ?

अचला ने कहा—हर कोई क्या बढ़िया पकाना जानती है ?

वे बोले—सभी जानते हैं, मैं क्या यही कह रहा हूं ?

अचला हठात् इसका कोई जवाब न पाकर चुप रही। लेकिन सुरेश के लिए वहां खडा रहना असम्भव हो उठा। अचला के फीके पड़े चेहरे की तरफ ताक कर उसने उसकी पीड़ा समझी। इस बूढ़े सज्जन का अचार भला हो या बुरा, सच हो या झूठ, उन्हें पका कर खिलाने में जो घिनौनी ठगी है, यह बात अचला के अगोचर नहीं और इस भली औरत का विवेक किसी भी हालत में गुप्त रहस्य के कुकर्म से अपने को छुटकारा नहीं देना चाहता, उसके चेहरे पर यह भाव साफ देखकर वह और किसी ओर देखे बिना मुँह-हाथ धोने के बहाने जल्दी-जल्दी सीढी से नीचे उतर गया—

तो मैं चलूं— कहकर रामचरण बाबू भी सुरेश के पीछे हो लिए। अचला कुछ देर हक्की-बक्की-सी खड़ी रही, उसके बाद अपने को सचेतन करके जोर से आवाज दी, जरा सुनिए—

बूढ़े ने मुड़कर देखा—अचला कुछ कहना चाहती है, मगर नजर झुकाये चुपचाप खड़ी है। सो वे कुछ कदम आगे बढ़ आए। बोले—एक बात और कहनी है बिटिया। जब तुम्हारी हिचक जाना ही नहीं चाहती, तो—जानती हो सुरमा बचपन में मैं मुहल्ले-भर का मंझले भैया था। शायद हो कि तुम्हारे पिता से उम्र में मैं छोटा भी न होऊँ। फिर तुम मुझे बडे चाचा क्यों नहीं कहतीं ?

अचला जानती थी कि बूढे उसे बहुत स्नेह करते हैं, प्यार के इस प्रकट रूप से उसकी आंखों के कोने में आंसू झलक पड़ा। इसलिए सिर हिलाकर उसने केवल हामी भरी।

उन्होंने पूछा—और कुछ कहोगे ?

अचला जरा देर जमीन देखती रही, उसके बाद शायद सारी शक्ति बटोरकर अस्फुट स्वर मे कहा—मेरे पिताजी लेकिन ब्राह्म थे।

रामचरण बाबू सहसा चौककर उठे। वास्तव मे कलकत्ता में लोग जैसे शौकिया दो दिनों के लिए बन जाते है ? ऐसे लोग ब्राह्मों के साथ बैठ छूटकर हिन्दुओं को गालियाँ देते है —वैसी गाली सच्चे ब्राह्म कभी जबान पर भी नही ला सकते —और उसके बाद अपने घर वापस जाकर अपने समाज म ब्राह्मों को वैसी ही खरी-खोटी सुनाते है—ऐसी कि वैसे वचन हिन्दुओ के सात पुश्त भी नही सुना सकते ! ऐसे ही ब्राह्म न ? ऐसे हों तो मुझे जरा भी आपत्ति नहीं।

अचला का चेहरा शर्म से रंग गया। वह बोली—नहीं, सच्चे ब्राह्म। जवाब से बूढ़े जरा पस्त-से पड़ गए। जरा देर मे बोले—ब्राह्म ही हुए तो क्या ? उनकी लड़की तो आखिर श्वातक नही कि डरें। बल्कि जिसके धर्म मे तुमने हाथ बँटाया है, वे जब हिन्दू है, जब उनके गले मे यज्ञोपवीत है और इन कुछ धागो का आज तक उन्होंने अपमान नही किया है, तो बाप का कर्म तुम्हे नही छू सकता। आज तुम जितने ही मनसूबे गाठो, बूढ़े चचा से निकल नही सकती। रसोई आज तुम्हे करनी ही पड़ेगी। ओ ! जभी पिता के पढ़ाए पाठ के नाते उस दिन तुमने उपवास से कन्नी कटाई ? आज इसे सूद समेत वसूल कर तब तुम्हारी जान छोडूगा। राम बाबू फिर जाने को हुए। अचला अपनी उस जड़ता को जीत गई। पूछा—अच्छा बड़ चाचाजी मै ब्राह्म होऊँ तो आप मेरे हाथ का नहीं खाएँगे ?

बूढ़े ने कहा—नही। मगर तुम तो वह हो नही, हो नहीं सकती।

अचला ने पूछा—लेकिन वही होती तो मैं सिर्फ इसीलिए आपके लिए अछूत हो जाती कि मेरा धर्ममत अलग है ?

उन्होंने कहा—अछूत क्यों होने लगी बिटिया, अछूत नही होती। तुम्हारे हाथ का खाता नही, बस।

इसके बारे मे आज उसे बहुत कुछ जानना था। इसीसे वह चुप नही रह सकी। बोली—क्यों नहीं खाते ? घृणा से ?

बूढ़े से कोई जवाब देते न बना, एकटक उसे देखते रह गए।

अचला सारा संकोच छोड़ चुकी थी। बोली—बड़े चाचाजी आपकी दया-माया कितनी बड़ी है। इसके बहुत-से सबूत दुनिया में है, जानती हूँ मैं, मगर उसका हमसे बड़ा सबूत कोई नहीं। लेकिन आप जैसे का हृदय इतना अनुदार कैसे हो सकता है, मैं सोच नहीं पाती। आप मनुष्य को इस तरह घृणा कैसे कर सकते है ?

रामबाबू अचानक अकुलाकर बोले— मैं घृणा करता हूँ। किसे ? कब ? अचला ने कहा—जिसके हाथ का छुआ आपके लिए अस्पृश्य है, वही आपकी घृणा का पात्र

है। मन में आप उसीको घृणा करते हैं। लेकिन जमाने की आदत है, इसलिए यह भी नही पता है कि घृणा करते है। नौकर को छोड़िए, पाठकजी पकाया भी आपके गले से नीचे नहीं उतर सकता, आप खुद कह चुके हैं। इससे मुल्क का कितना बड़ा नुकसान, कितनी अवनति हुई है, यह तो—

रामबाबू चुपचाप सुन रहे थे, अचला के जोश को भी गौर कर रहे थे। उसका कहना जब खत्म हुआ, तो बोले—घृणा हम किसी को नही करते बिटिया। जो नालिश तुमने की, यह नालिश साहब लोग करते है—उनसे तुम्हारे पिता ने सीखा और अपने पिता से तुमने सीखा। नहीं तो मनुष्य भगवान् है, यह ज्ञान केवल उन्हींको नही, हमें भी था, आज भी है।

इतने में नीचे कुछ शोर-गुल-सा सुनाई पड़ा, एक पल उधर ध्यान देकर उन्होंने कहा—सुरमा, जिनके लिए खाना बहुत बड़ी चीज है, बड़े तूल-कलाम की बात है, उनसे अपना मेल नहीं बैठ सकता। हमारे यहां यह खाना बड़ी मामूली चीज है—आज जरा उसका इंतजाम कर रखना, फिर खाते-खाते बात होगी कि घृणा हम किससे कितनी करते है और उससे देश की कितनी अवनति हुई—लेकिन शोरगुल बढ़ रहा है—मैं अब चला। कहकर वे जरा तेजी से उतर गए।

चौंतीस

तीसरे पहर के करीब जब खाकर तृप्ति की डकार लेते हुए रामबाबू उठने लगे तो बड़े कष्ट से हल्का हंसकर अचला ने कहा—लेकिन चाचाजी जिस दिन आप जानेंगे कि आज आपकी जात गई, उस दिन आप मुझ पर नाराज न होने पाएंगे लेकिन।

रामबाबू ने मीठा हँसकर गर्दन हिलाते हुए कहा अच्छा, अच्छा; वही होगा बिटिया—और वे हाथ धोने चले गए। उनके खड़ाऊँ की खटखट जब तक सुनाई देती रही, अचला सम्पूर्ण दृष्टि से तब तक मानो उसीका अनुसरण करती रही; कब वह आवाज खो गई, कब बाहरी दुनिया ने उसकी चेतना से लुप्त होकर उसे पत्थर बना दिया, उसे इसकी खाक भी खबर न हुई।

बहुत दिनों से यहां काम करने बाली इधर की नौकरानी बंगालियों के तौर तरीके के साथ-साथ कुछ-कुछ बंगला भी सीख गई थी। वह किसी काम से इधर आई तो बहूजी के बैठने के ढंग से दंग रह गई। बड़ी होने के नाते अधसीखी बंगला

को डांट के शब्द का इस्तेमाल करके बेला की ओर अचला का ध्यान दिलाते हुए पूछा—आज खाने-पीने का भी काम होगा कि यों ही चुपचाप बैठे रहने से काम चल जायगा ?

चौंककर अचला ने देखा—बेला जाती रही थी। सांझ हो चली थी। एक चमकहीन मैलापन थकावट जैसा तमाम आसमान मे फैल गया था; वह शरमाकर उठ खड़ी हुई और बोली—मैने तो शाम के बाद ही खाने की सोची है लालू की मां। आज भूख-प्यास बिल्कुल नहीं है।

लालू की मां हैरान होकर बोली—अभी-अभी तो कहा था बहूजी कि बड़े बाबू खा लें, तब तुम खाओगी।

नः—एकबारगी रात को ही खाऊँगी—कहकर तर्क का मौका न देकर अचला जल्दी से ऊपर चली गई।

थोड़ा-सा समय मिलता कि वह रेलिंग के पास कुर्सी खींचकर चुपचाप नदी की ओर देखा करती। आज रात भी वैसे ही बैठी थी, अचानक रामबाबू के चप्पलों की आहट से उसने मुड़कर देखा—वे बिल्कुल बीच मे आ खड़े हुए थे और कुछ कहने से पहले ही नारियल को एक ओर टिकाकर एक कुर्सी खींचकर बैठ गए। जरा हँसकर बोले—आज उसी बात का फैसला करने आया हूँ सुरमा—तुम्हारे ब्रह्मज्ञानी पिताजी ठीक है कि इस बूढ़े चाचा की बात ठीक है—इसका आज कोई हल निकाले बिना नीचे नहीं जाता।

अचला समझ गई, यह सवाल जाति-भेद वाला है। थकी हुई आवाज में बोली—तर्क का भला मैं क्या जानती हूँ चाचाजी !

रामबाबू ने सिर हिलाकर कहा—अरे बाप रे ! तुम किसी मामूली आदमी की बेटी हो ! लेकिन बात झूठी है, यही ग़नीमत है, नहीं तो उस समय तो मैं हार ही जाता।

किसी बात पर तर्क करने लायक मन की अवस्था अचला की न थी, इस तर्क-युद्ध से छुटकारा पाने का जरा-सा मौका पाकर बोली—तो फिर तर्क की क्या पड़ी है चाचाजी ! आप ही की ती जीत हुई। जरा रुककर बोली—जो हार चुकी उसे दुबारा हराने से क्या लाभ ?

रामबाबू ने तुरत कोई जवाब नहीं दिया। उम्रवाले आदमी ठहरे, दुनिया में उन्होंने बहुत-कुछ देखा है लिहाजा इस सिमटी आवाज का मर्म भी जैसे उनसे छिपा न रहा, वैसे ही उसके थके पीले चेहरे पर इसकी छाप भी वे साफ देख पाए कि यह लड़की सुखी नहीं है, कोई एक पीड़ा चिमनी की आग-सी रात-दिन उसके अन्दर जल रही है। वे जरा देर चुप रहे और हंसने की कोशिश करते हुए स्नेह से बोले—

नः, बहाना न चला। बूढ़ा आदमी, बकबक करना अच्छा लगता है, सांझ को अकेले दम घुटने लगता है, इसीलिए सोचा कि झूठ-सच कहकर बिटिया को जरा चिढ़ा दूं, मगर कलई खुल गई। झुककर उन्होंने हुक्के के लिए हाथ बढ़ाया।

अचला समझ गई कि वे जाने की तैयारी कर रहे है और नीचे जाकर मुश्किल से ही इनका समय कटेगा, यह समझकर उसका मन दुःखी हो गया। सो वह खुद उठी और अपने से हुक्का उनकी तरफ बढ़ाते हुए बोली, जी चाहे आप जितना तम्बाखू यहां बैठकर पिएँ। मगर अभी मैं आपको जाने नही दूंगी।

हुक्का हाथ में लेकर वे बोले—लगाम इतनी ढीली मत करो बिटिया, अन्त तक सम्हाल नहीं सकोगी। मुंह बन्द किए मेरा तम्बाखू पीना तो तुमने देखा ही नहीं है। उससे बल्कि कुछ कहने-सुनने दो—

ताकि दम न घुट जाय, हूँ न बड़े चाचाजी। खैर, ठीक है। मगर बकबक होगी काहे पर ?

रामबाबू ने मुंह का धुआं उपर की ओर छोड़ते हुए कहा—यही तो मुसीबत कर दी तुमने। महावक्ता से यह पूछने पर उसकी जबान जो बन्द हो आती है।

अच्छा, चाचाजी, कभी अगर आपको यह मालूम हो कि आज जबर्दस्ती जिस का पकाया भात खाया है, उसके जैसी नीच, घृणित, इस दुनिया में कोई नहीं, तो क्या करेंगे आप ? प्रायश्चित्त ? और कहीं शास्त्र मै उसकी विधि ही न हो, तो ?

रामबाबू बोले—फिर तो बला ही चुक गई ! प्रायश्चित्त करना ही नहीं पड़ेगा।

मगर तब मुझ पर कितनी घृणा होगी आपको !

कब ?

जब पता चलेगा कि मेरी कोई जात ही नहीं।

होंठ से हुक्का हटाकर उस मद्धिम रोशनी में ही कुछ देर तक उसे देखकर रामबाबू धीरे-धीरे बोले - तुम सबकी यही बात मैं किसी भी तरह समझ नहीं पाता। तुम सबकी क्यों कहता हूं—जानती हो सुरमा ? अपने लड़के के मुँह से भी यह नालिश सुनी है मैंने। वह तो खोलकर ही कहता है कि इस छूतछात के भूत से ही तो देश धीरे-धीरे रसातल को जा रहा है। क्योंकि इसकी जड़ में घृणा है और घृणा का कभी अच्छा परिणाम नहीं होता।

अचला मन ही मन बहुत चकित हुई। उसकी यह धारणा ही नहीं थी कि किसी भी बहाने इस घर में इस आलोचना का प्रवेश हो सकता है। बोली - बात क्या झूठी है ?

रामबाबू जरा हँसकर बोले—झूठ है या नहीं, मान लो यह न कहूँ, परन्तु सच

नहीं है। शास्त्र के कानून-कायदों पर चलता हूँ, बस, इतना ही। जो इससे भी आगे जाते है, मसलन मेरे गुरुदेव, वे खुद से पकाकर खाते है। लड़की तक को नहीं छूने देते।

अचला जवाब न दे सकी। चुप रही।

रामबाबू ने हुक्के मे और दो-चार दम लगाये। लगाकर बोले-- जवानी में मै बहुत घूमा। कितने वन-जंगल, पर्वत-पहाड़ और कैसे-कैसे लोग, कितने तरह के आचार-विचार, उने सबका नाम शायद तुम लोगों को मालूम न हो— कहीं खान-पान का विचार है, कही उसकी बू-वास भी नहीं, फिर भी सदा वैसे ही असभ्य हैं, उतने ही छोटे। यह कहकर जले तंबाखू में बेकार ही और दो-चार कश लगाया और अंत में खंभे मे उसे टिका दिया। अचला जैसी चुप बैठी थी, बैठी रही।

रामबाबू स्वयं भी जरा देर चुप रहे फिर सीधे बैठकर बोले– असली बात क्या है, जानती हो सुरमा, तुम लोगों ने साहबों से पाठ पढ़ा है। वे उन्नत है, वे राजा है, धनी हैं। उन लोगों म अगर पैर उठाकर हाथ के बल चलने का रवाज होता, तो तुम लोग कहते—ठीक इस तरह चलना सीखे बगैर तरक्की की कोई उम्मीद नहीं।

ऐसी दलीलें अचला ने अखबार में बहुतेरी पढ़ी थीं, लिहाजा कुछ बोली नहीं, जरा हंसी। वह हंसी रामबाबू ने देखी, लेकिन नही देखी है, कुछ इस ढंग से दुहराते हुए कहने लगे—श्री-धाम श्रीक्षेत्र में जब जाता हूं जाने कितने अजाने लोगों की भीड़ में होता हूं। वहा छूआछूत की बला नहीं है, सोचने को जी भी नहीं होता। मगर इसका जन्म अगर घृणा से होता, तो क्या इस आसानी से ऐसा कर पाता! यही समझो कि मैं किसी का छुआ नहीं खाता, लेकिन राह के गरीब-से-गरीब को भी, मन में कभी घृणा से देखा है—

अचला व्याकुल स्वर में बोल उठी—मैं क्या आपको जानती नही बड़े चाचा-जी? दुनिया में इतनी दया किसे है?

दया नही बिटिया, दया नही—प्रेम। मैं जैसे उन्हीं लोगों को ज्यादा प्रेम करता हूँ। लेकिन असली बात बताऊँ तुम्हें, क्या कोई जात और क्या कोई आदमी, जब धीरे-धीर वह हीन हो जाता है, तो सबसे नाचीज के मत्थे ही सारा दोष मंढ़कर सांत्वना पाता है। सोचता है, इस आसान रुकावट को सम्हालते ही रातों-रात वह बड़ा हो जायगा। हम लोगों का भी ठीक यही रवैया है। लेकिन जो कठिन है, जो जड़ है–

बात पूरी करने का समय न मिला। सीढ़ी पर जूते की आवाज हुई। मुड़कर देखते ही सुरेश पर नजर पड़ी और पूछ बैठे—अच्छा सुरेशबाबू, आप तो हिन्दू हैं, आप तो हमारे जाति-भेद को मानते हैं?

सुरेश सकपका गया। यह कैसा सवाल ? जिस दलदल पर वे चल रहे हैं। उसे हर कदम पर टटोले बिना कदम बढ़ाने से किस गहराई में धँस पड़ेंगे; उसका क्या पता ? इसलिए सत्य सत्य है या नहीं, इसकी भी कसौटी जरूरी है। इसलिए डरते हुए वह करीब गया और अचला की ओर ताक कर मतलब भांपने की कोशिश की। लेकिन उसकी शक्ल दिखाई न पड़ी। सो जरा सूखा-सा हंसकर लटपटाता-सा बोला—हम क्या है, यह तो आप सब जानते हैं रामबाबू।

रामबाबू बोले—खूब जानता हूँ। यही तो ख्याल था। लेकिन आपकी देवीजी जो पासा ही पलट देना चाह रहीं है। कहती है—जाति-भेद सरीखे इतने बड़े अन्याय, इतने बड़े अनर्थ को वे हर्गिज कबूल नहीं कर सकती ; म्लेच्छ के हाथ का खाने में उन्हें उज्र नहीं। यह शिक्षा जन्म से ही उन्हे अपने पिता से मिली है। उनके हाथ का भोजन खाकर मेरी जात गई या रही ? प्रायश्चित्त की जरूरत है कि नहीं, अबतक इसी पर बात हो रही थी। आपका क्या ख्याल है ?

सुरेश अवाक् ! अचला का मिजाज उससे छिपा नही तथा बगावत की आग वहां हर वक्त सुलग ही रही है, यह खबर भी उसके लिए नई न थी। लेकिन अकस्मात् वह आग आज कैसे भड़की और कहां तक फैली, इसका अन्दाजा न लगा पाकर शंका और उद्वेग से वह सूख गया। लेकिन तुरन्त अपने को सम्हाल कर पहले ही जैसा हँसने की कोशिश की, पर अबकी उस कोशिश ने हँसी को दबाकर महज चेहरे को ही बिगाड़ दिया।

रामबाबू ने सिर हिलाकर कहा—गरचे यह वाजिब नही , फिर भी ऐसा सोचने में मुझे आपत्ति न थी; लेकिन पति के कल्याण की खातिर भी जब हिन्दू घर की स्त्री ने कर्तव्य का पालन न करना चाहा, तुलसी चढ़ाने के दिन भी हर्गिज उपवास न किया—खैर, मजाक भी हो यह सख्त है जरा ! अच्छा सुरेशबाबू, विवाह तो हिन्दू मत से हुआ था ?

सुरेश ने कहा—हां

वे धीमे-धीमे हँसने लगे। कहा—मैं तो जानता हूँ। अचला की ओर देखकर बोले—तुमसे कहने को यों बातें तो बहुत है। पर अब तुम्हारे पिता के ब्राह्म होने का मुझे कोई गम नहीं। ऐसे अनेक ब्राह्मों को मैं जानता हूँ, जो समाज में जाकर आंखें भी बन्द करते है। थोड़ा-बहुत अनाचार भी करते हैं। किन्तु लड़की के ब्याह में हिसाब का गोलमाल नहीं करते। खैर, एक फिक्र मेरी जाती रही।

लेकिन उनसे भी ज्यादा फिक्र टली सुरेश की। वह बूढ़े की हां-में-हां मिलाते हुए बोल उठा—आप बजा फरमा रहे हैं। आज-कल ऐसे ही लोग ज्यादा है। वे—

हठात् दोनों चौंक उठे। बीच ही में अचला का तीखा स्वर मानों गरज उठा। सुरेश की आंखों पर तेज नजर गड़ाती हुई बोली—इसने गुनाहों के बाद भी गुनाह बढ़ाने में तुम्हें शर्म नही आती ? तुम तो जानते हो, पिताजी फरेबी नहीं, मन-वचन से वे वास्तव मे ब्राह्म हैं। तुम्हें मालूम है वे—कहते-कहते वह कुर्सी पर से उठ गई।

सुरेश पहले तो जरा सकपकाया, पर मुड़कर आश्चर्य से बड़ी-बड़ी हुई बूढ़े की आंखों को देखकर वह भी मानों यकबयक जल उठा। बोला—झूठ क्या है ? तुम्हारे पिता क्या हिन्दू घर मे तुम्हारी शादी करने को तैयार नही थे ? सच बताओ !

अचला ने जवाब नहीं दिया। शायद थोड़ी देर चुप रहकर उसने अपने को सम्हाल लिया और धीरे-धीरे बोली--यह बात आज मुझसे क्यों पूछ रहे हो ? इसके कारण को दुनिया में सबसे ज्यादा क्या तुम नही जानते ? तुम्हें खूब मालूम है कि मैं क्या हूं, मेरे पिताजी क्या है, मगर इसके लिए तुमसे झगड़ने की मुझे इच्छा नहीं— इतना ही नही-- शर्म आती है। तुम्हारी जैसी इच्छा हो, बनाकर उन्हे बताओ। मै नहीं सुनना चाहती। कहो—मै जाती हूँ—और वह तेजी से ही बगल के कमरे में चली गई।

वह चली गई। पर ये दोनों कुछ देर के लिए पत्थर से निश्चल हो रहे।

बूढ़े ने शायद मन की भूल से ही एक बार हुक्के के लिए हाथ बढ़ाया, लेकिन तुरन्त अपना हाथ खींचकर जरा हिले-डुले, खरबरकर गले को साफ किया और बोले—आजकल सेहत कैसी है सुरेशबाबू ?

सुरेश अनमना हो पडा था। चौंककर बोला—जी ठीक है, कहते ही उसे सच्चाई की याद आई—फिर बोला –छाती में जरा यहा पर दर्द है—क्या जाने कल से बढ़ा या—

रामबाबू बोले—कहिए तो भला, ऐसे में जाड़े की रात में इतनी देर तक बाहर घूमना क्या ठीक है ?

ठीक घूमना नहीं रहा, उस घर के लिए आज दो हजार रुपया बयाना दे आया।

रामबाबू ने अचरज किया। फिर कहा—नदी पर है, अच्छा मकान है, मगर मुझ से पूछते तो मैं मना करता। उस दिन बातों-बातों में समझ गया था। सुरमा को यहां रहना पसंद नहीं। हंसकर बोले—उसने पूछ लिया है या अपनी ही राय से खरीद लिया ?

सुरेश ने इसका जवाब न देकर कहा—नापसंद का तो खास कोई कारण

नहीं देख रहा हूँ । रहने लायक कुछ सामान भी कलकत्ता से मँगवाया है, आशा है, कल परसों तक आ जाएगा ।

रामबाबू थोडी देर चुप रहे, फिर क्या सोचकर तो पुकारा—सुरमा ! अचला ने जवाब नहीं दिया, लेकिन कमरे से बाहर आकर अपनी कुर्सी पर बैठ गई । बूढ़े ने स्नेह से कहा—तुम्हारे पति ने तो यहां बहुत बड़ा मकान खरीद लिया । अब तो बूढ़े चाचा को छोडकर तुम जा नहीं सकोगी ।

अचला चुप रही ।

बूढ़े ने फिर कहा, घर और असबाब ही नही, मै जानता हूं, गाड़ी-घोड़ा भी आ रहा है और उससे भी ज्यादा यह जानता हूँ कि यह सारा कुछ तुम्हारे ही लिए । कहकर हँसते हुए एक बार उन्होंने अचला को और एक बार सुरेश को देखा । लेकिन उस गंभीर और उदास मुखड़े पर खुशी की कोई झलक ही न दिखी । इस धुँधले प्रकाश में औरों को शायद यह नहीं दीखता, मगर बूढ़े की पैनी निगाह न चूकी । तो भी उन्होंने पूछा -लेकिन बिटिया तुम्हारी, राय—

अचला अब बोली । कहा --मेरी राय की तो जरूरत नही चाचाजी !

रामबाबू झट बोल उठे यह कैसी बात ! तुम्ही तो सब हो, तुम्हारी ही इच्छा से—

अचला उठ खडी हुई; बोली- नही चाचाजी, नही; मेरी इच्छा से कुछ नही आता-जाता । आप सब समझ नही पाएँगे ; मैं आपको समझा भी नही सकूँगी -- मगर अब इजाजत दे दें तो मैं जाऊँ--

बूढ़े के मुह से बात नहीं निकली, उसकी जरूरत भी नहीं हुई ।

एकाएक नौकरानी एक कड़ाही में आग ले आई । सबका ध्यान उसी पर जा टिका । रामबाबू अचरज से पूछा चाह रहे थे, सुरेश ने अप्रतिम होकर कहा— मैंने बैरा से लाने को कहा था, देख रहा हूं, उसने दूसरे को यह हुक्म दिया । जहां पर दर्द है, वहां जरा -

आग की जरूरत की व्याख्या नही करनी पड़ी, लेकिन उसके लिए तो एक जने की और जरूरत थी । रामबाबू ने अचला की ओर देखा, लेकिन उसने तुरत मुँह फेरकर शांत स्वर में कहा—मुझे बड़ी नींद लग रही है चाचाजी, मै चलती हूं । कहकर उत्तर का इन्तजार किए बिना ही चली गई और तुरत दरवाजा बन्द करने की आवाज हुई । रामबाबू कुर्सी पर से उठ गए और नौकरानी के हाथ से आग की कड़ाही लेकर बोले —चलिए सुरेशबाबू--

आप ?

हा, मैं । कुछ नई बात नही, जीवन में यह काम बहुत कर चुका हूँ —और

एक प्रकार से जबर्दस्ती ही उसे उसके कमरे मे खींच ले गए। आग की कड़ाही को फर्श पर रक्खा ; कुछ देर एक टक उसे देखते रहे और तब उसका एक हाथ दबाकर कहा -नहीं, नहीं सुरेश बाबू, यह हर्गिज नही हो सकना, हर्गिज नहीं। मै समझ रहा हूं, कुछ हुआ है, मैं एक बार --लेकिन छोड़िये --जरूरत होगी तो फिर— कहकर वे चुप हो गए।

सुरेश एक शब्द भी न कह सका। लेकिन बच्चा सरीखा एक बार उसके होंठ कांप उठे और फिर आसू छिपाने के लिए उसने मुँह फेर लिया।

पैंतीस

सुरेश एक सोफे पर आख मूंदकर पड़ा था और सामने एक कुर्सी खींचकर रामबाबू उसकी दुखती छाती पर सेंक दे रहे थे ; ऐसे समय द्वार खोलने की आवाज हुई। देखा, अचला आ रही है। उसने बिना किसी आडंबर के कहा—रात काफी हो गई चाचाजी। आप सोने जाइये।

इसीके तो इन्तजार मे थी बिटिया ! कहकर रामबाबू झट खड़े हो गए और सुरेश को देखकर कहा —इतनी देर तक विडबना के सिवा और क्या भोगते रहे हम दोनों ! भला यह काम हम लोगों से होने का है ? अचला की तरफ कुर्सी को जरा बढ़ा देते हुए बोले—जिसका काम, उसीको सोहता है। लो, बैठो। मैं जरा हाथ-पाव पसारूँ। थकावट के भार से एक लम्बी जम्हाई लेकर दो-तीन बार चुटकी बजाकर उन्होंने हुक्का उठाया और बाहर जाकर सावधानी से दरवाजे को बन्द करते हुए हंसकर बोले --गनीमत है, ऊँघते हुए हाथ-पाव न जला बैठा। क्यों सुरेश बाबू ?

सुरेश ने कुछ कहा नही, सिर्फ हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

अचला चुपचाप उनकी छोड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गई। सेक देने के कपड़े को तपाती हुई बोली—फिर कैसे दर्द हो गया ? कहाँ पर लगता है ?

सुरेश ने न तो आँखें खोली, न वह बोला ; सिर्फ हाथ से छाती की बाईं ओर दिखा दिया। फिर सन्नाटा। ऐसा सन्नाटा कि लगने लगा, इस मौन अभिमय के अंतिम अंक तक यह मौन ही चलेगा। लेकिन वैसा हुआ नहीं। सहसा अचला के फ्लानेल-समेल हाथ को सुरेश ने अपनी छाती पर कस कर दबा लिया। अचला के चेहरे पर उद्वेग का कोई चिन्ह नही दीखा, वह यही उम्मीद कर रही थी, केवल इतना कहा छोड़ो, थोड़ा और सेंक दूँ।

सुरेश ने हाथ छोड़ दिया, लेकिन देखते ही देखते उठकर दो व्याकुल बाहें बढ़ाकर अचला को खींच लिया और अपनी छाती से कसकर दबाते हुए असंख्य चुंबनों से उसे अभिभूत कर दिया। एक क्षण पहले जैसे यह लगा था कि इस आवेग-उच्छ्वासहीन नाटक का अन्त ऐसी ही निर्जीव नीरवता में होगा, पर एक पल बीतते न बीतते फिर यह लगने लगा कि इस बौखलाई उन्मत्तता की शायद सीमा नहीं, शेष नहीं, सभी ओर, सब समय ही यह उन्मत्तता मानो अक्षर, अमर होकर रहेगी। कभी किसी युग में भी इसका विराम न होगा, विच्छेद न होगा।

अचला ने बाधा नही दी, जोर नही लगाया, लगा कि इसके लिए भी वह तैयार ही थी, केवल उसका शांत मुखड़ा एक बार पत्थर की तरह सर्द और सख्त हो गया। सुरेश को होश नहीं था, शायद सृष्टि के घोरतम अन्धेरे से उसकी दोनों आंखें बिल्कुल अंधी हो गई थीं—नहीं तो उस मुखड़े को चूमने की शर्म और बेइज्जती उसकी समझ में आ भी सकती थी। समझ नहीं आई ठीक, लेकिन थकावट से ही जब यह पागलपन फिर हो गया तो अपने को धीरे-धीरे उससे छुड़ाकर अचला अपनी जगह पर आ बैठी।

कुछ क्षण जब दोनों के चुपचाप कट गए, तो एक लम्बा निश्वास फेंकते हुए सुरेश बोल उठा—इस तरह से हम लोगों का कब तक कटेगा अचला ? कहकर उसने किसी उत्तर का इंतजार नहीं किया और कहने लगा—तुम्हारा कष्ट मैं जानता हूँ मगर मेरे दुःख को भी सोच देखो। मैं तो गया।

अचला ने इसका जवाब नहीं दिया। पूछा—तुमने यहाँ मकान खरीदा है ? बड़े आग्रह से सुरेश बोल उठा—तुम्हारे ही लिए अचला !

आचला ने इसका भी जवाब न दिया। फिर पूछा—चीज-बस्त, गाड़ी-घोड़ा भी मँगाया है ?

सुरेश ने उसी तरह से जवाब दिया—सब तो तुम्हारे ही लिए।

अचला चुप रही। इससे उसे क्या जरूरत, यह उसे चाहिए या नहीं, उस आदमी से यह पूछने जैसा अपने ऊपर व्यंग दूसरा और क्या है ? इसलिए इसके बारे में और कुछ न कहकर वह चुप हो रही। जरा देर चुप रहकर पूछा—रामबाबू के सामने तुमने मेरे पिताजी का नाम लिया है ? घर बताया है ?

सुरेश ने कहा—नहीं।

और सेंक देने की जरूरत है ?

नहीं।

तोमैं जाती हूँ। मुझे बड़ी नींद आ रही है। अचला कुर्सी पर से उठ गई।

आग की कड़ाही को हटाकर बाहर से दरवाजा बन्द करने जा रही थी कि सुरेश हड़बड़ में उठकर बोला--एक बात बताती जाओ अचला ! तुम क्या और कहीं जाना चाहती हो ? सच कहो ?

अचला ने पूछा—और कहां ?

सुरेश बोला–जहां भी हो। जहां हमें कोई नहीं जानता, कोई नहीं पहचानाता, ऐसी किसी जगह वह देश जितना—

आवेश में सुरेश की आवाज कांपने लगी, अचला ने इस पर गौर किया, लेकिन वह बहुत ही स्वाभाविक और-सहज स्वर में बोली—यहां भी तो हमें कोई नही पहचानता था, आज भी नहीं पहचानता।

उत्साह पाकर सुरेश कहने लगा—लेकिन धीरे-धीरे—

टोककर अचला बोली—धीरे-धीरे जान जाएँगे ? हा जान सकते हैं, लेकिन यह खतरा तो और कहीं भी है।

सुरेश उमंग मे आकर कहने लगा—तो यही तै रहा। यही तुम्हारी राय है कहो ? साफ-साफ कहो एकबार—कहते-कहते जाने किसने तो उसे ढकेलकर उठा दिया। लेकिन अकुलाए पैर को बढ़ाते ही देखा, द्वार बन्द करके अचला चली गई है।

कई दिनों से बदली घिर रही थी। बारिश के आसार थे। सुरेश के नए मकान में कलकत्ते से आए हुए ढेरों समान जमा थे, उन्हे सहेज लेने का आग्रह किसी में न था। दो घोड़े, एक गाड़ी भी आई थी--वह साईस के जिम्मे किसी अस्तबल में पड़ी है, कोई इसकी खोज नही लेता। जैसे-तैसे दिन बीतते जा रहे थे। ऐसे में एक दिन दोपहर को रामबाबू एक हाथ में हुक्का और दूसरे मे एक नीला लिफाफा लिए आ पहुँचे। अचला रेलिग के पास एक सोफे पर अधलेटी पड़ी किसी मासिक पत्र का विज्ञापन पढ़ रही थी। चाचाजी को देखकर उठ बैठी। चिट्ठी पढ़ाते हुए रामबाबू बोले—यह लो अपनी राक्षसी का पत्र। इतने दिन वह तुम्हें लिख नहीं सकी, इसके लिए मेरे पत्र मे तुमसे हजार बार माफी मांगी है, असंख्य प्रणाम भी लिखा है। उसे माफ़ कर दो। हँसते हुए उसके हाथ में चिट्ठी देकर वे पास ही एक कुर्सी खींचकर बैठ गए और नदी की ओर देखते हुए हुक्का पी-पीकर धुँए से अंधेरा-कर दिया।

अचला ने दो बार शुरू से आखिर तक पत्र को पढ़ने के बाद सिर उठाया। बोली—तो ये सब परसों सुबह की गाड़ी से आ रहे है ? ये फूफी कौन चाचाजी ? और उनकी राजपुत्र बधू ? राजपुत्र के गार्जन ट्युटर—

रामबाबू ने हँसकर कहा—दिल्लगी का मौका हाथ आ जाय तो यह बिटिया

राक्षसी चूकने की नहीं ! फूफी हुई मेरी छोटी विधवा बहन और राजपुत्र वधू यानी उनकी लड़की—भंडारपुर के भवानी चौधरी की स्त्री—खैर, कहने को कोई जो कहे, राजा-रजवाड़ा-सा ही घर है। राजपुत्र हुआ उसीका दसेक बरस का लड़का—और यह आखिरी आदमी क्या है, यह तो आंखों देखे बिना बता नहीं सकता बेटी; होंगे कोई ज्यादा तनखा के नौकर-चाकर। बड़े आदमी के बेटे के साथ घूमते-फिरते हैं, यह वह जानते-अजानते जुगाकर बालिग-नाबालिग सबका मन रखते है—ऐंसे ही कुछ होंगे। मगर मैं इसकी तो नहीं सोचता सुरमा, आऐं, खाऐं-पीऐं, पश्चिम के हवा-पानी से गले और छाती की जलन दो दिन स्थगित हो तो खुशी ही होगी; मगर फिक्र तो यह है कि घर अपना छोटा है राजे-रजवाड़ों की सोचकर बनवाया भी नहीं, घर-द्वार की व्यवस्था भी उसके अनुकूल नहीं। साथ मे नौकर-नौकरानी भी शायद जरूरत से तिगने आएं। इसीसे मैं सोच रहा हूँ, अगर तुम्हारे घर को--

अचला व्यस्त होकर बोली—लेकिन उसका अब समय कहां चाचाजी। फिर अकेले इतनी दूर रहना उनके लिए सुविधाजनक होगा ?

रामबाबू ने कहा—समय है, बशर्ते कि अभी से जुट जाया जाय। जगह तैयार रहे तो किसे कहां सुविधा होगी, इसका हल सहज ही हो जायगा। सुरेश बाबू तो सुनते ही इक्के पर सवार होकर चले गए—तुम्हारी गाड़ी भी तैयार होकर आई समझो, तुम खुद अगर जल्द तैयार हो जाओ बिटिया, तो इतने में मैं भी जूते बदल कर चादर ले आऊं। सच पूछो तो तुम्हारी गिरस्ती का ठीक-ठिकाना तो हम लोगो से होगा नहीं !

अचला कुछ देर चुप रही फिर उठ खड़ी हुई। बोली—अच्छा, मै कपड़े बदल लेती हूँ। कहकर धीरे-धीरे चली गई।

रामबाबू का प्रस्ताव न तो असंगत था, न अस्पष्ट। राजकुमार और राजमाता को जगह देने के लिए उसे यह आश्रय छोड़ना पड़ेगा, अचला समझ गई; लेकिन समझना सहज होने से ही भार हलका नही हो जाता। वह मन में जितनी दूर तक गया, स्टील के रोलर की नाई सब कुछ को पीसता हुआ चला गया।

इतने दिनों मे कोई भी उसे घर से बाहर निकलने को राजी नहीं कर सका था। मिनट पन्द्रह बाद आज पहली बार जब वह अपनी अभ्यस्त वेश-भूषा में तैयार होकर इसीके लिए आई, तो चारों ओर का सब कुछ उसे नया और विस्मय-सा लगा—और तो और, आप अपने को भी और ही तरह का लगने लगा। फाटक के बाहर बड़ी-सी जोड़ी खड़ी थी, नई पोशाक वाले कोचबान ने मालकिन समझकर सलाम किया; दरवाजा खोलकर साईस बाअदब हटकर खड़ा हो गया और उसीका अनुसरण

करते हुए रामबाबू जब सामने वाली जगह में बैठ गए तो यह सब कुछ अजीब सपने-सा लगा। उसकी अभिभूत नजर गाड़ी के जिस हिस्से पर भी पड़ी, लगा, यह बहुमूल्य ही नहीं, यह सिर्फ धनवान के वैभव का घमंड ही नहीं, उसका एक-एक कतरा मानो कसीके अपार प्रेम का बना है।

सख्त सड़क पर चार जोड़े खुरों की टपटप आवाज गुंजाती हुई जोड़ी दौड़ पड़ी, लेकिन अचला के कानों वह अस्पष्ट-सी दाखिल हुई। उसका सारा हृदय और बाहरी इन्द्रियां शायद आखीर तक ऐसी ही अभिभूत रह जातीं, लेकिन रामबाबू की आवाज से सहसा चौंक उठी—सामने की ओर उसका ध्यान खींचते हुए वे बोले—वह रहा तुम्हारा घर बिटिया। नौकर-चाकरों की बहाली हो चुकी, मामूली तौर पर सजाने-गुजाने का काम भी अब तक काफी आगे बढ़ चुका होगा, केवल तुम लोगों के सोने के कमरे में मैंने किसीको भी हाथ लगाने से मना कर दिया है। उनके जाते-जाते मैंने कह दिया, सुरेश बाबू, घर के और जहां पर जो जी चाहे, कीजिए, कोई परवा नही मुझे, मगर बिटिया के कमरे में कुछ कर-धर के उसका काम बढ़ा मत दीजिएगा। लजीली मुस्कान के साथ आशा भरी आंखें उठाते ही वे चुप हो गए।

वे अचानक ऐसे थम क्यों गए, अचला उसी वक्त समझ गई, इसलिए जब तक गाडी नए बंगले पर न जा पहुँची, तब तक वह अपना फीका उदास चेहरा बाहर की ओर फेर कर बूढ़े की विस्मित आंखों से छिपाए रही।

गाड़ी की आबाज से सुरेश बाहर आया, काम छोड़कर अपनी मालिकिन को देखने के लिए दाई-नौकर भी निकल आए, पर उस शक्ल को देखकर कसीको कोई उत्साह न मिला।

रामबाबू के साथ-साथ अचला उतर आई, सुरेश की ओर नजर उठाकर उसने देखा तक नहीं, उसके बाद तीनों नए मकान के अन्दर गए। उसके भीतर-बाहर, ऊपर-नीचे, कहीं भी आनन्द का लेश है, यह थोड़ी देर के लिए किसीको कहीं नहीं दिखाई दिया।

छत्तीस

लेकिन इसमें गलती कितनी बड़ी थी, उसे जाहिर होते भी देर न लगी। घर सजाने के काम में लगे लोगों को ऐसे महँगे और इतने ज्यादा सामानों के बीच खड़े होकर इसीलिए सभी चिंताओं से ज्यादा एक चिंता बार-बार चोट करने लगी कि

जिसके रुपया है, उसने खर्च किया है, यह एक पुरानी बात है;—परन्तु यह तो सिर्फ हीव नहीं है। यह तो मानो एक को आराम देने के लिए दूसरे की व्याकुलता की कोई हद नहीं। काम करते हुए, यह वह चीज छूते-छापते मामूली बातें बहुत हुईं, आंखें भी मिलीं कई बार, लेकिन सबके अन्दर से एक अनबोली बात, छिपा इशारा रह-रह कर केवल इसी ओर अँगुली दिखाने लगा।

धोने-पोंछने का काम खत्म नहीं हुआ था। लिहाजा, उसे मामूली तौर पर रहने लायक बनाने में ही सारा समय लग गया। थके-मांदे तीनों जने जब लौटने के लिए गाड़ी पर बैठे तो एक पहर रात जा चुकी थी। हवा बही थी, सो सामने का आसमान जरा साफ हो गया था, सिर्फ बीचों-बीच धुमैले मेघ का एक टुकड़ा एक छोर से आकर नदी पार हो करके दूसरी ओर फैलता जा रहा था; कभी मैली चाँदनीं की धारा मानो सप्तमी के चांद से चारों तरफ के बैहार और पेड़-पौधों पर झर रही थी। आखें भरकर इस सौंदर्य को देखने के लिए रामबाबू आंखें फाड़कर खिड़की से बाहर ताक रहे थे; मगर जो बूढ़े नही, प्रकृति के सारे रस, सारी मधुरिमा का उपभोग करने की ही जिनकी उम्र थी, सिर्फ वही दोनों गाड़ी की गद्दी के कोनों में आंखे बन्द किए बैठे रहे।

एक बहुत पुरानी स्मृति अचला के मन में धुँधली हो गई थी, बहुत दिनों के बाद आज वही याद आने लगी—सुरेश के कलकत्ते वाले घर से ऐसी ही एक सांझ को ठीक इसी तरह गाड़ी से वे लौट रहे थे। उस दिन उसके ऐश्वर्य और उपभोग के विपुल साधन उसके मन को महिम से खींचकर बहुत दूर ले गए थे। उस दिन इसी सुरेश के हाथों अपने को सौंपना निरा असंगत या असम्भव नही लगा था—बहुत दिनों के बाद आज वही बात जो क्यों याद आई, यह सोचते हुए अपने अन्तर की गूढ़ छवि को देखकर उसके सर्वाङ्ग को छूती हुई शर्म की आंधी बहने लगी। शर्म ! शर्म ! शर्म ! यह गाड़ी, वह घर और घर की इतनी-इतनी तैयारी—सब उसकी है; सब उस के पति के दुलार का उपहार है, यही सबने जाना और ऐसा भी दिन आयगा, जब लोग जानेंगे कि इसमें उसका वास्तविक अधिकार फूटी कौड़ी भर का नहीं था। शुरू से आखिर तक सब झूठा। उस दिन वह शर्म को रक्खेगी कहां ? अथच आज यह बात हर्गिज झूठ नहीं, इसका सारा कुछ महज उसी की पूजा के लिए संजोया गया है और इसका आदि-अन्त ही स्नेह से, प्रेम से, दुलार से मंडित है।

देखते ही देखते उसके मन में लोभ और त्याग, लज्जा और गौरव ठीक गंगा-जमना सा अगल-बगल ही बहने लगा और एक क्षण के लिए वह दो में से एक को भी अस्वीकार न कर सकी। फिर भी घर पहुँचकर रामबाबू जब सांध्यकृत्य के लिए चले गए, थकावट और सिर दुखने की दुहाई देकर वह असमय में ही जल्दी से अपना

कमरा बन्द करके लेट गई , तो केवल लज्जा और अपमान ही मानो उसे निगल जाना चाहने लगे । पिता की लाज, पति की लाज, सगे-सम्बन्धियों की लाज, सबकी सम्मिलित लाज से ही आंख पर आकाशचुंबी होकर सभी दुःखों को दबा दिया । केवल यही ख्याल होने लगा, यह फरेब जब किसी दिन उघर जायगा, तो मुंह छिपाने की जगह कहां रहेगी ?

यों जिस समाज में वह बचपन से पली, वहां भूतल-शय्या या पेड़ों के नीचे वास—कोई भी किसी का आदर्श नहीं रहा । वहां हर चाल-चलन, आहार-विहार, मिलने-जुलने में विलासिता के प्रति विराग को नही, अभुराग को ही क्रमशः उग्रता से बढ़ते देखा है—वहां हिंदू-धर्म के किसी आदर्श से उसका परिचय नहीं हुआ । स्वर्ग के आसरे संसार के सारे सुखों से अपने को हटाने की कठोर निष्ठा कभी नहीं देखी; उसने औरों की नकल पर बने घर के समाज को देखा है, जिसकी एक-एक नर-नारी सांसारिक प्यास से दिनानुदिन केवल सूखती ही गई है ।

इसलिए इस सूनी सेज पर आंख मूंदकर ऐश्वर्य नाम की चीज को तुच्छ कह कर उड़ा नहीं दे सकी । और उसका मन इस बात पर भी हामी न भर सका कि उसे यह नहीं चाहिए, जरूरत नहीं है । उसकी इतने दिनों की शिक्षा और संस्कार इनमें से किसीको भी तुच्छ करने के अनुकूल नहीं पड़ता था—लेकिन ग्लानि से भी उसका सारा अन्तर काला हो उठा । सो जितनी दौलत, जितने उपकरण—शरीर को आराम से रखने के विविध साधन—आज अनमांगे ही उसके पैरों तले आ लुटे थे, उसका बेरोक मोह उसे अविराम एक हाथ से खीचने और दूसरे से फेंकने लगा ।

दुःख के सपने में मुक्ति की जैसी एक धुंधली चेतना का संचार होता है, वैसे ही उसकी यह वाधा भी बिल्कुल जाती नहीं रही थी कि भाग्य की मार से आज जो दगा है, कभी इसके सत्य होने में कोई अड़चन ही नहीं थी । यही सुरेश उसका पति हो सकता था और दूर भविष्य में यह एक बारगी असम्भव है, यह भी कोई निश्चित तौर पर नहीं कह सकता ।

उनके समाज से मिलते-जुलते सभी समाज में विधवा-विवाह चलता है, हिन्दू-नारी के समान किसी एक ही के पत्नीत्व-बन्धन को, इस-उस दोनों लोक में ढोते-फिरने का अनुल्लंघनीय अनुशासन उन्हें नहीं मानना पड़ता—लिहाजा जीवन-मरण में केवल एक को ही अनन्यगति सोचने की लाचारी उससे उम्मीद नहीं की जा सकती । पति के जीते जी दूसरे को स्वामी कहने में अपराध के भार से वह मन जितना ही क्यों न दुःखी हो, लज्जा और अपमान की ज्वाला से जलता चाहे जितना हो, धर्म और परकाल की गदा उसे मारकर लुढ़का देने का डर नहीं दिखा सकी ।

दरवाजे का कड़ा खटखटा कर रामबाबू ने कहा—एक बूंद पानी तक पिए बिना सो गई बिटिया, तबीयत क्या इतनी खराब है ?

अचला की चिंता का छोर टूट गया। उसे ऐसा लगा, जैसे उसके पिता की आवाज हो। कभी रंज होकर सो रहने से वे इसी प्रकार घबराई आवाज से दरवाजे के बाहर से पुकारा करते थे।

इस चिंता को वह हर्गिज जगह नहीं देती, लेकिन स्नेह की इस पुकार को वह टाल न सकी, देखते ही देखते उसकी आंखें सजल हो आईं। झट उसने आंखें पोंछ लीं और भर्राए गले को साफ करके जवाब देते हुए किवाड़ खोलकर सामने आ खड़ी हुई।

ये बूढ़े सज्जन इतने दिनों की इतनी घनिष्ठता के बावजूद सदा एक दूरी रख कर ही चलते थे—इस घर मे आज का दिन ही इन लोगों का अंतिम है, शायद यही सोचकर पल में वे उस दूरी को लांघ गए। एक हाथ अचला के कंधे पर रखकर दूसरे से उसका ललाट चूमते हुए बोले—अपने चाचा से शरारत बिटिया ? तुम्हें कुछ नहीं हुआ, चलो— कहकर हाथ पकड़कर बरामदे की एक कुर्सी पर उसे बिठा दिया।

थोड़ी ही दूर पर दूसरी कूर्सी पर सुरेश बैठा था। उसने एक बार नजर उठा कर देखा और फिर सिर झुका लिया। बात थी कि रात बैठकर दिन के काम-काज पर बात की जायगी और सुरेश इसीलिए अकेले बैठकर रामबाबू के आने का इंतजार कर रहा था। उसीकी ओर देखकर रामबाबू जरा हँसकर बोले—आपकी गृहलक्ष्मी जानें किस साहब की बेटी है, दिन-तिथि, पोथी-पत्रा को नही मानती। ऐसे में आप मानें न मानें, कुछ आता-जाता नही। मगर मेरे साठ साल का कुसंस्कार तो जाने का नहीं। कल डेढ़ पहर के आस-पास एक शुभ साइत है—

सुरेश ने इशारे को न समझा। कुछ अचरज से कहा—शुभ साइत है ?

रामबाबू इसका ठीक सीधा जवाब न दे सके। कुछ जैसे आगा-पीछा करके बोले—इसके बाद हफ्ते भर के अंदर पत्रे में कोई दिन ढूंढ़े न मिला—इसी से—

सुरेश समझ तो गया, मगर हां-ना कुछ कह न पाकर डर से छिपे-छिपाए उसने अचला की ओर ताका और ताका कि अपनी नजर झुका न सका। देखा, अचला एकटक उसीकी ओर देख रही है।

अचला ने शांत भाव से कहा —कल सवेरे ही हम उस मकान में जा सकते हैं न ?

दंग था सुरेश, इस सीधे प्रश्न का सीधा उत्तर उसके मुँह से हर्गिज न निकल सका। उसने किसी प्रकार से इतना ही जताना चाहा कि वह घर अभी ठीक रहने

लायक नहीं हो सका है—फर्श शायद ओदा है, नई दीवारें कच्ची है—उससे तुम्हारी तबीयत खराब हो सकती है या मेरी—

लेकिन आपत्तियों की यह सूची समाप्त न हो सकी। अचला मानो जरा हँसकर ही बोली—है तो रहे। जिस दुर्दिन मे गीदड़ भी अपनी मांद से बाहर नहीं निकलना चाहता, वैसे दिन में जब मुझे खींचकर अनजान जगह में पेड़ तले ला बिठा सकते हो तो फर्श गीला है, इस डर से मेरे लिए तुम्हें घबराने की आवश्यकता नही ! उस दिन जो नहीं मरी, वह आज भी जिंदा ही रहेगी !

रामबाबू की ओर मुड़कर वह बोली आप फिक्र न करें चाचाजी हम कल सवेरे ही जाएंगे। आपका एहसान हम जन्म-जन्म तक न अदा कर सकेंगे — हम कल जाएंगे—कहते-कहते रोकर भाग गई और अपने कमरे का दरवाजा बंद कर लिया।

बूढ़े रामबाबू पर मानो गाज गिरी हो, ऐसे बैठे रह गए। उनकी आकुल-व्याकुल दृष्टि कभी सुरेश के झुके चेहरे पर और कभी उस बंद दरवाजे पर जाकर यह विफल प्रश्न करने लगी यह क्या हुआ ? कैसे हुआ ? संभव कैसे हुआ यह ? लेकिन अंतर्यामी के सिवा इस मार्मिक मान का उत्तर कौन दे ?

सैंतीस

दूसरे दिन सबेरे से ही आसमान बादलों से ढँका था। उस धुंधले आसमान के नीचे सारा संसार ही कैसा उदास और मलिन लग रहा था। गाड़ी दरवाजे पर खड़ी थी, कुछ-कुछ बक्स-विछावन उस पर रक्खा जा चुका था; पत्रे के अनुसार ठीक घड़ी में अचला नीचे उतरी और गाडी पर सवार होने से पहले रामबाबू के चरणों की धूल ली। वे जबर्दस्ती हँसने की कोशिश करके बोले— इस बूढ़े चाचा से छुटकारा पाना बड़ा मुश्किल है बिटिया। पाँवों की जरा-सी धूल लेकर दो मील के फासले पर जा रहे, इससे यह न समझो कि मुक्ति मिली !

गीली आंखें ऊपर उठाकर अचला ने धीरे-धीरे कहा—मैं तो ऐसा चाहती नहीं चाचाजी।

इस करुणा भरी बात से बूढ़े की भी आंखें भर आई। उन्हें सहसा लगा, यह अपरिचित लड़की फिर जाने परिचय के बाहर कितनी दूर खिसकी पड़ रही है। स्नेह सजल स्वर में बोले— भला मैं यह नहीं जानता हूँ बिटिया ? नहीं तो पति के साथ अपने घर जा रही हो, इसमें आंखों में आंसू क्यों आ जाते ? मगर तो भी तो मैं रोक

नहीं पाया। कहते हुए उन्होंने बूंद भर आंसू हाथ से पोंछकर हँसते हुए कहा—पास में थी, उत्पात मचाया करता था रात-दिन, अब वही करते न बनेगा, मगर सूद समेत वसूलने में न चूकूँगा, देख लेना।

सुरेश पीछे था। आज पहली बार उसने भक्तिपूर्वक बूढ़े के पैरों की धूल ली। वे धीरे-धीरे बोले—मैं जानता हूँ, आप मेरे यहां सुखी नहीं थे सुरेश बाबू! मैं तन-मन से आशीर्वाद देता हूँ, अपने घर जाकर वही असुविधा दूर हो।

सुरेश ने कुछ नही कहा, केवल फिर से एक बार झुककर उन्हें प्रणाम करके गाड़ी पर जा बैठा।

रामबाबू ने दुबारा आशीर्वाद देते हुए ऊँचे स्वर में कहा—मैंने एक एक्का लाने को कह दिया है— सांझ न होते-होते शायद जा धमकूं; मगर नाराज न होना। इस दिल्लगी के बाद एक लंबी उसांस भरकर मौन हो रहे।

गाड़ी चली गई, तो मन ही मन कहा—अच्छा ही हुआ कि समय रहते ही ये चले गए। यहां सिर्फ नहान का अभाव ही न था, अपनी विधवा बहन के स्वभाव को भी वे जानते थे। दूसरों की नब्ज टटोलने के कौतूहल की उसमें सीमा न थी। आते ही वह सुरमा की कठिन कसौटी शुरू कर देगी और इसका नतीजा चाहे जो हो, वह सुखकर नही होगा। इस लड़की के बारे में कुछ न जानते हुए भी इतना जरूर जाना था कि वह भद्र है। किसी भी आफियत के लिहाज से वह कभी झूठ नहीं कह सकती—वह ब्राह्म की लडकी है, छूआछूत नहीं मानती—यह सब वह छिपाएगी नहीं। वैसे में इस घर में जो विद्रोह मचेगा, उसकी कल्पना से ही छाती कांप उठती है। खैर, यह तो उनकी अपनी सुख-सुविधा की बात हुई। एक बात और थी, जिसको वे अपने ताईं भी स्पष्ट नहीं कर लेना चाहते थे। उनके लड़की नहीं थी, लेकिन पहली संतान उनके लड़की ही हुई थी। आज वह जिंदा होती, तो अचला की मां हो सकती थी, लिहाजा उम्र और शक्ल की कोई समानता ही न थी। लेकिन उनकी यह भूख कितनी बड़ी थी, इसका पता उन्हें उसी दिन चला था, जिस दिन इस अपरिचित स्त्री को डाक्टर की खोज में रोते-रोते रास्ते में जाते देखा था। उस दिन उन्हें ऐसा लगा था कि बहुत दिनों की खोई हुई वह लड़की अचानक मिल गई; उस दिन से वह भूख निरंतर बढ़ती ही गई और मन में भी अनुभव करते थे सही, लेकिन जाने कैसा तो एक रहस्य उस लड़की को घेरे हुए था; खैर, जो आंखों की ओट में है, वह ओट में ही रहे, खोदकर उसे निकालने की जरूरत नहीं।

एक दिन राक्षसी ने हलका-सा इशारा दिया था कि शायद कोई पारिवारिक झमेला है—शायद घर में झगड़कर सुरेश बाबू स्त्री को लेकर चले आए हैं; एक दिन अचानक अचला ने जब अपने को ब्राह्म महिला बताया और सुरेश के गले में पहले

जनेऊ दिखाई पड़ा था—उस दिन रामबाबू चौंक पड़े थे, उन्हें चोट पहुँची थी, लेकिन अंदर से इस गुप्त रहस्य का मानो एक हेतु उन्हें मिला था; उस दिन उन्होंने यही समझा था कि हो न हो, ब्राह्म-परिवार में शादी करके ही सुरेश ने यह आफत मोल ली है और यही विश्वास धीरे-धीरे उनके मन में जम गया था।

रामबाबू वास्तव में हिन्दू थे, इसलिए उन्होंने हिंदू धर्म की निष्ठा ही पाई थी, उसकी निठुरता नहीं। ब्राह्मण का लड़का सुरेश, उसकी यह दुर्गत नहीं ही होती तो उन्हें खुशी होती, परंतु यह प्रेम-विवाह, सगे-संबन्धियों से विच्छेद, यह लुका-छिपी—इसका सौन्दर्य, इसका माधुर्य भीतर ही भीतर उन्हें बड़ा मुग्ध करता था। इसे बिना जाने आश्रय देने में उनका हृदय मानो रस से अप्लावित हो उठता। इसीलिए जब भी इन दो बागी प्रेमियों का प्रणय-मान मनमुटाव के रूप में उनकी नजर में आता, तो बड़े दुःख के साथ उन्हें यही बाद याद पड़ती कि दूसरे के यहां के सँकरे दायरे में मिलन ठोकर खा रहा है, वही शायद अपने घर के स्वाधीन और स्वच्छ अवकाश में दुनिया के हजारों काज-अकाज मे शांति और सामंजस्य में स्थिति लाभ करेगा।

उनके नहाने का समय हो गया था, कंधे पर अंगोछा डालकर नदी की ओर जाते-जाते हँसते हुए बार-बार मन में कहने लगे—जाते वक्त इस बूढ़े पर बड़ा मान करके ही गई। सोचा, अपने लोगों की खातिर बडे चाचा ने अपने यहां हमें जगह नहीं दी! लेकिन दो दिनों के बाद जब जाकर यह देखूगा कि उनकी आंखों में हँसी समा नहीं पा रही है, तो उसी दिन इसका बदला चुकाऊँगा। उस दिन पूछूँगा, इस बुड्ढे के सर की कसम बिटिया, सच-सच बताओ तो, पिछले गुस्से की मात्रा कितनी रह गई? देखता हूँ, क्या जवाब देगी? उनका तमाम चेहरा खुली हँसी से उद्भासित हो उठा। अपनी आंखों में मानों उन्होंने साफ देखा कि होठों में हँसती हुई अचला काम का बहाना बनाकर चली गई और तुरत रकाबी में मिठाई लेकर लौटी, मुँह को बेतरह गंभीर बनाकर कहने लगी—मेरे हाथ की बनाई मिठाई है। न खाएँगे तो झगड़ा हो जायगा चाचाजी!

नहाकर पानी में खड़े हो गंगा-स्तोत्र पाठ करते समय भी बीच-बीच में अचला की हंसी छिपाने की कोशिश को साग से मछली ढंकने की चेष्टा से तुलना करते हुए उन्हें बड़ी हंसी आने लगी। और पिछली रात से जो क्षोभ मन में निरन्तर बढ़ रहा था, वह पूजा-पाठ करके घर लौटते हुए कल्पना की स्निग्ध वर्षा से जुड़ा कर पानी हो गया।

तार आया—कल ही सब आ रहे है। साथ में राजकुमार और राज-पुत्र-वधू के होने से आदमी शायद ज्यादा आएँ। घर में उन्हें आज काम कम था। तिस पर आसमान का रंग-ढंग ठीक न था। कहीं पानी पड़ने लगे और जाने में अड़चन आ

जाय; इस डर से रामबाबू वेला झुकते न झुकते टमटम ठीक करके इनाम देने का लोभ देकर तेज ले चलने को कहा। लेकिन रास्ते में ही नम हवा बहने लगी और वहां पहुँचते-पहुँचते बारिश थोड़ी-थोड़ी होने लगी।

अचला ने बाहर निकलकर कहा—आज ऐसे दुर्योग में क्यों निकले चाचा जी! अभी तो भीग गए होते!

उसके चहरे या आवाज में भावी आनन्द का आभास तक न देखकर बूढ़े का का मन छोटा हो गाया। इसके लिए वे कनई तैयार न थे--किसी ने गोया खींच कर उनकी कल्पना की माला को तोड़ दिया। तो भी उत्साह रखकर बोले--बापरे, न निकलता तो खैर थी! पानी में भीगने को तो सम्हाल लेता लेकिन आजीवन यहां का निकाला होकर कैसे रह पाता बेटी?

इस दुर्बोध नारी को वे कभी भी ठीक से पहचान नहीं सके थे। खासकर कल रात के सलूक से तो वे मारे अचरज के किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गए थे—और आज के आचरण से तो जैसे दिशा ही भूल गई उनको। बात तो महज इतनी-सी थी। लेकिन साथ-ही-साथ वह पागल-सी हो उनकी छाती पर औंधी पड़कर फफक-फफक कर रोने लगी। बोली—आप मुझे इतना प्यार क्यों करते हैं। चाचाजी! शर्म से मैं तो माटी में मिली जाती हूँ।

बड़ी देर तक बूढ़े कुछ बोल न सके, एक हाथ उसकी पीठ पर रक्खे दूसरे से उसका सिर सहलाने लगे। उनका स्नेह-विगलित हृदय समाज सम्मत ब्याह, अपने-सगे या कि मां-बाप से विद्रोह-विच्छेद, झगड़कर घर छोड़ना—इन पुरानी परिचित और अभ्यस्त बातों की धारा में ही बहने लगा। कोई नई खान खोदने की कल्पना तक न की; इस प्रकार ये अवाक् बूढ़े और वह रोती हुई नारी बड़ी देर तक एक ही रूप में खड़े रहे। उसके बाद धीमे-धीमे कहा—इसमें शर्म कैसी बेटी? तुम मेरी सती-लक्ष्मी बेटी हो, बहुत-बहुत दिन पहले महज दो ही दिन को मेरी गोदी में आकर चली गई थीं—लेकिन चूंकि माया न तोड़ सकी सो फिर बाप के कलेजें में लौट आई हो—मै तो तुम्हें देखते ही पहचान गया था। सुरमा - उसे पास की एक कुर्सी पर बिठाकर तरह-तरह से यही समझाने लगे कि इसमें कोई शर्म, कोई लाज नहीं। सब दिन, सब युग में ऐसा होता आया है। जो सती है, स्वयं आदि शक्ति है जो वे भी एक बार मां-बाप, अपने-सगे सबसे झगड़कर पति के घर चली गई थीं। फिर से तुम्हें सब मिलेगा, सब होगा; आज जो विमुख हैं, वे फिर अपने होंगे, बेटे-पतोहू को अपने घर ले जाएंगे। देखना, मेरा यह आशीर्वाद कभी विफल न होगा।

आवेश में वे कितना क्या तो कहते गए। उसमें जो सार था, छोड़िए उसे,

लेकिन उसके भार से सुनने वाली का सिर धीरे-धीरे धूल से मिल जाने को हो गया। जमकर बारिश शुरू हो गई थी। इतने में नजर आया सुरेश भीगकर कीचड़ से लत-पत हो कहां से तो तेजी से घर में दाखिल हो रहा है। देखते ही अचला ने जल्दी से अपनी आंखें पोंछ लीं। और बारिश का पानी हाथ में लेकर आंसू के चिह्न को धोकर बैठ गई। रामबाबू समझ गए, चाहे जिस वजह से भी हो, सुरमा आंसू के इतिहास को स्वासी से छिपाना चाहती है।

रामबाबू को आकर देखते ही सुरेश कुछ कहना चाह रहा था कि वे व्यस्त होकर बोल उठे-- बात-चीत फिर होगी सुरेश बाबू, मैं भागा नहीं जा रहा हूँ। पहले आप कपड़े बदल आएँ।

सुरेश ने हँसकर कहा--कूछ नहीं हुआ। और एक कुर्सी खीचकर बैठने जा रहा था। अचला ने नजर उठाकर देखा---चाचाजी जो कह रहे है, सुनने में दोष क्या है ? महीना भर भी नही हुआ, तुम इतनी बड़ी बीमारी से उठे हो---बार-बार मुझे कितनी सजा देना चाहते हो ?

उसके कहने और देखने मे इतना बड़ा व्यवधान था कि दोनों ही विस्मित हुए। लेकिन विस्मय की यह धारा बहने लगी. उल्टी तरफ को। सुईश बिना कुछ बोले ही हुक्म बजाने चला गया। और रामबाबू बाहर की ओर देखने लगे।

बाहर वर्षा का विराम नहीं---रात जितनी बढती गई, वर्षा का प्रकोप उतना ही बढ़ता गया। बहुत दिनों के आकर्षण से धरती लगभग सूख गई थी। उसकी सारी दीनता, सारे अभावों को एक ही रात में भर देने के लिए विधाता मानों कसम खा चुके हों।

रामबाबू की घबराहट को गौर करके अचला ने हौले-हौले कहा---लौटने में बड़ी तकलीफ होगी ? वे हँसे। मन की चंचलता को दबा कर कहा---तकलीफ के लिए न सही; इस आफत में नई जगह में तुम लोगों को छोड़कर मैं नहीं जाता। लेकिन सबेरे ही तो वे लोग आ रहे है, रात ही गए बिना कैसे चले सुरमा। लेकिन लगता है, ऐसा ही न रहेगा। घंटे भर में थम जायेगा पानी। उतनी देर रुक जाऊं।

जो लोग आ रहे है, उस प्रसंग में बात शुरू हुई। और संसार, समाज, धर्म, अधर्म, पाप-पुण्य, इहलोक-परलोक--धीरे-धीरे जानें कितनी तरफ फैल गई। दोनों इतने मशगूल हो गए कि कितनी देर हुई, रात कितनी बढ़ी, कोई पता न रहा। बाहर मेघों का गरजना और बरसना कितना भयानक, अंधेरा कितना गाढ़ा हो उठा---यह भी किसी ने नहीं देखा। रामबाबू में जो ज्ञान, जो दर्शन, जो भक्ति संचित थी, अपने परम स्नेह की उस पात्री के आगे उसे उड़ेलने का मौका पाकर

महज दो जनों की उस बैठक को माधुर्य से भर दिया। अचला को सिर्फ इतनी ही चेतना रही कि वह एक ऐसे व्यक्ति के हृदय की सत्य अनुभूति से परिचित हो रही है, जो निष्पाप है, जिनकी श्रद्धा और स्नेह को उसने पाया है।

अचानक पैरों की आहट से दोनों ने मुड़कर देखा, नौकर खड़ा है। वह बोला—माँ जी रात काफी हो चुकी, बारह बज रहे हैं—खाना भिजवा दें ?

अचला ने चौंककर पूछा—बारह बज रहे हैं ! और बाबू ?

अभी-अभी वे खाकर सोने चले गए।

सुरेश वही जो गया फिर नही लौटा—अब ख्याल आया। गर्दन बढ़ाकर अचला ने देखा, पर्दे के अन्दर से रोशनी दिखाई पड़ रही है। क्षुब्ध और लज्जित होकर रामबाबू बार-बार कहने लगे—मुझसे बड़ी भूल हो गई बिटिया, बड़ी भूल हो गई। तुम्हें मैंने छेंक लिया कि यह भी नही देख पाई कि उनका खाना भी हुआ या नही। खैर, अब तुम खाने आओ--

अचला ने शायद इस पर कान नही दिया। नौकर से पूछा—कोचवान समय पर गाड़ी क्यों नही ले आया ?

नौकर ने कहा—घोड़ा नहीं है, इस झड़ी पानी मे निकालने का साहस न हुआ।

तो फिर कोई दूसरी सवारी क्यों नही लाया।

नौकर चुप रह गया। लेकिन इसका मतलब गलती कबूल करना नही, प्रतिवाद करना था कि इसके लिए तो कहा नहीं गया।

रामबाबू उत्कंठा के बजाय लज्जा से ही बार-बार कहने लगे—गाड़ी की जरूरत नहीं, और न जाएं तो भी चल जायगा, सिर्फ अगले सुबह स्टेशन पर हाजिर हो जाना चाहिए। मैं रात को कुछ खाता नहीं, यह झमेला भी नहीं है, सिर्फ तुम कुछ खा कर सो रहो, बातों में बड़ी रात हो गई, बड़ी गलती हो गई। और एक प्रकार से जबर्दस्ती खाने के लिए उसे नीचे भेज दिया। पंद्रह मिनट के बाद जब वह ऊपर आये तो परेशान होकर बोले—बस, अब एक मिनट की भी देर न करो; सोने जाओ तुम। मैं बैत के सोफे पर मजे मैं सो रहूँगा—कोई तकलीफ, कोई असुविधा न होगी। बस, तुम चल दो। मैं देखूं।

उनके बार-बार के आग्रह निवेदन ने अचला को कैसा तो आच्छन्न-सा कर दिया। जो झूठा सम्मान, स्नेह और श्रद्धा वह अपने इस हितू बाप-सरीखे बूढ़े आदमी से अबतक केवल धोखे से ही श्रद्धा करती आ रही है, वही लोग उसके इस निहायत बुरे समय में गला दबाकर उसे सुरेश के सूने शयन-कक्ष की ओर ढकेलने लगा। उसे याद आया, ऐसी ही एक झड़ी-बदली की रात ने उसे स्वामी विहीन

किया था, आज फिर वैसे ही दुर्दिन का अभिशाप उसे सदा के लिए अपार अंधकार में गर्क करने को तैयार है। कल असह्य अपमान से लाज की गहरी कीचड़ में उसका गला तक डूब जाएगा। यह वह साफ देखने लगी, लेकिन तो भी आज की उस झूठ की ही जय-माला ने उसे किसी भी तरह सत्य को जाहिर न करने दिया। जीवन के इस चरम-क्षण में मान और मोह ही चिरजयी बना। उसने बाधा न दीं, कुछ कहा नहीं, पीछे पलटकर देखा तक नहीं—चुपचाप धीरे-धीरे सुरेश के सोने के कमरे में जाकर दाखिल हो गई।

बाहर की उन्मत्त प्रवृति वैसी ही मत्त बनी रही, गाढ़े अंधेरे में बिजली हँस-हँस उठने लगी—रात भर में कभी भी इसका कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ।

नई जगह मे रामबाबू को अच्छी नीद नहीं आई, खासकरके मन में फिक्र रहने के कारण तड़के ही उनकी नींद टूट गई। बाहर निकल देखा, बारिश थम जरूर गई है, लेकिन घटाटोप है। नौकर-चाकर कोई जगा या नहीं, यह देखने के लिए बरामदे के एक छोर पर जाकर सहसा चौक उठे। कौन तो मेज पर सिर टेके कुर्सी पर बैठी है। करीब जाकर अचरज से बोल उठे—तुम ? इतना सबेरे क्यों जगीं बिटिया ?

सुरमा ने एक नजर देखकर ही फिर मेज पर सिर रख दिया। उसका चेहरा शव जैसा सफेद, दोनों आखों के नीचे कालिमा और काले पत्थर में से जैसे झरना फूट निकलता है ठीक उसी तरह उसकी आंखों से आंसू बह रहा था।

एक अस्फुट शब्द करके रामबाबू उस अधमरी नारी को एकटक देखते रहे ; गले के अन्दर से कोई शब्द ही बाहर नहीं निकला।

अड़तीस

सुबह गर्म-गर्म मुरमुरे के साथ चाय पीकर केदार बाबू ने तृप्ति की सांस ली। झूठे बर्तन लेने के लिए मृणाल कमरे में आई, तो बोले—तुम्हारे इस गर्म मुरमुरे और पत्थर के प्याले की चाय में कौन-सा अमृत है, पता नहीं, लेकिन एक महीना हो गया, यहां से हिल न सका।

अचला के नाते मृणाल उन्हें बाबूजी कहने लगी थी। बोली—आप यहां से चले जाने को क्यों परेशान होते है बाबूजी, आपकी यह—मैं क्या सेवा करना नहीं जानती ?

आपकी यह लड़की क्या—मृणाल असावधानी से यही कहने जा रही थी, लेकिन दबाकर उसे इस तरह से जाहिर किया। इसीलिए शायद समझते हुए भी केदार बाबू ने इसे नहीं समझना चाहा। लेकिन आवाज उनकी एकाएक करुण हो गई। बोले—भागने को अब परेशान कहां हूँ बेटी! तुम्हारे हाथ की चाय, तुम्हारे हाथ का भोजन, तुम्हारे इस माटी के घर को छोड़कर मुझे स्वर्ग जाने की भी इच्छा नहीं होती। उस छोटी-सी खिडकी के सामने बैठकर मैं बहुत बार सोचा करता हूँ मृणाल, भगवान् की दया से और दो साल बच जाऊं तो तमाम जिन्दगी कलकत्ते में जो नुकसान उठाया है, उसका रत्ती-रत्ती पूरा कर लूँ। और जिसमे वही पूंजी लेकर उनके आगे जाकर खड़ा हो सकूँ।

कितनी बड़ी वेदना से उन्होंने यह बात कही और कैसी मार्मिक लज्जा से कलकत्ते के जीवन-भर के घर-मुहल्ले को छोड़कर, सदा के समाज को त्यागकर इस जंगल के झौंपड़े मे बाकी दिन बिताने की अभिलाषा जाहिर की, इसे मृणाल ने समझा; इसीलिए कोई जवाब न देकर चाय का प्याला लेकर धीरे-धीरे चली गई।

यहां पर जरा शुरू की बात बता देना जरूरी है। करीब एक महीना पहले केदार बाबू यहां आए और तब से लौटकर नही जा सके। महिम की बीमारी के समय कलकत्ते में सुरेश के यहां इससे उनका परिचय हुआ था, मगर यहां उसके अपने घर में आकर उसका जो परिचय मिला उससे उनका तन-मन सोने की जंजीर में बँध गया। उसी बंधन से वे अपने को किसी भांति छुडा नही पा रहे थे गोकि बाहर कितना काम उनका बाकी पड़ा था।

महिम से उनकी भेंट नहीं हुई। इनके आने की खबर मिलते ही वह जल्दी-जल्दी चला गया। जाते समय मृणाल ने रोकने की जिद न की, क्योंकि छुटपन से ही वह उसके संयम और सहिष्णुता, बुद्धि-विवेचना के प्रति उसका ऐसा अगाध विश्वास था कि उसने यह निश्चित रूप से समझ लिया कि अचला से भेंट करना इस समय उचित नही, इसलिए महिम चंपत हो रहा है। उसने सोचा था, उसीका पत्र पाकर बेटी-दामाद का बीच-बचाव करने के लिए केदारबाबू अचला को साथ लिए दौड़े आ आ रहे हैं। मगर आए थे अकेले।

सुलझा आज तक भी कुछ नही, केवल संशय के बोझ से दिन-दिन भारी होने होने वाले दिन एक-एक कर निकल रहे थे। सिर्फ ऊपर की ओर देखकर इतना समझ में आया कि आसमान में दुर्भेद्य बादलों की परतें कभी कटे तो कट सकती है। पर उसके पीछे अँधेरा ही है, चादनी नहीं है।

सुरेश की फूफी ने लापता सुरेश के लिए अकुलाकर मृणाल को चिट्ठी लिखी थी, वह चिट्ठी केदारबाबू के हाथ आई। महिम ने किसी बड़े जमींदार के यहां गृह-

शिक्षक की नौकरी करने की खबर भेजी है, केदारबाबू उसे भी बार-बार पढ़ गए, पर उनकी बेटी का जिक्र तक किसीमे नहीं, मगर दोनों पत्रों की एक-एक पंक्ति, एक-एक हरूफ ने अभागे पिता के कानों एक ही बात सौ बार कही है, जिसे समझने की शक्ति ही उन्हे नहीं।

अचला उनकी इकलौती बेटी थी, बात इतनी ही नही, जबसे उसकी मां मरी, तब से उन्होंने ही मां की तरह उसे गोदी में पाल-पोसकर इतनी बड़ी किया। उस लड़की के भारी अमंगल की आशका से उनका शरीर दिन-दिन दुबला और तपे सोने-सा रंग काला होता जा रहा था, अथच अमगल जिस रास्ते का इशारा कर रहा था, वह रास्ता सभी पिता के लिए संसार में सबसे ज्यादा बद है।

गांव के दो-चार बूढ़े पड़ौसी कभी-कभी उनसे गप-शप करने आते, लेकिन संकोच से वे कभी किसी के यहां नही जाते। मृणाल अनुरोध करती तो कहते—जरूरत क्या है बेटी, मेरे जैसे मलेच्छ का किसीके यहा न जाना ही अच्छा है।

मृणाल ने कहा—तो वही क्यों आएँगे ? इसका कोई जवाब न देकर छाता लिए वे खेतों की ओर निकल पड़ते। खेतिहरों से मिल-मिलकर बातें करते—उनके सुख-दुःख, गर-गिरस्ती, न्याय-अन्याय, पाप-पुण्य की बात—ऐसी कितनी ही तरह की बातें करते-करते जब बेला बढ़ जाती, तो घर आते। सुबह चाय पीने के बाद यही उनका रोज का काम था।

जन्म से ही कलकत्तावासी थे। शहर से बाहर जो असंख्य गाँव है, उनसे उनका नाता ही टूट गया था। धर्म बदलने के बाद अपने सगे भी न रहे, अतएव ज्यादातर नागरिको के समान बिना जाने ही। ये भी इन लोगो के बारे मे अजीब ख्याल रखते थे, यह कुछ अनोखी बात नही। जो अपढ़ अनगिनती किसान दूर गांवों मे ही सारी जिन्दगी काट देते है, शहर का मुँह देखना भी जिन्हे शायद ही नसीब होता है, ऐसों को वे एक प्रकार से जानवर ही समझा करते थे, लेकिन बदनसीबी ने आज जब अपने दो विष-दात उनके मार्ग मे चुभाकर उनके मन को ही समाज से फेर दिया, तो जितना ही इन अनपढ़ गरीब किसानों से उनका परिचय होने लगा, उतना ही उनकी श्रद्धा और स्नेह उनकी तरफ उमड़ पड़ने लगा। दूसरी ओर अपने समाज, उसके आचार-विचार, शिक्षा-संस्कार, धर्म उसकी सभ्यता और कायदे-कानूनों के खिलाफ उनका हृदय विद्वेष और वितृष्णा से भर उठने लगा।

उन्हें स्पष्ट मालूम होने लगा कि अपढ़ होते हुए भी वे अशिक्षित नही है। बहुत पहले की प्राचीन सभ्यता उनकी अस्थि-मज्जा में घुली-मिली है। नीति की मोटी बातों को जानते है। किसी धर्म से उन्हें बैर नही, क्योंकि ससार के सारे ही

धर्म मूलतया एक हैं और सैंतीस करोड देवी-देवताओं को स्वीकार न करते हुए भी एकमात्र ईश्वर को माना जा सकता है, इसका ज्ञान उन्हें है और किसी से भी कम नहीं है। हिन्दू के राम और मुसलमानों के अल्लाह एक ही हैं ; यह सत्य भी उनका अजाना नहीं।

लज्जित होकर उनका हृदय बार-बार कहता, हम से ये किस बात मे छोटे हैं ? मैं इनसे कौन-कौन-सी बात ज्यादा जानता हूँ ? इनके समाज, इनके संपर्क को छोड़कर हम लोग क्यों दूर चले गए है ? और वह दूरी इतनी ज्यादा कि अपनों के आगे भी मलेच्छ बन गया हूँ।

मन की ऐसी ही स्थिति मे जब घर लौटे, तो दस बज रहे थे। मृणाल बोली--- कल आपकी तबीयत ठीक नही थी बाबूजी, आज फिर तालाब मे नहाने न चले जाइए। आपके लिए मैंने पानी गर्म करके रक्खा है।

करके रक्खा है ? कहकर वे मृणाल की ओर देखने लगे।

नहाकर मृणाल पूजा कर रही थी, उनकी आवाज पाकर उठ आई। गीले बाल पीठ पर बिखरे थे, तशर का कपडा, खिला मुखड़ा--उसके अंग-अंग मे जैसे गहरी पवित्रता विराज रही हो। उसको देखते हुए बूढ़े ने फिर पूछा आखिर तुमने इतना कष्ट क्यों किया बिटिया, जरूरत तो नही थी। जरा थमकर बोले— कलकत्ते का रहने वाला हूँ, नल के पानी में ही नहाने का आदी हूँ। लेकिन तुमने मुझे ऐसी पनाह दी मृणाल कि तुम्हारा तालाब भी मेरी खातिर करता है। उसके पानी मे कभी मेरी तबीयत खराब नहीं होती। मैं वही नहाने जाऊँगा बिटिया।

मृणाल ने सिर हिलाकर कहा---यह नही होगा। कल आपकी तबीयत खराब थी, मैं जानती हूँ। मैं पानी लिए आती हूँ, आप तेल मलिए। कहकर वह जाने लगी कि केदार बाबू बोल उठे—खैर, वही सही। मगर एक बात तो बताओ मुझे, दूसरे का इतना जतन करना इतनी कम उम्र में तुमने किससे सीखा ? मैंने तो ऐसा कहीं नहीं देखा।

लाज से मृणाल का चेहरा तमतमा उठा, मगर जबरदस्ती हँसकर बोली मगर आप क्या मेरे बिराने हैं बाबूजी ?

केदार बाबू बोले— नहीं, बिराना नहीं हूँ। मगर यों टालने से काम नहीं चलने का। जवाब देकर जाना पड़ेगा।

मृणाल ने वैसी ही लाज भरी हँसी के साथ कहा---यह कौन-सा ऐसा कठिन काम है कि कोशिश करके सीखना पड़े। यह तो जन्म से ही हम सीखे होते हैं। लेकिन पानी आपका ठंडा हो रहा है—

होने दो। कहकर केदारबाबू गंभीर होकर बोले---मैं कुछ दिनों से ठीक

यही सोच रहा हूँ मृणाल। मनुष्य सीखता है, जब तैरता है ; पर जो चिड़िया जल पर है, वह जनमते ही तैरती है। यह सीखना उसे कोई सिखा जरूर नहीं सकता, पर काम को उड़ाकर तो फल नहीं पाया जा सकता ? यह तो भगवान् का नियम नहीं। कहीं न कहीं, किसी न किसी प्रकार सीखने का झमेला उसे झेलना ही पड़ेगा। इसी लिए उस जलचर पंक्षी की नाईं तुमने जो बसेरे मे ही जन्म से अनायास ही इतनी बड़ी विद्या हासिल कर ली, सो मैं तुम लोगों के उस विराट् समाज-बसेरे की ही बात रात दिन सोच रहा हूँ। सोचता हूँ —

मगर आपका पानी तो—

पानी को छोड़ो भी बिटिया। तालाब तो सूखा नही जा रहा है। मै यही सोच रहा हूँ कि यह बूढ़ा आदमी नन्हे नादान की तरह चुपचाप तुमसे कितना कुछ सीख रहा है, इसकी तो तुम्हे खबर नही ! ठाकुर-देवता, तंत्र-मंत्र पर अभी भी विश्वास नहीं हुआ, लेकिन तो भी जभी बिटिया को देखता हूँ कि नहाकर फीका-फीका मटके का कपड़ा पहने आह्निक को जा रही है, तभी जी में आता है कि फिर से गले में जनेऊ डालकर मैं भी पूजा पर बैठ जाऊ।

मृणाल ने कहा आप अपने समाज, अपने आचार को छोड़कर दूसरों का आचार क्यों पालेंगे ? उसीको कौन दोष दे सकता है ?

केदार बाबू बोले —कोई दे सकता है या नही और बात है मगर मैं उसकी हेठी नही कर सकता। अच्छा हो या बुरा, बुढ़ापे मे उसे त्यागने की सामर्थ नही है, बदलने की कोशिश भी नही। यही राह पकड़ कर जीवन को शेष सीमा तक चलना है ! लेकिन जब तुम्हे देखता हूं, इसी छोटी उम्र मे इतना बड़ा आत्म-त्याग, जो स्वर्ग गए, उनके प्रति ऐसी निष्ठा, उन्हीं की मां को मां मान कर—खैर छोड़ो, और न कहूँगा—परन्तु मै जिसमे रहकर बड़ा हुआ, मन ही मन उसकी तुलना किए बिना भी तो नही रह सकता। समाज से अलग जो धर्म है, उसके लिए लो अब आस्था नहीं रख पाता मृणाल।

मृणाल मन ही मन क्षुण्ण हुई। उसके व्यक्तिगत जीवन की बदनसीबी को यों अपनी सामाजिक शिक्षा-दीक्षा पर आरोपित करना, उसे अविचार लगा। बोली—बाबूजी, जब आप ठीक इसी तरह से हमारे समाज को भी देखेंगे, तो उसमें भी बहुत से दोष नजर आएंगे। तब देखेंगे कि हम भी अपने दोष समाज के मत्थे ही मढ़ देने को आमादा हैं। हम भी—

लेकिन बात पूरी होने के पहले ही केदारबाबू ने बाधा दी। बोले—मगर मैं

तो आमादा नहीं हूँ बिटिया। तुम्हारे समाज में खामी हो, खराबी हो, मगर तुम तो हो ! सिर पीटकर मैं मर भी जाऊँ तो यह वस्तु वहां नहीं मिलने की—

मृणाल का मुंह फिर शर्म से लाल हो उठा। बोली—मैं कहे देती हूं बाबूजी, बार-बार मुझे इस तरह से लजाएंगे तो ऐसी भागूंगी मै कि फिर आप मुझे खोज कर पाएंगे नहीं।

बूढ़े तुरत कुछ बोल न सके, सिर्फ चुपचाप उदास हो उसे देखते रहे, उसके बाद धीरे-धीरे बोले—मैं भी तुम्हें कहे देता हूँ, तुम्हें यह हर्गिज नहीं करने दूंगा मैं। तुम मेरी आंखों की पुतली हो, मेरी एक अकेली पनाह। इस निकम्मे अनाथ बूढ़े के भार से जिस दिन तुम्हें मुक्ति मिलेगी, वह दिन ज्यादा दूर नही, पर मैं खूब जानता हूँ, वह मुझे इन आंखों देखना न पड़ेगा। कहते-कहते उनकी आंखों के कोने गीले हो आए।

आस्तीन से आंख पोंछते हुए बोले—मेरा एक काम अभी बाकी रह गया है, वह है महिम से भेंट करना ! मैं उससे एक बार साफ-साफ पूछना चाहता हूँ कि वह इस तरह भागा-भागा क्यों चलता है। ऐसा भी हो सकता है कि वह जिन्दा नहीं है।

आप नाहक ऐसा क्यों डरते हैं बाबूजी ?

डर ? बूढ़े के मुँह से एक दीर्घ निश्वास निकल गया। बोले—संतान का मरना ही बाप के लिए सबसे बड़ा डर नहीं है बिटिया !

उनतालीस

इकलौती बेटी की मौत से भी बड़ी जो दुर्गति पिता की नजरों में बड़ी हो उठी है, उसके आभास मात्र से मृणाल लज्जित और कुंठित होकर खिसक पड़ी—और उस साध्वी विधवा को वह लज्जा ठीक मुद्गर के समान केदारबाबू की छाती पर आ लगी। बड़ी देर तक वे अकेले चुपचाप अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते रहे, उसके बाद एक लम्बा निश्वास छोड़कर तेल के कटोरे को अपनी ओर खींच लिया।

आज सवेरे आसमान साफ था, लेकिन दोपहर के कुछ बाद से ही बदली घिरने लगी। केदार बाबू बिस्तर पर अभी-अभी उठकर पश्चिम तरफ की खिड़की को खोलकर बाहर देख रहे थे, सामने एक अमरूद का पेड़ फूलों से लद गया था और

उन पर अनगिनती मधु माछियों के हर्ष कलरव का अन्त नहीं था। थोड़ी ही दूर पर लंबी रस्सी से बंधी मृणाल के अपने हाथों धोई-पोंछी मोटी-ताजी गाय चर रही थी, जिसकी पीठ पर से गाँव की राह का थोड़ा हिस्सा दिखाई दे रहा था।

आपकी चाय अब ले आऊँ बाबूजी ?

केदार बाबू ने उलटकर देखा—अभी ही ले आओगी ?

वाह, बेला थोड़े ही रह गई है ?

हँसकर तकिए के नीचे से घड़ी निकालकर बोले—लेकिन तीन भी तो नहीं बजे बिटिया !

मृणाल बोली—बला से ना बजे, पर आपने तो दिन में ठीक से खाया नहीं है।

केदार बाबू मन ही मन समझ गए, इन्कार बेकार है। बोले—खैर, ले आओ।

मृणाल जरा देर स्थिर रहकर बोली—अच्छा आप तो कहा करते हैं,भुझे चावलें बहुत अच्छे लगते है।

गलत तो नहीं कहता बेटी।

तो थोड़ा-सा वह भी ले आऊँ ?

वह भी ? अच्छा—लाओ कहकर उसे देखते हुए जबर्दस्ती जरा हँसे। मृणाल के चले जाने पर फिर उस झरोखे से बाहर देखा, तमाम धुंधला हो गया है और तुरत आंसू की पांच-छः बूंदें उनकी आंखों से चू पडी। झटपट आंसू की रेखा को पोंछकर अपने चेहरे को शांत और सहज बनाने के ख्याल से इमर्सन की खुली पड़ी किताब को देखने लगे।

किताब के पन्नों में चाहे जो हो, मन में ऐसी बात की छाप पड़ने लगी कि यह सृष्टि कितनी अज्ञेय और अनोखी है ! दुनिया में दिन जब लेखे के अन्दर आ रहे, तभी क्या इस लंबे जीवन की पिछली अभिज्ञता, पिछले आयोजन को रद्द करके फिर से नई कमाई की जरूरत हो गई; मैं खूब देख रहा हूँ कि मेरे मानव-जन्म का सारा अतीत ही बेकार गया और यह समझना भी बाकी न रहा कि इ लंबी फांकी को भर लेने में यह एक महीना ही काफी हुआ।

द्वार पर पैरों की आहट हुई। उन्होंने सिर उठाकर देखा। पत्थर के कटोरे में चाय और तश्तरी में भुने चावले लेकर मृणाल आई। दोनों हाथ बढ़ाकर उन चीजों को लेते हुए बोले—अब पता चल रहा है कि आज दिन में ठीक से भोजन नहीं हुआ। लेकिन देखो—

नहीं-नहीं, आप बात करेंगे, तो सब ठंडा हो जाएगा।

केदारबाबू ने चुपचाप चाय के प्याले को होंठों से लगाया और उतारकर रखते हुए एक निश्वास के साथ बोले - मैं यही कामना करता हूं मृणाल, अगले जन्म में तुम मेरी बेटी होकर पैदा हो। कलेजे से लगाकर पालना मुझे खूब आता है बिटिया, जिसमें उस कला को जी भर काम में ला सकूँ।

आखिरी तरफ उनका गला कांप गया। मृणाल ऐसी ही चर्चा को सबसे ज्यादा डरती थी। इसीलिए उनके उस आवेग की ओर ख्याल किए बिना ही बोली---वाह, ठीक तो है, आपकी और, और सन्तानों मे जिसमें एक मैं भी होऊँ।

केदार बाबू तुरत सिर हिलाकर बोल उठे नही-नही, और-और नहीं, और-और नही। अकेली तुम—मेरी इकलौती बेटी। अकेली तुम्ही मेरा कलेजा भरे रहोगी। अबकी जो कुछ तुमसे सीखकर जा रहा हूँ, वह सब एक-एक करके अपनी बेटी को सिखाकर फिर इसी तरह उससे बुढापे मे सब वापस लेकर उस लोक की यात्रा करूंगा। कहकर उन्हें छिपे-छिपे एक बार अपनी आख मे हाथ लगाया।

मृणाल ने दुखी होकर कहा - आप नाहक ही मुझे बार-बार अप्रतिभ करते है बाबूजी। मैं जानती क्या हूँ ?

मेरा भोजन ठीक नहीं हुआ, यह मैं नही जानता था, तुम जानती थी।

यह ऐसा क्या जानना हुआ ? जिसके आंख है वही देख सकता है।

लेकिन वही आंख ही तो सबके नहीं होती मृणाल ! थोड़ा रुककर बोले—लेकिन मैं सबसे ज्यादा हैरान इस पर हूँ मृणाल कि ईश्वर कहां, कब और किस उपाय से मनुष्य के वास्तविक अपने जन से मिला देते है, यह कोई नही जानता ! इसमें न तो कोई आडम्बर है, न रिश्ते की कोई बला और न समय का कोई हिसाब। पल में कहां से क्या हो जाता है—केवल जब उसे कलेजे में पाता हूँ तो जी में आता है, अब तक इतने बडे फांक को झेल कैसे रहा था ?

मृणाल ने धीरे-धीरे कहा—यह ठीक है बाबूजी, वरना आपकी एक बेटी इस जंगल में पड़ी है, अब तक तो कभी उसकी खोज-पूछ नहीं की !

केदारबाबू बोले—लेने की अपनी क्या मजाल, जब तक वे हुक्म न दें। और जब उनका हुक्म हो गया, तनिक भी अडचन न आई, कहां से कौन तो खींच लाया। आज लोग देख रहे हैं, बस, महीने भर की तो जान-पहचान। मगर मुझे मालूम है, यह तो कोई किराए के मकान का हिसाब नहीं, कि पन्ना के पन्ने से माहवारी लेखा लगेगा। यह तो जैसे कितने युगों से तुम्हारी छाया से ही बैठा हूँ—इसका दिन, महीना और बरस क्या ? कहकर वे फिर थोडा रुके। मृणाल खुद भी कुछ कहने जा रही थी, पर एकाएक उनके मुँह की ओर देखकर अवाक् रह गई। उसे लगा, इस बूढ़े के कलेजे के अन्दर इतने दिनों से दुःख की जो चिता जल रही थी, वह जानें कैसे तो

बुझने को आई और उसीकी अन्तिम आभा ने उनके चेहरे को जो जरा-सा दमका दिया है, उसीकी मन्द जोत मे कौन-सा गहरा स्नेह मानो असीम करुणा से घुल-मिलकर निखर आया है।

कुछ देर तक कोई कुछ न बोले --मृणाल की झुकी नजर फर्श पर वैसी ही टिकी रही। यह नीरवता केदारबाबू ने ही भंग की। बोले-- मृणाल, मैंने एक धर्म छोडकर दूसरे की दीक्षा ली है, ऐसे में औरों के आगे न सही, कम-से-कम अपने आगे जवाबदेही का दायित्व है। अब तक उसे टालता गया हूं, पर अब नहीं। धर्म के बारे में अब जिसमें यह बात समझ पाऊँ--

लमहे के लिए मृणाल ने नजर उठाई कि केदारबाबू बोल उठे—डरो मत बिटिया, बार-बार तुम्हारा नाम लेकर अब मैं तुम्हे संकोच में नहीं डालूंगा, परन्तु इतने दिनों के बाद इस सत्य को मै समझ पाया हूँ कि लड़-भगड़कर और चाहे जो कुछ मिले, धर्म नही मिल सकता।

उनके मर्म के वाक्य को समझकर मृणाल धीरे-धीरे बोली—यह सच हो सकता है, पर जिस धर्म को मैंने अच्छा समझा, उसे अपनाने के लिए लड़ना-झगड़ना ही पड़ेगा, ऐसा तो मैं कुछ नहीं देखती।

केदारबाबू बोले-- मैंने भी वास्तव में कभी पाया था, यह नहीं, लेकिन जरूरत तो हो जाती है बिटिया ! किसी भी चीज का परित्याग तो हम प्रेम से, प्रीति से नहीं करते। जिसे छोड जाते है, उसके लिए मन सदा छोटा बना रहता है, वह फिर मिटता नही, इसीलिए तो आज कैफियत का भागी बन गया हूँ। लेकिन तुम्हें जन्म से जो मिला है, वह बुरा हो या भला, उसीको आधार किए चलती हो ! दोनों का फर्क सोच देखो जरा।

मृणाल मौन ही रही, कोई जवाब न सूझा। केदारबाबू भी कुछ देर चुप रह कर बोले—आज जमाने की भूली बातें भी धीरे-धीरे जग रही हैं बिटिया, मगर इतने दिनों तक ये कहां छिपी थी ?

मृणाल ने नजर उठाकर पूछा—किसकी बात बाबूजी ? केदारबाबू बोले—अपनी बात। बड़े होने लायक भगवान ने अक्ल नहीं दी, बड़ा हो भी कभी नहीं पाया। मैं मामूली आदमी हूँ, मामूली लोगों से मिल-जुलकर ही काल काटा; लेकिन हममें जो बड़े है, जो समाज के शिरोमणि है, समाज के आचार्य हो गए हैं, उन्हीं के उपदेशों को सदा भक्ति से, श्रद्धा से मानता आया हूँ। उन्हीं के जाने कबके भूले हुए वाक्य मुझे याद आ रहे हैं। तुम कह रही थी मृणाल. धर्म बदलने में अच्छे को चुन लेने में झगड़ने की नौबत क्यों आएगी, झगडे की जरूरत ही क्यों पड़ेगी ? मैं भी तो अब तक यही समझता रहा, यही कहता फिरा। लेकिन आज पता चला, जरूरत थी। आज

देख पाया कि हिन्दुओं में जो लोग यह शिकायत करते है कि देश-विदेश में उनका सर जितना हमने नीचा किया है, उतना ईसाई पादरियों ने भी नहीं किया—उनकी शिकायत को आज झूठ कहकर तो नहीं उड़ा सकते ! वास्तव में विदेशी विधर्मियों के हाथ हम जैसे विभीषण तो कोई नहीं ।

मृणाल बहुत चंचल हो उठी, मगर उन्होंने उसका ख्याल ही नहीं किया, कहने लगे—चिढ़-झगड़े की बात अगर नहीं होती, तो हममें से जो सब बातों में आदर्श हैं, यहां तक कि जो मनुष्य में ही आदर्श कहाने योग्य हैं, उनके मुँह में, धर्म-मन्दिर में, धर्म की वेदी पर खड़े होकर राम के लिए रेमो, हरि के लिए होरी, नारायण के लिए नारेन क्यों निकलता ? तो फिर सबको पुकारकर जोर गले से यह क्यों कहते कि ये अभागे अगर बेमौत नही मरना चाहते हैं, तो हमारे इस बंधे घाट पर आएँ । धर्मोपदेशक के इस ताल-ठोंकाई से समाज के सारे लोगों का लहू जैसा भक्ति से गर्म, वैसे ही श्रद्धा से रूखा हो उठता; आलोचना के उत्साह की मात्रा भी कही तिल भर कम नहीं होती; लेकिन आज, जीवन की शेष सीमा पर पहुँचकर समझ रहा हूँ कि उसमे उपदेश कुछ भी हो, तो हो, धर्म के रहने की गुंजाइश न थी ।

मृणाल ने दुःखी होकर कहा—यह सब आप मुझे क्यों सुना रहे हैं बाबूजी ? वे सभी तो मेरे पूज्य है, नमस्य है । कहकर उसने हाथ जोड़कर कपाल से लगाया । उस भक्तिमता तरुणी के विनम्र मुखड़े की ओर देखकर मानो वे विभोर हो रहे और थोड़ी देर में नौकरानी के बुलाने पर मृणाल के चले जाने पर भी वे वैसे ही स्थिर बैठे रहे ।

सास क्या कह रही थी—मृणाल यह सुनकर जब लौटी, तो अकस्मात् आवेश से दोनों हाथ फैलाकर केदारबाबू बोल उठे—तमाम जिंदगी मेरी क्या इसी तरह औरों की खामी-खराबी की शिकायत करते ही बीतेगी ? इससे क्या कभी छुटकारा नही पाऊँगा ?

मृणाल ने कहा—आपकी मच्छरदानी का कोना जरा फट गया है, थोड़ा खिसक जाइए न, सिलाई कर दूं । मृणाल ने ताख पर से सिलाई का छोटा-सा डब्बा उतारा । केदारबाबू उतरकर एक मोढ़े पर बैठ गए और काम में लगी हुई मृणाल के झुके मुखड़े की ओर एकटक ताकते रहे । वह बिना किसी ओर देखे-सुने अपना काम करने लगी, लेकिन उसे देख-देखकर केदारबाबू की आंखें अकारण ही भर आने लगीं और बार-बार धोती के छोर से वे उन्हें पोंछने लगे ।

सिलाई खत्म करके डब्बे को जगह पर रखकर मृणाल ने पूछा—रात आप क्या खाएंगे ?

इस सवाल से केदारबाबू ने अचानक जोरों का एक निश्वास फेंककर अपने

अश्रु-करुण होठों पर हंसी लाते हुए कहा—रात के भोजन के लिए अभी अकुलाने की जरूरत नहीं बिटिया, वह उसी समय सोचा जायगा। मगर तुम जरा थिर होकर बैठो तो ! जरा रुककर बोले—इस अपराध का यही अन्त है। मेरे मुंह से अब किसीकी शिकायत नहीं सुनोगी। थोड़ा रुककर फिर बोले—मगर मुझसे खीझना मत बेटी, मैंने ठीक इसीके लिए यह प्रसंग नहीं उठाया।

उनके गीले कंठस्वर से चकित होकर मृणाल बोली—आपने यह क्यों कहा बाबूजी, मैं आपसे कभी खीझी हूँ ?

जोर से सिर हिलाकर केदारबाबू कहने लगे—कभी नहीं बिटिया, कभी नहीं। तुम बिटिया हो न मेरी, इसलिए मेरा सब अत्याचार-उपद्रव हँसकर ही सहती आई हो। लेकिन कलेजे का खून देकर इतने दिनों में जिस सत्य को पाया है, सहज वही दिखाना चाह रहा था तुम्हें, पराई निंदा-शिकायत की नीयत नहीं थी। आज मैंने समझा कि कभी जिस प्रकार जमात बनाकर, मनसूबा गांठकर हमने धर्म को पकड़ना चाहा; धर्म वैसे हर्गिज नही पकडा जा सकता। वह अगर खुद पकड़ाई न दे तो शायद पकड़ ही में न आए। परम दुःख की मूर्ति धारण कर जिस दिन वे मनुष्य की चरम वेदना पर पांव रक्खे अकेले आकर खड़े होते है. उस समय उन्हे पहचान पाने की जरूरत है। जरा भी भूल-भ्रान्ति की गुंजाइश नहीं, मुह फेरकर चले जाते है वे।

जिस प्रसंग को मृणाल टालकर बार-बार कतराती जा रही है, यह उसीका इशारा है, यह समझकर उसके संकोच और पीड़ा का अन्त न रहा, लेकिन आज कोई बहाना बनाकर उसने भागने की कोशिश न की, चुपचाप बैठी रही।

बार-बार बाधा पाकर इधर केदारबाबू की निगाह भी पैनी हो गई थी, आज लेकिन उन्होंने भी कोई ख्याल नहीं किया, कहते गए—बिटिया, एक बात बार-बार कहकर भी मेरा जी नहीं भर रहा है कि इतनी बड़ी दुनिया में एक तुम्हारे सिवा मेरा अपना जन और कोई कभी न था; इसीलिए नहीं जानता कैसे, मेरे अन्तिम दिनों का सारा बोझ' सब बुरा-भला तुम्हारे ही ऊपर आकर टिका है। जो सभी वि'ध-व्यवस्था के मालिक हैं, यह व्यवस्था उन्हीं की है। चूंकि मैंने इसे निस्संदेह समझ लिया है, इसीलिए मुझे कोई शर्म, कोई झिझक नहीं। पहले मन में कैसा तो लग रहा था कि मैं आ टपका, मगर आज वह सब बला मेरे मन से निकल गई है।

मृणाल सिर उठाकर जरा हँसी। थोडा आगा-पीछा करके केदारबाबू फिर बोले—फिर भी कैसा तो लगता है, फिर भी गले से बात बाहर नहीं होना चाहती।

तो छोड़िए, न ही कहो वैसी बात तो क्या।

केदारबाबू गर्दन हिलाकर बोले—उँहूँ, अब नहीं रहने की, नहीं—मेरा ख्याल है, वह सुरेश ही के साथ—

मृणाल को भी यह धोखा होता रहा है, इसलिए वह सिर हिलाकर झुकाए बैठीं रही, बोली नहीं। कुछ देर सन्नाटा-सा रहा। बडी कोशिशों से खुद-खुद को पराजित करके मानो वे बोले—मै एक बार महिम के पास जाना चाहता हूं मृणाल, एक बार उसके मुँह से सुनना चाहता हूँ, बस इसीलिए मेरी छाती धू-धू जल रही है। मगर अकेले उसके सामने जाकर मै खडा कैसे हूँगा ?

मृणाल ने तुरत अपनी करुणा भरी आंखें अभागे बूढ़े के शर्माए और भयभीत चेहरे पर टिकाकर कहा आप अकेले क्यों जाएंगे, जाना ही पड़ेगा तो हम दोनों साथ चलेंगे।

सच चलोगी ?

बेशक चलूंगी। इसके सिवा आपको अकेले मैं छोड ही कैसे सकती हूँ ? आप चाहे जहां जाएँ, मैं साथ गए बिना न मानूँगी, कहे देती हूँ। मुझे कोई साथ नही ले जाता बाबूजी, मैं कहीं जरा घूम-घाम नही पाती।

केदारबाबू ने कोई जवाब नही दिया—दोनों हथेलियों से गाल का सहारा लिए जांघ पर कुहनी टिकाकर झुक गए और देखते ही देखते नजर आया, भीतर के घुमड़ते आवेग से उनके सूखे-दुबले शरीर का एक-से-दूसरा छोर तक थर-थर कांपने लगा।

मृणाल चुप उनके सिरहाने के पास बैठी रही, कोई बात, सात्वना का एक शब्द तक न कहा। इकलौती बेटी की घिनौनी दुर्गत से जिस पिता का हृदय छिद रहा हो, उसे दिलासा देने योग्य उसे था भी क्या !

काफी देर इसी तरह बीती, उसके बाद अपने को सम्हालकर केदारबाबू ने कहा—बिटिया !

उनकी शक्ल देखकर मृणाल का कलेजा मानो टूक-टूक हो गया, मगर आंसू जब्त करके बोली—क्या बाबूजी ?

दुनिया में वेदना की मात्रा इतनी भी हो सकती है, यह तो मैंने कभी सोचा तक नहीं मृणाल ! इससे छुटकारे की क्या कोई राह नही ? कोई नहीं बता सकता ?

लोग तो लेकिन मौत की यंत्रणा भी सह सकते हैं।

केदारबाबू बोले—मेरे लिए वह मर चुकी, तुम यही तो कहा चाहती हो बिटिया ! बहुत हद तक वही है। बहुत बार मेरे जी में भी आया है—लेकिन मृत्यु का शोक जितना बड़ा होता है, उसकी शांति, उसका माधुर्य भी उतना ही बड़ा होता है। लेकिन इस सांत्वना की गुँजाइश कहां है मृणाल ? यह असह ग्लानि, यह बेहद शर्म मेरे कलेजे की राह रोके इस तरह अड़ी है कि उन्हें खिसका सकूँ, ऐसी जरा भी जगह नहीं। इतना कहकर वे चुप हो गए और छाती पर हाथ रखकर फिर धीरे-

धीरे बोले—भन्तान को जो मौत देते है, उनको हम यही कहकर क्षमा करते हैं कि उनके कार्य-कारण को हम नहीं जानते ! हम—

बीच ही में टोककर मृणाल बोल उठी—तो हम भी वही कर सकते हैं बाबू-जी ! चाहे कोई हो, जिसका कार्य-करण हमे मालूम नही, उसे माफ न भी कर सकें, कम-से-कम मन-ही-मन उसका विचार करके उसे अपराधी तो न बनायेंगे !

बूढ़े ठीक जैसे चौंक उठे और दोनों आंखों की तेज नजर दूसरे पर टिकाकर बुत जैसे बैठे रहे ।

मृणाल ने कहा और संभले दादा से मैंने यह सुना है कि दुनिया में ऐसे अपराध कम ही है, जिन्हें माफ नही किया जा सकता । जोश में केदार बाबू तनकर बैठ गए । बोले—इस अपराध को भी कभी कोई माफ कर सकता है मृणाल ?

मृणाल चुप रही, वे वैसे ही ओज से कहने लगे—हर्गिज नही, हर्गिज नहीं, बाप होकर उसके इस बुरे गुनाह को मै माफ नही कर सकता, किसी भी तरह नहीं । वह क्षमा योग्य नहीं, उसे क्षमा करना उचित नही—यह मै तुमसे साफ कह देता हूँ ।

मृणाल धीरे-धीरे बोली—योग्य-अयोग्य तो विचार की बात है बाबूजी, उसे क्षमा नही कहते । फिर क्षमा का फल क्या केवल अपराधी ही पाता है, जो क्षमा करता हैं, वह कुछ नहीं पाता ?

बूढ़े को जैसे काठ मार गया । उसकी शांति-स्निग्ध बातों ने उन्हें मानो अभिभूत कर दिया । जरा देर सन्न-से रहकर अचानक बोल उठे मैंने इस ढंग से तो कभी सोचा नही मृणाल । तुमसे आज मानो मैंने एक नया तत्व सीखा । ठीक तो ! जो लेता है, उसी के हिसाब में सोलहो आना वसूल देकर दादा के खाते शून्य का आंकड़ा रखना होगा ? यह हर्गिज सत्य नहीं हो सकता ! ठीक है, किसका गुनाह कितना बड़ा है, इसका फैसला जो चाहे सो करे, मैं सिर्फ अपनी ओर देखते हुए क्षमा करूंगा ! यही तुम्हारा कहना है न ?

आप यह कहकर मेरा अपराध क्यों बढ़ाते है बाबूजी ?

तुम्हारा अपराध ? संसार मे इसकी भी जगह है बेटी ?

मृणाल एकाएक उठ खडी हुई । बोली—मां जी मुझे आवाज दे रही हैं शायद—मैं आई । और वह तेजी से कमरे मे बाहर चली गई ।

चालीस

मृणाल उठकर चली गई, परंतु केदारबाबू ने इसका ख्याल ही नहीं किया। वे अपनी बात के ही आनंद में मगन हो कहते गए—मैं जी गया ! जी गया मैं ! तुमने मुझे बचा दिया बिटिया। दुर्गति के दुर्गम जंगल में जब आंखें मेरी चौंधिया गईं, मौत के सिवाय जब सारे ही रास्ते बंद पड़े थे—ऐसे में बगल में ही मुक्ति का इतना चौड़ा रास्ता खुला पड़ा है, यह तुम्हारे अलावा कौन बता सकता था ! क्षमा करने की तो मैंने सोची ही न थी। कभी जी में आई भी तो जबरन उसे हटाकर मैंने यही सोचा, नहीं, हर्गिज नहीं ! जब बेटी होकर उसने इतना बड़ा पाप किया, तो बाप के नाते उसे इतना बड़ा दान मैं नहीं दे सकता ! मगर अरे मूढ़, ऐ अंधे, अरे रे कृपण ! जब तू बाप होकर यह नहीं दे सकता तो और कोई कैसे देगा भला ! फिर वह तुम्हारा ले कितना-सा जायगी ? तेरी मुआफी का सब तो तेरे ही घर वापस आयगा। अपनी मृणाल बिटिया के इस तत्व को जरा आंख खोलकर देख। इसके बाद मानो कुछ देखने के लिए उन्होंने आंखें फाड़कर बादल घिरे आसमान की तरफ देखा और जी-जान से मन ही मन कहने लगे—मैंने माफ कर दिया, माफ कर दिया। सुरेश, तुमको मैंने क्षमा किया ! अचला, तुमको भी क्षमा किया ! पशु-पंछी, कीड़े-मकोड़े, जो जहां हो मैंने आज सबको क्षमा किया ! आज से मुझे किसीसे कोई शिकवा नही, किसीसे कोई शिकायत नहीं—मैं आज मुक्त हूँ, स्वाधीन हूँ, परमानंदमय हूँ ! कहते-कहते एक अनिर्वचनीय आनंद से उनकी दोनों आंखें मुंद आईं। दोनों हाथ मिलाकर गोद पर रखते ही मुंदी आंखों की कोर से पिता का स्नेह मानो झर-झर झरने लगा। उनके होंठ कांपने लगे, अस्फुट स्वर में कहने लगे—तू कहां है बेटी, एक बार लौट आ। मैं तुझे इस दुनिया मे लाया हूँ, मैंने तुझे कलेजे से लगाकर बड़ा किया है—तू अपने सारे कसूर, अपने सारे अपमान के साथ ही अपने पिता की गोद में लौट आ—मैं अपने हृदय से तेरे सारे जख्म, सारी जलन धो-पोंछकर तुझे कलेजे से लगाकर रक्खूंगा। हम घर से बाहर नहीं निकलेंगे, लोगों से नहीं मिलेंगे—बस, तू और मैं—

बाबूजी ?

उन्होंने मुडकर मृणाल को देखा, शायद अपने को संयत करने की भी एक बार कोशिश की; पर दूसरे ही क्षण फर्श पर लुढ़ककर बच्चे की नाईं आर्तस्वर में रो उठे—बिटिया, मेरा कलेजा टूक-टूक हो गया ! सभी उसे जानें कितना कष्ट दे रहे हैं। मैं तो अब सह नहीं पाता।

मृणाल कुछ न बोली, सिर्फ उनके जमीन पर लुढ़के माथे को चुपचाप अपनी गोद में रखकर सहलाने लगी। उसकी भी आंखों से आंसू बहने लगे।

फागुन का यह मेघ घिरा दिन शायद यों ही बीत जाता, पर केदारबाबू चट उठ बैठे। बोले—अच्छा मृणाल, महिम को पत्र दें तो जवाब नहीं मिलेगा ?

क्यों नही ? मेरा ख्याल है, कल ही परसों मिल जायगा।

तुमने क्या उन्हें कुछ लिखा है ?

मृणाल ने सिर हिलाकर कहा--हां।

संकोच से बूढ़े ने यह नही पूछा कि क्या लिखा है। बाहर की ओर देखकर बोले—बेला अभी है थोड़ी-सी, मैं जरा घूम आऊँ। उन्होंने बदन पर चादर ली, छड़ी उठाई, लेकिन दो-एक कदम बढते ही ठिठक गए। कहा--देखो बिटिया--

जी, बाबूजी।

मैं डर रहा हूँ, डर ठीक नही--लेकिन सोचता हूँ—

काहे की बाबूजी--

बात यों है, मैं सोचता हूँ, अच्छा तुम्हारा क्या ख्याल है, हम जाना चाहें, तो महिम एतराज करेगा ?

मृणाल को यही डर था, चिंता थी और मन मे उसने इसका जवाब भी एक प्रकार से ठीक कर रक्खा था। इसीलिए तुरत बोली—अभी इसकी फिक्र से क्या लाभ, उनका पता चले—हम लोग चले चलेंगे। उस समय जब सँभले दादा मुझे निकाल देंगे, तो दुनिया की बहुत-सी बातें अपने आप मालूम हो जाएँगी। फिर किसी से पूछना ही नही पड़ेगा ;

केदारबाबू ने पूछा—तो सच ही तुम मेरे साथ चलोगी ?

मृणाल ने कहा—सच। लेकिन मैं तो आपके साथ नहीं चलूंगी, आप मेरे साथ चलेंगे।

बूढ़े फिर कुछ जवाब देना चाह रहे थे, लेकिन एक बार उसकी ओर देखकर ही चुप हो रहे।

फागुन के एक ऐसे ही दिन तीसरे पहर बंगाल के बाहर और भी दो नर-नारी के आंसू ऐसे ही बेताब हो उठे थे। सुरेश ने मुहर मारा हुआ बड़ा लिफाफा अचला को देते हुए कहा—दूँ-दूँ करते-करते भी यह कागज तुम्हें देने का आज तक साहस नहीं हुआ, मगर आज तो दिए बिना उपाय नहीं।

अचला ने लिफाफा लेकर दुविधा से पूछा—मतलब ?

सुरेश जरा हँसकर बोला—मुझे साहस नही होता, ऐसी कौन-सी भयंकर चीज हो सकती है, यही तो सोच रही हो तुम ? सोच सकती हो—मैंने भी बहुत

सोचा है ! इसका कुछ मतलब है तो कभी न कभी प्रकट हो ही गा। लेकिन बहुत अपमान, बहुत दुःख का बोझा तुमने मतलब समझे बिना ही मुझसे लिया है अचला—इसे भी उसी तरह लो।

अचला ने सहज भाव से पूछा—इसमे क्या है ?

सुरेश ने हाथ जोड़कर कहा- तुमसे मैंने आज तक जो कुछ भी पाया है, डकैत के समान छीनकर ही पाया है। लेकिन आज तुमसे मैं एक भीख मांगता हूं—इसे तुम जानना मत चाहो।

अचला चुप रही। सोच न सकी, इसके बाद क्या कहे।

पर्दे के बाहर से बैरे ने कहा- बाबूजी, इक्का वाला कह रहा है, और देर करेंगे तो पहुंचने में रात हो जायगी। रास्ते मे झड़ी-पानी की भी संभावना है।

अचला ने चकित होकर पूछा आज कहां जाओगे ? ऐसे दिन मे ?

सुरेश ने हँसकर सुधार दिया, यानी ऐसे दुर्दिन मे। मझोली जा रहा हू। प्लेग का कोई डाक्टर नही मिल रहा है—गाव का गाव मसान होता जा रहा है। अब की वहां पाच-सात दिन रहना पड़ेगा और कौन जाने, रही जाना पड़े। कहकर वह जरा हँसा।

अचला उसकी तरफ देखती रह गई। उसे भी थोडी-बहुत खबर थी कि सात-आठ कोस पर की कुछ बस्तियां प्लेग से मसान बनती जा रही है और शहर से इतनी दूर पर इस भयकर महामारी मे चिकित्सकों की कमी होगी, इसमे ताज्जुब क्या ? उसे यह भी पता चल गया था कि सुरेश छिपाकर काफी रुपयों का दवा-दारू जहा-तहां भेज रहा है, खुद भी तड़के उठकर कही न कही चला जाता है, लौटने में कभी सांझ हो जाती है, कभी रात। परसो तो घर लौटा ही नही। इतने पर भी वह यह नहीं सोच सकी थी सुरेश घर छोड़कर, उसको छोड़कर कुछ दिनों के लिए एक बारगी मौत के मुह में ही जाकर रहेगा। इसीलिए प्रस्ताव को सुनकर वह उसकी ओर ताकती रह गई। जो महापापी भगवान् को नही मानता, पाप-पुण्य नही मानता; अपने दोस्त और उसकी बेकसूर स्त्री का जिसने इतना बड़ा सत्यानाश कर दिया, हिचका नहीं—उसकी ओर जब-जब भी अचला ने देखा, तभी उसका मन उसके प्रति जहरीला हो उठा है, पर आज उसकी ओर ताककर उसका जी विष से नहीं, विस्मय से भर गया। सुरेश के होंठ के कोने पर अभी भी हँसी की लकीर खिची थी, बड़ी फीकी-सी, परंतु उसी जरा-सी हँसी में अचला ने सारे संसार के वैराग्य को भरा देखा। चेहरे पर उसके उद्वेग नहीं, उत्तेजना नही, मौत के बीच जाकर खड़ा होगा, मगर चेहरे पर जरा भी शंका नहीं। तो क्या इस नास्तिक और ऐसे महास्वार्थी के लिए भी उसकी अपनी जान इतनी सस्ती है। भोग के सिवाय जिसे और कुछ न ही

आता, भोग के सारे साधनों में डूबे रहकर भी उसका जीवित रहना इतना तुच्छ, ऐसी उपेक्षा की वस्तु है कि इस आसानी से सब कुछ को छोड़ जाने के लिए एक पल मे तैयार हो गया ? शायद न भी लौटूं ! यह और चाहे जो हो, मजाक नहीं है । मगर यह कहना इतना आसान है ।

भीतर के धक्के से वह चंचल हो उठी । हाथ का लिफाफा दिखाकर पूछा—तो यह क्या तुम्हारी वसीयत है ?

सुरेश ने भी सवाल ही किया—अभी-अभी तुमने जो भीख दी, उसे लौटा लेना चाहती हो ?

अचला कुछ क्षण चुप रही ; बोली—खैर, मै वह नही जानना चाहती, लेकिन तुम्हें मैं जाने न दूँगी ।

क्यों ?

जवाब मे उस लिफाफे को फिर से उलट-पुलट कर अचला ने कहा—तुमने मेरा चाहे जो भी किया, फिर भी मै अपने लिए तुम्हे मरने नही दूँगी ।

सुरेश ने जवाब नही दिया । अपनी बात पर जरा शर्माकर उस बात को कुछ हलकी करने के ख्याल से वह बोली तुम कहोगे कि मैं तुम्हारे लिए क्यों मरने लगा, मैं तो जा रहा हूं गरीबो के लिए जान देने —मगर, मै वह भी न करने दूँगी ।

यह सुनते ही सुरेश को महिम याद आ गया और कलेजे के भीतर से एक निश्वास उमड़कर स्तब्ध कमरे म फैल गया । इसलिए कि जीवन की ममता कितनी नाचीज है और किस आसानी से वह उसे गँवाने को तैयार हो सकता है, इसका एक ही गवाह आज भी है और वह है महिम । उसकी आज की यात्रा ही यदि उसकी महायात्रा हो, तो सिर्फ वही संगीहीन और निरा मौन आदमी ही मन ही मन समझेगा सुरेश ने लोभ से नहीं, क्षोभ से नही, घृणा से नही—इहकाल-परकाल, कुछ के लिए नही, उसने सिर्फ इसीलिए जान दी कि उसकी मौत आई थी ।

उसकी आखों मे आंसू भर आना चाहने लगे, पर उसने रोका । बल्कि सिर उठाकर हँसने की कोशिश करते हुए कहा—मैं किसीके लिए भी मरना नही चाहता अचला ! चुपचाप घर में बैठे रहना अच्छा नही लगता, इसीलिए जरा घूमने जा रहा हूँ । मैं मरने क्यों लगा, नही मरूँगा ।

फिर यह वसीयत क्यों ?

यह वसीयत है, यह तो साबित नहीं हुआ है ।

न हो, पर मुझे अकेली छोड़कर चले जाओगे तुम ?

चला ही जाऊंगा, अब, अब लौटूंगा नहीं, यह भी तो तै नहीं हो गया है ।

नहीं हुआ है ! इस परदेस में मुझे बिल्कुल बेपनाह करके —अचला रो पड़ी ।

सुरेश उठते-उठते भी बैठ गया। जीवन में आज पहली बार एक अदम्य आवेग को रोककर वह शांत स्वर में बोला—मैं तो तुम्हारा संगी हूँ नहीं अचला। आज भी तुम अकेली हो और वह दिन अगर सच ही आ जाय, तो भी तुम्हें इससे ज्यादा बेपनाह न होना पड़ेगा।

अचला के आंसू बह ही रहा था, उन्हीं आंसू भरी आंखों को सुरेश पर टिका कर उसने देखा, लेकिन उसके होंठ थर-थर कांपने लगे। उसके बाद दांत से होंठ दबाकर उस कंपन को रोकने की चेष्टा करती हुई वह रो पड़ी, मुझसे तुम और क्या चाहते हो, मेरे और क्या है?—कहते-कहते मुँह को आंचल से दबाए वहां से भाग गई।

बैरे ने आकर कहा—जी, इक्का वाला—

उसे सब्र करने को कहो जरा।

उसी समय कोचवान ने बताया—गाडी बड़ी देर से तैयार खड़ी है।

गाड़ी क्यों?

कोचवान ने कहा—मां जी ने हुक्म दिया था, वे उस डेरे में जाएँगी, मगर नौकरानी ने कहा—उनका कमरा बंद है। बहुत पुकारा कोई जवाब नही आता। तो घोड़े खोल दिए जायँ?

अच्छा, ठहर।

इस कमरे वाला दरवाजा अंदर से खुला ही था, उसीका पर्दा हटाकर सुरेश चुपचाप सोने के कमरे में चला गया और पास ही एक कुर्सी पर बैठ गया; कमरा यह दोनों ही का था, उसने अनाधिकार प्रवेश नहीं किया। लेकिन सामने की साफ-सुथरी सेज पर वह जो सुंदरी औंधी पड़ी सो रही थी, उसकी किसी बात ने आज उसे आकर्षित नहीं किया बल्कि उसे दुखाकर पीछे ही हटा देने लगी। अचला को उसके आने की खबर नही हुई; वह रोती ही रही और उसे एकटक देखता हुआ सुरेश सोचता रहा। इधर कुछ दिनों से अपनी गलती उसे महसूस होने लगी थी; पर इस लोटती हुई देहवल्लरी ने, उस वेदना ने—उनके सम्मिलित माधुर्य ने उसकी आंखों पर की पट्टी को नोंच फेंका। उसे लगा, प्रातः-किरणों में पत्ते की नोक पर ओस की जो बूंद हिलती रहती है, जो लोभी उसके अपार अनुपम सौन्दर्य को हाथ में उठाकर उपभोग करना चाहता है, उसने ठीक वैसी ही भूल की है। वह नास्तिक है, आत्मा को नहीं मानता; जिस झरने से अनंत सौंदर्य झरता रहता है—वह असीम उसके लिए झूठा है; इसीलिए सारी चेतना उस स्थूल पर एकाग्र करके उसने निस्संदेह समझा था कि इस सुंदर शरीर पर कब्जा कर लेने से ही मैं पा जाऊँगा—आज उसकी भूल की वह आकाशचूमती इमारत चकनाचूर हो गई। प्राप्ति की उस अदृश्य पकड़ से

अलग होकर पाना कितना बड़ा बोझा है, कितनी बड़ी भूल है, यह तथ्य आज उसके हृदय में जाकर गड़ा। अचला को देखकर उसे आज इसी सत्य की प्रतीति होने लगी कि ओस की बूंद मुट्ठी में आकर देखते ही देखते किस प्रकार पानी की बिंदु-सी सूख जाती है। हाय, पल्लव की कोर ही जिसके लिए विधाता की दी हुई जगह है, उस इस मरुभूमि में किस तरह बचाकर रक्खे।

अजानते ही उसकी आंखों में पानी भर आया। पोंछकर उसने आवाज दी,—अचला !

अचला चौंक उठी, पर वैसी ही चुप पड़ी रही। सुरेश ने कहा—तुम्हारी गाड़ी तैयार है, आज रामबाबू के यहां घूमने जाओगी ?

फिर भी अचला का कोई जवाब न मिला, तो वह बोला—जी न चाहे आज तो घोड़ों को खोल दे। मैं भी शायद अब नहीं जा पाऊँगा। इक्के को लौटा देता हूँ। कहकर वह बैठक में चला गया।

वहां दस-पंद्रह मिनटों तक वह क्या सोचता रहा, उसीको नही मालूम। इतने में साड़ी की खसखसाहट हुई। चौंककर देखा, सामने ही अचला खड़ी थी। उसने भरसक आंख की लाली को पोंछ डाला था और एक धनी की पत्नी की योग्य पोशाक में ही आई थी। बोली - उनके यहां आज जाना ही पड़ेगा !

अचला की यह पोशाक उसके लिए नही, बल्कि वहाँ के राज-अतिथियों के लिए है, सुरेश ने यह समझा, तो भी जड़ाऊ गहनों से सजी-गुजी उस नारी ने जरा देर के लिए उसे मोहित कर दिया। ताज्जुब में आकर पूछा— जाना ही पड़ेगा, ऐसी क्या बात ?

राक्षसी बुखार लिए ही कलकत्ते से लौटी है। यह भी पता चला, कल से चचाचा जी को बुखार आ गया है।

जब से आई हो, तब से क्या तुम कभी उनके यहां गई ?

नही।

उनके यहां से भी कोई नहीं आए ?

सिर हिलाकर अचला ने कहा—नहीं।

रामबाबू भी नहीं।

नहीं।

यहां आने के बाद से प्लेग वालों के लिए सुरेश इस कदर हैरान रहा कि घर-गिरस्ती और आपुस-विरानों के बारे में इन छोटी-मोटी भूलों पर ध्यान ही न दे सका। सो सुनकर वह हैरान हुआ। बोला—गजब ! अच्छा, जाओ।

अचला ने कहा—सचमुच अपनी ओर से गजब ही हुआ ! एक को बुखार

और एक जने खुद खाट न पकड़ लेने तक मेहमानों की खातिरदारी में परेशान रहे। उचित हम लोगों का ही जाना था।

अच्छा जाओ। जरा जल्दी लौट आना।

अचला जरा देर चुप रहकर बोली -- तुम भी साथ चलो।

मुझे क्यों घसीट रही हो।

अचला नाराज होकर बोली- अपनी बीमारी की बात याद न हो चाहे, मगर डाक्टर के नाते चलो।

अच्छा, चलो—सुरेश कपड़े बदलने के लिए बगल के कमरे मे चला गया।

इक्के वाले को कोई जवाब नहीं मिला था, इसलिए वह तब भी खड़ा था। अचला ने नीचे उतरकर देखा। खामखा रंज हो उठी वह। बैरे से इसकी कैफियत तलब करती हुई पैसे देकर उसे लौटा देने का हुक्म दिया। बैरे ने सुरेश की ओर ताकते हुए डरते-डरते पूछा—जी···कल ··

जवाब अचला ने दिया। कहा—नही। बाबू नहीं जाएँगे। इक्के की जरूरत नहीं।

सुरेश गाड़ी पर सामने वाली जगह में बैठने जा रहा था। उसके कुरते का छोर खींचकर अचला ने बगल मे बैठने का इशारा किया। गाड़ी चल पड़ी। दोनों चुप। अगल-बगल बैठने के बावजूद दोनों, दोनों तरफ की खिड़की से बाहर की ओर देखते रहे।

गाड़ी जब बगीचे का फाटक पार करके सड़क पर जा निकली, तो सुरेश ने धीमे-धीमे कहा—अचला !

क्या है ?

जानती हो, आजकल मैं क्या सोचा करता हूँ ?

नही।

आज तक जो सोचता आया हूँ, ठीक उसका उलटा। उस समय सोचा करता था, तुमको कैसे पाऊँ और अब सोचता हूँ, तुम्हें छुटकारा कैसे दूँ। तुम्हारा भार अब मानो ढोया नही जाता।

इस अनसोचे और बेहद कठोर आघात से अचला का देह-मन मानो जरा देर के लिए पंगु बन गया। यह नहीं कि उसे इस पर सच ही यकीन न आया, फिर भी अभिभूत-सी बैठी रही। बोली-- मैं जानती थी, पर यह तो |

सुरेश ने कहा--हां, गलती मेरी ही है। तुम लोग जिसे पाप का परिणाम

कहती हो। फिर भी बात यह सही है। मन-विहीन शरीर का बोझा ऐसा दुर्वह होता है, यह मैंने ख्वाब में भी नहीं सोचा था।

अचला ने नजर उठाकर पूछा—तुम क्या मुझे छोड़कर चले जाओगे ?

सुरेश ने बिना झिझके कहा—खैर, वही समझ लो।

इस बेखटके जवाब को सुनकर अचला एकबारगी चुप हो गई। उसके रुंधे जी को मथकर केवल एक ही बात चारों तरफ घुमड़ने लगी, यह वही सुरेश है ! यह वही सुरेश है ! आज उसी के लिए वह दुर्वह बोझ है। आज वही उसे छोड़ जाना चाहता है। जबान से ऐसा कहते भी आज उसे हिचक न हुई।

मगर सबसे बड़ा गजब यह कि वही उसके अपार दुःख की जड़ है। कल तक भी इसकी हवा से सारी देह जहरीली होती रही है।

बादल घिरे तीसरे पहर के आसमान के नीचे सूनी सड़क पर प्रतिध्वनि जगाती हुई गाड़ी तेजी से दौड़ रही थी और उसीके अन्दर बैठे ये दो जने बिलकुल मौन। सुरेश क्या सोच रहा था, वही जाने, पर उसके मुंह से निकले शब्दो की कल्पनातीत निष्ठुरता को पार करके भी आज एक नए भय से अचला का मन भर गया। सुरेश नही है—वह अकेली है। यह अकेलापन कितना बड़ा है, कैसा भयावना—लमहे में बिजली की नाईं उसके मन मे कौध गया। दुर्भाग्य से वह जो नाव लिए संसार-समुद्र में बह चली है, वह निश्चित् मृत्यु मे ही तिल-तिल डूब रही है, इस बात को उससे ज्यादा कोई नही जानता। तो भी इस जाने-चीन्हे भयावने आश्रय को छोड़ वह ओर-छोर हीन समुद्र में पड़ी है—यह ख्याल आते ही उसका सारा शरीर बर्फ जैसा ठंडा हो गया। उसका अब कोई नही—उसे प्यार करने को, घृणा करने को, रक्षा करने को, मार डालने को; कही कोई नहीं; संसार मे वह निरी अकेली है। इसकी याद से उसका दम घुटने लगा।

अचानक उसका अवश-विवश दायां हाथ सुरेश की गोद पर जा रहा कि उसने चौंककर देखा। जी-जान से उद्वेगहीन कंठ को साफ करके अचला ने कहा—अब क्या तुम मुझे प्यार नही करते ?

उसके हाथ को जतन से अपने हाथ में लेकर सुरेश ने कहा—इसका उत्तर वैसे बे खटके तो नहीं दे सकता अचला, लगता है, हो चाहे जो, पर इतना तो सही है कि यह भूत का बोझा ढोते चलने की ताकत मुझ मे नही।

अचला फिर जरा देर मौन रहकर धीमे और करुण स्वर में बोली—तुम मुझे और कहीं ले चलो—

जहां कोई बंगाली न हो।

हां, जहां शर्म मुझे हर पल बेधती न रहे—

वहां क्या तुम मुझे प्यार कर सकोगी अचला ? सच !—आवेश में उसने उसका सर छाती में खींचकर होठों को चूम लिया ।

अपमान से आज भी अचला का चेहरा लाल हो उठा, होंठ वैसे ही जल उठे, जैसे बिच्छु ने डंक मारा हो, तथापि गर्दन हिलाकर उसने हौले-हौले कहा—हां, कभी मैं तुमको प्यार करती थी । नः, छिः-छिः, कोई देख लेगा । यह कहकर उसने अपने को सुरेश से छुड़ा लिया और सीधी होकर बैठी । लेकिन जिसके हाथ में उसका हाथ पड़ा रहा, उसने स्नेह से उसे जरा दबाकर एक गहरा लंबा निश्वस त्यागा ।

गाड़ी चौड़ी सड़क छोड़कर रामबाबू के बंगले के बगीचे में घुसी और देखते ही देखते विशाल वेलर की जोड़ी गाड़ी बरामदे में जाकर रुक गई ।

चटकदार नई पोशाक वाले साईसों ने दरवाजे खोल दिए और सुरेश ने उतर कर खुद से अचला का हाथ पकड़कर उसे उतारा । अचला की नजर ऊपर के छज्जे पर थी । वहां और-और स्त्रियों के साथ राक्षसी भी दौड़ी-दौड़ी आकर खड़ी थी—बहुत दिनों के बाद चार आंखें हो जाने से दोनों ही सखियों के होठों पर हँसी फूट पड़ी । रामबाबू नीचे ही थे । खुशी और स्नेह से बदन की चादर फेंककर उन्होंने कहा—आओ, आओ बिटिया ।

इस अपरिचित स्वर के व्यग्र-व्याकुल पुकार से उसकी हँसती हुई आंखों की निगाह पलक मारते बूढ़े की ओर गई; लेकिन उनके बगल में खड़ा था महिम और उसीको देखकर वह मानो पत्थर हो गया था । आंखें चार हुईं, परन्तु पलक न गिरी । अचला के अंग-अंग का मणि-मुक्ता झलमला उठा, हीरा-मोती की चमक जरा भी मंद न हुई, लेकिन उन्हीं के बीच का खिला हुआ कमल मानो मुरझा गया ।

मगर सांझ के झुटपुटे में बूढ़े को भूल हुई । एक अजनबी सज्जन के सामने उसे लाज से मलिन और मुश्किल में पड़ी समझकर उन्होंने व्यस्त होकर दोनों हाथों उसके ललाट को पकड़कर कहा—छोड़ो भी बिटिया, तुम्हें चरणों की धूल नही लेनी होगी, ऊपर जाओ—

अचला कुछ नहीं बोली, लड़खड़ातो हुई चली गई ।

रामबाबू ने कहा—सुरेश बाबू. ये—

सुरेश ने कहा—गजब ! हम तो एक क्लास में—छुटपन से साथ-साथ—इसके बाद अचानक हँसने की कोशिश से चेहरा बनाकर बोला – अरे, तुम यहां महिम—

लेकिन बात पूरी न हो सकी । महिम भागकर कमरे में चला गया ।

काठ के मारे से बूढ़े ने सुरेश की ओर ताका—और सुरेश ने भी जवाब में हँसने की चेष्टा की, पर वह भी न हो सका । ऊपर जाने वाले लकड़ी के जीने पर

एकाएक जोरों की आवाज होने से दोनों ही ठक् रह गए। शोर मचा। रामबाबू दौड़े। जाकर देखा, अचला औंधी पड़ी है। वह दो ही तीन सीढ़ियां चढ़ पाई थी; उसके बाद ही बेहोश हो गिर पड़ी थी।

इकतालीस

लौटते समय गाडी के एक कोने में सर टेककर अचला यही सोच रही थी, आज की बेहोशी, काश दूर न होती ! अपने हाथों अपनी जान लेने के घिनौनेपन को वह मन में जगह भी नहीं दे सकती—पर ऐसी ही कोई शांरा, स्वाभाविक मृत्यु ! सहसा होश जाता रहे और नींद आ जाय—ऐसी नींद कि फिर न टूटे। मौत को ऐसी आसानी से पाने की क्या कोई तरकीब नहीं ? कोई नहीं जानता ?

सुरेश ने उसे छूकर कहा—तुमने और कहीं जाने की ख्वाहिश जाहिर की थी, चलोगी ?

चलो।

कल तो यहां मुंह दिखाना दूभर होगा।

मगर वे तो किसीसे कुछ कहेंगे नहीं ?

सुरेश के एक लंबा निश्वास छूट पड़ा। जरा देर चुप रह कर धीरे-धीरे बोला—नहीं, महिम को मैं जानता हूँ। नफरत से वह हम लोगों की निंदा को भी जबान पर नहीं ला सकता।

सुरेश ने यह बात बड़ी आसानी से कही, परन्तु अचला का सर्वाङ्ग सिहर उठा। उसके बाद जब तक गाड़ी घर जाकर लगी, तब तक दोनों ही चुप रहे। सुरेश ने उसे एहतियात से उतारकर कहा—तुम जरा सोने की चेष्टा करो अचला, मुझे कई जरूरी चिट्ठियाँ लिखनी है। वह अपने कमरे में चला गया।

बिस्तर पर पड़ी-पड़ी अचला सोचने लगी इक्कीस की तो अपनी उम्र है, इसी बीच मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया कि नसीब में यह गत हुई। यह कोई नई बात न थी, जब-तब वह अपने आप से यह पूछा करती और बचपन से जहां तक याद आता, याद करने की कोशिश करती। आज उसे अचानक उस तर्क की याद आ गई, जो मृणाल से एक दिन हुआ था और उसी सिलसिले में वह एक-एक कर सारी बातों को दुहरा गई। पति से कभी उसकी पटी नहीं, खटपट में ही बीता। महज

अंतिम के दिन प क सने रोग-शय्या पर बहुत अपना पाया था। उसके जीवन का जब कोई खतरा नहीं रह गया था, मन जब निर्भय और बेखटका था, तब के स्वच्छ-स्निग्ध आनंद में जब उसे पराई वेदना बड़ी पीड़ा पहुँचाती थी, ऐसे में एक दिन मृणाल के गले लिपटकर आंसू रुंधे स्वर में उसने कहा था, ननदजी तुम कहीं हमारे समाज, हमारे धर्म-मत की होती, जो तुम्हारी तमाम जिन्दगी को मैं यों बेकार नहीं जानें देती।

मृणाल ने हँसकर पूछा था, आखिर क्या करती संझली दी, फिर से मेरी शादी कर देती।

अचला ने कहा- और क्या ? मगर बख्शो बहन, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, शास्त्र की दुहाई तो न दो। यह कुश्ती इतनी लड़ी जा चुकी है कि उसके होने की सुनते ही मेरी रूह फना हो जाती है।

मृणाल ने वैसे ही हँसते हुए कहा था, बात डरने की ही है, क्योंकि उनकी टक्करें कब किधर को सख्त हो पड़ें, कुछ कहा नहीं जा सकता। लेकिन उसके एक पहलू पर तुमने गौर नहीं किया है संझली दी, वह यह कि वे लड़ते इसीलिए हैं कि लड़ना उनका पेशा है, इसीलिए कि उनके हाथ में हथियार है। नतीजा यह होता है कि जीत-हार महज उन्हीं की होती है, उस लडाई से हमारा-तुम्हारा कुछ जाता-आता नहीं। दो में से कोई पक्ष हमें नही पूछता।

अचला ने पूछा था, लेकिन पूछता तो क्या होता ?

मृणाल ने जवाब दिया—यह तो नहीं बता सकती। या तो मैं तुम्हारी ही तरह सोचना सीखती, या तो तुम्हारे प्रस्ताव पर राजी होती—हो सकता है, ब्याहने वाला कोई जुट भी जाता। कहकर वह हँसी थी।

उसकी हँसी से बेहद कुढकर अचला ने जवाब दिया था, मैं यह जानती हूँ, जब भी मेरे समाज की बात आती है, तुम अवज्ञा दिखाती हो। परंतु हमारे समाज को छोडो, जो भी इस पर लडते हैं, वे सब के सब क्या पेशेवर ही हैं ? सच्ची हमदर्दी क्या एक में भी नहीं होती ?

मृणाल ने जीभ काटकर कहा था, ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जिन्हें मन में लाना भी पाप है संझली दी। मगर यह नहीं बहन ! कल ही सुबह तो चली जा रही हूँ मैं। जाने के पहले कोई मजाक भी नहीं कर सकतीं ? और उसकी आंखों में आंसू भर आया था। अपने को सम्हालकर उसने गंभीर होकर कहा था, पर तुम तो मेरी सारी बातें समझ नहीं सकोगी बहन। तुम लोगों के लिए ब्याह महज एक सामाजिक विधान है—इसीलिए उस पर भला-बुरा विचार किया जा सकता है, तर्क

सें, दलील से राय बदल सकती है। मगर हमारे लिए यह धर्म है। पति को हम बचपन से इसी रूप में अपनाते आते हैं। यह तो सब तर्कों से परे की चीज है बहन।

हैरान-सी रही अचला ने पूछा था—खैर, बही सही। मगर मनुष्यों का धर्म क्या नहीं बदलता है?

मृणाल ने कहा था—धर्म के विचार बदलते हैं, भूल को कौन बदल सकता है? यही कारण है कि लड़ाई-झगड़े के बावजूद यह मूल वस्तु आगे भी सब जाति में एक-सी है। पति के दोष-गुण का विचार हम सब भी करते हैं, उनके बारे में विचार भी बदलते हैं—आखिर हम भी तो इन्सान हैं। लेकिन अपने लिए पति नित्य हैं, क्योंकि वे धर्म है। वे जीवन में भी नित्य है, मरण में भी! उन्हें हम बदल नहीं सकते।

अचला कुछ देर चुप रह गई। पूछा—यही ठीक है, तो इतना अनाचार क्यों है?

मृणाल ने कहा था—वह चूंकि रहेगा, इसलिए है। जब धर्म नहीं रहेगा, तब यह भी नहीं रहेगा। कुत्ते-बिल्लियों के तो अनाचार नही हैं बहन!

अचला को ढूंढ़े कोई जवाब न मिला, सो कुछ देर चुप रहकर उसने कहा था—तुम्हारे समाज की अगर यही शिक्षा है, तो जो लोग शिक्षा देते हैं, उन्हें इतना संदेह क्यों, फिर क्यों वे लोग इतने सावधान रहते हैं? इतना परदा, इतना छिपाव-बचाव, सारी दुनिया से बचाकर रखने की ऐसी जी-तोड़ कोशिश क्यों? इस जबरन सतीत्व की कीमत तब जानती, जब कसौटी का मौका मिलता।

उसके तुनकने से चौंककर मृणाल ने हंसकर कहा था, यह तो बहन तुम उनसे पूछो जाकर, जो ये कायदे-कानून बना गए हैं। हमने तो जो कुछ अपने मां-बाप से सीखा है, उसीका पालन करती जा रही हैं। मगर एक बात मैं तुमसे जोर देकर कहूँगी—जिसने यह कबूल कर लिया है कि पति धर्म है, परकाल की निधि है, उनके पांवों बेडी बांधो चाहे बेड़ी काट दो, उसके सतीत्व की खुद-ब-खुद कसौटी हो चुकी है! इतना कहकर वह कुछ क्षण रुकी थी और तब धीरे-धीरे कहा था—मेरे पति को तो तुमने देखा था? बुड्ढे थे, गरीब थे, रूप-गुण भी निहायत मामूली ही था, लेकिन वही मेरे इहकाल थे, वही मेरे परकाल हैं! उसने आंखें मूंदकर शायद मन में उन्हीं की याद की और फिर जरा फीकी हंसी हँसकर बोली—मिसाल शायद यह ठीक न होगी, पर बात यह बावन तोले पाव रत्ती ठीक है कि बाप अपने काने-लंगड़े लड़के पर ही सारा स्नेह उड़ेल देता है। दूसरे का खूबसूरत लड़का पल को उसके मन में क्षोभ ला सकता है, पर पिता के धर्म को एक तिल आंच नहीं आती। जाते समय अपना सर्वस वे कहां रख जाते हैं, यह तो तुम जानती हो? लेकिन अपने पितृत्व पर

सन्देह के नाते कभी बाप का धर्म अगर टूट जाता है, तो नेह की माफ ढूंढ़े नहीं मिलती ! मगर हमारी शिक्षा और विचार का स्रोत जुदा है बहन, मेरी यह मिसाल या ये बातें तुम शायद ठीक-ठीक समझ न पाओगी, लेकिन मेरी इस बात पर भूले भी अविश्वास मत करना कि जिस औरत ने पति को धर्म के रूप में हृदय में रखना न सीखा, उसके पैरों में सदा बेड़ी पड़ी रहे या खुली रहे और अपने सतीत्व के जहाज को वह जितना भी बड़ा क्यों न समझती हो, जांच की दलदल में पड़ जाने से उसे डूबना ही पड़ेगा। वह परदे में भी डूबेगी, परदे से बाहर भी।

वही तो होकर रहा। उस घड़ी अचला ने इस सत्य को नहीं समझा था, लेकिन मृणाल की बताई दलदल आज जब उसे जी-जान से रसातल की ओर खींचे ले जा रही थी, तो समझना बाकी न रहा ! उस रोज क्या बात को उसने इस तरह से समझाना चाहा था। मौत बद्ध समाज की अबाध स्वाधीनता के आंख-कान को खुला रखकर ही वह बड़ी हुई, स्वयं ही उसने चुनकर जीवन की राह अपनाई—उसे इसीका गर्व था; लेकिन इम्तहान के आड़े वक्त में यह सब कुछ भी उसके काम न आया। उसकी विपत्ति बड़ी चुपचाप आई, आई मित्र के रूप में; बड़े चाचा के स्नेह और श्रद्धा का जामा पहनकर आई। उस एकांत स्नेहशील, भला चाहने वाले बूढ़े के बार-बार आग्रह करने पर जिस दुर्योग की रात में वह सुरेश की सेज पर जाकर आत्महत्या कर बैठी, उस दिन उसे जो बचा सकता था, वह था एकमात्र उसका सतीत्व जिसे मृणाल ने जीवन-मरण में अद्वितीय और नित्य बताना चाहा था। लेकिन उस रोज उसके बाहरी आवरण ने ही बड़ा होकर उसे शिकस्त दी। उसकी जन्मजात शिक्षा और संस्कार आत्मा को तुच्छ कारागार समझकर बाहरी जगत् को ही सर्वोपरि मानता रहा है—जो धर्म लीन है, जो धर्म गुफा में सोया है; हृदय का वह धर्म कभी उसके आगे सजीव नहीं हो पाया। इसीलिए बाहर से सामंजस्य बनाए रखने के लिए भद्र महिला के बाहरी रूप को ही वह लज्जा से जकड़े रही। इस मोह को तोड़कर अपने को उघार कर वह हर्गिज न कह सकी कि चाचा जी, मैं जानती हूँ कि मेरी पर्वत-सी ऊंची हुई इतने दिनों की मिथ्या के ऊपर संसार में आज मेरे सत्य को कोई सत्य नहीं मानेगा; जानती हूं कि कल आप घृणा से मेरी शक्ल नहीं देखेंगे; आपकी सती पतोहू का दरवाजा भी कल मेरे लिए बंद हो जायगा और मेरी निन्दा तमाम फैल जायगी—लेकिन मुझे वह सब बर्दाश्त है, आपका आज का यह खतरनाक स्नेह नहीं सह सकूंगी। बल्कि आप मुझे यह आशीर्वाद करें चाचा जी कि इतने दिनों के सती के यश के बदले आपके आगे मेरा आज का यह कलंक ही अक्षय हो सके। लेकिन हाय ! यह बात उसके मन से उस दिन हर्गिज नहीं निकल सकी।

आज निष्फल मान और प्रचंड आवेश से उसका गला बार-बार सूख जाने लगा और उसकी उस अखंड पीड़ा को महिम की निगाह मानो चाकू से चीरने लगी।

इस तरह आधी रात बीती। लेकिन सभी दुःखों का एक विश्राम होता है, इसीलिए आंसू का सोता भी एक समय सूख गया और भीगी पलकें भी नींद से मुंद गईं।

नींद टूटी तो बेला हो चुकी थी। सुरेश के लिए दरवाजा खुला ही था, परंतु वह अन्दर आया भी या नहीं, पता नहीं चल सका। बाहर निकली तो बैरे ने बताया, बाबूजी तड़के ही इक्के से मझोली चले गए।

कोई साथ गया है ?

जी नहीं। मैं जाना चाहता था, उन्होंने जाने नहीं दिया। बोले—प्लेग से मरना चाहता है तो चल।

इसीलिए तुम नहीं गए और कृपा करके इक्का ला दिया ? मुझे क्यों नहीं जगाया ?

बैरा चुप रहा।

अचला खुद भी कुछ क्षण चुप रही—पूछा—इक्का कौन ले आया ? तुम ?

सिर झुकाकर बैरे ने कहा—बुलाने की कोई जरूरत नहीं थी। कल शाम ही बाबू ने उसे सुबह आने के लिए कह दिया था।

सुनकर अचला चुप हो गई। उसने जो सोचा था, हकीकत में वह न था। कल की घटना से इसका कोई लगाव न था। कल वाली बात न भी होती, तो भी वह जाता। सिर्फ उसके डर से कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया था।

पूछा—कब आएंगे, कुछ बता गए हैं ?

उसने खुशी से सिर हिलाकर कहा—बहुत जल्दी लौटेंगे, परसों या नरसों या उसके दूसरे दिन तो जरूर।

अचला ने और कुछ न पूछा - कल उसे सीढ़ी पर गिरते की चोट का ठीक-ठीक पता न चला था, आज लेकिन तमाम बदन दर्द से अवश हो रहा था। उस पर रामबाबू कहीं खोज-पूछ को न आएं, इस आशंका से मन भी मानो कांटे-सा हो रहा। महिम कुछ भी नहीं बोलेगा, इस बात को वह सुरेश से कुछ कम नही जानती थी। तो भी जैसे दैवात के भय से दर्द की जगह को अगोरे सारा मन सचेत रहता है; वैसे ही उसकी सारी इन्द्रियां बाहरी दरवाजे का पहरा देती रहीं। इस तरह सबेरा गया, दोपहर निकली, सांझ बीती। रात को अब उनके आने की उम्मीद नहीं, इसलिए निश्चंत-सी होकर वह बिछावन पर पड़ गई। पास की तिपाई पर खाली गुलदस्ते से दबा किसी कविराजी दवाखाने का सूचीपत्र पड़ा था, उसे खींचकर उसी

के पन्नों में नजर गड़ाए जाने किस एक श्रीमान् महाराज की बीमारी आराम होने की बात से लेकर ब्राह्मणघाटी मिडिल स्कूल के तीसरे मास्टर के प्लीहा छूटने का विवरण पढ़ते-पढ़ते अपना दुखड़ा भूल करके कब तो वह सो गई।

बयालीस

बैरे ने बताया था, बाबू परसों लोटेंगे, नही तो तरसों, नही तो उसके दूसरे दिन तो जरूर। लेकिन इस उसके दूसरे दिन की निश्चयता को दिन भर बैठकर जांचने जैसा धीरज अचला को न था। इन तीन दिनों के बीच रामबाबू एक दिन भी नही आए। उनके आने की संभावना को वह हृदय से डरती रही है और इस न आने में जो मतलब था, उसकी कल्पना करके भी उसका शरीर मानो काठ हो गया। वे बीमार थे और इस बीच उनकी बीमारी बढ भी सकती है, यह बात उसके मन में नहीं जगी। सिर्फ सवेरे उनका दरबान आया था, लेकिन वह अन्दर नही आया, पांडे जी से बात करके बाहर से ही लौट गया। वह क्यों आया था, क्या पूछ गया—डर से अचला किसीसे भी कुछ पूछ नहीं सकी। लेकिन उसके बाद से ही उसे ऐसा लगने लगा कि इस मकान, इन लोगों के बीच से भाग निकले तो जी जाय।

बैरे को बुलाकर उसने पूछा—रघुवीर, तुम्हारा घर तो इसी इलाके में है, मझोली कहां है, जानते हो ?

उसने बताया—बहुत पहले मैं एक बार वहां बारात गया था मां जी।

कितनी दूर है, बता सकते हो ?

रघुवीर ने मन-ही-मन अन्दाज लगाकर कहा—छः-सात कोस होगा मां जी।

तुम मेरे साथ आज चल सकते हो ?

रघुवीर ने हैरान होकर कहा—आप वहां जाएंगी ? वहां तो जोरों का प्लेग है ?

अचला ने कहा—तुम से न बने और किसीको राजी कर दे सकते हो। जो मांगेगा, वही इनाम दूंगी।

रघुवीर ने दुखी होकर कहा—आप जाएंगी और मैं नही जा सकता मां जी ? लेकिन रास्ता नहीं है, अपनी गाड़ी न जा सकेगी। या तो खटोला या फिर इक्का। आप तो इनमें से किसी पर नहीं जा सकेंगी।

अचला ने कहा—जो मिल जाय, मैं उसी पर चलूंगी। मगर अब देर से काम नहीं चलेगा। जो मिले वही सवारी ले आओ।

रघुवीर ने और कुछ न कहा—गया और जल्दी ही एक डोली लेकर आया और अपनी लाठी में लोटा कंबल लटका कर उसे कंधे पर रखकर वीर की भांति चलने को तैयार हो गया। घर की निगरानी का भार नौकर-प्यादों पर सौंपकर जाने कौन अजानी मझोली बस्ती की ओर जब वह सिर्फ सुरेश के लिए ही चल पड़ी,तो उसे खुद ही यह अनोखी-सी बात लगने लगी। जी में आने लगा, किसे पता था कि इस अजीब-दुनिया में कभी ऐसी घटना भी घटेगी।

गर्द भरी कच्ची सड़क एक थी, पर कभी तो वह दूर तक फैले बैहार में खो जाती और कभी संकरे गांवों मे गायब हो जाती। लोगों की सुविधा और इच्छा के अनुसार कभी वह नदी किनारे से, कभी घर के सामने से हो दूसरे गांव की ओर बढ गई थी। शुरू में कुछ दूर तक कभी-कभी उसे कौतुहल हो उठता था। बांसों पर एक लाश को बगल से ले जाते देख छूत के डर से वह सिकुड़-सी गई थी। ऐसी इच्छा हो आई थी कि पूछे, किस रोग से मरा, कितनी उम्र थी इसकी, घर में कौन-कौन है। लेकिन राह की दूरी बढती गई, बेला चुकने लगी और पास तथा दूर के गांव से जितना ही रोना-धोना उसे सुनाई देने लगा उतना ही उसका मन जाने किस एक जडना से झीम उठने लगा। बड़ी देर से उसे प्यास लग रही थी। नदी के किनारे चलते-चलते एक घाट के पास डोली रोककर वह उतरी और हाथ-मुंह धोकर पानी पीने के लिए उधर बढी कि नजर आया दो-एक अध-जले शव थोड़ी ही दूर पर पड़े है। उनके घिनौनेपन ने उसके मन पर कोई चोट ही न की। उसने सहज ही वहां पानी पिया और फिर धीरे-धीरे डोली पर जा बैठी। कुछ ही पहले वह यह सोच भी नहीं सकती थी कि उसके लिए किसी भी हालत मे यह संभव है।

इसके बाद के गांव प्रायः खाली पड़े थे। किसी-किसी बड़े ही दुस्साहसी आदमी के सिवाय, जिससे जिधर बना भाग गया था। कही कोई शब्द नहीं, सुगबुगाहट नहीं— सभी द्वार बन्द, सब घर मैले-कुचैले—लग रहा था, मानो ये झोंपड़े भी मौत को अनिवार्य मानकर आंखें बन्द किए उसका इन्तजार कर रहे हैं। मौत से रौंदे गए इन गांवों से गुजरते हुए रघुवीर तथा डोली ढोने वालों की दबी आवाज और भीत पैरों की आहट हर पल अचला को मुसीबत की सूचना देने लगी, लेकिन उसे डर ही न लगा, जैसे कब से तो इससे उसका परिचय है—ऐसा ही निर्विकार हो गया उसका सारा अन्तर।

पूरी राह तै करके जब वे लोग मझोली पहुँचे तो बेला डूब चुकी थी।

अचला का ख्याल था, वहां पहुँचते ही उन सब की राह की तकलीफ जाती रहेगी। गांव के एहसानमन्द लोग दौड़कर उनका स्वागत करेंगे और डाक्टर साहब के पास लिवा जाएँगे। वहां रोगी और उनके अपने-सगों के आवागमन, दवा-दारू बांटने का जो वहां समारोह चल रहा होगा, उसमें उसका स्थान कहां होगा। इसकी तस्वीर उसने मन ही मन बना ली थी। लेकिन देखा—उसकी कल्पना निरी कल्पना ही थी। उससे वास्तव का कोई मेल न था। बल्कि जो नज्जारा वह तमाम रास्ता देखती आई, यहां भी वही। यहां भी रास्ते पर न आदमी न आदमजाद, घर-घर के द्वार बन्द—कहां किस टोले में सुरेश का डेरा है, खोजकर निकालना ही मुश्किल।

गांव में आज भी रोजाना पैठ लगती थी और वह शाम-शाम तक चलती थी, पर इधर समय-काल ठीक न होने से तीसरे पहर ही बिसात उठाकर लोग जा चुके थे। हाट की निशानियां जरूर थीं।

बड़ी छान-बीन के बाद रघुवीर ने एक दुकान का पता लगाया। दूकानदार अपनी दुकान बढ़ा रहा था। उसने कहा—मेरे बाल-बच्चे सब दूसरी जगह चले गए हैं। महज हम दोनों प्राणी दूकान के मोह से यहां रह गए हैं। उसने सुरेश के बारे में इतनी सी खबर दी कि डाक्टर साहब नन्द पांडे के नीम तले वाले घर में अब तक थे जरूर, पर अब है कि महमूदपुर चले गए, पता नहीं।

महमूदपुर कहां है।

यहां से सीधे दो कोस दक्खिन।

नन्द पाण्डे का घर किधर है ?

वह बूढ़ा बाहर निकला। अंगुली से एक बड़े से नीम के पेड़ को दिखाते हुए कहा—बस वहीं जाइए, मिल जायगा।

थोड़ी ही देर में जब कहारों ने लेजाकर डोली को नीम के नीचे रक्खा, तो सूरज डूब चुका था। मकान बड़ा-सा था। पीछे की ओर दो-एक पक्के के कमरे दिखाई पड़ रहे थे। लेकिन ज्यादातर खपरैल। सामने दीवार नहीं—खूब खुला। घर वाला गरीब नहीं लग रहा था। पर एक भी आदमी बाहर नहीं निकला। आंगन में बंधे सिर्फ एक टट्टू ने भूख-प्यास से हिन-हिनाकर उनका स्वागत किया।

सदर दरवाजा खुला था। हिम्मत करके रघुवीर ने अन्दर झांका। देखा—बरामदे पर एक चारपाई पर सुरेश पडा है और पास ही एक खंबे से टिकी एक बहुत ही बूढ़ी औरत बैठी ऊंघ रही है।

! बाबूजी

सुरेश ने आंख खोलकर देखा, और केहुनी के सहारे सर उठाकर जरा देर गौर करके कहा—कौन ? रघुवीर ?

सलाम करके रघुवीर उसके सामने जाकर खड़ा हुआ, पर मालिक की लाल-लाल आंखें देखकर उसकी जीभ से बात न निकली।

तुम यहा !

रघुवीर ने फिर सलाम बजाया और बाहर की तरफ इशारा करते हुए कहा—जी, मां जी—

अबकी अचरज से सुरेश ने उठकर बैठते हुए पूछा—मा जी ने तुझे भेजा है ?

रघुवीर ने गर्दन हिलाकर कहा—जी नहीं, वे खुद आई हैं।

सुनकर सुरेश उसकी ओर कुछ इस तरह से ताकता रहा, मानों समझने में उसे देर हो रही है। उसके बाद आंख बन्द करके फिर लेट गया, कुछ नही बोला।

अचला जब आकर खाट पर उसके बगल में ही बैठ गई तो कुछ देर उसने उसी तरह ताका और मौन हो रहा, शिष्टाचार के अनुसार 'आओ' तक नहीं कह सका। बचपन से बेहद लाड़-प्यार में पलने के कारण वह आवेश और ख्याल पर ही चलता रहा है, उन्हें संयत करने का उसने कभी पाठ ही नहीं पढ़ा। यह शिक्षा जीवन में पहली बार उसे उसी दिन मिली, जिस दिन उसकी हँसी पर लात मार कर महिम कमरे में चला गया। उस दिन क्षण में उसके जी में कैसी उथल-पुथल मच गई, इसे सिर्फ़ अन्तर्यामी ने ही जाना और आज भी सिर्फ उन्हीं ने देखा कि उस शांत स्थिर शरीर के अंग-अंग में कितनी बड़ी आंधी बह गई। उस दिन उसने महिम के आघात को जिस प्रकार चुपचाप सह लिया था, आज भी उसी प्रकार अपने उन्मत्त आवेग से वह चुपचाप जूझता रहा, उसका कोई भी असर चेहरे पर नहीं प्रकट होने दिया।

कहा नहीं जा सकता, ऐसे और कितना समय बीत जाता लेकिन कहारों के पुकारने से रघुवीर बाहर चला गया—उसी आहट से सुरेश ने आंखें खोलीं, पूछा—तुम्हें मेरी चिट्ठी मिली ?

अचला ने नजर झुकाकर ही कहा—नहीं।

सुरेश ने ताज्जुब के साथ कहा—बिना चिट्ठी पाए ही आ गई, ताज्जुब है ! खैर, अच्छा ही हुआ कि भेंट हो गई। कुछ देर उसके झुके मुखड़े की तरफ देखकर फिर आप ही आप बोला—मेरे लिए तुमको बहुत दुःख उठाना पड़ा। और शायद मरते दम तक इसका असर नहीं जायेगा। सबसे बड़ी भूल जो हुई, वह यह कि तुम महिम को इतना ज्यादा प्यार करती हो यह मैं भी नहीं समझ सका, शायद तुम भी कभी नहीं समझ पाईं ! है न ?

मगर जब अचला सिर झुकाए चुप ही बैठी रही तो वह फिर बोला--इसके सिवा मेरा ख्याल है, मनुष्य के मन नाम की स्वतंत्र कोई चीज नहीं होती। उसको जो कुछ भी है, देह-धर्म ही है। प्रेम भी वही है। मैंने सोचा था, किसी तरह तुम्हारा शरीर पा जाऊँ तो प्यार भी दुर्लभ न होगा—कौन जानें, कभी सचमुच ही तकदीर प्रसन्न हो जाती—हो सकता था, मैंने सर्वस गँवाकर जो कुछ पाना चाहा था, कभी तुम स्वेच्छा से ही वह भीख मुझे देतीं। मगर अब समय नही रहा, इन्तजार करने का मुझे मौका नही मिला। इतना कहकर बिस्तर पर केहुनी रोप कर उसने अपना सिर उठाया और दीए की मद्धिम रोशनी में आखों की निगाह को तेज करके अचला के झुके चेहरे की ओर देखने लगा।

एक की इस एकाग्र दृष्टि ने दूसरी की झुकी नजर को खींचा, मगर पल भर के लिए। अचला ने तुरत नजर झुका ली। शर्माई-सी धीमे-धीमे कहा--इस इलाके के तो सब लोग भाग गए है - तुम्हारा यहा का काम अगर खत्म हो चुका हो, तो घर या और कही चलो, कितनी तो जगह है--डिहरी मे अब एक घड़ी भी टिकना दूभर हो रहा है।

इसे मुझ से ज्यादा कौन जानता है? सुरेश ने एक लम्बी सांस ली और तकिए पर सर रखकर लेट गया। कुछ देर चुप रहा, फिर धीरे-धीरे कहने लगा—बड़ी मुश्किल से आज सवेरे दो चिट्ठिया लिख पाया—एक तुम्हें और दूसरी महिम को। वह अगर इसी बीच में चला नहीं गया हो, तो जरूर आयेगा। मुझे पूरा विश्वास है।

अचला अचरज और भय से चौंक उठी—उन्हे क्यों लिखा?

सुरेश उसी तरह से धीरे-धीरे बोला—इस समय मुझे एक मात्र उसीकी आवश्यकता है। छुटपन से आज तक जीवन में जानें कितनी गांठें डाली है। और उन्हे खोलने के लिए इसी आदमी की सदा जरूरत पड़ी है। इसीलिए आज भी उसी को बुलाना पड़ा। दुनिया में इतना धीरज तो किसी में नहीं।

अचला के अन्दर उथल-पुथल मच गई, मगर वह नजर झुकाए स्थिर बैठी सुनती रही। सुरेश ने कहा—मेरी चिट्ठी मे लगभग सब कुछ लिखा है, पढ़ोगी तो पता चलेगा। उस दिन अपनी सारी ज्यादाद की वसीयत तुम्हे दे चुका हूँ। चाहो तो उसी की बहुत-सी चीजें ले सकती हो। पर मैं समझता हूँ लेने की जरूरत नहीं। मेरे जीते जी भी जैसे उसका ज्यादा हिस्सा गरीबों को ही मिलता, मेरे मरने के बाद भी जिसमें उन्हीं लोगों को मिले। मेरी किसी भी चीज से तुम अब कोई संपर्क न रखना अचला—तुम मुक्त होओ, निर्विघ्न होओ—मेरे सब संस्पर्श से अपने

को बिल्कुल अलग कर लो। कोशिश करने पर दुनिया में बहुत दुःख झेले जा सकते हैं मेरा दिया दुःख भी जिस में तुम एक दिन सहज ही सह सको।

उसके रंग-ढंग और बातचीत के तौर-तरीके से अचला को कैसा तो डर लग रहा था। इसी अन्तिम बात से तो वह सचमुच ही घबरा गई—आखिर तुम यह सब क्यों कह रहे हो? उठकर बैठी—ऐसा करो कि हम तुम यहां से चल दें।

उसकी आशंका और घबराहट को भांप कर भी सुरेश ने कोई जवाब नहीं दिया। जो बुढ़िया खम्बे के पास बैठी थी, उसने पूछा—बाबूजी अब अन्दर चलेंगे कि रोशनी बाहर ला दी जाय—सुरेश ने इसका कोई जवाब नही दिया; ऐसा लगा अचानक उसे तंद्रा आ गई है। अकुलाई अचला अपनी पिछली बात दुहराने जा रही थी कि सुरेश ने आंख खोलकर बड़े ही सहज भाव से कहा—तुम से अभी असली बात ही नहीं बता पाया। अचला, मैं अंतिम घड़िया गिन रहा हूं, मेरे जीने की अब कोई उम्मीद नहीं।

जवाब में महज एक अस्फुट आवाज अचला के गले से निकल पड़ी। उसके बाद वह काठ की मारी-सी बैठी रह गई।

सुरेश कहने लगा—मैंने पहले ही वसीयत जरूर कर रक्खी है, पर कोई अगर यह कहे कि मैं जान-सुनकर कर रहा हूँ, तो वह गलत होगा—उससे मुझे मरने से भी ज्यादा कष्ट होगा। मैंने सावधानी बरतने में कोई कोर-कसर न रक्खी, मगर कोई नतीजा न निकला। तुम से कभी कोई पूछे तो कहना—दुनिया में और-और लोग जैसे मरते है मेरी भी मौत वैसी ही हुई है। कहना—मौत को चूंकि टाल नहीं सके, इसीलिए मर गए वरना मरने की उनकी इच्छा नही थी। जिस में कोई मुझ पर यह कलंक न लगाए कि मरने मे मेरा कोई हाथ था, मरने मे कोई खास बात थी।

अचला कुछ न बोली। बोलने की उसकी शक्ति ही जाती रही थी, यह बात उस धुंधलके मे उसका चेहरा देखकर सुरेश समझ नहीं सका। उसने अपने को थोड़ी देर में सम्हाला और फिर कहने लगा—बिना आए मुझसे रहा नहीं गया, इसीलिए तुमसे बचकर उस रोज मैं सुबह ही चल दिया था। आकर देखा, सारी बस्ती खाली हो गई है। इस घर में एक नौकर मर गया है और उसका संस्कार किए बिना ही सब भागने को तैयार हैं। मैं उन लोगों को तो नहीं रोक सका, पर लाश का एक किनारा किया जा सका। लौटकर सोचा—मैं भी वापस चला जाऊं। लेकिन दोपहर को महमूदपुर से एक लड़का रोता-पीटता आया। बोला—मेरी मां बहुत बीमार है। उसीके आपरेशन में यह वदनसीबी मोल ले बैठा। आपरेशन तो बहुत किया, सावधानी भी कम नहीं रक्खी, मगर बदकिस्मती कहो—इक्के के पहिए से पांव का अंगूठा छिता

गया था—मगर उस पर नजर तब पड़ी, जब मैं हाथ का लहू धोने जा रहा था। झटपट लौटा। जो कुछ करना चाहिए था, सब किया। घर जाने की गुंजाइश होती, तो लौट गया होता, मगर कोई उपाय करते न बना! कल रात बुखार-सा लगा—समझ गया कि यह बुखार क्यों है। सो बड़ी-बड़ी मुसीबत और कोशिश से तुम लोगों को चिट्ठियां भेजी।

अचला आंसू से भर्राई हुई आवाज में बोली—लेकिन अब तो उपाय है अभी, अपनी डोली पर मै तुमको तुरत ले जाऊंगी—अब एक मिनट भी यहां नहीं रहने दे सकती।

और तुम ?

मैं पैदल चलूगी। मेरी फिक्र तुम छोड़ दो।

पैदल जाओगी ? इतनी दूर ?

पैरों पड़ती हूँ तुम्हारे, आनाकानी न करो—अचला रो पड़ी।

सुरेश पलभर चुप रहा। फिर एक लम्बा निश्वास छोड़ते हुए बोला—खैर, चलो। लेकिन मैं समझता हूँ, जरूरत न थी इसकी।

अचला बाहर निकली। देखा रघुबीर पेड़ के नीचे चबेना चबा रहा है। बोली—रघुबीर, बाबूजी बहुत बीमार पड़ गए है। तुम डोली वालों से कहो—वे जितना मागेंगे, मैं उससे ज्यादा रुपया उन्हें दूँगी। मगर अब देर नहीं होनी चाहिए।

मालकिन की अकुलाई आवाज से रघुबीर चौंका। बोला—लेकिन ये लोग दो का भार तो नही ढो पायेंगे मां जी!

नहीं-नहीं दो नहीं। एक। मैं पैदल चलूंगी। मगर अब एक मिनट भी मत रुको। कहां है वे सब ? देखो जरा।

रघुबीर ने कहा—किराए के रुपए लेकर वे कुछ खाने के लिए दूकान की तरफ गए है। बुला लाता हूँ मां जी, तुरत—और अपने चबेने को धोती की कोर में बांधते हुए वह दौड़ पड़ा।

अचला सुरेश के सिरहाने जा बैठी। हाथ से ताप देखकर आशंका से डर गई वह। मुनिया की मां मिट्टी के तेल की ढिबरी रख गई थी, धुएँ से सारी जगह औधा रही थी। वह ढिबरी को हटाने गई कि दवा की एक शीशी पर नजर पड़ी। अचला ने पूछा—यह तुम्हारी दवा है ?

सुरेश ने कहा—हां, मेरी ही है। कल खुद से तैयार की थी। पी नहीं पाया ले आओ—

अचला को चोट-सी लगी। लेकिन दवा न पीने की वजह पर झगड़ने को जी न चाहा उसे दवा पिलाकर वह उसी तरह चुपचाप सिरहाने में बैठ गई। बड़ी देर

से सुरेश मौन था, मगर चुपचाप वह कितनी बड़ी पीड़ा सह रहा है, यह सोचकर अचला का कलेजा दरकने लगा।

देर हो रही थी, रघुबीर का पता नहीं। बीच-बीच में वह पांव दबाए बाहर जाकर अंधेरे में जहां तक नजर जाती, देख लेती। कहीं किसी का पता नहीं। लेकिन कहीं सुरेश को उसकी इस उद्विग्नता का पता चल जाय, इस डर से भी वह घबरा गई।

रात बढ़ने लगी। खम्भे के पास मुनिया की मां की नाक बजने लगी। ऐसे समय भूखे-प्यासे, थके-मांदे रघुबीर ने भग्नदूत की नाई आकर कहा—कहार लोग तो डोली लेकर कब के चल दिए। कहीं पता न चला।

सब भूलकर अचला विकृत-स्वर में बार-गार सवाल करने लगी—कब गए वे ? किधर गए ? क्यों गए ? हम अपना सर्वस दें, तो भी क्या कोई डोली मिल नहीं सकेगी ?

रघुबीर ने सिर झुका लिया। वह जानता था कि यह मुसीबत उसी के चलते आई। इसीलिए वह जी-जान से उनकी तलाश करके तब लौटा था।

लेकिन और एक आदमी उसी की तरह खाट पर चुपचाप पड़ा रहा। उसे कोई परेशानी छू भी नहीं गई, रघुबीर जब चला गया, तो वह धीरे-धीरे बोला—नाहक परेशान क्यों हो रही हो अचला, कहार मिल भी जाते तो कोई लाभ न होता। यही ठीक है—मेरे लिए यही ठीक है।

अचला बोली नही—वह सिर्फ इस अनन्त की ओर जाने वाले के गर्म कपाल पर दायां हाथ रखकर बुत-सी बैठी रही।

उसके चारों तरफ जनहीन बस्ती मौन-सी सन्नाटे मे पड़ी थी, बाहर गहरी रात और भी गहरी होती जा रही थी—आखों में काला आसमान और भी काला हो उठा। उस आसमान की ओर देखकर अचला के जी में यही होने लगा कि इसकी जरूरत क्या थी, क्या थी जरूरत इसकी ?

उसके जीवन-कुरुक्षेत्र में इतनी बड़ी जो लड़ाई चल रही है, दुनिया में इसकी क्या आवश्यकता थी ? दुनिया की सारी जलन, सारी हीनता, सब स्वार्थ समाप्त करके वह इस रात की तरह आज ही खत्म हो जायगी ? उसके बाद उसका समूचा जीवन क्या कुरुक्षेत्र जैसा केवल शमशान-सा युग-युग पड़ा रहेगा ? चिता जलने का निशान कभी मिटेगा ? दुनिया में यह भी क्या जरूरत में से है ?

लेकिन यह कुरुक्षेत्र छिड़ा क्यों ? किसने छेड़ा ? जो बेचारा आज अपनी सारी सम्पत्ति, तमाम, दौलत, सभी सगे-सम्बन्धियों से अलग होकर निरा असाहाय सा भर रहा है, इतना बड़ा विप्लव क्या अकेले उसीने मचाया ? और क्या किसीके

मन में लोभ और मोह छिपा नहीं पड़ा था ? और किसीने क्या कहीं कोई पाप नहीं किया ?

लेकिन फिक्र के इस सिलसिले को सहसा तोड़कर वह मानो जरा हिली-डुली। जैसे कोई दोनों हाथों उसका गला घोंट रहा हो। इसी वक्त सुरेश ने भी पानी मांगा। झुककर अचला ने उसके मुंह मे पानी डाला और फिर स्थिर बैठ गई। उसे न श्रांति थी, न क्लांति। आंखों से नींद का आभास तक गायब हो गया था। अपनी उन्हीं सूनी आंखों से फिर वह एकटक आसमान की ओर देखने लगी। बड़े जतन से बहुत दिन पहले उसने महाभारत को समाप्त किया था। आज उसीका अन्तिम सर्वनाश मानो जादू के करिश्मे-सा उसी में दिखाई देने लगा। कितना लहू बह रहा है वहा, कितने अजाने लोग मार-काट मचा रहे है—जानें कितनी हजार चिताएँ जल-बुझ रही हैं—उसके धुएँ से धरती-आकाश मानो ढंक गया है।

कुछ देर के लिए सुरेश को जैसे तंद्रा आ गई थी, वह निश्चेष्ट पड़ा था। लेकिन अचला को इसका भी होश न था कि इस तरह कितना समय कटा, कैसे रात सवेरे की ओर बढ़ने लगी। उसकी आंखों से आंसू जारी था, शिथिल दोनों हाथ सुरेश के तकिए पर था, वह हृदय से कह रही थी—हे ईश्वर ! मैंने बहुत-बहुत दु.ख, बहुत-बहुत पीड़ा उठाई, मेरी सारी पीड़ा, सारे दु.खों के बदले आज तुम इसे क्षमा करके अपनी गोद में उठालो ; मेरे मां नहीं, बाप नहीं, भाई नहीं—इतना बड़ा कलंक माथे उठाकर मेरे लिए खड़ी होने की कोई जगह नहीं। तुम तो जानते हो, मैंने कितना झेला है—मुझे अब जीने मत दो प्रभो ! मुझे भी अपने पास खींच लो।

इन बातों को उसने कितनी बार, कितने प्रकार से दुहराया—इसका ठिकाना नहीं। उसके आंसू की भी कोई हद न रही।

मां—जी ?

अभी-अभी सबेरा हुआ। अचला ने चौंककर देखा—रघुबीर मानो किसीके अन्दर जाने के इंतजार में दरवाजा खोले खड़ा है।

क्या है रघुबीर ?—यह कहते ही जिससे अचला की नजर मिल गई, वह महिम था। वह एक बार कांप गई और नजर झुका ली। लमहे के लिए दरवाजे पर महिम का कदम ठिठक गया। उसे यह उम्मीद न थी कि यहां इस तरह फिर से उससे भेंट हो जायगी। लेकिन वह धीरे-धीरे करीब आकर खड़ा हुआ। धीमे से पूछा—सुरेश की तबियत अब कैसी है?

अचला ने सिर नहीं उठाया, बोली नहीं, सिर्फ सिर हिलाकर मानो उसने यह जताना चाहा कि वह कुछ भी नहीं जानती।

मिनट भर स्थिर रहकर सुरेश के कपाल पर महिम ने जैसे ही हाथ रक्खा, उसने आंखें खोलीं। उस बुझी-सी लाल आंखों को देखकर सुरेश के मुंह से बात न फूटी। जरा देर में बोला—कैसे हो सुरेश ?

ठीक नहीं—मैं चला। मैं जानता था, तुम आओगे—मेरे सामने बैठो।

महिम उसके पैताने बैठा। बोला—डिहरी में डाक्टर हैं, किसी तरह मेरे इक्के से—

सुरेश ने सिर हिलाकर कहा—उँहूँ—खींचा-तानी मत करो, मजूरी नहीं पोसाएँगी। मुझे Quietly जाने दो।

लेकिन अभी तो—

हां, अभी होश है। मगर कभी-कभी भूल हो रही है। मेरा जीवन गरीबों के काम नहीं आ सका, लेकिन मेरी जायदाद जिसमें गरीबों के काम आए महिम ! इसी-लिए तुम्हें तकलीफ देकर इतनी दूर बुलाया है, वरना मरते वक्त माफी मांगकर कविता करने की अपनी ख्वाहिश नहीं।

महिम चुप रहा। सुरेश ने कहा—वह सब मैं यकीन भी नहीं करता, चाहता भी नहीं। एक दिन क्षमा का लोभ मुझे नहीं है। खैर, एक वसीयत है ? अचला को मैंने कुछ नहीं दिया है—उसका और अपमान करने के लिए मेरा हाथ नहीं उठा। लेकिन जरूरी समझो, तो कुछ देना।

महिम व्याकुल हो उठा—इसमें मुझे क्यों लपेट रहे हो सुरेश ?

सुरेश ने कहा—महज इसलिए कि तुम्हें लपेटा नहीं जा सकता। जिसे लोभ नहीं, जिसे न्याय-अन्याय का विचार—एकाएक नजर उठाकर बोला—तुम तमाम रात बैठी रहीं अचला—जाओ, मुंह-हाथ धो लो। मुनियां की मां सब बता देगी—

अचला चली गई तो सुरेश ने कहा—मुझे सिर्फ एक बात का बड़ा दुःख रहा। अचला तुम्हें कितना प्यार करती है, इसे मैंने भी नहीं समझा, तुमने भी नहीं—खुद उसने भी नहीं समझा। तुम्हारी गरीबी से वह ऐसा गड़बड़घोटाला हो गया कि—खैर ! इतनी सुंदर चीज को मैंने मिट्टी कर दिया—न खुद पा सका, न दूसरे को पाने दिया ! फूफी को देखना—उन्हें बड़ा शोक होगा।

मुनियां की मां दवा की शीशी लेकर आई कि वह ऊब से बोल उठा—न-न, दवा अब नहीं। पानी दो। मैंने एक नाटक लिखना शुरू किया था महिम—दराज में है—बने तो पढ़ना।

महिम उसकी तरफ ताक नहीं पा रहा था—सिर नीचा किए सुन रहा था। सिर उठाकर उसने कुछ कहना चाहा कि बाधा देकर सुरेश बोल उठा—बस भई,

जरा सोने दो। खाने पीने का सब है, मगर वह तो तुम लोगों को अच्छा नहीं लगेगा। कहकर उसने आंख बंद कर लीं।

महिम जरा देर चुप रहा। उसके बाद बोला—मेरा एक अंतिम अनुरोध मानोगे सुरेश ?

क्या ?

तुमने कभी भगवान् को नहीं सोचा, उनकी बात—

वह मुझे ठीक नहीं लगता—कहकर मुंह बिगाड़कर सुरेश ने करवट बदली। महिम ने जी-जान से एक उमड़ते हुए निश्वास को रोका और चुप हो रहा।

तैंतालीस

रामबाबू घर पर नहीं थे। दूसरे दिन बक्सर से आने पर उन्हें महिम की चिट्ठी मिली और उन्होंने पल भर की भी देर न की—तमाम रास्ते घोड़े को भगाते हुए अधमरा-सा बनाकर जब मझोली पहुँचे, तो बेला डूब रही थी। दूकानदार ने उनको दरोगा समझा और खुद रास्ता दिखाते हुए नंदपांड़े के नीम के नीचे ले गया और इक्के से उतरते वक्त बाअदब घोड़े का लगाम थामे खड़ा हुआ। इसी से रामबाबू को पता चला कि अचला भी आई है। सामने का दरवाजा खुला ही था। अंदर कदम रखते ही कुछ भी समझना बाकी न रहा। दो घंटे हुए, सुरेश चल बसा। खाट पर उसकी लाश ढँकी पड़ी थी और कुछ ही दूर पर उसके पैरों के पास अचला चुप बैठी थी।

बूढ़े से यह दृश्य देखा न गया। वे चीखकर रो पड़े। अचला ने एक बार नजर उठाकर देख भर लिया और फिर उसी तरह सिर झुकाकर बैठ गई। यह चीख मानो महज उसके कानों तक गई, मर्म तक न पहुँची।

महिम अंदर लकड़ी की तलाश कर रहा था. रोना सुनकर बाहर निकला। बोला—थोड़ी देर हुई, सुरेश छोड़ गया। आप आ गए, अच्छा ही हुआ वरना अकेले मुझे बड़ी असुविधा होती !

रामबाबू चुपचाप आंसू पोंछने लगे। वे सोचकर कुछ ठीक ही नहीं कर पा रहे थे कि क्या करें, क्या कहें, कैसे उस स्त्री के सामने इस निष्ठुर काम में मदद पहुँचाएँ।

महिम ने कहा—नदी दूर नहीं है। थोड़ी-बहुत लकड़ी रघुवीर ले गया है, थोड़ी और मिल गई हैं। इसे भी भेजकर हम तीन जने लाश को ले चल सकेंगे। गांव में आदमी नहीं हैं, होगा भी तो कोई निकलेगा नहीं ;

रामबाबू यह जानते थे। अचला से बचाकर उन्होंने चुपके से पूछा– हम दो जने—और ?

महिम ने कहा—रघुवीर भी मदद दे सकता है।

सुनकर बूढ़े ने व्यस्त होकर कहा—न-न, यह हर्गिज न होने दूंगा मैं। ब्राह्मण की लाश, और किसी को न छूने दूंगा। नदी जब पास ही है, तो जैसे भी हो हम ही दोनों को ले चलना पड़ेगा।

खैर, वही होगा।—कहकर महिम फिर लकड़ी की जुगत में जुट गया। रामबाबू बरामदे के एक ओर खूंटी से टिककर चुप बैठे रहे।

उम्रवाले आदमी, अपने लंबे जीवन में मौत उन्होंने बहुत देखीं, बहुत गहरे शोक के बावजूद उन्हें धीरे-धीरे आगे बढ़ना पड़ा है। दुःसह दुःखों के वे करुण सुर एक-एक करके उनकी हृदय-वीणा के तारों में बँध गए हैं; आज की यह घटना उन तारों पर चोट करके हरदम बेसुरी बजने लगी। कभी 'बड़े चाचा' संबोधन करती हुई यही सुरमा उनकी गोदी पछाड़ खा गिरी थी—इसको वे भूले नहीं थे। आज भी उनका पितृ-स्नेह उसी लोभ से भीतर-भीतर घुमड़ने लगा। उसे क्या दिलासा दें, मालूम नहीं; उसे भरोसा देने लायक संसार में है क्या, यह भी नहीं जानते, फिर भी उनका शोकाकुल हृदय मानो यही कहना चाहता रहा कि एक बार उसे अपने कलेजे से लगाकर कहें—डर कैसा बिटिया, मैं तो जिंदा ही हूँ !

लेकिन यह सुर बजा कहां ? उनकी वह प्यास बुझाने के लिए वह आगे बढ़ी कहां ! सुरमा तो वैसी ही चुप बनी रही, दूर आत्मीय के व्यवधान से अपने को अलग किए रही।

दुःख में, विपदा में इनकी नेक अनबुझ वेदना, मूक मानसिक पीड़ा के पास से उन्हें चलना पड़ा है, छिपे रहस्य का इशारा कभी-कभी उन्हें कुचोट दे गया है, मगर उन्होंने कभी भी अपने को दुखने नहीं दिया—स्नेह के आवरण से सभी आशंकाओं को ढांककर बाहर के आकाश को मेघ से परे निर्मल ही रक्खा है उन्होंने। लेकिन अभी-अभी विधवा बनी अचला के इस अनचीन्हे कठोर धीरज ने इतने दिनों से उनके ओट में छिपे स्नेह को उधारकर कलुष के धुएँ से भरना शुरू कर दिया।

चक्का अस्त हो चुका। उधर का काम लगभग चुकाकर महिम ने कहा—रामबाबू, अब तो इसे ले ही चलना चाहिए। अचला की ओर मुड़कर बोला रोशनी

जला दी है। तुम मुनियां की मां के पास बैठी रहो। हमें लौटने में ज्यादा देर न होगी।

अचला कुछ न बोली। रामबाबू अपने को जब्त करके उठ खड़े हुए थे। उन्होंने सिर हिलाया। अचला के झुके मुखड़े की ओर देखकर रुंधा गला साफ करके भर्राई हुई आवाज में बोले—कहते हुए कलेजा टूक-टूक हुआ जाता है। बिटिया, लेकिन स्त्री का अंतिम कर्त्तव्य तो तुम्हें करना ही पड़ेगा। मुखाग्नि तो—कहते-कहते वे रो पड़े।

अचला का फीका चेहरा, उससे भी ज्यादा सूखी उसकी आंखें बूढे पर जरा देर गड़ी रहीं, उसके बाद वह धीमे स्वर से बोली -मुखाग्नि की जरूरत हो तो मैं कर सकती हूँ। हिन्दू धर्म में वास्तव में इसका कोई फल होता हो, तो उसे मैं बेकार नहीं करना चाहती। मैं उनकी स्त्री नहीं हूँ।

जैसे गाज गिरी हो, रामबाबू ठक होकर देखते हुए धीरे-धीरे बोले—तुम सुरेश की स्त्री नहीं हो ?

अचला ने वैसी ही अविचलित स्वर में कहा—नहीं वे मेरे पति नहीं हैं।

एक पल में रामबाबू को सारी घटनाएँ याद आ गईं। जब से ये उनके घर आए थे, तब से उस दिन की मूर्च्छा तक सारी घटनाएँ बिजली की नाईं उनके मन में कोंध गईं और संदेह की कोई गुंजाइश ही नहीं रही कहीं। आखिर कौन है यह, किसकी लड़की, कौन जात—शायद हो कि वेश्या हो—इसे मैंने बेटी कहा, इसका जुआ खाया, इसका पकाया अन्न अपने देवता तक को भोग दिया। सब कुछ याद करके मारे घृणा के उनका सर्वांग टनटना उठा—और जिस स्नेह, जिस श्रद्धा, जिस माधुर्य और करुणा ने उन्हें इतने दिनों तक सींचकर रक्खा था, रेगिस्तान के पानी की बूंद जैसा वह गायब हो गया, पता भी न चला।

केवल वही नहीं, महिम भी हक्का-बक्का-सा खड़ा था। उसने चकित होकर कहा—जब ऐसा होना ही नहीं है, तो चलिए, हम लोग ले चलें।

चलिए—कहकर रामबाबू जैसे सपने से चल रहे हों, आगे बढ़े। उनकी अपनी दुर्घटना के मुकाबले सारी दुर्घटनाएँ जैसे छाया-सी फीकी पड़ गई थीं उनके दोनों कानों में केवल यही गूंजने लगा, जात गई, धर्म गया, मनुष्य जीवन ही जैसे बेकार, बेकाम हो गया।

सुरेश का दाह-कार्य जैसे-तैसे कर देने में ज्यादा समय न लगा। शुरू से आखिर तक रामबाबू ने एक भी शब्द न कहा और लौटते ही इक्का जोतने का हुक्म दिया।

महिम ने पूछा—आप क्या जा रहे हैं?

रामबाबू ने कहा—हां। मुझे सुबह की गाड़ी से काशी जाना होगा। अभी न निकल पड़ूं, ता समय पर पहुँच नही सकूंगा।

उनके मन की बात महिम से छिपी न रही और वह ताड़ गया कि ये प्रायश्चित्त के लिये ही काशी जा रहे हैं। सो बड़े संकोच से कहा—मैं परदेशी हूं। इधर का कुछ भी नही जानता। कृपा करके अगर इनके चलने का कोई इंतजाम—बात पूरी न हो पाई। अचला को साथ लेने के प्रस्ताव से बूढ़े आग हो उठे। बोले—कृपा ? आप क्या पागल हो गए महिम बाबू ?

महिम ने उनका प्रतिवाद नहीं किया। डरते हुए विनती करके कहा—दो दिन से शायद इन्हें भोजन भी नहीं नसीब हुआ। इस मौत की नगरी में इन्हे बेसहारे छोड़ जाना --

उसे यह बात भी पूरी करने का मौका न मिला। आचारी ब्राह्मण के जन्म-जात संस्कार को ठेस लगी थी। वे प्रतिहिंसा से बेरहम बन गए थे; इसलिए तीखे व्यंग से बोल उठे—ओ, मैं तो भूल ही गया था कि आप भी ब्राह्म हैं—खैर, आप जितने भी बड़ ब्रह्मज्ञानी क्यों न हों, मेरे सर्वनाश के परिमाण को समझ पाते तो इस कुलटा के लिए दया-माया की बात जवान पर भी नहीं लाते। यह कहकर वे गाड़ी पर बैठ गए और बोले -- खैर, ब्रह्मज्ञान से मतलब नहीं, जान बचानी हो तो सवार हो जाइए; जगह मिलेगी।

महिम ने चुपचाप उन्हें नमस्कार किया। कितना बड़ा सर्वनाश होगा। उसने इस पर भी विवाद नहीं किया और जान बचाने के आमंत्रण को भी स्वीकार नहीं किया। उनके चले जाने के बाद उसकी छाती टूक-टूक होकर एक निश्वास भर निकला।

कितना बड़ा सर्वनाश ! बेशक !

अन्दर बैठी गाड़ी की आवाज सुनकर अचला ने भी इसे महसूस किया। रामबाबू अन्दर क्यों नहीं आए, क्यों वगैर कुछ बोले चले गए, यह स्पष्ट था।

सुरेश की मौत ने वेहद फिक्र खड़ी करके जो एक ओट तैयार की थी, वह न रही। महिम उसके सामने बिल्कुल करीब आकर खड़ा हुआ, लेकिन उसका मन हर्गिज कुछ डोलने को तैयार न हुआ। उसे अपने लिए शर्म महसूस करने में भी तकलीफ सी होने लगी।

महिम ने देखा—डिबरी को सामने रखकर अचला चुप बैठी है। पूछा—अब तुम क्या करोगी ?

मैं ?—कहकर उसकी ओर ताकती हुई अचला कितना कुछ जानें सोचने

लगी। अन्त में कहा—मैं तो कुछ कुछ सोच नहीं पाती। तुम जो हुक्म दोगे, वही करूँगी।

इस अप्रत्याशित वाक्य और व्यवहार से महिम विस्मित हुआ—शंकित हुआ। अचला ने इस तरह से कभी ताका नही था। यह निगाह जितनी सीधी थी, उतनी ही स्वच्छ। इसके उसके कलेजे के अन्दर दूर तक देखा गया। वहां भय नहीं था, चिंता नहीं थी, कामना नहीं थी, कल्पना नही थी—जहां तक देखा जा सकता था, भविष्य का आसमान धू-धू जल रहा था। उसके न तो रंग था, न मूर्ति; न गति न प्रकृति–बिल्कुल निर्विकार, बिल्कुल सूना।

सताई गई, अपमानित नारी के हृदय के इस चरम वैराग्य को वह पहचान नहीं सका। एक के अभाव ने दूसरे के हृदय को ऐसा सूना कर दिया है, यह सोचकर उसका मन कडवाहट से भर गया। लेकिन अपने दुःख से दुनिया के दुःख का बोझा उसने कभी बढ़ाना नहीं चाहा, इसीलिए अपने को अपने में ही समेटे रहने की उसे आदत रही है। गले तक उमड़ा हुआ कड़वाहट कहीं उसकी बोली में न जाहिर हो पड़े, इस डर से दूसरी ओर नजर टिकाए वह कुछ देर चुप रहा। उसके बाद सहज स्वर में बोला—मैं तुम्हें हुक्म क्यों करूं अचला और तुम्ही उसे क्यों मानोगी ?

लेकिन तुम्हारे सिवा और तो कोई नही है—कोई मुझसे बात भी नही करेगा ! अचला उसी तरह महिम को ताकती रही।

महिम ने कहा—मुझसे यही उम्मीद करती हो तुम ?

प्रश्न शायद अचला के कानों पहुँचा नहीं। वह अपनी ही बात का छोर बढ़ाती कहने लगी—तुम्हें खोने के बाद से मैं कितना तो कहती रही भगवान् से, हे भगवान् ! तुम मुझे उठा लो ! उन्होंने भी न सुना—तुम भी नही सुन रहे हो ! क्या करूं मैं ?

महिम कोई जवाब न देकर बाहर चला गया। किन्तु निराशा भरी आवाज ने उसके निरभिमान, निःसंकोच, निर्लज्ज उक्ति ने उसे फिर दुविधा में डाल दिया। कान में वही आवाज लिए बाहर टहलते हुए वह यही सोचने लगा, क्या किया जाय। अपने भार से वह खुद ही झुक रहा था, तिस पर अपनी सुकृति और दुष्कृति का भार उसी पर लादकर सुरेश जाने कहाँ खिसक पड़ा—इस बोझ को वह कहाँ और कैसे उतारे।

बड़ी-बड़ी खोज और पूछ के बाद रघुवीर खबर ले आया कि डिहरी से तीनेक कोस के फासले पर कल हाट लगेगी। कोशिश करें तो वहां बैलगाड़ी मिल सकती है।

महिम को झट उठते देख उसने संकोच के साथ कहा—मैं फौरन जा सकता

हूँ, पर इस गांव तक कोई आने को राजी नहीं होगा। मां - जी अगर इतनी दूर—

अचला ने कहा—चलो; लेकिन कदम बढ़ाते ही वह लड़खड़ा कर गिर रही थी। महिम ने पकड़कर सम्हाल लिया। लेकिन लज्जा और वितृष्णा से महिम की सारी देह सिकुड़-सी जाने लगी। अपना हाथ हटाते हुए बोला—नहीं तो आज रहने दो।

क्यों ? तुमने तो कहा—यहां रहना ठीक नहीं और डिहरी से गाड़ी मंगाने मे कल का दिन भी निकल जाएगा ?

मगर तुम बेहद कमजोर जो हो—

अचला ने लेकिन उसका हाथ नहीं छोड़ा था, नहीं छोड़ा। वह सिर हिलाकर बोली—नहीं चलो। मैं अब कमजोर नहीं हूँ। तुम्हारा हाथ थामे जहां तक कहो, चल सकती हूँ।

चलो। रघुवीर नदी आगे करके महिम चल पड़ा। उसांस लेकर वह मन-ही-मन कहने लगा—इसका अन्त कहां होगा ? कब खत्म होगा ? यह सफर और कैसे ?

चवालीस

डिहरी पहुँचकर अचला ने वह लिफाफा निकाला, कहा—यह वसीयत है। महिम ने हाथ बढ़ाकर उसे लिया। उसे याद आया, इसमें सुरेश की चिट्ठी है। उस पत्र में कौन-सा अनसोचा ब्योरा लिखा है, किस दुर्गम रहस्य की राह का पता है—यह जानने के लिए तुरत उसके मन में आंधी-सी उठी। लेकिन उस ख्वाहिश को दबाकर लिफाफे को उसने जेब में डाला।

अचला ने पूछा—तुम क्या आज ही डिहरी से चले जाओगे ?

हां, यहां रहने में अब मुझे सुविधा न होगी।

और मुझे क्या सदा यहीं रहना होगा ?

महिम जरा चुप रहा, फिर पूछा—तुम क्या और कहीं जाना चाहती हो ?

अचला बोली—कल से लगातार मैं यही सोच रही हूँ। मैंने सुना है, विलायत में मुझ जैसी अभागिनों के लिए आश्रम है—वहां क्या होता है, मालूम नहीं,

लेकिन ग्रपने यहां क्या वैसा कुछ—कहते-कहते उसकी बड़ी-बड़ी ग्रांखें ग्रांसू से टल-मला उठीं। उसकी ग्रांखों में ग्रांसू यहीं पहली बार दिखाई दिया।

महिम के कलेजे में करुणा का तीर चुभा, पर वह धीरे-धीरे बोला— पता नही, मगर मैं खोज-पड़ताल कर सकता हूँ।

तुम्हें कभी चिट्ठी लिखूं तो जवाब नही दोगे ?

जरूरत हो तो दे सकता हूं। लेकिन मुझे सामान समेटकर निकलने मे देर हो जायगी, मैं चलता हूं।

ग्रचला ने ग्रपने शेष दुःख का ग्राज मन-ही-मन स्वामी के चरणों चढ़ाते हुए वहीं जमीन में माथा टेककर प्रणाम किया ग्रौर उनके चले जाने के बाद चौखट पकड़े चुप खड़ी रही।

महिम सोचता जा रहा था, [illegible] यहां ग्रब एक पल भी ठहरना ठीक नही, ग्रौर शहर में भी ग्रौर कही एक [illegible] कहीं [illegible] लेना ग्रसंभव है। चाहे जैसे भी हो, यहां से ग्राज चल हो देना पड़ेगा, फिर ग्रपने लिए उसे एक ऐसी एकांत जगह की जरूरत थी, जहाँ दो घड़ी स्थिर बैठकर वह न केवल उस लिफाफे को खोल कर पढ़े, बल्कि ग्राँख खाल कर ग्रपन ग्रापको देखने का ग्रवसर पा सके।

ग्रचला को धीरे-धीरे प्यार करन का इतिहास धुँधला हो चुका था, लेकिन इसी लड़की के लिए उसके जीवन म जा गुजर गया, वह जैसा प्रलय-सा ग्रसीम हे, वंसा ही उपमाविहीन। फिर सहने की निःशेष शक्ति भी विधाता ने उसे नही दी ! उसका घर बाहर-भीतर से जल बठा—तो वह वहीं खड़ा-खड़ा राख हो गया— उसकी एक भी चिनगी छिटक नहीं पाई। लेकिन ग्राज उसकी शक्ति की पुकार केवल सहने के लिए नही हुई है—सामंजस्य के लिए हुई है ! ग्राज जमा-खर्च की तफसील का लेखा लगाए बिना नहीं चलने का। कोई एकांत जगह ग्राज उसे जरूर चाहिए।

डेरे पहुँचकर जल्दी-जल्दी उसने सामान सहेजा। पाँच बजे की गाड़ी मे घंटे भर की देर थी। रामबाबू को लौटने में देर होगी, क्योंकि वे वास्तव में प्रायश्चित के लिए ही काशी गए है ग्रौर कह गए हैं, प्रायश्चित्त किए बिना पानी तक न लेंगे। लिहाजा उनसे मिलकर जाना मुमकिन नहीं। सो रुखसत होने वाले फर्ज को एक खत से ग्रदा करने के ख्याल से वह कागज-कलम लेकर बैठा। दो-एक पंक्तियां लिखने के बाद उनके गुस्से से निकलने वाले व्यंग-वाणों की याद ग्राने लगी। ग्रौर उसी के साथ-साथ एक जने के ग्रांसू-रुँधे कंठ की कातर विनती भी उसके कानों तक पहुंची। तंद्रा की हालत में पीड़ा जैसी उसकी चेतना को पूर्णतया जगाए रखकर भी वह

जगाए नहीं रक्खा- -सोने नहीं दिया। रामबाबू की वे बातें मानो धक्का देकर उसे चौंका गईं।

इस बूढ़े आदमी से उसका परिचय ज्यादा दिनों का नहीं, लेकिन इनकी दया, इनके दान, इनकी भलमनसाहत, निश्छल भगवद्भक्ति के किस्से बहुत सुन रक्खे थे—इन बातों ने अचानक मानो उसकी आखों के आगे उनकी एक नई दिशा दिखा दी।

इन भलेमानस ने अचला को बेटी कहकर संबोधित किया था। इसके सिवाय दूसरे गोत्र की किसी लडकी के हाथ का अन्न उन्होंने नही खाया—बातों के सिलसिले में उन्होंने महिम को यह भी बताया था, लिहाजा महिम के लिए यह अनुमान करना कठिन नहीं था कि रामबाबू का सर्वनाश किधर से आया। लेकिन वह मन ही मन यही कहने लगा कि अचला के अपराध का विचार न होगा बाद मे किया जायगा पर इस आचार-परायण ब्राह्मण का यह धर्म कौन-सा है जो एक, मामूली-सी लड़की के धोखे से वह तुरत धूल मे मिल गया! [illegible] अत्याचारी की ठोकर से आप अपने को और पराए को नही बचा सकता, बल्कि [illegible] से उसी को बचाने के लिए प्रतिपल अपनी शक्ति को तैयार रखना पड़ता है- वह धर्म आखिर क्या धर्म है और मनुष्य के जीवन मे उसकी उपयोगिता क्या है? जिस धर्म ने स्नेह की मर्यादा नही रखने दी, एक असहाय नारी को मौत के मुंह में छोड़कर चले आने मे जरा भी हिचक नही होने दी, चोट खाकर जिस धर्म ने इतने बड़े स्नेहशील बूढ़े को भी प्रतिहिंसा से ऐसा निर्दयी बना दिया, वह कैसा धर्म है? और जिसने उस धर्म को कबूल किया, वह कौन से सत्य को लिए चल रहा है? जो धर्म है, वह तो चमड़े की नाईं आघात सहने के लिए ही है! वही तो उसकी अंतिम परीक्षा है?

उसे सहसा लगा, तो क्या मेरा इस तरह भाग आना भी—मगर इस चिंता को भी उसने उसी तरह जबर्दस्ती हटाकर कलम को उठा लिया और मुख्तसर में चिट्ठी को खत्म करके स्टेशन की तरफ चल पड़ा।

गाड़ी के आने पर जिस डब्बे के दरवाजे को खोलकर महिम ने अंदर जाना चाहा, उसी मे से एक बूढ़े आदमी एक विधवा स्त्री का हाथ पकड़े नीचे उतरे।

बूढ़ ने कहा—अरे, महिम!

मृणाल ने झुककर प्रणाम किया। कहा—सँझले दादा, चले कहां? और दोनों ने हैरान होकर देखा, महिम गाड़ी पर बैठ गया है।

महिम ने कहा—मैं कलकत्ते जा रहा हूँ। 'सुरेश बाबू के घर ले चलो' कहने से ही कोई गाड़ी वाला पहुँचा देगा। वहां अचला है।

केदारबाबू ठक-से खड़े रहे। महिम ने कहा—सुरेश गुजर गया। अचला ने

मुझसे किसी आश्रम के बारे में पूछा था मृणाल, लेकिन मैं कोई जवाब न दे सका--तुम से कोई जवाब वह पा सके शायद ।

उसके चेहरे पर नजर रोपकर मृणाल ने कहा--जवाब जरूर पाएगी संझले दादा । लेकिन अपनी शिक्षा तो तुम्हारे ही पास हुई है । आश्रम की कहो, चाहे आश्रय की कहो--उसका यह कहां है, यह मै बता सकूगी, लेकिन वह बताना तो तुम्हारा ही होगा ।

महिम ने कुछ कहा नही । अपने को उस तीखी निगाह वाली औरत से बचाने के लिए ही शायद उसने मुह फेर लिया ।

गाड़ी ने सीटी दी । बूढ़े के छूटे दायें हाथ को अपने हाथ मे लेकर मृणाल ने कहा--चलिए बाबूजी, हम लोग चलें ।